सत्य दिपक की ज्वलंत ज्योत

विजय आनंद सूरि

MAS

वल्लभ आत्म समुद्र

लेखिका :
डॉ. किरणयशाश्रीजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य दिपक की ज्वलन्त ज्योत

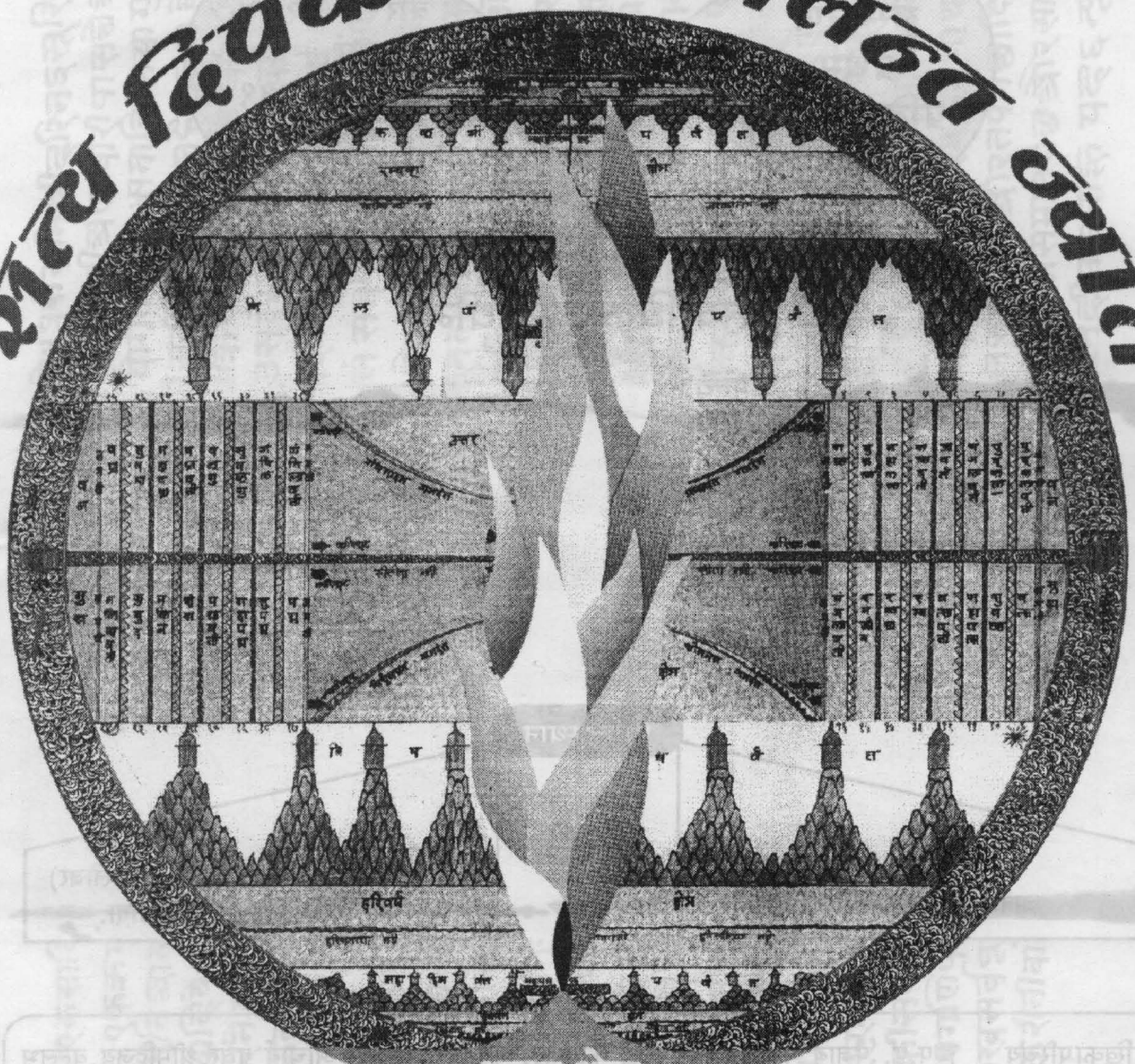

वल्लभ आत्म समुद्र

लेखिका :
डॉ. किरणयशाश्रीजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री आत्म वल्लभ समुद्र इन्द्र सद्गुरुभ्यो नमः

सत्य दीपक की ज्वलन्त ज्योत

ले. डॉ. किरणयशाश्रीजी म.

संस्करण
प्रथम
प्रति-१०००

वीर सं. - २५२५
विक्रम सं. - २०५५
इ.स. - १९९९
जनवरी

सर्वाधिकार स्वाधीन

टाईप सेटींग्स : **श्री कोपी सेन्टर**
बडौदा.

मुद्रण : **श्री मधु प्रिन्टरी**
भद्रकाळी माताकी पोल,
रावपुरा, बडौदा.

प्रकाशक

दान दाता

१. **श्री आत्मानंद जैन उपाश्रय,**
जानी शेरी, बडौदा.
२. **श्री महिला जैन उपाश्रय**
जानी शेरी,
बडौदा

प्राप्ति स्थान

१. **श्री आत्मानंद जैन उपाश्रय,**
२. **श्री महिला जैन उपाश्रय**
जानी शेरी, बडौदा.
३. **श्री गौतमकुमार मोहनलाल शाह** (एस्ट्रोलोजर)
बावामढी लेन, देसाई शेरी, बडौदा.

लेखिका परिचय : प.पू. पंजाब केसरी, कलिकाल कल्पतरु, युगदृष्टा, युगवीर आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म.सा. के पट्ट परम्परक वर्तमान गच्छाधिपति, प.पू. परमार क्षत्रियोद्धारक, जैन दिवाकर आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्नसूरीश्वर जी म.सा. की आज्ञानु वर्तिनी साध्वीरत्न प्रातःस्मरणीय, वात्सल्य निधि. प.पू. प्रवर्तिनी (स्व.) कर्पूरश्रीजी म.सा. की अंतेवासी, ज्ञान-पिपासु, मधुरभाषिणी प.पू. (स्व.) विनोद म.सा. की सुशिष्या, परमोपकारी, सरल हृदयी, प.पू. यशकीर्तिश्रीजी म.सा.की चरणरेणु डॉ. किरणयशाश्रीजीने यह शोध प्रबन्ध परम श्रद्धेय, कृपावर्षी, शांत तपोमूर्ति प.पू. प्रवर्तिनी श्री विनिताश्रीजी म.सा. की पावन निश्रामें सम्पन्न किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

।। अर्हं नमः।। एक साहिब अंगरेजने विलायतकों लिखाथाकि एक ऋग्वेदसंहिता सभाष्यका पुस्तक साधु जैनमुनि आत्मारामजीको सरकारने भेटदाखल देना चाहिये सो पुस्तक तोलमें ३५ सेर पक्का है सो सरकारने गवरनर जनरलकी औ अजंटसाहिबकी मारफत मुझको जोधपुरमें मिला है यह बात सत्य है

२ नवीन साधुयोंको बडी दीक्षा दीनी है सो किस शास्त्रानुसारे गुजरातमें तो भगवतीना योगवह्या होवे सो दीक्षा देवे है इति वचन।।

उत्तर मैं पामर जीव भगवंतकी सम्पूर्ण आज्ञा आराधन ही सक्ता हूं दिक्षा तो मैने समाचारीकी रीतीसे दीनी है परंतु भगवतीका योग तो मैने न ही वह्या है यह मेरेमें न्यूनता है और विना योगवह्या मैं भगवती प्रमुख शास्त्र व्याख्यानमें वाचता हूं शिष्योंको वाचना देता हूं यह दूसरी न्यूनता है २ और योग तो वह्या परं शास्त्र नहीं पढा है रीती पूर्वक तिसकों मैं गणि मानता रहता हूं यह तीसरी न्यूनता है ३ और किसिनी गच्छकी समाचारीमें मैंने नहीं देख्या है कि गणि गणिकों गणिपद देवे परंतु आचार्य गणिपद देवे ऐसा लेख सर्व पूर्वाचार्योकी समाचारीयोमें है परं मैंतो पूर्वोक्त रीतीवालेकों गणि मानता रहता हूं यह ४ न्यूनता है।

संबोधप्रकरणमें श्रीहरिभद्रसूरिजीनें लिखा है कि जो परिग्रहधारी अणाचारी पासत्थे आदिके पास जो कोई योग तथा उपधानादि क्रिया गुरुबुद्धि सें वहै तिसकी सर्व क्रिया निष्फल है उलटा वोह योग उपधानादिकी क्रिया करनेवाला प्रायश्चित्तके योग्य है अर्थात् उसकों प्रायश्चित्त लेना चाहिये गाथा। वंदणनमंसणाई जो गुरुवहाणाइ तं पुरो विहियं गुरुबुद्धिए विहलं सव्वं पच्छित्तं जं गुरुं च।। ८३।। मैनेतो ऐसे योंके आगे योगवहनेवालोंकी क्रिया सफल मानी थी यह ५ न्यूनता है। आचार्य १ उपाध्याय २ स्थविर ३ प्रवर्त्ति ४ गणि ५ ए पांचो पुरुष जिस गच्छमें न होवे सो गच्छ चोरपल्ली समान है सम्यक्त रूप रत्नका हरनेवाला सो गच्छ है और भव जीवांको संसार भ्रमणका हेतु है ऐसे गच्छमें स्वविहित साधुको एक महूर्त्तमात्र भी वसना न चाहिये। जे कर सामान्य साधु होवे परंतु वोह पांचो पुरुष न होवेतो गच्छ स्वमेरहना अच्छा है। गाथा जच्छन पंचइमे वि नछि गणी सो उज्झपत्ति सारिच्छो समत्तरयणहरणे नचाणनवस्रमणसीलो ८५ तच्छन मुहुत्तमित्तं वसियव्वं स्वविहिएहिं साहूहिं जइ सामान्नमुणिणो न गुणिणो तत्त्व रंगेहं।। ८६।। इस गाथार्थानुसार मैने हीवलसक्ता हूं और तपगच्छादि गच्छोंके साधुयोंको चोरपल्ली समान गच्छ और साधुयोंको चोरा समान ही मानता हूं यह ६ न्यूनता है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचिंत्य प्रभावशाली

श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ भगवान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

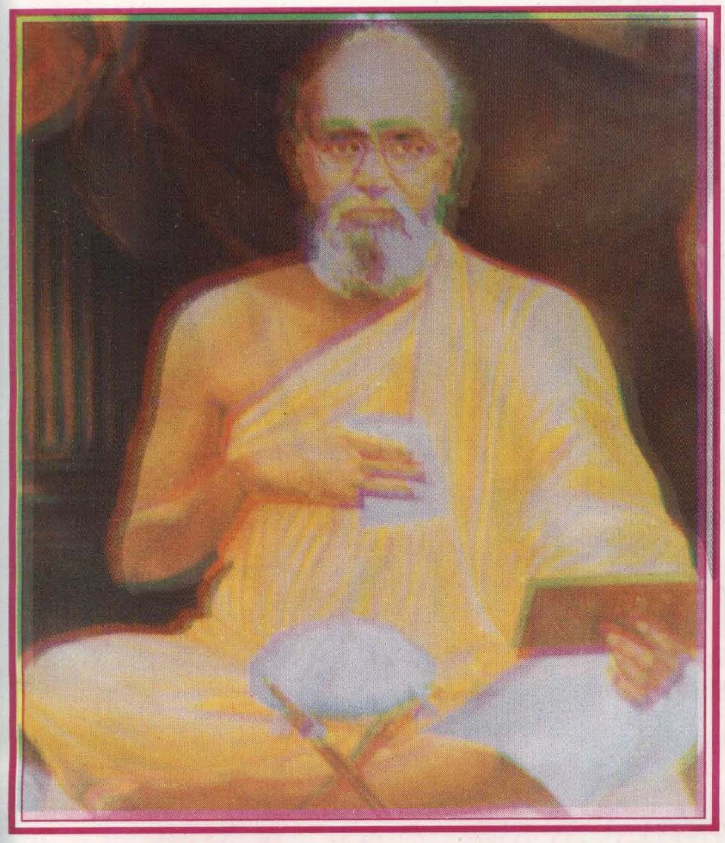

पंजाब केसरी, युगवीर आचार्य
प.पू. श्रीमद्विजय वल्लभ सूरीश्वरजी म.सा.

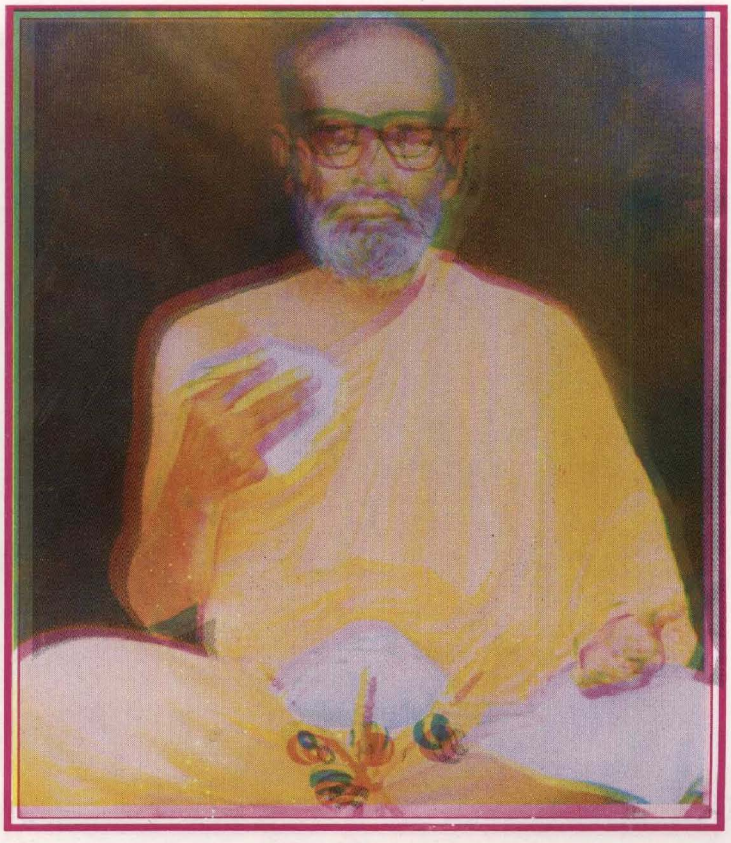

शांतिमूर्ति, राष्ट्रसंत
प.पू. श्रीमद्विजय समुद्र सूरीश्वरजी म.सा.

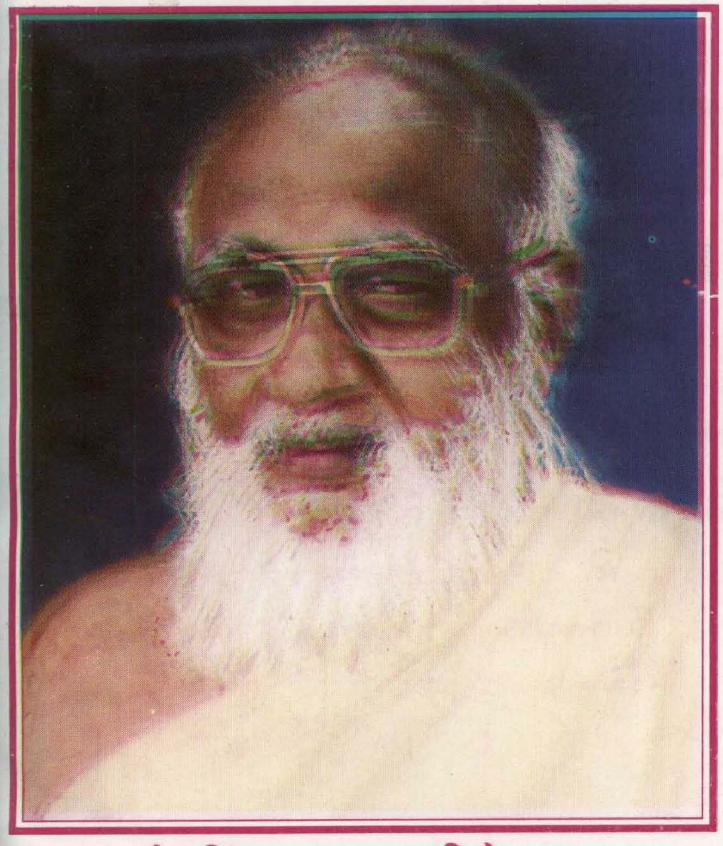

जैन दिवाकर, परमार क्षत्रियोद्धारक
प.पू. श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म.सा.

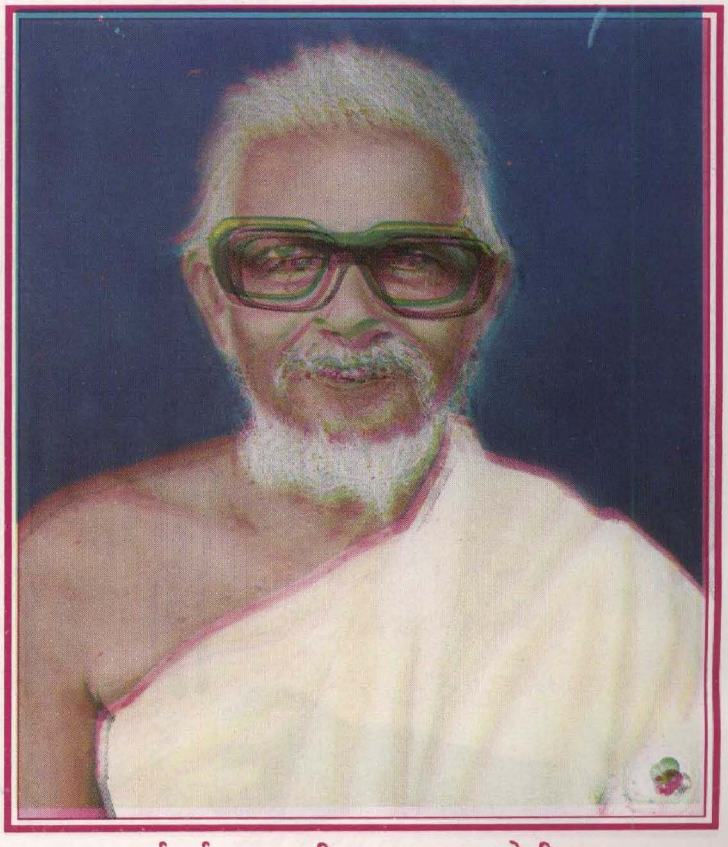

सर्वधर्म समन्वयी, परमध्यान योगीराज
प.पू. श्रीमद्विजय जनकचंद्र सूरीश्वरजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वात्सल्य मूर्ति रत्नत्रयीके प्रखर आराधिका
प.पू.प्र. कर्पूर श्रीजी म.सा.

शांत तपोमूर्ति.
प.पू.प्र. विनीता श्रीजी म.सा.

ज्ञानयज्ञके साथी मधुर भाषी
प.पू. विनोद श्रीजी म.सा.

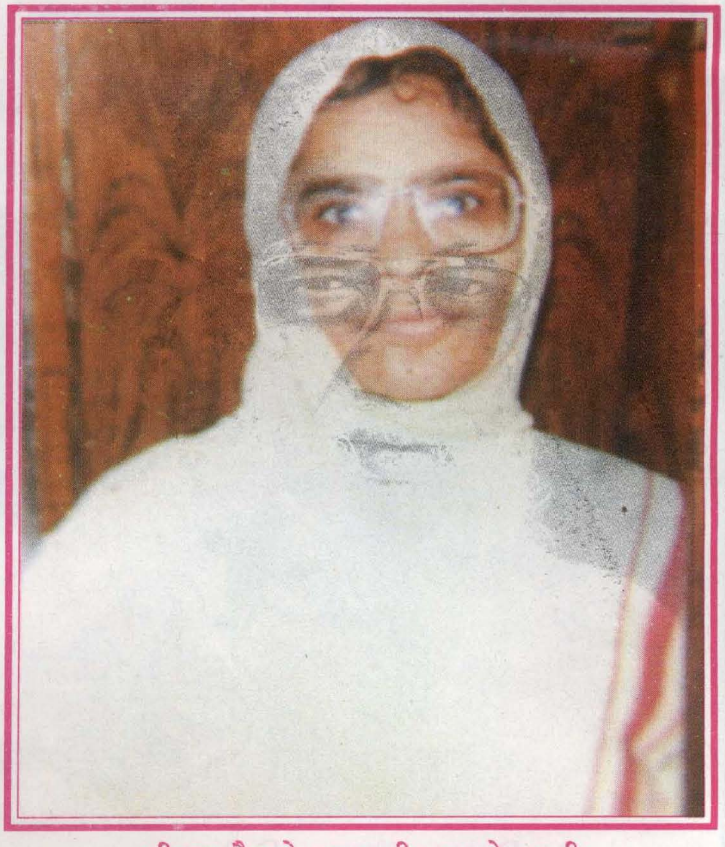

जीवन नैयाके सुकानी, परमोपकारी
प.पू. यशकीर्ति श्रीजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयन्तु वितरागाः
श्री आत्म-वल्लभ-समुद्र सद्गुरुभ्यो नमः

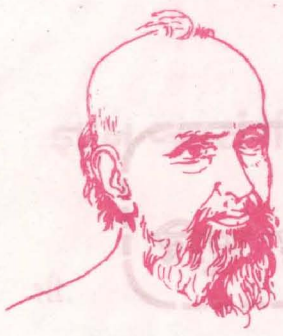

विजय इन्द्रदिन्न सूरि

शेठ मोतिशा रिलिजियस ॲन्ड चॅरिटेबल ट्रस्ट
शेठ मोतिशा आदेशरजी जैन मंदिर
२७, लव लेन (मोतिशा लेन)
भायखला, मुंबई ४०० ०२७
फोन न.: ३७२०४६१, ३७१०७९२

ता. २३ ३ ०७

आशिर्वचन

ज्ञानम विधादाय धनम् मदाय शक्ति परिणाम् परानदेहनाय।
खलस्य साधो विपरित मेतत ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥१॥
ज्ञान शक्ति, धन शक्ति शारिरिक शक्ति ए तिन शक्तियों
प्रत्येक मनुष्योंको मिली है। उसमें तिनों शक्तिओं सज्जनों
सत उपयोगमे लगाते हैं और दुर्जन पुरुषो दुर्वुपियमें
लगाते हैं। ज्ञानसे वाद विवादमें पडकर सबके साथ लडना
झगडना वैसे कामोंमें अपनी शक्ति लगानेसे ज्ञान तारनेवालेका
काम नहीं करता है परन्तु सदरचना करे वे ज्ञान तारने वाला है दुर्वुपियोग
करे तो ज्ञान डूबाने वाला भी बनता है।
धनसे दिन दुःखियोंका उद्धार का काम कर शकते है जैसे तिर्थंकरोंने
वार्षिदान देकर सारे जगत मात्र का उद्धार किया दुःखीयोंका दुःख किया
३ अरब ८८ क्रोड ८० लाख सोना महोरका दान दिया और जो
मांगे वे प्रभुने दिया हाथीकी इच्छावाले आया हाथी दे दिया घरकी
इच्छावाले आया घरबने इतनी सोना महोरें दे दि वैसे आत्मधन
अतलौकिक धन ज्ञान, दर्शन और चारित्र उनको स्वधर्मको रक्षा करनी है
सब आत्मिक धन भी तारने वाला बनता है
शारिरिक धन मायने शरीरकी शक्ति द्वारा मारना फाडना छिदना द्वारा
कर्मबन्धन होता है परन्तु ज्ञान ध्यान तपस्या द्वारा शारिरिक शक्ति का उपयोग
होता है वैसे ही साध्वी श्री किरणयशाश्रीजी संयम लेकर गुरुदेवोंको
वफादार रहकर गुरुदेवोंका जिवनपर किताब लिखकर अपनी शक्ति
ज्ञान ध्यान, तप साधना में लगाकर जिवन उज्जवल बनाया है
और पुस्तककी रचनामें अपना समय लगाकर गुरु गुणोंगाकर
लिखवाई की ए मैं सार्थक मानता हूं

आचार्य विजय इन्द्रदिन्नसूरिका अनुवंदना
सुखवरशाता

* जयन्तु वीतरागाः *

* श्री आत्म-वल्लभ-समुद्र-इन्द्रदिन्न सद्गुरूभ्यो नमः *

विजय जनकचन्द्र सूरि

तिथि— ५-१२-९६

જૈન ઉપાશ્રય, લુધિયાના (letterhead: तिथि) — ૫-૧૨-૯૬ ડ્ર.

જનકચંદ્રસૂરિના
વિદુષી સુ સંયમિના સા. કિરણયશા શ્રીને
અનુવંદના - સુખશાતા

તમોએ નિષ્ઠા અને પરિશ્રમ કરીને જે કામ પૂર્ણ કર્યું તે જાણીને આનંદ થયો. પી.એચ.ડી.
આપણા સમુદાયમાં તમોએ મારી ભાવના પૂર્ણ કરી તેથી અમોને ખૂબ: ધન્યવાદ
તમારા સંશોધન કાર્યના સમાજ ઉપયોગિતા નિયત અવશ્ય થશે
તમારા આ કાર્યમાં વિજય વલ્લભ સૂરિ જી. મ. ના સમુદાયના શોભામાં અભિવૃદ્ધિ કરી છે
વિજયાનંદ સૂરિ સ્વર્ગારોહણ શતાબ્દી વર્ષના પ્રસંગે આ કાર્ય પૂર્ણ થયું તેથી વિશેષ અભિનંદનીય બનાવ્યું

चतुर्मास 1995 – लुधियाना (पंजाब)

महावीर-भवन, पुरामा बाजार, दरेसी, शाही दवाखाना के समीप, लुधियाना–141008

दूरभाष-0161-35707

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

॥ નમોનમઃ શ્રી ગુરુનેમિસૂરયે ॥

જ્ઞાન વ્યાસંગી પ.પૂ. શ્રીમદ્વિજય શીલચંદ્ર સૂરીશ્વરજી મ.સા. તરફથી

તા. ૨-૧૨-૯૮

શી.

વિનયવંત વિદુષી સાધ્વીજીશ્રી કિરણયશાશ્રીજી યોગ
અનુવંદના સુખશાતા.

પૂજ્યપાદ આત્મારામજી મહારાજ આપણા મહાન પ્રવચનપ્રભાવક યુગ પુરુષ હતા. તેઓશ્રીની શતાબ્દીના ઉપલક્ષ્યમાં તમોએ દીર્ઘ અને દૃષ્ટિ સંપન્ન પ્રયત્ન કરી તેઓના જીવન-કથન ઉપર ઊંડો અભ્યાસ કર્યો અને શોધ નિબંધ પૂર્ણ કર્યો, તે એક તરફ ગુરુભક્તિનું પુણ્યકાર્ય કર્યું છે, તો બીજી તરફ વિદ્યાભ્યાસનું મહત્ કાર્ય પણ તે ગણાય. તમારા આ અધ્યયનની ખૂબ ખૂબ અનુમોદના છે.

હવે પછી તમે આ પ્રકારે વિવિધ વિષયો પરત્વે શોધક દૃષ્ટિ રાખીને સંશોધન લેખો લખતાં રહેશો, તેવી અપેક્ષા રાખું તો તે અસ્થાને નહિ લાગે. Ph.D. નું કાર્ય એ તો પ્રારંભ જ છે. આમાં બુદ્ધિ તથા દૃષ્ટિનું માર્જન જ માત્ર થાય. તેનાથી થતું વાસ્તવિક જ્ઞાનાર્જન. તો હવે પછીના તમારા કાર્યોમાં પ્રગટ થવાનું. તો તેમાં કચાશ કે આળસ ન કરશો.

આવતીકાલે પાલીતાણા. ૨-૩ દિન બાદ નીકળીને હું ડેમ થઇ કદંબગીરી તીર્થે ૧ માસ માટે સ્થિરતા કરીશ.

સૌને શાતા પૂછશો. કામકાજ જણાવશો.

પરમ વાત્સલ્યમયી પ.પૂ. પ્રવર્તિની શ્રી વિનીતાશ્રીજી મ.સા. તરફથી

જ્ઞાન પિપાસુ કિરણયશાશ્રીજી,

તા. ૨૪-૯-૯૭

અનુવંદના સુખશાતાપૂર્વક,

મારી નિશ્રામાં રહીને લગાતાર ચાર વર્ષ સુધી રાત-દિવસ; તનતોડ મહેનત કરીને તેમજ ક્ષુધા-તરસ, ઊંઘ-આરામ ગૌણ કરીને; સાથે સાથે અનેક નાની મોટી તપશ્ચર્યા નિરંતર કરતા રહીને જ્ઞાન મેળવ્યું અને પી.એચ.ડી.ની ડીગ્રી મેળવી તેનો મને આનંદ છે.

આ જ્ઞાનની, ઉપાસનાની હું ખૂબ ખૂબ અનુમોદના કરું છું શાસનના કામ કરીને ગુરુ મહારાજના નામને રોશન બનાવજો. એ જ મારી એકની એક હાર્દિક - અંતઃકરણની આશિષ.

-પ્રવર્તિની વિનિતાશ્રીજી મ.સા.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हार्दिक समर्पण

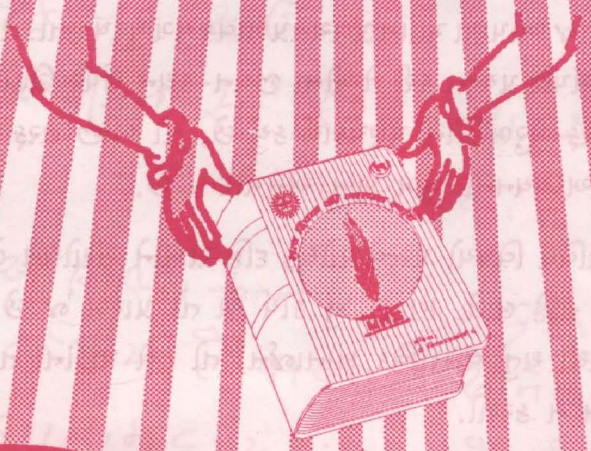

स्वर्गारोहण शताब्दी की बेला में
ज्ञानादित्य का प्रकाश भरना चाहती हूँ
अपने दिल के अरमानों का अर्घ्य धरना चाहती हूँ

* श्री आत्म-वल्लभ - समुद्र सूरीश्वरजी म.सा. की पट्ट परम्परा के समर्थ एवं विशिष्ट संवाहक
* सामाजिक गगनांचल के तेजस्वी तारक
* जन-जन के श्रद्धा केन्द्र
* धार्मिक क्षितिजांचलों के सक्षम सुयोग्य नेता
* परमार क्षत्रियोद्धारक चारित्र चूडामणि
* जैन दिवाकर, शिशुसम सरल
* वात्सल्य वारिधि परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर

श्रीमद् विजय इन्द्रदिन्न सूरीश्वरजी म.सा.

विश्व
विरल विभूति
युगप्रधान
संविज्ञ आद्याचार्य
प.पू. दादा गुरुदेवके
वाङ्मय-विषयक
संशोधन लक्षित
महानिबन्ध के
हार्दिक प्रेरणादाता
इन
सूरि पुंगव
द्वय
के

कर
कमलों
में

* ज्ञानार्जनके संजोये हुए मेरे अनेक स्वप्नों के उजागर कर्ता;
* संशोधन क्षेत्रमें पदार्पण हेतु अपूर्व एवं अमूल्य परामर्शदाता
* अध्यात्म ज्ञान-कंवल को विकस्वर करनेवाले उदयाचल के रक्तिम रविराज
* सर्व धर्म समन्वयी
* अध्यात्म योगीराज एवं
* आत्मानंदी अनुभवमे अलौकिक अध्यात्म किरणों के जनक परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर

श्रीमद् विजय जनकचन्द्र सूरीश्वरजी म.सा.

डॉ. किरण यशाश्री जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

श्री आत्मानन्द द्वासप्तति में मालाबन्ध काव्य के टीकाकार ने एक अर्थ में लिखा है -

'दिग्जेता योगाभोगानुगामी जीयात् ।'

-'दिशाओं और विदिशाओं में मुक्ति के आनन्द को देने वाले, जैनधर्मकी शिक्षा को फैलाने वाले, पर्वतों की तरह अटल निश्चय रखने वाले, अतएव धर्मशास्त्रों के बताए हुए मार्ग से पदमात्र भी न टलने वाले, मोक्षमार्ग की विद्या के रंग में अच्छी तरह रंगे हुए तथा मोक्षमार्ग में आने वाली बाधाओं पर विजय पाने वाले, अपने जीवन सुधारकों से भी स्तुति किए हुए.....मुक्तिक्षेत्र की चिन्ता को मिटाने वाले ब्रह्मवर्चस्वी श्री विजयानन्द सूरीजी विजय प्राप्त करें ।'

मानव एक चिन्तनशील प्राणी है अत: विविध राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय चिन्तकों, लेखकों, कवियों तथा विद्धान आचार्यों ने अपने चिन्तन-मनन व विवेक से आचार्य प्रवर श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी महाराजके विराट् व्यक्तित्व व कृतित्व का मूल्यांकन अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है तथापि ऐसा ज्ञात होता है कि आचार्यप्रवर का तथा उनके कार्योंका वर्णन सरल व सहज नहीं है । वास्तविकता यह है पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का चिन्तन अत्यन्त व्यापक था तथा उनके विवेचन की दृष्टि अत्यन्त पैनी और सूक्ष्म थी । उन्होंने विश्व के विभिन्न धर्म, दर्शन विचारधाराओं एवं महापुरुषों के जीवन को अनाग्रहवृत्ति से बौद्धिक कसौटी पर कसा और "जैन तत्वादर्श" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के मंगलाचरण में लिखा-

स्यात्कार मुद्रितानेक सदसद्भाववेदिनम् ।
प्रमाणरूपमव्यक्तं भगवंतमुपास्महे ।।

तत्कालीन भारत की राजनैतिक बागडोर अंग्रेजों के हाथ में थी । अज्ञानता के कारण जैन धर्म और संस्कृति का मौलिक स्वरूप सामान्यजन के समक्ष पूर्णत: स्पष्ट न था ऐसे में पूज्य आचार्य श्री जी ने निर्भय होकर अपना पक्ष प्रस्तुत किया । महर्षि दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्दजी उसी समय के विचारक चिन्तक व मनीषी थे । दोनों ने एक स्वर से श्री आत्माराम जी महाराज के प्रकाण्ड पाण्डित्य तथा ओजस्विता को स्वीकारा था । स्वामी विवेकानन्दजी ने शिकागो से अपने मित्रों को लिखे एक पत्र में लिखा है..... जैनधर्म के प्रतिनिधि के रूप में श्री वीरचन्द राघवजी गांधी ने सभामें अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से दिए गए प्रवचन से मुझे व उपस्थित सभी धार्मिक प्रतिनिधियों को प्रभावित किया: सभी उनकी शान्त-शीतल वाणी से चमत्कृत है । मैं तो बार-बार उस गुरु की प्रशंसा कर मस्तक झुकाता हूँ जिन्होंने ऐसा विद्धान् शिष्य तैयार कर यहाँ भेजा तथा जैनधर्मको विश्वमंच पर प्रतिष्ठित किया.....।"

ऐसे पूज्य आचार्यप्रवर के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विदुषी साध्वी श्री किरणयशा श्रीजी महाराज ने म.स. विश्वविद्यालय बड़ौदा से पी. एच. डी. उपाधि हेतु शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किया है । सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध नौ पर्वो मे विभक्त किया गया है । साध्वीजीने बड़े ही विनम्र भाव से इस ग्रन्थ के विषयमें अपना अभिप्राय स्पष्ट किया है -

"--- अक्षुण्ण और उज्ज्वल कीर्तिकलेवरधारी, वीर शासन के अभिन्न अंग आचार्यप्रवर श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वरजी म. के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनुसन्धान के माध्यम से जैनधर्म के विभिन्न अंगो को प्रदर्शित करके सूरीश्वर जी के उत्कृष्ट योगदानरूप उनके उपकारों का स्मरण करते-करवाते आपके ऋण से उऋण होने का क्षुल्लक प्रयत्न मात्र किया है ।"

लेखिका साध्वीजी का उपरोक्त आत्मकथा उनके विनयभाव को प्रकट करता है । विनय विद्या की प्रथम सीढी है । विनयपूर्वक ग्रहण की गई विद्या के विषय में बृहत्कल्पभाष्य में कहा है -

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विणयाहीया विज्जा देंति फलं इह परे य लोगम्मि ।
(बृह. भा. ५२०३)

- विनयपूर्वक ग्रहण की गई विद्या लोक-परलोक सर्वत्र फलवती होती है ।

साध्वी जी ने विशाल शोध प्रबन्ध की रचना में चारित्रचूड़ामणि, परमारक्षत्रियोद्धारक परम पूज्य गच्छाधिपति जैनाचार्य श्रीमद् विजयइन्द्रदिन्न सूरीश्वर जी महाराज तथा सर्वधर्मसमन्वयी अध्यात्मयोगी प.पू. आचार्यप्रवर श्रीमद् विजय जनकचन्द्र सूरीश्वरजी महाराज के आशीर्वाद को सम्बल माना है, यह साध्वी जी की विनम्रता का प्रतीक है । शोध प्रबन्ध का अर्थ ही है कि विषय का सर्वतोभावेन मूल्यांकन कर मौलिक व नवीन अनुसन्धान प्रस्तुत किया जाएँ । इस ग्रन्थ में पदे-पदे मौलिकता, विषय की गम्भीरता तथा नूतन निरूपण प्रकट होता है । द्वितीय पर्व में श्री आत्मारामजी महाराज का जीवन तथ्य प्रस्तुत करते हुए लेखिका ने लिखा है -

''सत्य के गवेषक, सत्य के प्ररूपक, सत्य के प्रचारक, सत्य के विचारी - आचारी - प्रचारी एवं सत्य के संगी-साथी, अमर-आत्मा-जिनका अन्तरंग सत्य से लबालब भरा था तो बहिरंग व्यक्तित्व के परिवेश में सत्य के ही सुर प्रवाहित थे; सत्य की सुरीली लय पर सत्य का नर्तन था । ऐसे सत्य की ज्वलंत जयोतिर्मय विभूति-जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द---- ।''

प्रस्तुत ग्रन्थ में न केवल भाषा सौष्ठव स्पृहणीय है अपितु प्रसंगानुरूप भावाभिव्यक्ति भी सहज तथा शिष्ट है । अनुसन्धानकर्त्री के भावों पर भक्ति की नैसर्गिक छाप है, स्पष्ट है कि साध्वी जी महाराज अपने पूज्य पूर्वज गुरुदेव का गुणानुवाद कर रही हैं । यदि श्री आत्मारामजी महाराज को मूल्यांकन की दृष्टि से देखें तो आप श्रीने तो साहित्य सष्टा के रूप में भी पर्याप्त ख्याति व सम्मान पाया है और व्यक्तित्व का यह पक्ष भी स्वयं में वन्दनीय व अनुकरणीय है । साहित्य सृजन का वर्णन करते हुए लेखिका ने लिखा है- ''उन दिनों ज्ञान-शून्य-भ्रान्त जनता के मनोमालिन्य की शुद्धि के लिए अपनी लेखिनी को मुखरित करते हुए मौखिक उपदेश की अपेक्षा बहुव्यापक एवं चिरस्थायी बनाने योग्य उपदेश को अक्षरदेहरूप ''नवतत्व संग्रह'' जैन तत्वादर्श'' (आदि) जैसे ग्रन्थों की रचना को प्रकाशित कराया ।''

जैनों के साधर्मिक वात्सल्य का विश्लेषण करते हुए ''जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर'' ग्रन्थ में मार्गदर्शन करते हुए गुरुदेव लिखते हैं कि श्रावक का बेटा धनहीन या बेरोजगार हो तो उसे रोजगारी में लगाना या उसे जिस कार्य में सिद्दत हो - आवश्यकता हो - उसमें मदद करना सच्चा साधार्मिक वात्सल्य है ।'' इस स्थल पर लेखिका की बेबाक टिप्पणी अनुमोदनीय है -

''युगनिर्माण की महत्वपूर्ण कुंजी घुमाते हुए आपने सामाजिक एकता का ताला खोल दिया । ऐक्य में छिपी प्रचण्ड ताकत से पूरे समाज को अभिज्ञ किया ।'' कहना न होगा कि पूज्य गुरु वल्लभ को समाज सुधार, सामाजिक एकता तथा साधर्मिक वात्सल्य जैसे गुण अपने गुरुदेव से धरोहर के रूप में प्राप्त हुए थे ।

श्री आत्माराम जी महाराज के पद्य साहित्य का विवेचन करते हुए लेखिका साध्वीजी ने आचार्य मम्मट, भामह, पं. विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि भाषाविदों के साथ अन्य हिन्दी तथा आंग्ल भाषाविदों का उनकी मत्यनुसार काव्य की परिभाषा का जिक्र किया है किन्तु अन्त में निष्कर्ष के रूप में लेखिका द्वारा दी गई परिभाषा अत्यन्त सारगर्भित तथा सटीक है -

''मनुष्य की जिज्ञासा एवं आत्माभिव्यंजना की अदम्य इच्छा से मानव जीवन की विशद व्याख्यान्तर्गत प्राकृतिक सौन्दर्य का रसात्मक-नैसर्गिक-हार्दिक निरूपण - जिसमें पाठक सांसारिक सर्व परिस्थितियों से ऊपर उठकर काव्य घटनाओं को आत्मसात् करके आत्मानुभूति पाता है; जब उसकी मनोदशा ब्रह्मसाक्षात्कार किए हुए योगी सदृश हो जाती है - वही काव्य है ।''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेव के कविरूप का वर्णन करते हुए लिखा गया है – ''महाकवीश्वर श्री आत्मानन्दजी के काव्य भक्तिरस से लबालब भरे हैं क्योंकि वे भक्त पहले थे कवि बाद में। निर्मलभावजल भरपूर मानससर में ''आतम हंस'' मुक्ति-मौक्तिक का चारा चुगते हुए विहार कर रहा है।''

यहाँ पूज्य गुरुदेव द्वारा रची गई पंक्तियाँ उल्लेखनीय है –

अनहद नाद बजे घट अन्दर, तुंही तुंही तान उच्चारे रे
तेरो ही नाम रटत हुं निशदिन आलंबन छारे रे
शरण पड्ये को पार उतारो ऐसो विरुद तिहारे रे.. । श्री शंखेश्वर... ।

गुरुदेव श्री का समस्त काव्य साहित्य गेय है। उसमें संगीतात्मकता है, लयात्मकता है, रागात्मकता है तथा भावप्रवणता भी है। आपका समग्र साहित्य गद्य, पद्य; गीत-पद-मुक्तक स्तवन आदि सब जैन साहित्य की ही नहीं वरन् सम्पूर्ण साहित्य जगत् की बहुमूल्य धरोहर है।

विदुषी साध्वीजी ने गुरुदेव की प्रतिभा को साहित्यिक जगत् में स्थापित करते हुए अद्भुत उपमाएँ दे डाली है –

''दिग्गज विद्वद्वर्य और अनुपम फनकार श्री आत्मानन्दजी म.सा. के संगीत में श्री हरिभद्र सूरीश्वर जी म.सा.का सत्याभियान, महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी म. सदृश दार्शनिकता एवं अनवरत पुरुषार्थ, श्री आनन्दघनजी म.का. अवधूत एवं परमात्म भक्तिकी मस्ती..... सन्त तुलसीदास जीका सम्पूर्ण समर्पण भाव श्री भारतेन्दुजी की तरह ध्येय के प्रति एकनिष्ठ लगन के सप्तसुरों का सन्धान अनुभूत होता है ... ।''

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नवयुगनिर्माता, पंजाबदेशोद्धारक, न्यायाम्मोनिधि आचार्यदेव श्रीमद् विजयानन्द सूरीश्वर जी महाराज के विराट् व्यक्तित्व का सांगोपांग वर्णन विवेचन अध्ययन तथा अवगाहन का प्रयास किया गया है एवं पदे-पदे अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोण रखा गया है। अपने जिस लक्ष्य को लेकर लेखिका – चली हैं उसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। गुरुवल्लभ समुदाय के साधु-साध्वी ही नहीं अपितु सम्पूर्ण श्रमण श्रमणीवृन्द के लिए यह एक गर्व का विषय है। शोध प्रबन्ध के नायक तो अज्ञान तिमिर में भटकते हुए मानव समाज के भास्कर सम तेजस्वी है। सत्य की साधना करने वाले वे महान साधक यद्यपि स्वयं सिद्ध थे तदपि इस ऐतिहासिक प्रामाणिक पुराण से आगत पीढ़ियाँ पूज्य आचार्यप्रवर विषयक ज्ञान को सांगोपांग रूपेण प्राप्त कर सकेगी इसका मुझे विश्वास व हर्ष है।

– विजय नित्यानंद सूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

(अंतर दर्पण दर्शन)

महा**'समुद्र'** सलीलकी थाह प्राप्त करना-**'रत्नाकर'**की गहनताका ताग लेना, शायद मानवके लिए साधारण-सी बात है, बनिस्बत दुष्करातिदुष्कर **ज्ञानांभोनिधि**के महार्घ रत्नांबारकी संपूर्ण रूपेण उपलब्धि: जिसे अर्जित किया जा सकता है, एकमात्र **'इन्द्र'** तुल्य महामहिमके कृपावंत सहयोग युक्त अथक परिश्रम और अनवरत प्रयास से । अतः **'विनीत' 'जगत'को 'नित्यानंद'का** आस्वाद करवानेवाली उस **'वल्लभ'** वस्तुकी प्राप्त्यानंतर होनेवाला **'आत्मानंद'**का अनुभव ही अलौकिक अध्यात्म **'किरणों'**का **'जनक'** माना जा सकता है।

संयम जीवन पूर्व ज्ञानार्जनके संजोये हुए स्वप्नोंको उजागरकर्ता–साधुजीवनमें संशोधन कार्यक्षेत्रमें पदार्पण करके आत्मज्ञान कंवलको विकस्वर करवानेवाला, अमूल्य परामर्श प्राप्त हुआ–सर्वधर्म समन्वयी, प्रेरणामूर्ति प.पू.**श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.**से: और न्यायांभोनिधि, संविज्ञ मार्गीय आद्याचार्य **श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराजजीकी** स्वर्गारोहण शताब्दी निमित्त उन्हींके व्यक्तित्व एवं कृतित्व विषयक संशोधनकी दिशा प्रदान करके इस कार्यक्षेत्रमें अग्रसर होनेमें प्रोत्साहित किया, परमार श्रत्रियोद्धारक, चारित्र चूडामणि **श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.ने.** ।

परिचय :---

उदयाचल पर अपनी आशालताकी लालिमा बिखेरकर जन-मनको प्रोत्साहित करनेवाली प्रत्येक उषा और उम्मीदोंका थाल भरने हेतु अस्ताचलकी गोदमें समा जानेवाली प्रत्येक संध्या समयकी निरंतर रफ्तारमें गतिशील है । ऐसे अनवरत काल प्रवाहकी बहती धारामें न बहनेवाले, चलती गाड़ी पर न चढ़नेवाले, हवाई पंखोंकी उड़ान न भरनेवाले–अपने अनूठे व्यक्तित्व, महत् प्रभाव–प्रतिभा और प्रतापके बल पर सदियों पर्यंत जन-मानसको प्रेरित करनेवाले अपूर्व–अनुपम, आचार-विचार-वाणीसे असाधारण स्थायी मान–स्तंभ स्थापित करनेवाले युगप्रधान-महापुरुष न्यायाम्भोनिधि-संविज्ञ आद्याचार्य **श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.की स्वर्गारोहण शताब्दी समारोहके** त्रिवर्षीय विविध आयोजनोंमें उन महा–प्राज्ञ, दिग्गज विद्वानके साहित्यकी परिमार्जना रूप शुद्ध हिन्दीमें उसका अनुवाद-समालोचना-संशोधनादिको समाविष्ट किया गया था । वर्तमान गच्छाधिपति गुरुदेव **श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.ने** संशोधन कार्य (शोध-प्रबन्ध)के लिए मुझे अनुप्राणित करके प्रोत्साहित किया । परिणामतः दस वर्ष पूर्व **श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.** द्वारा वपन की गई मेरी अंतरंग भावनाको अंकुरित होनेका अवसर अनायास प्राप्त होनेसे मनमयूर भावविभोर बन कर नर्तन करने लगा और कार्यारम्भ हुआ हम सबकी छत्रछाया–**प्रवर्तिनी साध्वीश्री विनीता श्रीजी म.सा.**की पुनित निश्रामें ।

व्यक्तित्व परिवेश :---विशिष्ट वाङ्मयसे प्रस्फुटित वैचारिक वलयोंसे मुखरित होनेवाला मननीय-मीमांसक-समलोचक-दार्शनिक-सैद्धान्तिक-विधेयात्मक-अकाट्य तर्क पंक्तियोंसे वादी मुखभंजक-समस्त मानव समाज हितकांक्षी स्वरूप: काव्यसे प्रवाहित परमात्मा प्रति सम्पूर्ण समर्पित एवं मुक्ति प्राप्तिकी तड़पसे छटपटाता भक्त हृदय-अमोघ काव्य कौशल युक्त सूत्रात्मक समर्थ उपदेष्टा रूप और आत्मानंदकी अनुभूतिके द्योतक, सर्वोत्कृष्ट सत्य गवेषक, सत्य प्ररूपक, सत्य प्रसारक जीवनशैलीके निर्मल निर्झर सदृश प्रवाहित असाधारण-अद्वितीय-उदारचरित महानुभावके व्यक्तित्व एवं कृतित्वको आन्वेक्षिकी दृष्टिसे टटोलनेका प्रसंग प्राप्त होनेसे मैं अपने आपको सौभाग्यशालीनी मानती हूँ ।

आपके उत्तुंग शिखर सदृश साहित्यका अवगाहन करते हुए, मैंने अपने आपको वामन अनुभूत किया । कहाँ सागर समान विशाल श्रुताभ्यासी, सिंधु सदृश गंभीर चिंतक, रत्नाकर तुल्य ओजस्वी-बहुमुखी प्रतिभाके प्रतिमान और कहाँ मैं ? फिरभी आत्माको आनंद प्रदाता–सदाबहार विकस्वर पुष्प सदृश मंद-मंद मुस्कराते और दिव्याशिष बरसाते हुए गुरुदेव श्री आत्मानंदजी म.की प्रेरक प्रतिमाने मानो मेरे अंतस्तलको नवपल्लवित किया । मैंने हौसला पाया और उनकी तरह दृढ़चित्त बनकर कार्यको सम्पन्न किया। जैसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके साहित्य पर्यालोचनके इस महत्वपूर्ण कार्यको उनकी ही बदौलत परिपूर्णता प्राप्त हुई ।

कृतित्व परिवेश :--- साम्प्रतकालमें विशेषतः शिक्षित, बौद्धिक, गंभीरताशून्य, सतही विचारधाराधारक वर्गमें **जैन दर्शनके सिद्धान्त**–उत्तमोत्तम तत्त्वत्रयी और सर्वोत्कृष्ट रत्नत्रयी स्वरूप–**जैनधर्मके क्रियानुष्ठान**-जिनभक्ति-दर्शन-पूजा, श्रावक-साधुचर्यादि-**जैन समाजके इतिवृत्त**–आर्हत् धर्मकी शाश्वतता/प्रारम्भ-प्रचलन; संसारकी अविच्छित्त/सृष्टि सर्जन; अतीत-अनागत-वर्तमान तीर्थंकरोंका स्वरूप–**जैन साधु-साध्वी** या संत महापुरुषों एवं सती नारियोंकी उत्तम जीवन गाथायें–**जैन आचार, विचार, विधियाँ**–(अंधेर नगरीके गंडू राजा सदृश) सर्वधर्म एक समानताकी मान्यता, धर्म-कर्मबंध-निर्जरा, पाप-पुण्य, संसार-सिद्धत्व-प्राप्ति आदि अनेकानेक विषयक भ्रामक खयालात, गलत फहमियाँ और आधुनिक फैशन परस्तीको अपनी प्रवाहित जिंदगानीमें देखते-सुनते और अनुभव करते हुए अंतरमें एक कसक उठती थी, उन महानुभावोंके अज्ञानसे हृदयमें उनके प्रति एक करुणाकी लहर फैल जाती थी, अतः इन सभीके स्पष्ट, स्वस्थ, सत्य-यथास्थित स्वरूपको उद्घाटित करके सद्धर्म अंगीकरणके इच्छुक अधिकारी और धर्मतत्व जिज्ञासुओंको सद्बोध प्रदान हेतु मन मचल रहा था ।

इन अभिलाषाओंको साकार करनेका अवसर, मानव जन्मके उच्चतम लक्ष्य संपादन हेतु योगाधिकारी योद्धा बनकर शास्त्र प्राविण्य शस्त्र द्वारा, समाज समरांगणमें कर्म-शत्रु विजेता और धार्मिक हार्दकी विजय वैजयन्ती फहरानेवाले शुभात्मा, जिन शासन रक्षक, आर्हत् शासन शृंगार आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.की स्वर्गारोहण शताब्दी समारोह निमित्त इस शोध-प्रबन्धने प्रदान किया । इन सर्वका शब्द देह रूप अवतरण करना, हाथमें धरतीको धारण करने या केवल निज बाहुबलसे ही स्वयंभू-रमण समुद्र तैरने सदृश अत्यधिक दुष्कर कार्य है, क्योंकि महापुरुषके अभिमतसे सद्भूत गुण वर्णनमें कभी भी किसी व्यक्ति द्वारा अतिशयोक्ति हो ही नहीं सकती है, सर्वदा अल्पोक्ति ही प्रदर्शित हो सकती है–अथवा अगाध-अनंत ज्ञान राशिको वीतराग–सर्वज्ञ परमात्मा भी देह (वचन) योग और आयु मर्यादाके कारण पूर्णरूपेण उद्घाटित करनेके लिए असहाय है, जैसे गागरसे सागर-सलीलका प्रमाण निश्चित करना असम्भव-सा है । अतः यहाँ बालचेष्टा रूप उन सर्वकी एक सामान्य झलक ही आचार्य प्रवरश्रीके साहित्यके पर्यालोचन रूप और उनके ही साहित्यके सहयोगसे दर्शित करवायी जा सकी है ।

मेरे नम्र मंतव्यानुसार किसी भी विवेच्य विषय वस्तुके संबंधमें तद्विषयक निष्णातका मंतव्य सर्वोपरि-श्रेष्ठतम और अंतिम, ग्राह्य योग्य माना जा सकता है; ठीक उसी प्रकार धर्म विषयक किसी भी विवेचनाका निर्णायक ग्राह्यत्व उस धर्मके तटस्थ-निष्पक्ष धर्माधिकारीके गवेषणापूर्ण सत्यासत्य और तथ्यातथ्य निरूपणमें ही समाहित होता है; जो हमें रोचक-सार्थक एवं ज्ञानगम्य विचार-वाणी-वर्तनकी संतुलन जीवनधाराके स्वामी, भव्य जीवोंके प्रतिबोधक श्री आत्मानंदजी म.के तत्कालीन एवं वर्तमानकालीन अनेक उलझी गुत्थियोंको सुलझानेवाले अनूठे परामर्श-युक्त विशद वाङ्मयसे संप्राप्त होता है । अतः गुरुदेव श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.की प्रेरणा झेलकर श्री आत्मानंदजी म.के साहित्यके आकलनके साथ ही साथ अपने अंतरकी आरजूको इस शोध प्रबन्धमें प्रतिपादित करनेका अवसर उपलब्ध होनेसे मुझे धन्यताका अनुभव हो रहा है ।

शोध प्रबन्धका प्रारूप :--- इस शोध प्रबन्धको अखंड़ अंक–नव–पर्वोमें संकलित करनेका आयास किया गया है, जिसका अभिप्रेत भी अक्षुण्ण और उज्ज्वल कीर्तिकलेवरधारी, वीर-शासनके अभिन्न अंग आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.के व्यक्तित्व एवं कृतित्वके अनुसंधानके माध्यमसे जैनधर्मके विभिन्न अंगोंको प्रदर्शित करके सुरीश्वरजीके उत्कृष्ट योगदान रूप उनके उपकारोंका स्मरण करते-करवाते आपके ऋण से उऋण होनेका क्षुल्लक प्रयत्न मात्र किया है ।

प्रथम पर्वमें जैनधर्मकी परिभाषा, जैनधर्मकी गुणलक्षित विविध पर्यायवाची संज्ञायें और आगमादिके प्रमाणादिसे उनकी सार्थकता एवं पुष्टि–साम्प्रतकालीन शंका-कुशंकायें या भ्रान्ति-विभ्रान्तियोंका नीरसन और सात्त्विक सत्य सिद्धान्तोंका प्रणयन–अनादिकालीन अनंत चौबीसीयोंको निर्दिष्ट करते हुए वर्तमान चौबीसीके तीर्थंकरोंके संक्षिप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन परिचय एवं भ.महावीरकी पट्ट परंपराके श्रीसुधर्मास्वामी आदि अनेकानेक गुणाढ्य सूरिपुंगवोंके क्रमिक परिचय देते हुए उस परंपरामें तिहत्तरवें स्थान पर अपने आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.का स्थान निश्चित किया गया है ।

द्वितीय पर्वमें सत्यकी ज्वलंत ज्योत या सत्यनिष्ठाकी प्रतिमूर्तिरूप उन महामहिम विलक्षण व्यक्तित्वके संकायोंको–जन्मजात और अर्जित किये गुण-स्वभाव-लक्षण और विश्वस्तरीय, स्वपर कल्याणकारी, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, विभिन्न कलात्मक व्यक्तित्व एवं प्रवचन प्रभावक, अजेय वादीत्व, अप्रतीम लोकप्रियता तथा अनेक आत्मिक, आध्यात्मिक गुण-लब्धि-सिद्धियाँ प्रापकादि गुणोंकी गागरको अंतर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्याधारित संचित करके उन अक्षुण्ण-अमूल्य जीवन मूल्योंको संक्षेपतः अवतारित किया है । तो तृतीय पर्वमें आचार्यश्रीके जीवनतथ्योंका सम्बन्ध ज्योतिष शास्त्रके अवलम्बनसे, पूर्व-जन्मोपार्जित कर्मसे स्थापित करनेका प्रयत्न किया गया है । अर्थात् पूर्व जन्मकृत कर्माधारित घटनाओंका जीवनमें निश्चित क्रमसे, निश्चित कालमें, निश्चित प्रमाणमें, निश्चित रूपसे अवतरण होता है जिसे ज्योतिष शास्त्रके सहयोगसे ज्ञात करके पूर्व प्रबन्धित योजनाओंके बल पर, उन अनिच्छनीय घटनाओंका प्रतिषेध करते हुए जीवनको कल्याणकारी व सौंदर्यशाली बना सकते हैं ।

ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिकादिके परिप्रेक्ष्यमें 'लाखोमें एक' के अभिव्यंजक, उदारचरित, उन्नीसवीं शतीके अखंड़ तेजस्वी ज्योतिर्धर-श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीके इस पार्थिव प्रकाश पुंजके निरीक्षणान्तर प्ररूपणाका स्रोत उस अतीव महत्त्वपूर्ण फलककी ओर मोड़ पाता है, जहाँ आपकी प्रौढ़ साहित्यिक रचनाओंका सरसरी दृष्टिसे सिंहावलोकन करते-करते आपके विशाल साहित्य अध्येता, गहन चिंतक, मौलिक मीमांसक, शिष्ट संस्कृतिके अभिभावक, सामान्य जीवन प्रसंगोंमें भी आध्यात्मिक परामर्शके अनुसंधाता, अजस्र एवं अकाट्य तर्कशक्ति सम्पन्न अजेयवादी, न्यायाम्भोनिधि, धुरंधर विद्वान, तत्कालीन धीमान् सुज्ञजनोंके पृष्टव्य-साहित्य मनीषी, भगवद् भक्त हृदयी, जन्मजात, नैसर्गिक कवि-कौशल एवं कलाप्राविण्य आदि रूपोंका विश्लेषणात्मक दिग्दर्शन करवाया गया है ।

सर्व दर्शनों एवं सर्व प्रचलित धर्मोंके बाह्याभ्यंतर स्वरूपके एक एक विषयको विविध दृष्टिबिंदुओंसे स्याद्वाद और अनेकान्तवादकी निष्पक्ष तुला पर, पैनी दृष्टिसे, दुर्द्धर्ष परिश्रम साध्य, तटस्थ परिक्षण करनेमें ही अपने स्व और सर्वको समर्पितकर्ता और उस शुद्ध स्वर्णिम साहित्यको सरल फिर भी प्रभावोत्पादक, सुगठित एवं साहित्यिक सजावटसे सुशोभित, अनूठी शैलीमें प्रस्तुतकर्ता, श्रेष्ठ समालोचक व प्रमाणिक प्रतिपादक, जैनधर्मके विश्वस्तरीय प्रसारक साहित्यविद् आचार्य प्रवरश्रीके इस असाधारण-विलक्षण साहित्यके पर्यालोचनको पर्व चतुर्थसे अष्टममें समाहित किया है । जिनमें चतुर्थमें गद्य-पद्य कृतियोंके विषय वस्तुका परिचय, पंचममें गद्य साहित्य एवं षष्ठममें पद्य साहित्यकी समालोचना, सप्तममें उसका विश्वस्तरीय प्रभाव और अष्टममें पूर्वाचार्यों एवं समकालीन साहित्यविदोंके प्रभाव और तल्यातुल्यता समाविष्ट की गई है । अंतिम पर्वमें इन सभीका संकलन-उपसंहार रूपमें प्रणीत किया गया है ।

ऋण स्वीकार एवं धन्यवाद :---

इस महत्त्वपूर्ण-महान कार्यकी सिद्धिमें अनेक कार्यकर्ताओंकी कार्यशक्तियाँ एवं हार्दिक निष्ठापूर्ण सहयोग उल्लेखनीय है, जिनकी बिना सहायता इसकी परिसमाप्ति होना शायद ही संभव बन पाता । जिनके कृपावंत ऋणकी बोझिलता भी जीवनके परम आह्लाद रूप अनुभूत होती है,–ऐसे परमोपकारी आचार्यद्वय–संशोधन क्षेत्रमें पदार्पणके लिए सर्वप्रथम प्रेरणास्रोत, सरलाश्रयी श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा. और श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.की स्वर्गारोहण शताब्दी निमित्त शोधकार्यकी अग्रीमताको लक्ष्य करके शोध प्रबन्धके 'विषय'को सूचितकर्ता श्रीमद्विजय इन्द्रदिन्न सुरीश्वरजी म.सा.–के अंतःकरणके प्रेरणा-पियूषवर्षी आशीर्वाद एवं बारबार प्रोत्साहन देकर किये गये परमोपकार, आजीवन मेरी स्मृतिके सीमा प्रतीक–स्मारक रूप बने रहेंगें। साथ ही साथ अन्य जिन आचार्य भगवंतों एवं मुनि भगवंतोंकी अमीदृष्टि भी इसे अभिसिंचित करती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रही हैं–प्रमुख रूपसे न्याय विषयक मार्गदर्शन प्रदाता श्रीमद्विजय राजयश सूरि म.सा., आगमादिके संदर्भ विषयक मार्गदर्शक श्रीमद्विजय शीलचंद्र सूरि म.सा., काव्य विषयक मार्गदर्शक उपा.श्री यशोभद्र विजयजी म.सा.योगीराज श्री चंद्रोदय विजयजी म.सा. आदिके ऋणको कैसे चूका सकती हूँ ? इस शोधकार्यमें जिनकी पावन उष्मापूर्ण निश्रा प्राप्त हुई वे परम श्रद्धेय प्रवर्तिनी श्री विनिताश्रीजी म.सा., एवं इस शोध प्रबन्धके लिए अनुज्ञा प्रदात्री परमोपकारी गुरुणी श्री यशकीर्तिश्रीजीम.सा., और अन्य सभी बड़े-छोटे सहवर्तिनी साध्वीजी महाराजोंके असीम वात्सल्य और स्नेहपूर्ण सर्वांगीण सहयोगको कभी भी भूलाया नहीं जा सकता; तो अपने अक्षर देहसे-परोक्ष प्रोत्साहन प्रदात्री श्रीसुवर्ण प्रभाश्रीजीम. श्रीभद्रयशाश्रीजी म., श्री राजयशाश्रीजी म., श्री सौम्य प्रभाश्रीजी म., श्री तीर्थरत्ना श्रीजीम. आदिको भी कैसे भूला सकती हूँ ? गुरुकुलके इन सर्व हितैषी जनोंके निःस्वार्थभावी, उदारदिल, अनुग्रहको मूकतासे अंतःकरण पूर्वक अंगीकृत करते हुए उनके पुनित पादारविंदमें नतमस्तक होती हूँ ।

इस शोध प्रबन्धमें प्राण भरनेवाली-सरलाश्रयी, प्रमुख सहायिका-सर्वदा, सर्व प्रकारके सहयोगमें तत्पर, उदारचित्त राहबर, प्रबुद्ध प्रेरणादात्री डॉ.कु.प्रेमलताजी बाफना (रीड़र, हिन्दी विभाग, कलासंकाय, म.स.विश्वविद्यालय-बड़ौदा)के कुशल दिग्ददर्शन एवं सूक्ष्मैक्षिक निर्देशनान्तर्गत यह शोधकार्य अभियान अति सुचारुपूर्ण एवं सुव्यवस्थित रूपसे गंतव्यको प्राप्त कर सका है । अतः उनके मुखरित ऋणको भी हार्दिक धन्यवादके साथ स्वीकार करती हूँ; तो गौण रूपसे सहयोगी बननेवाले डॉ.अरुणोदय जानी (जिन्होंने तर्क संग्रहादि न्याय विषयक अध्यापनके साथ आचार्य प्रवरश्रीके ग्रन्थोंमें उनके प्रयोगोंको स्पष्ट करनेमें उदात्त योगदान दिया); मेरे भूतपूर्व सहाध्यायी डॉ. रजनीकान्त शाह (जिन्होंने अनेक बार साहित्यिक परामर्श दिये); (मेरे गृहस्थ जीवनके)भाईश्री दिनेश-नयनाबेन, गौतम एवं बहन जयदेवीके योगदानको भी याद कर लेना अनुचित न होगा। इस शोध प्रबन्धके चित्रकला कार्यमें योग प्रदात्री कु.जयदेवी एवं ज्योतिष विषयक परिपूर्ण मार्गदर्शक-दिग्दर्शक-निर्देशक तथा कॉम्प्युटर टाइपिंग और प्रुफशोधनादि अनेक प्रकारसे हार्दिक लागणी युक्त एकनिष्ठ सहायक श्री गौतमकुमारकी सहायतासे इस शोध प्रबन्धमें वैविध्यता एवं निखार लाया जा सका है, अतः उनका अंतःकरणसे हार्दिक धन्यवाद करती हूँ ।

इस शोध प्रबन्धमें उपयुक्त बहुविध-बहुमूल्य-विशद वाङ्मय-समसामायिक पत्रिकायें, शताब्दी ग्रन्थ, अन्य शोध प्रबन्ध-ग्रन्थ, विभिन्न विषयक भिन्नभिन्न भाषाभाषी साहित्यिक रचनाओंके प्रणेता महामनीषियों, प्राज्ञपुरुषों एवं विलक्षण व्यक्तित्वधारियोंके परमोपकारको दृष्टिसमक्ष रखते हुए उनके पावन चरण सरोजोमें श्रद्धावनत होती हूँ तो पूर्वाचार्योंके विलक्षण वाङ्मय एवं आगमिक साहित्यके अवलंबनके लिए उन सभी उदात्त चरित्र प्रातिभ पुरुषोंके ऋणको कैसे चूका सकती हूँ ? केवल नतमस्तक होकर अभिवादन ही करती हूँ और उस अमूल्य निधिको संचितकर्ता-संग्राहक श्री वल्लभ स्मारक शिक्षण निधि, दिल्ही; श्री आत्मानंद जैन सभा-भावननगर; श्री आत्मानंद जैन सभा-अंबाला; जंबूसर ज्ञान भंड़ार; श्री हंस विजयजी ज्ञानमंदिर-बड़ौदा; श्री महावीर जैन विद्यालय बड़ौदा, श्री हंसा महेता लायब्रेरी, ओरिएन्टल लायब्रेरी; अहमदाबाद-बॉम्बे-खंभातादि अनेक ज्ञानभंडार एवं पुस्तकालयोंसे संदर्भ ग्रन्थ-सहायक पुस्तकें प्राप्त करवानेवाले उनके सभी व्यवस्थापक महानुभावोंके उपकारको भी याद करना अपना कर्तव्य समझती हूँ । इसके अतिरिक्त जिन्होंने इस शोध प्रबन्धके टाइपिंग हेतु आर्थिक सहयोग दिया–श्री महिला जैन उपाश्रय, जानीशेरी, बड़ौदाके प्रमुख कार्यकर्त्री श्रीमति चंपाबेन, श्रीमति सुशीलाबेन, श्रीमति सुधाबेन आदि; टाईपराइटर, 'श्री कॉपी सेन्टर' वाले श्री विपुलभाई और अन्य सहयोगी बिपिनभाई आदि सभीके प्रति भी धन्यवाद प्रेषित करती हूँ ।

अंततः इस शोध प्रबन्धके नामी-अनामी, प्रत्यक्ष-परोक्ष, जाने-अनजाने सभी सहकारी-सहयोगी,–जिन्होंने सबल संबल बनकर मेरी भावनैयाको किनारा प्राप्त करवाया है उन सभीके मुखरित ऋणको मूकपने ग्रहण करते हुए आभार प्रकट करती हूँ ।

मेरी अंतराभिलाषा :---जनजनके हृदयसिंहासन स्थित सम्राट, व्यक्ति केन्द्रित फिर भी समष्टि व्याप्त,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोमरोमसे रत्नत्रयीमें सराबोर, दीपक या दिवाकरातीत प्रभावान, चंदन या चंद्रातीत शीतल; नरेन्द्रों और देवेन्द्रोंकी सर्व सिद्धि-समृद्धिको निस्तेज बनानेवाले मंगलमय-श्रेष्ठतम-शुद्धाचरणके स्वामी, युगानुरूप चिंतन चिरागका प्रकाश वाणीसे विस्तीर्णकर्ता, जनसमाजके प्रेरक-जैन समाजकी चेतनाको संचरित करनेवाले उस युगपुरुषकी जीवन किताब (व्यक्तित्व)के प्रत्येक पृष्ठ पर प्रगतिके प्रतीक अंकित है । उन प्रत्येक अंकनको उजागर करनेका यथामति-यथशक्य प्रयास करनेके हेतु है मात्र **(१)** स्वर्गारोहण शताब्दी वर्ष निमित्त उनके प्रति श्रद्धासुमन अर्पित करके स्वको धन्य एवं सर्वको धीमंत बनाना; **(२)** धीमानोंके पृष्टव्य उन प्रातिभ प्राज्ञकी प्रज्ञाके पुष्पोंकी अछूती सुवासको वितरित करके विश्वको वासित करना; **(३)** शैक्षणिक, साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक, आचरणादि विभिन्न घटकोंके अनुरूप उनके साहित्यालोचन द्वारा अध्येताओंको परितोष प्रदान करना; **(४)** अद्यतन शिक्षाप्राप्त अज्ञानियोंके सर्वांगीण सद्बोध संप्रेषण द्वारा उन्हें संबुद्ध बनाना; **(५)** महदंशसे साम्प्रत साधु समाजके तकरीबन दो तिहाई भागके साधु समुदायके सम्माननीय गुरुपद बिराजित उन गीतार्थ-गीर्वाण गुरु-राजकी शनैःशनैः लुप्त होती जा रही अक्षुण्ण स्मृतिको आधुनिक समाजके-साम्प्रत श्रीजैनसंघके अंतःस्तलकी गहराईसे उजागर करते हुए अवनि अंबरके तेजस्वी तारककी ज्योतिको दीप्र बनाना; **(६)** उनके समान चारित्र निर्माणमें प्रयत्न-शीलोंकों पथ प्रदर्शित करना; **(७)** उनके प्राचीन फिर भी नित्य नूतन प्रतिमानोंसे प्रेरणा ग्रहण करके अधुना उनकी सर्व विध सेवाओंको कुसुमांजलि अर्पित करना ।

इसमें कहाँ तक कामियाबी हांसिल हुई है उसका परिमाण तो समय ही निश्चित करेगा । उनके विशद वाङ्मयके प्रत्येक संघटकका-प्रत्येक कृतिका विश्लेषण एक-एक स्वतंत्र ग्रन्थकी अपेक्षा रखता है; फिर भी केवल तीन वर्षके अहर्निश-अनवरत-उल्लासमय अध्यवसाय और एकनिष्ठ लगनसे, सर्वग्राही दृष्टिबिंदुके ध्येयको यथोचित रूपमें मूल्यांकित करके शोधप्रबन्धकी सम्पन्नताका परितोष अनुभव कर रही हूँ । अंततोगत्वा इस शोध प्रबन्धके प्रमाणित सत्य निरूपणमें श्रमसाध्य-यथामति यत्न करते हुए प्राप्तव्य सर्व सौंदर्य-सुरभि देव-गुरुकी कृपाके ही सुफल हैं; और छोटी-मोटी क्षतियोंके लिए मेरी अल्पज्ञ छद्मस्थता ही जिम्मेदार है । सुज्ञ परिखोंकी पर्यवेक्षिका दृष्टिके अनुरूप इसके निरीक्षणमें, अपनी छाद्मस्थिक अल्पज्ञता-ईषत्क्षमता-रंचमात्र दक्षताके सबब इस भगीरथ कार्यकी सम्पन्नतामें उन सर्वज्ञ-वीतरागके निर्मलवाणी निर्झरोंको यथायोग्य दिशा प्रदान करनेमें अन्यथा प्ररूपणा हुई हों; या केवलीभाषित आगम विरुद्ध अल्पांश प्रारूपका भी दर्शन हों; अथवा उन सद्धर्म संरक्षकके मंतव्यको यथातथ्य रूपमें निरूपित करनेमें असफलता झलकती हों उन सर्वके लिए सुज्ञानीसे त्रिविध त्रिविध क्षमा प्रार्थना–**"मिच्छामि दुक्कडं"** हैं। उदारमना इसे क्षमस्व मानकर क्षमा प्रदान करें। **इति शुभम्** ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रासंगिक

इस शोध प्रबन्धके प्रकाशनार्थ चल रहे विचार विमर्श में यह अभिप्राय उभर आया कि इसे दो विभागमें प्रकाशित करवाया जाय। स्वयं मैंने भी महसूस किया कि, विषय निरूपण को लक्षित करते हुए, पठन सुविधा निमित्तइसे दो विभागमें प्रकाशित करना अधिक समीचीन होगा । अतः प्रथम चार पर्व - व्यक्तित्वका आलेखन व समस्त गद्य साहित्यान्तर्गत प्ररूपित विषयवस्तुका संक्षेपन -को प्रथम विभाग ''सत्य दिपककी ज्वलन्त ज्योत'' द्वारा एवं अंतिम चार पर्व - कृतित्व अर्थात् श्रद्धेय आचार्य प्रवरश्रीके गद्य-पद्य वाङ्मयका विहंगावलोकन एवं अन्य विद्वद्वर्यो से तुलनात्मक समीक्षाको द्वितीय विभाग ''श्री विजयानंदजीके वाङ्मयका विहंगावलोकन'' द्वारा और अंतिम पर्व 'उपसंहार' को दोनों विभागमें समाविष्ट करके इस शोध प्रबन्धको दो विभागमें प्रकाशित करवाया जा रहा है।

किरणयशाश्रीजीम.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ
	श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वरजी के हस्ताक्षर श्रद्धेय गुरुवर्योंके आशीर्वचन प्रस्तावना - शांतिदूत श्रीमद्विजय नित्यानंद सूरीश्वरजी म.सा. प्राक्कथन (अंतर दर्पण दर्शन) डॉ. किरणयशाश्रीजी म. प्रासंगिक हार्दिक समर्पण	
पर्व-१.	**जैनधर्म एवं भ.महावीरकी परंपरामें श्री आत्मानंदजी म.का स्थान.**	१ से ४७
	मंगलाचरण **जैन धर्म** - सामान्य परिचय एवं परिभाषा **जैनधर्मके पर्यायवाची अन्य नाम** - (परूपकाश्रयी) आर्हत् धर्म; (सैद्धान्तिकाश्रयी) सत्धर्म, स्याद्वादधर्म, अनेकान्त धर्म, शुद्ध धर्म; (क्षेत्राश्रयी) विश्वधर्म; (कालाश्रयी) शाश्वत धर्म; (भावाश्रयी) अहिंसाधर्म, मानवधर्म; (आराधकाश्रयी) निर्ग्रन्थ धर्म, श्रावक धर्म । **जैन धर्मकी शाश्वतता का स्वरूप** - (शाश्वतता के साक्षी), व्युत्पत्त्यार्थ छ निक्षेपाधारित प्रामाणित शाश्वतता - षट्द्रव्य एवं त्रिपदीका स्वरूप परिचय - आगमोद्धरणों से शाश्वतता की सिद्धि - कालचक्र एवं छ आरा स्वरूप - द्वादशांगी परिचय । **जैनधर्मकी ऐतिहासीक परम्परा** - बीस विहरमान जिनेश्वर-भरतक्षेत्र की वर्तमान चौबीसी के जीवन चरित्रांतर्गत जैनधर्मके प्रमुख दस आश्चर्य - चौबीस तीर्थंकरों के जीवनवृत्त की तालिका - भगवान महावीरजीका शासन - सिद्धान्त एवं व्यवहारका समन्वय - जिन शासन के स्वर्णाक्षरी पृष्ठोंके आधार स्तंभ - पारलौकिक साधनापथका आलेखन - सर्वज्ञके ज्ञान प्रवाहकी गंगोत्री - जैनाचार्योंकी परहिताय प्रवृत्ति - समस्त संसारी जीवों के लिए पंचव्रतोंकी उपयोगिता - भगवान महावीरजीकी शिष्य पट्टावलि (परम्परा) निष्कर्ष ।	
पर्व-२.	**श्री आत्मानंदजी महाराजजी का जीवनतथ्य -**	४८ से ८६
	गुणागारका प्रास्ताविक परिचय - तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ - शिशु आतमका क्षत्रियकुलमें अवतरण - पारिवारिक सुखमें झुलता बचपन - पितृवियोग - जोधाशाहजीके घर परवरिश - व्यक्तित्व: लाखो में एक ढूंढक दीक्षा ग्रहण - ज्ञान पिपासा तृप्ति एवं संयमाराधनार्थ सतत परिभ्रमण और अथक परिश्रम - सत्यकी झाँकि और श्री रत्नचंद्रजीका विशिष्ट सहयोग - ढूंढक मत त्याग	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्रा - संवेगी दीक्षा अंगीकार - गुरुवर्य श्री बुद्धिविजयजी म.सा.का परिचय

साहित्य सृजन - ज्ञानोद्धार - ज्ञानभक्ति - सद्धर्म संरक्षणार्थ हुई चर्चायें - जैन सिद्धान्तों की सिद्धि एवं पुष्टि

जीवन के अनमोल उपहारकी प्राप्ति - पंजाब प्रति गमन - शासन सेवा - विश्व विभूति, समाज कल्याण के साक्षात अवतार, बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी का गुणावलोकन

बुझते दीपककी प्रज्ज्वलित ज्योत - जीवनके अंतिम पल

पर्व-३. **श्री आत्मानंदजी महाराजजीके व्यक्तित्वका मूल्यांकन - ज्योतिषचक्रके परिवेश में ——** ८७ से १२४.

मंगलाचरण-
प्रास्ताविक - विशिष्ट परिचयकी रूपरेखा
श्रीमद् आत्मानंदजी म.की जन्मकुंडली और जीवन घटनाओंका मूल्यांकन ।
तत्कालीन गोचर ग्रहोंका जीवनके विविध प्रसंगो एवं व्यवहार पर असर ।
संन्यास योग
निष्कर्ष

पर्व-४ **श्री आत्मानंदजी महाराजजीकी अक्षर देहका परिचय** १२६ से १९४

मंगलाचरण - प्रस्ताविक
गद्य साहित्यकके ग्रन्थों का संक्षिप्त सार -
पद्य साहित्य की रचनाओं का परिचय

पर्व-५. **उपसंहार** १९५ से

परिशिष्ट

१. आधार ग्रन्थोंकी सूची
२. सहायक (संदर्भ) ग्रन्थों एवं लेख सूचि
३. पाद टिप्पण
४. जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री वीतरागाय नमः

पर्व-प्रथम

जैन धर्म - एवं भ. महावीरकी परम्परामें श्री आत्मानंदजी म. का स्थान

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसंगमग्र्यं
सार्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धं,
सिद्धिंशिवं शिवकरं करणव्यपेतं,
श्रीमज्जिनं जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि"।

श्री भगवतीसूत्र
श्री अभदेवसूरिकृत टीका - मंगलाचरण-

जैनधर्म - सामान्य परिचय एवं परिभाषा :-

अनादि अनंतकालीन संसारमें चौर्यासी लाख जीवयोनिके माध्यमसे अनंत कालचक्रोंसे• और अनंत कालचक्रों तककी जीव सृष्टिमें जीव परिभ्रमण करता जा रहा है और करता जायेगा। इस व्यवहारमें जीवोंको अनेक परिमंडलोसे गुजरना पडता है। तदनुसार उन निमित्तोंको पाकर और अपनी आत्माके विविध भावोंके कारण वह विभिन्न प्रकारके आचरण आचरता है। यही कारण है कि तदनुसार जीव शुभाशुभ कर्मबन्ध करता है और उसे सुख-दुःखादि भावोंसे भोगता है। इन पारिणामिक निमित्तोंसे होनेवाले कर्म बन्धनोंसे बचाव करके, उनसे रक्षा करते हुए, उनसे अलग रहनेकी जो प्रेरणा करता हैं; एवं पूर्व कर्म बन्धनोंसे मुक्त होनेका - शाश्वत सुख पानेका-मार्ग दिखलाता है, वह धर्म-*जैनधर्म*-है। इसके लिए अनेक पर्यायवाची नाम प्रयुक्त हो सकते हैं-व्युत्पत्त्यार्थसे वह केवल जैन धर्म ही है ।

अन्यथा इसका स्वरूप ऐसे भी प्रकट कर सकते हैं - जो अष्ट प्रातिहार्य आदि बारह प्रमुख गुणों•से युक्त, दानांतरायादि अठारह प्रमुख दोषों•से विमुक्त, चौतीस अतिशयों•से अत्यन्त शोभायमान, पैंतीस गुणोंसे अलंकृत वाणीके स्वामी, चतुर्विध संघके स्थापक, त्रिलोकी जीवोंसे पूजित, अनंत ज्ञान-दर्शन-चरित्र-वीर्यादि अनंत गुणोंके धारक तीर्थंकर नामकर्मके उदय प्राप्त, जितेन्द्रिय आत्मा-वे हैं *जिन - जिनेश्वर देव*[1] - और उनके द्वारा प्ररूपित धर्म है - *जैनधर्म*।

अर्थात् उपरोक्त गुणालंकृत व्यक्ति जिनेश्वर, उनसे प्ररूपितधर्म, जैनधर्म और उस प्ररूपणानुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस प्रतिबोधका अनुगमक कहलाते हैं जैन।

'जिन' शब्द 'जि (जय)' अर्थात् जितना-विजय पाना-धातुसे व्युत्पन्न हैं। राग-द्वेष-मोहादि आंतररिपुके विजयशील व्यक्तियोंमें ही उपरोक्त आत्मिक गुणोंका प्राकट्य होता हैं-उन्हीं को 'सर्वज्ञता'[२] प्राप्त होती है। वे ही ऐसी उत्कृष्ट आत्मशुद्धिकी प्रकृष्ट साधनाका शुद्धमार्ग चिह्नित कर सकते हैं। उन्हींको अर्हन्-पारंगत-अरिहंत, त्रिकालवित्-क्षीणाष्टकर्मा-परमेष्ठि-अधीश्वर-शंभु-स्वयंभु-भगवन्-जगत्प्रभु-तीर्थंकर-तीर्थकर-जिनेश्वर-स्याद्वादी-अनेकान्तवादी-अभयदः-सार्व-सर्वज्ञ-सर्वदर्शी-केवली-देवाधिदेव-बोधिदः पुरुषोत्तम-वीतराग-आप्तादि नामोंसे पहचाने जाते हैं[३] और उनके द्वारा प्ररूपित प्रशस्त धर्म- *जैनधर्म*-है । उसे एक ही वाक्यमें प्रदर्शित किया है-

"मोक्ष रूप सागरमां मली जनार नदीनुं नाम ज जैनधर्म"-राजयश सूरि[४]

जैन धर्मके पर्यायवाची अन्य नाम :-

पूर्ण सचराचर ब्रह्मांडमें विभिन्न दृष्टिबिंदुओंसे जैनधर्मके विभिन्न गुणवत् भिन्नभिन्न पर्यायवाची नामोंका प्रचलन हुआ है --- यथा -

प्ररूपक आश्रयी नाम --- आर्हत् धर्म,

(सैद्धान्तिक) द्रव्याश्रयी --- सत् धर्म, स्याद्वाद धर्म, अनेकान्त धर्म, शुद्ध धर्म,

क्षेत्राश्रयी नाम --- विश्व धर्म,

कालाश्रयी नाम --- शाश्वत धर्म

भावाश्रयी नाम --- अहिंसा धर्म, मानव धर्म,

आराधकाश्रयी नाम --- निर्ग्रन्थ धर्म, श्रावक धर्म ।

१. आर्हत् धर्म --- अर्हन् द्वारा उपदिष्ट वह आर्हत् धर्म । 'अर्हन्'के पर्यायवाची हैं --- 'अर्हं', 'अरिहंत' आदि। 'अर्हन्' शब्दका लक्ष्यार्थ हैं, "अभेद ज्ञान प्राप्त कर्ता" अर्थात् आत्माके सकल कर्मक्षय रुप क्षायिक भावके प्रापक; और शब्दार्थ है "भेदज्ञान प्राप्त कर्ता" याने आत्मा और देह-जो भिन्न होने पर भी क्षीर-नीरवत् अभिन्न सदृश हो गये हैं, यह ज्ञात करके, उन्हें अलग करना है, ऐसे भेदज्ञान के प्रापक; एवं अन्यार्थ है- (निश्चयार्थ) - 'राग द्वेषादि अंतरंग शत्रु हननेवाले जबकि (व्यवहारार्थ) चार घातिकर्मके सम्पूर्ण क्षय करने पर केवलज्ञान• - केवल दर्शन•के प्रापक।

'अरिहन्त' शब्द, दो शब्दोंसे बनता है - अरि और हन्त । 'अरि' अर्थात् शत्रु- जो द्रव्य (वस्तु) रूप है, अतः द्रव्यानुयोगका विषय है। 'हन्त' अर्थात् हनना-नाश करना जो क्रिया रूप है, अतः चरणकरणानुयोगका विषय है। अतएव प्रथम-द्रव्यानुयोगसे अंतिम-चरणकरणानुयोगोंको स्वमें समाये हुए 'अरिहंत' चारों अनुयोग• निहित सम्पूर्ण श्रुतज्ञान स्वरूप ही है।

विश्वमें केवल 'अर्हन्' ही ऐसे हैं जिनका हनन नहीं किया जा सकता, क्योंकि 'अर्हन्' सत् तत्त्व है, और जो हणाया जाता है वह तो असत् तत्त्व होता है; अतएव उन अर्हन्का आश्रित, कभी जन्म-मरणादि द्वारा हने नहीं जा सकते क्योंकि उन्होंने भव-भ्रमणांत हेतुका अंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर लिया है ऐसे 'अर्हन् - परमात्माकी शरण ली है।[५]

'अर्हन्' शब्द का परमार्थ प्रदर्शित करनेवाला श्लोक दृष्टव्य है - यथा

"अकारेण भवेद्विष्णु, रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः ।
हकारेण हरः प्रोक्तस्तस्यान्ते परमंपदम् ॥३९ ॥[६]

अर्थात् 'अर्हन्' शब्दकी आदिमें जो 'अ'कार है वह विष्णुवाचक; 'र'कारमें ब्रह्मा अवस्थित; 'ह'कारसे 'हर'का कथन और 'न'कार परमपदका वाचक है । अतएव इसका परमार्थ होगा- ब्रह्मा, विष्णु, महादेव युक्त परमपद 'अर्हन्'में ही व्यवस्थित-विशिष्ट रूपसे स्थित है।

यह तो हुई सर्व-दर्शन-सम्मत परिभाषा । आगे बढ़ते हुए आपने जैन सिद्धान्तावलम्बित अर्थ प्रकाशित करते हुए लिखा है --

"अकारादि धर्मस्य, आदि मोक्ष प्रदेशकः ।
स्वरूपे परमं ज्ञानमकारस्तेन उच्यते ॥८०॥
रुपी द्रव्य स्वरूपं वा दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा ।
दृष्टं लोकमलोकं वा रकारस्तेन उच्यते ॥८१॥
हता रागाश्च द्वेषाश्च, हता मोह परीषहाः ।
हतानि येन कर्माणि, हकारस्तेन उच्यते ॥८२॥
संतोषेणाभि संपूर्णः प्रातिहार्याष्टकेन च ।
ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च नकारस्तेन उच्चते ॥८३॥ [७]

अर्थात् सामान्यसे मोक्ष प्रदेशक परमज्ञानके स्वरूपका प्रारम्भक-आदि धर्मके प्ररूपक होने से 'अ'कार कहा। 'अ'कार का लक्ष्यार्थ- 'अक्षर'। 'अक्षर' 'अ-क्षर' रूप याने जो क्षरता-विनष्ट नहीं होता-ऐसा केवलज्ञान है; अथवा 'अक्षर'-यह परमात्मा प्ररूपित सम्पूर्ण श्रुत रूप द्वादशांगीको प्रकट करनेवाला आधारभूत-स्वर, व्यजंन रूप मूल, अर्थात् वर्ण ही है क्योंकि अक्षर या वर्णोंका समूह ही शब्द (कर्ता-क्रियापदादि रूप) शब्दोंका समूह सूत्र, सूत्र-श्लोक-वाक्योंका समूह अध्ययन, अध्ययनोंका समूह (अंग-उपांगादि) आगम और आगमोंका समूह है द्वादशांगी*। जैसे केवलज्ञान स्वयं अ-क्षर है वैसे ही केवलज्ञानके प्रकाशसे जिसका निरूपण हुआ है वह श्रुतज्ञानका मूल स्वरूप स्वर और व्यंजनरूप वर्ण-अक्षर ही कहा जाता है। अतएव केवलज्ञानाधारित प्ररूपित द्वादशांगीका मूल अक्षर और उन अक्षराराधनाका फल अ-क्षर ऐसे केवलज्ञानकी प्राप्ति है।

किसीभी एक अक्षर-वर्णके उच्चारण या चिन्तवनसे न कोई विकल्प सिद्ध होता है - न किसी भावकी प्राप्ति, इसलिए निर्विकल्प केवलज्ञानकी भाँति वर्ण-अक्षरभी निर्विकल्प है, जो अपने आपमें परिपूर्ण होता है।

'अ'कार मूल है-आदि है-बीज है-केवलज्ञानका; और केवलज्ञानका बीज होनेसे केवलज्ञान ही है। आगे बढ़कर यह भी कहें कि-'अ'कारमें केवलज्ञान निहित है [८] - सत्य है ।

लोक अथवा अलोकके दृष्ट-अदृष्ट, रूपी वा अरूपी द्रव्योंको ज्ञानरुप नेत्रोंसे जिसने देखा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, उसके स्वरूपको दृष्टिगत करके वर्णन करनेवाला 'र'कार उपयुक्त ही है। 'र'का लक्ष्यार्थ रूपीसेरूपी द्रव्यका और अरूपीसे रूपी-अरूपी, उभयका दर्शन करनेवाला अथवा ज्ञानचक्षु से लोकालोकके रूपी-अरूपी, दृश्यादृश्य पदार्थोंका स्वरूप दृष्टिपथमें लानेवाला केवलदर्शन रूप है ।

'ह'का लक्ष्यार्थ आत्माके अंतरंग शत्रु-राग, द्वेष, मोह, अज्ञान, परिषहादि रूप अष्टकर्म हनन-नष्ट करनेकी क्रिया अर्थात् चारित्र; अथवा राग, द्वेष, मोह, अज्ञान परिषह स्वरूप अब्रह्मभाव-संसारभाव-अद्वैतभावको हटाना या हरानेकी क्रिया, जिससे 'चारित्र' भावकी प्रतिपत्ति होती है; अतः 'ह'कार भी उपयुक्त है।

संतोषादि सर्वगुण सम्पन्न, अष्ट प्रातिहार्य युक्त एवं पुण्य-पापादि नवतत्त्वके ज्ञात होनेसे 'न'कार कहा है। अथवा 'न'का लक्ष्यार्थ निषेधवाचक है । अत्र, 'पर'का निषेध होनेसे 'स्व' का अनुरोध आप ही सिद्ध हुआ। अर्थात् ईच्छायें, कामनायें-उनकी तड़पको तपके अवलंबनसे पराभूत करना। अतः ईच्छा निरोधसे पूर्णकाम-तृप्तिका अनुभव वही है तप । संसारके अनुरागी आत्मा 'कामी' कहे जाते हैं और काम है आध्यात्मिक योगका बाधक भाव; वैरागी आत्माकी संज्ञा निष्कामता-जो साधक भाव है - जबकि वीतरागी, पूर्णकाम सवरूप है, जो अंतिम सिद्धि है। अतएव नकारात्मक वृत्ति रूप शुभाशुभ- पुण्यपापवाले उदयको असत्-नाशवंत माननेकी वृत्ति-प्रवृत्ति ही तप है और उससे उद्भूत तृप्ति-वह निरिह भाव या निर्विकल्प भाव है। अथवा अपने आत्म-प्रदेशोंसे चिपके अघातीकर्म एवं सर्व बाह्य पदार्थोंका एक समान पूर्ण ज्ञाता-दृष्टा होना वही निर्विकल्प भाव है - जो तपका परिफलन है।

संक्षेपमें मोक्षप्रदेशक, परमज्ञानके स्वरूपके ज्ञाता-सर्वज्ञ, लोकालोकके सर्वरूपी-अरूपी द्रव्योंके **ज्ञानचक्षुसे दृष्टा,** राग-द्वेष-मोह-अज्ञान परिषह और अष्टकर्म के हता, नवतत्त्वादि ज्ञानदाता, संतोषादि गुण संपन्न, अष्ट प्रतिहार्य युक्त ऐसे 'अर्हन्'- परमात्मा अथवा जिनमें केवलज्ञान - केवलदर्शन-यथाख्यात चारित्र और निर्जरा रूप तपादि आत्मगुणोंकी सर्वांगिण-संपूर्ण संकलना हुई है-ऐसे **'अर्हन्' परमात्मा** होते हैं। और उनसे प्ररूपित धर्म *आर्हत् धर्म* कहलाता है।

(२) सत्धर्म - जो धर्म सर्वत्र-सर्वदा-सर्वके लिए विद्यमान होता है वह है सत्धर्म। सत्धर्म अर्थात् अविनाशी धर्म-जिसमें हानि-वृद्धिको अवकाश नहीं, जो अखंड, नूतनयोग प्राचीन वियोग (विच्छेद) रूप पर्यायों रहित होता है। जो अखिल ब्रह्मांडमें अविनाशी अविच्छिन्न-अव्याबाध रूपसे भावित किया जाता था, जा रहा है, जायेगा।

'सत्' का लक्ष्यार्थ है-त्रिपदी•के, उत्पाद-व्यय (उत्पन्न और अंतवाले) जो सादि सांत है, विनाशी है फिर भी वह सत्-उपचरित (व्यवहार) सत् है; और ध्रुव-तत्त्व पिंड़प्रदेश अर्थात् नित्य द्रव्य-अनादि अनंत होनेके कारण अविनाशी है। द्रव्य और पर्याय-दोनोंका द्वैतभाव मानकर इस त्रिपदीको सत् सिद्ध किया है-यथा - "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्"[९] अर्थात् कोई भी पदार्थ, द्रव्य, सिद्धान्त-इन तीनों अवस्थाओंसे गुजरता हुआ भी अपने अस्तित्वको बनाये रखता है, अतएव वह सत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन सिद्धान्त पारगामी पूर्वाचार्योंके मतानुसार धर्मभी कहीं अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहित होता है, तो कहीं कालचक्रके तृतीय-चतुर्थ आरेमें प्रादुर्भूत होता है। इस तरह जनरेटरकी भाँति धर्म प्रकाश सर्वदा प्रकाश प्रदाता है। जैसे जनरेटर मंदगतिसे चलता है तब प्रकाश मंद, और तेजगतिसे चलने पर तेज़ हो जाता है, वैसे ही धर्म प्ररूपक-अरिहंत परमात्माकी विद्यमानतामें धर्म-प्रकाश तेज़-जाज्वल्यमान और अविद्यमानतामें मंद होता रहता है; फिरभी धर्मका स्वरूप अनवरत-अविच्छिन्न रूपसे जीवों पर निरन्तर उपकार करता रहता है एवं सकल कर्मोंसे मोक्षरूप सिद्धि गति•का लाभ कराता है। अतएव वह **सत्धर्म** कहा जाता है ।

(३) **स्याद्वाद धर्म** - स्याद्वाद दर्शन विश्वैक्य-विश्वशान्ति-विश्व संस्कृति के त्रिवेणी संगमकी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत करता है। निष्पक्ष-दुराग्रहरहित-वैचारिक उदात्तता एवं उदारता सहित-वितंड़ावाद मुक्त मंडनात्मक शैलीसे-संविधानात्मक पद्धति से सर्वधर्म सद्भाव सौहार्दभाव-सहिष्णुता और सदाशयता रूप प्रशस्त मार्गकी प्ररूपणा करनेवाला केवल स्याद्वाद दर्शन है; क्योंकि स्याद्वाद दर्शन सर्वांगी दर्शन है ।

सर्वांग संपूर्ण ऐसे सर्व तत्त्वोंको लक्ष्य करके आंशिक-देशतत्त्वका निरूपण 'स्यात्•'के सहारे करना चाहिए, अर्थात् समसमयमें एक ही द्रव्यके सभी प्रर्याय-गुण स्वरूपादिका निरूपण केवलज्ञानी भी अपने वचनयोग (वाणी)से नहीं कर सकते हैं। इसलिए उसकी प्ररूपणा 'स्यात्' की सप्तभंगी के सहारे ही ठीक न्यायपुरःसर होसकती है। यही कारण है कि सर्वज्ञ भगवंतोने राग-द्वेषसे दूर शांत-समभावमें स्थित करनेके लिए विश्वके जीवोंको स्याद्वाद जैसे मौलिक दर्शनकी भेंट की है। इसी सत्यको गुजरातीके प्रसिद्ध साहित्यकारने अभिव्यक्ति देते हुए लिखा है-"स्याद्वाद आपनी सामे समन्वयनी दृष्टि खड़ी करे छे विविध दृष्टिबिन्दुना निरीक्षण विना कोईपण वस्तु संपूर्ण रूपमां समजी नथी सकाती स्याद्वाद.....आपणने विश्वनुं केवी रीते अवलोकन करवुं ते शिखवे छे."[१०]

'स्यात्' अर्थात् 'सर्वथा नहीं'-ऐसा भी नहीं और 'सबकुछ'-ऐसा भी नहीं, लेकिन विरुद्ध तत्त्वोंको 'स्यात्'- 'आंशिक या कुछ' के आधार पर समन्वय करके समझना-समझाना-स्याद्वादका रहस्य है,[११] जिससे एक ही द्रव्यमें एक-अनेक, रूपी-अरूपी, जीवाजीव, सतसत्, नित्यानित्य, भेदाभेद, द्वैताद्वैत; सगुण-निर्गुण, सापेक्ष-निरपेक्षादिका तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। उलझनोंको सरल-सुंदरतम-सत्य स्वरूपसे सुलझानेवाला स्याद्वाद है।

"स्याद्वाद जैन धर्मका अजेय किल्ला है, जिसमें वादी-प्रतिवादीके मायामय गोलोंका प्रवेश अशक्य है।"[१२]
- पं.राममिश्रजी रामानुजाचार्यजीके ये विचार इसी तथ्यको प्रस्तुत करते हैं।

स्याद्वाद अंधे (छद्मस्थ•)की लकड़ी या तत्त्वालोक दृश्यमान करवानेवाला बिलोरी काच - चश्मा है-अर्थात् दृष्टको दृष्टव्य बनानेवाला केवल स्याद्वाद ही है। स्याद्वाद अर्थात् गुणग्राहकता अथवा पूर्णतत्त्व स्वरूप परमात्माको दृष्टिपथ पर रखकर सर्व तात्त्विक सिद्धांतो को सापेक्षतया समझना वा यथास्थित निरूपण करना स्याद्वाद है; क्योंकि पूर्ण केवलज्ञानी भगवंतोने अपूर्ण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसे छद्मस्थोंके लिए जो धर्म प्ररूपणा की है वह स्यात्-अंश रूप ही है। 'स्यात्' शब्दका प्रयोजन ही प्रायः छद्मस्थोंकी अपूर्णता का परिचय करवानेके लिए हुआ है। पूर्णज्ञान - अनंतज्ञान समुद्र है तो छाद्मस्थिक ज्ञान उसके एक बिन्दु तुल्य है, क्योंकि केवलज्ञान अक्रमिक-समसमयमें संपूर्ण है, जबकि छाद्मस्थिक ज्ञान क्रमिक बोध कराता है।

'स्यात्'के सहारे ही द्रव्यका संपूर्ण स्वरूप वर्णित किया जा सकता है, अन्यथा नहीं। क्योंकि, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका या सर्व द्रव्योंका कार्य नहीं कर सकता। एक ही सिद्धान्त समस्त विश्वके सर्व सिद्धान्तोंका आवरक नहीं बन सकता; अतएव प्रत्येक सिद्धान्त अपने आपमें, अपने स्वभावसे परिपूर्ण होने पर भी समग्र सिद्धान्तोंके संदर्भमें 'स्यात्' ही है। विश्वके सर्व सिद्धांतोंमें, प्रत्येकमें गुण-दोषकी तरतमताके कारण सापेक्षता है, संपूर्णता कहीं भी नहीं है।

अपूर्णज्ञानी-महान वैज्ञानिक आइन्स्टाइनके सापेक्षवादकी भाँति, केवली प्ररूपित सापेक्षवाद अपूर्णतासे 'अपूर्णताका' नहीं, लेकिन पूर्ण-निरपेक्ष तत्त्वको लक्ष्य करके सापेक्षतासे पूर्ण-अपूर्णका तुलनात्मक अभ्यास है। विवेचनात्मक एक ही सिद्धान्त स्वरूपका 'स्यात्'के सहारे विभिन्न दृष्टि बिंदुओंसे, भिन्नभिन्न सत्योंका भिन्नाभिन्न स्वरूपसे ज्ञान कराना ही स्याद्वादका चमत्कार है। वस्तुके दर्शनमें भिन्नभिन्न मनुष्यों द्वारा भेद दृष्टिगत होता है, उसका कारण केवल वस्तुकी अनेकरूपता ही नहीं बल्कि उन भिन्न भिन्न मनुष्योंके दृष्टिबिंदुओंकी विविधता भी कारणभूत है। इसलिए कदाग्रहयुक्त एकान्तवादके विषको सर्वथा निराश करके सभीका समन्वय करनेवाला स्याद्वाद संजीवनी है-महौषधि रूप है।

स्याद्वादमें मृदुभाव है-ग्राहकभाव है-प्रेमभाव है; अतएव यह निःशंक कह सकते हैं कि खंड़नात्मक शैलीको खतम करनेके लिए ही स्याद्वादका अवतरण हुआ है। दुःखात्मक भावोंको सुखात्मक स्वरूपमें पलट देनेकी कला केवल स्याद्वादके पास ही है। अंततोगत्वा *"स्याद्वाद सर्वतोमुखी दर्शन है"* [१३]

"जैन दर्शनमें स्याद्वादका स्थान इतना महत्वपूर्ण है कि जैन दर्शनको 'स्याद्वाद दर्शन'भी कह सकते हैं।"[१३]

"वास्तवमें स्याद्वाद-जैन दर्शनका प्राण है। जैनाचार्यों के सारेही दार्शनिक चिन्तनका आधार स्याद्वाद ही है।"[१४]

स्याद्वादके भंग (प्रकार)मेंसे सभी विरोधी धर्मयुगलोंको लेकर सात ही भंग होते हैं। वचनादिके भेदोंकी विवक्षासे *श्री भगवती सूत्रमें* अधिक भंगोका निरूपण हुआ है लेकिन मौलिक भंग सात ही है। स्याद्वादके सिद्धान्तकी इस सप्तभंगीसे किसी भी सिद्धान्त या द्रव्यको आसानीसे अभ्यस्त किया जा सकता है। यथा -

स्यात् अस्ति --- कथंचित है-यह पदार्थ अतीतके सद्भाव से पुराना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यात् नास्ति	---	कथंचित् नहीं है-यह पदार्थ अतीतके असद्भावसे पुराना नहीं है।
स्यात् अवक्तव्य	---	समसमयमें अवक्तव्य-यह पदार्थ सदसद्-तदुभय-पर्यायसे समसमयमें अवक्तव्य है।
स्यात् अस्ति-नास्ति	---	कथंचित् है, कथंचित् नहीं है-यह पदार्थ अतीतके सद्भावसे पुराना और अतीतके असद्भावसे पुराना नहीं है।
स्यात् अस्ति अवक्तव्य	---	(सद्भावसे) कंथचित् है, (तदुभयसे) व्यक्त नहीं कर सकते-यह पदार्थ अतीत सद्भावसे पुराना है; तदुभयसे-समसमयमें व्यक्त नहीं कर सकते।
स्यात् नास्ति अवक्तव्य	---	(असद्भावसे) कथंचित नहीं है, (तदुभयसे) व्यक्त नहीं कर सकते हैं। यह पदार्थ अतीत असद्भावसे पुराना नहीं हैं, तदुभयसे समसमयमें व्यक्त नहीं कर सकते हैं।
स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य	---	(सद्भावसे) कथंचित् है, (असद्भावसे) कथंचित् नहीं है, (तदुभयसे) अवक्तव्य है। यह पदार्थ अतीत सद्भावसे पुराना है, अतीत असद्भावसे पुराना नहीं है, तदुभय पर्यायसे अवक्तव्य है।[१५]

स्याद्वाद अर्थात् माध्यस्थता-उदारता-विशालता; जिससे प्राप्त होती है वीतरागता-परिपूर्णता-जो 'जैनधर्म' के पर्यायरूपमें स्वीकृत है।

(४) **अनेकान्त धर्म** - जैन सिद्धान्तोंकी गहराईसे अनभिज्ञ कई विद्वान अनेकान्तवादको स्याद्वादका पर्यायी मानते हैं; लेकिन दोनोंके लक्ष्यार्थ भेद दृष्टव्य है-'स्यात्'की सप्तभंगी के सहारे द्रव्य या सिद्धान्तोंके सत्य स्वरूपका समसमयमें अपूर्ण दर्शन करते करते सम्पूर्ण दर्शन होना अथवा द्रव्यके संपूर्ण दर्शनकी क्रमसे प्ररूपणा करना-यह स्याद्वाद है, जो 'स्यात्' के बिना अवलंबन असंभव है; जबकि विरोधी भावोंका किसी न किसी अपेक्षा विशेषसे समन्वय करना या दो विरोधी धर्मोंका स्वीकार समान भाव-सापेक्षरूपसे करना-- अनेकान्त है। सर्वज्ञ भगवंतके केवलज्ञानकी बिना निश्रा द्रव्यकी प्ररूपणा एकान्त है अथवा प्ररूपककी दृष्टिमात्र से ही की गई द्रव्य प्ररूपणा एकान्त है; क्योंकि, हमारा ज्ञानलव छद्मस्थताके कारण उसके एक एक अंशको ही जान सकता है। सर्वज्ञके केवलज्ञानकी निश्रा पर आधारित द्रव्यकी प्ररूपणा वह अनेकान्त है, अथवा द्रव्यका सर्वांश-सर्वदेशीय निरूपण-अनेकान्त है । 'ऐसा ही है' और 'ऐसा भी है'-ईनमें 'ही' अव्ययसे प्ररूपणा एकान्त है और 'भी' अव्ययसे प्ररूपणा अनेकान्त है। एकान्त ज्ञान, प्रमाणभूत-सर्वांशी ज्ञानका आंशिक रूप है; अर्थात् *अनेकान्त रूप प्रमाणभूत संपूर्णज्ञान-वट-वृक्षकी, शाखायें ही एकान्त रूप आंशिक ज्ञान हैं।*

एक ही द्रव्यके लिए विभिन्न व्यक्तियोंके भिन्न-भिन्न अभिप्राय हो सकते हैं, लेकिन वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी अपूर्ण हैं। वे सभी अभिप्राय परस्पर समन्वय से सम्पूर्ण स्वरूपको स्पष्ट कर सकते हैं। जैसे समुद्रका बिन्दु समुद्र नहीं कहा जा सकता और असमुद्रभी नहीं कहा जा सकता, किंतु समुद्रका अंश ही माना जाता है, वैसे ही एकान्तिक प्रत्येक दर्शनको सर्वांगी या संपूर्ण दर्शन नहीं माना जा सकता। उसे अनेकान्तरूपी सर्वांगी दर्शनका अंश अवश्य माना जा सकता है। यथा - "उदधाविव सर्व सिन्धवः समुद्रीर्णास्त्वयि नाथ ! दृष्ट यः

न च तासु भवान् प्रदृश्यते प्रविभक्तासु सरित्स्विवोदधिः ।।" [१६]

जैसे सर्व नदीयाँ समुद्रमें समा जाती हैं, वैसे हे प्रभु ! सर्व दृष्टियाँ (दर्शन) तुझमें समा जाती हैं। जैसे विभिन्न नदियोंमें समुद्र नहीं दिखता वैसे उन दृष्टियोंमें आप विशेष रूपसे नहीं दिखते हो।

अनेकान्त दर्शन द्रव्यके व्यापक स्वरूपके खजानेको खोलनेवाली कूंजी (चाबी) तुल्य है।

अनेकान्त दृष्टिसे अवलोकते हुए आत्माकी पर्यायावस्थामें उच्छिन्नता और अनाद्यनन्त धारावस्थामें अविच्छिन्नता स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होती है। आत्मा द्रव्यरूपसे अनादि-अनंत, अनुत्पन्न-अविनाशी होनेसे उसकी नित्यता निःशंक है, लेकिन उसे 'कूट-नित्य' नहीं कह सकते, क्योंकि जन्म मरणादि अवस्थाओंमें बाह्याभ्यंतर परिवर्तनों के कारण आत्मा अनित्य भी है। इससे उसे एकान्तिक नित्य या अनित्य मानना भ्रम है-गलती है। अनेकान्तसे उसे सापेक्ष-नित्यानित्य मानना ही योग्य एवं उचित है। 'मोक्ष'-एकान्तिक-अद्वैत स्वरूप है, लेकिन मोक्षमार्गकी साधना अनेकान्त दृष्टिसे अनेकमार्गीय है। यही कारण है कि सिद्धोंके जो पंद्रह प्रकार बताये गये हैं उनमें एक भेद है 'अन्यलिंग सिद्ध' अर्थात् जैनेतर व्यक्ति भी आत्मा पर लगे अष्टकर्मके संपूर्ण क्षय करने पर सिद्धगतिका स्वामी बन सकता है-यथा - "गिहिलिंग सिद्धभरहो, वक्कलचीरीय अन्नलिंगम्मि-" [१७]

"सेयवंरो य आसंबरोय बुद्धो वा तहय अन्नो वा ।

समभाव भावी अप्पा लहई मुक्खं न संदेहो ।।" [१८]

ऐसे ही सर्व पदार्थोंमें भिन्नाभिन्न, भेदाभेद, नित्यानित्य, सदसदादि विरोधाभास एक साथ समान रूपसे दृष्टव्य बन जाते है। दूसरे शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि जिसके अनेक अंत है वह अनेकान्त है, अर्थात् एक ही उद्गम या उद्भवित द्रव्यको विभिन्न दृष्टिबिंदु रूप अंतोसे जानना वह अनेकान्त है। अतएव अनेकान्तसे सर्व क्लेश-कलह, वाद-विवाद-वितंड़ावाद आदिका अपने आप शमन हो सकता है।

कदाग्रह या दुराग्रह युक्त एकान्त एक बड़ा भारी पाप है-मिथ्यात्व है। वह हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म सेवन या परिग्रहसे भी बड़ा भारी पाप इसलिए माना जाता है कि इन पाँच पापोंमें अधर्म बुद्धि मानता हुआ जीव उससे डरकर दूर रहता है या उनमें सुधार करनेको उद्यमवंत बना रहता है, लेकिन दुष्ट एकान्त-दृष्टि तो धर्मका चश्मा पहनकर जीव को अंध या विपरित दृष्टा बना देती है, जिससे आत्म स्वरूप और हिताहितका विवेक नष्ट हो जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य पाप व्याघ्र है तो एकान्त दृष्टि गोमुख व्याघ्र है, जो है तो क्रूर, लेकिन गोमुखके कारण पहचानना अत्यन्त मुश्किल है। यही कारण है कि जैन दर्शनने इतनी सतर्कता रखी है कि यह अनेकान्तभी कहीं-कभी एकान्त न बन जाय।

"अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः, प्रमाण नय साधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणात्ते, तदेकान्तोऽर्पितान्नयात्" ।। [१९]

अर्थात् प्रमाण और नयको साधनेवाला अनेकान्त-प्रमाण दृष्टिसे अनेकान्त है और वही नय दृष्टिसे एकान्त बक्षता है। अतएव सदेकान्त भी उपयोगी है। सतर्कता यह रखनी चाहिए कि यह सदेकान्त कहीं (हठाग्रहसे) असदेकान्त न बन जाय।

असदेकान्ताधारित धर्म-आंशिक सत्य व अपूर्ण शुद्धताको लेकर असर्वज्ञोंकी प्ररूपणा का फल है - "णियय वयणिज्ज सच्चा सव्व नया परवियालणे मोहा ।
ते उण ण दिट्ठ समओ विभयइ सच्चे व अलिए वा ।।" [२०]

अर्थात् स्वयंके वचनोंमें सत्य स्थापित करना-यह नयराशिका संग्रह है याने विविध मतोंका संग्रह है; लेकिन परमतका उन्मूलन करना वह मोह है-जो मिथ्याज्ञान है। क्योंकि इससे अन्य का सत्य सिद्धान्त उन्मूलन होने की शक्यता नहीं है। उसके अभावमें स्व सिद्धान्त स्थापित नहींहो सकता। इसके अतिरिक्त प्रमाणाभावमें वे नयराशि परके और स्वके सिद्धान्तकी सत्यता या असत्यताका विभाजन (निर्णय) नहीं कर सकते हैं।

एकान्त जब अन्य दृष्टिबिंदुओंका विरोधी बन जाता है-केवल खंड़न ही करता है, तो वह असत् रूप है; लेकिन अन्य सिद्धान्त-दृष्टियोंका विरोधी न बनते हुए, पर दृष्टिका खंड़न करके स्व सिद्धान्तका मंड़न-स्थापन करना सदेकान्त है, जो उपादेय भी है। संसारमें जितने वचन प्रकार-जितने दर्शन एवं नाना मतवाद हो सकते हैं उतने ही नयवाद हो सकते हैं। उन सबका उदार समन्वय ही अनेकान्तवाद है । - यथा

"जावइया वयणवहा, तावइया चेव होन्ति णयवाया ।
जावइया णयवाया, तावइया चेव परसमया ।।" [२१]

अनेकान्तवाद दृष्टिकोणमें कायरता या पलायनता नहीं हैं, लेकिन मनोवैज्ञानिक निष्पक्षता निहित है, जो जैन धर्मकी विजय वैजयन्ती लहरा रहा है। अनेकान्तवादमें पारस्परिक विरोध लुप्त होकर किंमती वैडूर्यमणिके रत्नावलि हारकी भाँति, सभी नयवाद एक-सूत्रबद्ध होकर शोभायमान बन जाते हैं।

यही कारण है कि वर्तमानमें अनेकान्त सिद्धान्ताश्रयी जैन दर्शनका, अनेकान्त दर्शन और अनेकान्त धर्म, पर्यायी माना जाने लगा है। अतएव अत्यन्त उदार, व्यापक, एवं व्यवस्थित विचारपूर्ण अनेकान्त दर्शनकी व्यावहारिक उपयोगिता ही जैनधर्म है । मानो जैनधर्म अनेकान्त सिद्धान्त स्वरूप है और अनेकान्त सिद्धान्त ही जैन धर्म है। अथवा *अनेकान्त-जैनधर्मकी आत्मा है*- यथा - "अनेकान्त दर्शन एटले नय अने प्रमाणोनो मेळ............विचारवानी पद्धति जैन दर्शनमां एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे अने ते पद्धति अनेकान्तवादनी । आ ज कारणथी अनेकान्त ज जैनतत्त्वनो आत्मा छे." [२२] ।

(५) **शुद्धधर्म** --- धर्मास्तिकाय•, अधर्मास्तिकाय• और आकाशास्तिकाय• अरूपी द्रव्य है और जीव भी अरूपी है; अंतर केवल इतना है कि एक उत्तर-दूसरा दक्षिण-अर्थात् प्रथम तीन जड़ अरूपी हैं और जीव चैतन्य अरूपी। जीव शुद्ध तत्त्व स्वरूप है। नित्यावस्थाको प्राप्त, कर्मरहित जीवकी अवस्था ही शुद्धावस्था और सिद्धावस्था कहलाती है। इस शुद्धावस्थाकी प्राप्ति शुद्ध धर्मसे ही शक्य है। जीवको पूर्ण शुद्ध बनानेके लिए पंचमहाव्रता•दि पालनरूप चरणकरणानुयोगमें जिन अनुष्ठानोंके स्वरूपको निरूपित किया गया है, वही आगमदृष्ट, सर्वज्ञ प्ररूपित धर्म-शुद्ध धर्म है। *"सर्वांगिण सत्य है जहाँ, शुद्ध धर्म भी है वहाँ"* उक्त्यानुसार शुद्ध धर्मकी नींव एवं गति-प्रगतिका आधार केवल सर्वांगिण सत्य ही है, जिसकी प्ररूपणा केवलज्ञानीके अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं कर सकता है। क्योंकि, मोहादि दोषोंसे पराङ्मुख केवली-वीतरागी-शुद्ध आत्मा ही उस शुद्धावस्था प्राप्त करानेवाले मोक्ष मार्गकी प्ररूपणा करके शुद्ध स्वरूप प्रकट करवा सकती है।

जिस धर्ममें 'याज्ञिकी हिंसा'को धर्म माना हो अथवा जिसमें आत्माका अस्तित्व ही क्षणिक माना हो या जहाँ वैभव विलास और भोगासक्तिमें डूबना ही धर्म माना हो-उन धर्मोंको धर्म मानना कहाँ तक उचित होगा ? अन्यके प्राणोंका हनन या पर प्राण पीडन वा अनाचारोंके सेवनको अगर धर्म मानेंगे तो अधर्म कहाँ जाकर स्थान पायेगा ? सत्य तो यह है कि धर्म, जीवमात्रको शांति-संतोष-सुख प्रदान करें। जीवको हिंसा या विलासितादि अशुभ भावोंसे अशुभ कर्मबंध होता है; प्रत्युत जीवदया-अहिंसादि पंचमहाव्रतादि युक्त तपोमय जीवनसे शुभ भाव उदीयमान होते है, जो वृद्धिंगत होते होते शुद्ध भावमें परिणत हो जाते हैं और जिससे पुण्यानुबंधी• पुण्य प्राप्ति होते हुए अंतमें निर्जरासे• सर्व कर्मक्षय होनेसे आत्मा सिद्ध-मुक्त हो जाती है । ऐसे धर्मके पाँच लक्षण माने गए हैं -

१. व्यवहार शुद्धि - (शुद्ध परिणामोंकी पूर्णता), २. विचार शुद्धि (मोक्ष प्राप्तिकी तीव्रतम अभिलाषा) ३. अंतःकरण शुद्धि - (निष्कपट भावोंकी चरमसीमा) ४.साधन शुद्धि- (उत्तरोत्तर ध्यान धाराकी सहज सिद्धता) ५. लक्ष्य सिद्धि - (केवल मोक्ष प्राप्तिका ही लक्ष्य)

अतएव आत्माको महात्मा और महात्मासे <u>परमात्मा-पूर्णात्मा-शुद्धात्मा बनानेमें पथ प्रदर्शक एवं सहायक धर्म ही शुद्धधर्म-जैनधर्म है ।</u>

(६) **विश्वधर्म** - उर्ध्वलोक (स्वर्गलोक), अधोलोक (नरकलोक) एवं मध्यलोक (तिर्च्छालोक) के एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय•, सूक्ष्म से बादर• तक, चारों गति-देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकके सकल जीवोंको कल्याणकारी, हितकारी, उपकारी ऐसे धर्मका स्वरूप जिसमें निहित है; चराचर स्वरूप चौदह राजलोकके सर्व जीवोंका उपादेय, सर्वत्र व्याप्त धर्म-विश्वधर्म है -

"शिवमस्तु सर्वजगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकाः ।।" [२३]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"समस्त विश्वका कल्याण हों, सर्व जीव परस्पर परहितमें रत हों, विश्वके सर्वदोष, विघ्न, पाप, अशुभ भाव नष्ट होकर समग्र विश्व-चौदह राजलोक•-के जीव सुखी बनें।"

ऐसी उत्तमोत्तम भावनायुक्त विश्वधर्म, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तत्त्वज्ञान, धर्मादि विभिन्न दृष्टि बिंदुओंसे भिन्नभिन्न विद्वानों द्वारा वर्णित मंतव्यों से वर्तमानकालीन अपनी उपादेयताको प्रमाणित करता हुआ दृष्टव्य है-यथा -

१. जैनधर्मने विश्वको उर्ध्वगामी अहिंसाके तत्त्वज्ञानकी भेंट दी है। जैन धर्म उसके अंहिसाके तत्त्वज्ञानके कारण विश्वधर्म बनने योग्य है - डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी

२. प्राचीन ईजिप्तका लाखों वर्ष पुराना माने जानेवाला धर्म, जैन धर्मसे अत्यधिक साम्य रखता था - डॉ. रोबर्ट चर्चवेल[२४]

३. हाँ. जैन धर्म ही विश्वका सत्य धर्म है। समग्र मानव जातिका सर्व प्रथम श्रद्धान् योग्य धर्म-जैनधर्म है। - रेव. ए. जे डुबोइस[२५]

४. "अगर संपूर्ण विश्व जैन होता तो, सचमुच, विश्व अधिक सुंदर होता ।" - डॉ. मोराइस ब्लूम फिल्ड[२६]

अत्र क्षेत्राश्रयी दृष्टिबिंदुसे निरीक्षण करें तो हमें ज्ञात होगा कि जैनधर्म एवं जैन सिद्धांत सारे विश्वमें प्रसारित एवं प्रचलित है, अतीतमें भी थे। इतिहास बोलता है कि -

i. महान सम्राट, विश्व विजेता सिकंदर, भारतीय संस्कृतिको अपने साथ ले जाना चाहता था। उसने जैन साधुको पसंद किया और उन्हें ग्रीस ले जाकर जैन धर्मका प्रचार करवाया।

ii. माना जाता है कि आज भी एथेन्समें जैन श्रमण-साधु भगवंतकी समाधि बनी हुई है।

iii. सिलोनमें भी गुफाओंमें स्थित प्रतिकृतियोंके दर्शनसे वहाँ जैन धर्मका प्रचार सिद्ध होता है ।

iv. एमेझोन नदीके किनारेकी एक गुफामें से प्राप्त हुई भगवान श्री प्राश्वनाथजीकी भव्य प्रतिमा आजभी रोमके एक संग्रहस्थानमें बिराजमान है।

जैन भूगोलानुसार ढाईद्वीप•के पन्द्रह क्षेत्रोंके (पांच भरत, पांच ऐरवत, पाँच महाविदेह क्षेत्र) सभी आर्य क्षेत्रों•में जैन धर्मका प्रचार-प्रसार था, है और होगा भी। इसी बातको प्रतिध्वनित करते है मेजर जन. फरलोंगके शब्द - It is impossible to know the begining of Jainism अर्थात् प्रारम्भ है ही नहीं अतएव जैनधर्म शाश्वत है।

(७) शाश्वतधर्म - (अनादि धर्म) - जो अनंत कालचक्रोंकी अनंत चौबीसीमें हुए और अनंत कालचक्रों तक अनंत चौबीसीमें होनेवाले महापुण्यवंत तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित धर्म, काल प्रवाहकी अपेक्षासे, शाश्वत धर्म है। जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रकी सांप्रत चौबीसीके अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामीजी आदिने उसी धर्मकी प्ररूपणा की, जिसका निरूपण प्रथम तीर्थपति श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषभदेवने किया था। भगवान श्री आदिनाथजीने वही प्रकाशित किया जो अतीत चौबीसीके प्रथम तीर्थंकर श्री केवलज्ञानीसे लेकर अंतिम तीर्थंकर श्री संप्रतिनाथने प्रतिबोधित किया था। उससे भी दृष्टि विस्तृत करें तो अतीतकालकी अनंत चौबीसीके अनंत तीर्थंकरोंने उद्घोषित किया था और अनागतकालकी अनंत चौबीसीके तीर्थपति श्री पद्मनाभादि अनंत तीर्थंकर उन्हीं सिद्धांतोंको प्रस्तुत करेंगें जिन्हें वर्तमानमें 'जैन-सिद्धांत, जैन-दर्शन या जैन-धर्म' संज्ञा प्राप्त है।

इसको प्रतिपादित करनेवाले संदर्भ आगमादि शास्त्रोमें स्थान स्थान पर मिलते हैं। लेकिन जैन धर्मकी प्राचीनता एवं शाश्वतताको आज जैन-जैनेतर, पौर्वात्य-पाश्चात्य सर्व प्राज्ञ मनीषियोंने स्वीकृति दी है। यथा-संविज्ञ शाखीय आद्याचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराजजीको लिखे एक पत्रमें परिव्राजकाचार्य स्वामी योगजीवानंदजीका अभिप्राय-"आजतो मैं आपके पास इतना ही स्वीकार कर सकता हूँ कि प्राचीन धर्म-परम धर्म, जो कोई सच्चा धर्म है तो वह जैनधर्म है.....वेदमें जो बातें कही है, वे सभी जैन शास्त्रोमें से नमूना रूप एकत्र की हुई है।"

इससे एक कदम आगे - "जैनधर्मका प्रारम्भ कब से हुआ है यह जानना असंभव है [२७]

अर्थात् ध्वन्यार्थ यही निकलेगा कि जैनधर्म शाश्वत है। इन्हीं भावोंको अभिव्यक्ति इन शब्दोंमें भी दी गई है - Jainism began when the world began [28] अर्थात् विश्व अनादि-अनंत भावरूप है वैसे ही जैन धर्म भी उन्हीं शाश्वत भावरूप हैं।

इस तरह विद्वज्जगतमें यह बात निर्विवाद सर्व स्वीकार्य हो गई है कि प्राग् ऐतिहासिक कालमें भी अर्थात् अत्यंत प्राचीनतम कालमें भी जैनधर्म था।

अतएव शाश्वत-धर्म-अनादि-धर्म जैनधर्मका पर्यायवाची मानना उपयुक्त ही है।

(८) **अहिंसा धर्म**- "सव्वे जीवा पियाउया, सुहसाया, दुक्ख पडिकूला, अप्पिय वहा, पिय जीविणो, जीविउकामा, सव्वेसिं जीवियं पियं (तम्हा) णातिवाएज्जा किंचणं" - [२९]

द्वादशांगीके प्रथम-आचारांगमें उपरोक्त फरमान किया गया है कि प्राणीमात्रको स्वप्राण प्रिय होते है। कोई भी जीव मृत्युको कतई पसंद नहीं करता। यहाँ तक कि, कोईभी कष्ट-दुःख या आधि-व्याधि-उपाधि भी नहीं चाहता। ऐसेमें कोई व्यक्ति अगर किसीकी जान लेता है-मरणांत कष्ट पहुँचाता है-त्रस्त वा संतप्त बनानेवाली कोईभी प्रवृत्ति मन-वचन कायासे करता है तब वह अनीच्छनीय एवं अयोग्य कार्य करता है। ऐसी प्रवृत्तियाँ ही हिंसाका स्वरूप है। अतएव प्राणीमात्रका त्रियोग-मन, वचन, काय योग-से रक्षण करनेकी वृत्ति और प्रवृत्ति अहिंसा कहलाती है। अहिंसाके स्वरूपको व्यापक रूपसे अवलोकित किया जाय तो उसके तीन भेद दृष्टिगत होते है-उत्तम-मध्यम-अधम अथवा निष्कृष्ट-

i. केवल कायासे किसीको न मारना - यह *निकृष्ट अथवा सामान्य* स्वरूप है।

ii. काया और वचन योगसे व्याघात न पहुँचाना यह अहिंसाका *मध्यम* स्वरूप है।

iii. मन-वचन-काया त्रिविध त्रिविध• अहिंसा पालन करते हुए जीव मात्रके साथ प्रेम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और मैत्रीभावका स्रोत बहाना, यह अहिंसाका *उत्तम* स्वरूप है। अर्थात् *'अप्पा सो परमप्पा'* आत्मवत् सर्व प्राणी जगतको देखना-समझना-वर्ताव करना। कहा भी जाता है कि- *"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"* अर्थात् स्वको जो कार्य प्रतिकूल लगे वैसा आचरण 'पर'-अन्यके प्रति न आचरणा चाहिए क्योंकि उस व्यक्ति (जीव)को भी वह आचरण प्रतिकूल ही संभवित हो सकता है।

इसी तथ्यको कुछ भिन्न दृष्टिबिंदुसे महान पूर्वाचार्य श्री उमास्वातिजी म.सा.ने निरूपित किया है-यथा - "प्रमत्त योगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा"[३०]-- अर्थात् प्रमाद वा रागादि दोषोसें अभिभूत परके-अन्यके प्राणोंका जाने-अनजाने घात करना-हिंसा है। अतएव त्रिविध प्रयत्नके साथ जीवोंके द्रव्य व भाव प्राणोंकी रक्षा रूप अहिंसाकी परिपालना प्ररूपक, अहिंसाको ही जिस धर्ममें सर्वेसर्वा-सर्वोत्कृट-परमधर्म माना है वह है अहिंसा धर्म अथवा वास्तवमें क्रोधादि मनोगत परिणामसे आत्माके सदसद् विवेकादि गुणोंके घात रूप भाव हिंसा ही हिंसा है। अंतरके बिना मारनेके भावकी (जीव हननरूप) आकस्मिक-कोरी द्रव्यहिंसा प्रायः अल्प कर्मबंधका कारण बनती है, क्योंकि समस्त निबिड़ कर्मबंधका पूर्णतया आधार 'भाव' परही निर्भर होता है। ऐसा न मानने पर समस्त जीवन व्यापार-सर्व क्रिया कलाप ठप हो जानेकी पूरी संभावना उपस्थित हो जायगी। हम साँस तक लेने के लिए असमर्थ हो जायेंगे-वायुकायके जीवोंकी रक्षा जो करनी है। अतएव भावहिंसा ही द्रव्यहिंसाका अधिकरण और भाव अहिंसा ही द्रव्य अहिंसाका उपकरण बनती है।

जैन धर्ममें अहिंसाका अत्यन्त विशाल स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। स्व-प्राणघातक परभी करुणा बरसाना यह "जैन अहिंसा" की देन है। आप मरकर अन्यको जीवनदान देनेके लिए तत्पर रहनेके सिद्धान्तके पक्षपाती-सच्चे अहिंसक-मेतार्यमुनि*-आदि जैसे अनेको उदाहरण जैन इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे अंकित है। इस तरह व्यापक एवं मुख्य रूपसे अहिंसाको ही प्रधानता देनेवाला जैनधर्म-पर्यायनाम 'अहिंसा धर्म' से प्रचलित हों, उसमें आश्चर्य क्या ? साम्प्रत जगतमें अनेक विद्वानोंने अपने हार्दिक उद्‌गार इसी भावको लेकर प्रकट किये हैं -

(१.) जैन धर्ममें अहिंसा का स्थान - "अत्यारे अस्तित्व धरावता धर्मोमां जैन धर्म एक एवो धर्म छे, जेमां अहिंसानो क्रम संपूर्ण छे." [३१] (२.) "जैनोंका यह फर्ज है कि वे समस्त विश्वमें अहिंसा धर्म फैलायें।" [३२] (३.) एलेकझांडर गोर्डन के शब्दों पर गौर करें - **"Such is the foundation of Jaina religion and to its true fallowers no morality, no religion, his highest than the Precepts of Ahinsa, there fore, they rightly lotiion to be absolute beliver in Universal Brotherhood of all living being."**[३३].- इससे झलकती है जैन धर्मकी गौरवगाथा।

(९) **मानवधर्म** - आज मानव-मानव नहीं रहा। यों तो कहनेकेलिए मानव हैं, कार्यसे दानवसे भी निष्कृष्ट। मानवकी वृत्ति एवं प्रवृत्ति दोनों ही, दानवताके चूंबकीय क्षेत्रकी ओर मानों लोहेकी तरह जबरन खिंची चली जा रही है। दानवीय वा पाशवीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिकनी एवं मसृण ढ़लान पर उसकी मनोवृत्तियाँ मचल रही हैं-फिसल रही हैं। उस हेवानियतसे बचानेके लिए - उसे ऊपर उठाने के लिए-उस मानवीय वृत्तियों को झकझोरनेके लिए, जैन धर्मका सहारा ही आवश्यक है। क्योंकि जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो जीव मात्रके प्रति मैत्रीभाव-करुणाभाव-दयाभावकी प्रेरणाका दायक है। वेदोंकी याज्ञिकी हिंसा अथवा चार्वाकादिकी भौतिक विलासिताकी ओर झुकानेवाली वृत्तियाँ उस पैशाचिक आगमें इंधनका कार्य करेगी। मांस-मदिराको देव-देवीकी ही प्रसादी मानकर आरोगनेवालोंके दिलमें निःशंक करुणाका निर्झर-तपे तवे परकी पानीकी बूंदकी भाँति सूख जायेगा। उन बुझदिल आत्माओंकी मैत्री ज्योतको प्रज्वलित करनेके लिए चिराग रूप यह भाव- "मित्तीमे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ[३४] (सर्व भूत-जीव मात्रके प्रति मेरी मित्रता है, मुझे किसीसे वैर विरोध नहीं है।) कूटकूटकर भरी इसी करुणासे और ऐसे मैत्री भावसे ही तो सच्ची अहिंसा प्रादुर्भूत होती है-जो जैन धर्मका श्वास-प्राण-हार्द है, उसका सर्वस्व है। इन भावनाओंको आत्मसात करनेसे अहिंसाका पालन आप ही हो जाता है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने मित्र-स्वजन-आत्मीयको कष्ट या परेशानी नहीं पहुँचा सकता। जिस पल *'मित्तीमे सव्व भूएसु'*के भाव आत्मसात हो जाते हैं उसी पलसे अपने आप ही अंतरके कोने-कोनेमें, जिस्मकी रग-रगमें और खून की बूंद-बूंदमें *"वसुधैव कुटुम्बकम्"*का गुंजन होने लगता है। यहाँ तक कि, विश्वके सर्व जीवोंके लिए वह अपना सर्वस्व न्योच्छावर करनेके लिए तत्पर बन जाता है। 'मैं' और 'मेरा' के भाव संकीर्णतासे विस्तीर्णता को-स्वार्थसे परमार्थको पा जाता है।

इन सबके मूलस्रोत स्वरूप जैन धर्मका परमपावन उपदेश भ. श्री महावीर स्वामीजी के मुखारविंदसे प्रवाहित है - "भ. महावीर एक अगाध समुद्र थे । उनमें मानव प्रेमकी उर्मियाँ तीव्र वेगसे छलकती थीं । मात्र मानव ही क्यों ? संसारके प्राणी मात्रकी भलाईके लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग कर दिया था ।" [३५] --*"सवि जीव करुं शासन रसी"की* उदात्त भावना युक्त, त्यागी-वीतरागी प्ररूपककी प्ररूपणा स्वरूप धर्म फिर क्यों न 'मानव धर्म' कहलाये? जिसकी किसी भी काल या युगके बदले वर्तमानकाल-साम्प्रत युगमें अत्यधिक आवश्यकता है। एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके सकल जीवोंके लिए एक समान उपादेय-आराध्य एवं उपास्य है वही जैन धर्म-मानवधर्म-है।

(१०) निर्ग्रन्थ धर्म - श्रमण-मुनि-साधु के लिए जैनागमोंमें एवं अन्य जैनधर्म-ग्रन्थों-शास्त्रोमें 'निर्ग्रन्थ' शब्द बार-बार प्रयुक्त हुआ है। निर्ग्रन्थ अर्थात् ग्रन्थि रहित-जिनमें राग-द्वेषादि अंतरंग मिथ्या भावोंकी क्लिष्टता नहीं है अथवा जो उन क्लिष्टताओंको दूर करनेके लिए वीतराग निर्देशित मार्गों पर अनुसरणके लिए उद्यत हुए हैं वे। अतएव वे निर्ग्रन्थ जिस धर्मकी साधना करते हैं वह जैन धर्मको इन्हीं कारणोंसे 'निर्ग्रन्थ धर्म' अथवा 'श्रमण धर्म'-के नामसे भी उल्लिखित किया जाता है।

(११) श्रावक धर्म - जो जिनवाणी (जिनागम-श्रुतागम-वाणी)का श्रवण करके विवेकपुरः सर उस मोक्ष मार्गकी प्राप्ति करानेवाली और मोक्षस्थानको निकटतम बनानेके आधारभूत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रियाओंकी सम्यक् श्रद्धान्पूर्वक यथोचित परिपालना करते हैं-उसे श्रावक कहते हैं। *"शृणोति इति श्रावक"*- ऐसे श्रावकों द्वारा उपास्य-आराध्य जो धर्म वह जैन धर्म ही 'श्रावक धर्म' के नामसे प्रसिद्धि पा गया है।

ऐसे अन्य भी अनेक पर्यायवाची नाम भिन्न भिन्न कालमें, विभिन्न भावों और आराधना विधियोंकी प्रमुखतासे प्रचलित होते रहते हैं।

जैन धर्मकी शाश्वतताका स्वरूप :- (शाश्वतताके साक्षी)

"शश्वद् भवम् शाश्वतम्" और "सदा तनमपि सनातनम्"[36].- व्युत्पत्त्यार्थानुसार।

उपरोक्त व्युत्पत्त्यानुसार 'शाश्वत' और 'सनातन'-दोनों एकार्थी शब्द हैं लेकिन, जैसे स्फटिक जिस रंगके साथ रहेगा उसी रंगका दिखेगा। वैसे 'शाश्वत' शब्द जैन धर्मका और 'सनातन' शब्द जैनेतर धर्मका पर्यायवाची माना जाता है। प्राचीनता और अर्वाचीनताकी सभी विड़म्बनासे रहित; अनुत्पन्न-अविनाशी अथवा अनादि-अनंतकालीन या कहो कि कालातीत; द्रव्य से सर्वथा, क्षेत्रसे सर्वत्र, कालसे सर्वदा, भावसे सर्वके लिए-जो नित्य विद्यमान है, वह है शाश्वतः चाहे वह पदार्थ हों वा सिद्धांत, चाहे वह दर्शन हों वा धर्म।

अपने चरित्र नायक-न्यायांभोनिधि, पूज्यपाद, आचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.ने अपनी विभिन्न ग्रन्थ रचनाओंमें जैन धर्मकी प्राचीनता एवं शाश्वतता प्रकाशित की है - यथा- "यह संसार द्रव्यार्थिक नयके मतसे अनादि-अनंत, सदा शाश्वत है।"[39] अर्थात् निश्चय नयसे यह अनादि-अनंतकालीन-शाश्वत होनेसे न किसीने इसकी रचना की है, न कोई इसका सर्वथा विनाश कर सकता है। अगर 'किसीने रचना की है' ऐसा मानें तब उस रचयिताको कैसे कैसे कलंक मिल सकते हैं और विश्वको शाश्वत क्यों माना जाना चाहिए - इसकी चर्चा *"जैन तत्त्वादर्श"* के दूसरे परिच्छेदमें आचार्यदेव श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.ने न्यायकी अनेक युक्ति प्रयुक्तियोंसे की है। और जब संसार ही शाश्वत है तब सांसारिक जीव, उनसे संबंधित सांसारिक व्यवहार, रीति-नीतियाँ, धर्माधर्मादि भी अवश्य शाश्वत ही रहेंगें। अतः अत्र नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव-इन छः (भेद) निक्षेपोंके बल पर शाश्वत जैन धर्मकी शाश्वतता कैसे प्रमाणित की जा सकती है यह दृष्टव्य है -

(१) नामगत शाश्वतता - रागादि आंतररिपुके विजेता 'श्री जिनेश्वर' देवों द्वारा प्ररूपित धर्म वही है जैन धर्म। तदनुसार अनादिकालसे ऐसे अनंत जिनेश्वरोंने जो धर्म प्ररूपित किया वह 'जैनधर्म'भी उन 'जिन'की अनादिकालीन शाश्वतताके कारण शाश्वत ही कहा जायेगा।

(२) स्थापनागत शाश्वतता - चौंतीस अतिशयालंकृत तीर्थपतियोंने-श्री जिनेश्वरोंने-जो साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका स्वरूप चतुर्विध संघकी रचना की-स्थापना की और उस संघके प्रत्येक व्यक्तिने उनसे प्ररूपित जिस धर्मकी त्रिकरण-त्रियोग•की अखण्ड श्रद्धा-एकत्वतासे सम्यक् आराधना करके आत्म कल्याण किया-राग-द्वेषादि आंतर्शत्रुओंको जीता वह आराध्य धर्म 'जैन धर्म' ही तो है। अतएव जैनधर्म स्थापना स्वरूपसे भी शाश्वत प्रमाणित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) द्रव्यगत शाश्वतता - द्रव्य-अर्थात् पदार्थसे परीक्षण करें तो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय, और काल-इन षट्द्रव्योंका जिसमें निरूपण किया गया है-इनके सर्वांगिण स्वरूपका चित्रण जहाँसे मिलता है वे हैं जैनधर्मके सिद्धांत स्वरूप द्वादशांगी। जीवका इन सभी के साथ अत्यन्त सन्निकट संबंध है। इनके, जिसके जितने स्कंध-देश-प्रदेश परमाणु• होते हैं (अनंत या असंख्य) उतने ही रहते हैं, उनमें कमी-वृद्धि कतइ नहीं होती ।

जैन सिद्धान्तानुसार *(१) धर्मास्तिकाय* चलनेमें-गति करने में सहायक है। जैसे मछलीमें तैरने की शक्ति और ज्ञान होने पर भी बिना पानी तैर नहीं सकती, वैसे ही किसी भी पदार्थकी गति, बिना धर्मास्तिकायके असंभव है। *(२) अधर्मास्तिकाय* स्थिर होने या रहनेमें सहायक है। *(३) आकाशास्तिकाय*-पदार्थको अवकाश (जगह-स्थान) देता है (४) संसारकी सारी विभिन्नता एवं विचित्रतायें *पुद्गलास्तिकाय*के ही पारिणामिक स्वरूप है। (५) *काल*-व्यवहारमें भाविको वर्तमान और वर्तमानको भूतकाल बनाने के स्वभाववाला है। इन पाँचों अजीव[३८] द्रव्योंका छठे द्रव्य *जीवास्तिकाय* पर बड़ा भारी उपकार है। इन्हींके बल पर ही समग्र जीवास्तिकायका संपूर्ण जीवन व्यवहार निर्भर है।

इन षट् द्रव्योंमें (विशेष रूपसे जीव और पुद्गलमें) कहीं नाश होता दिखाई देता है, तो कहीं उत्पत्ति। लेकिन, परिणमनशील गुणके कारण जिस पदार्थका जिस समय नाश दृष्टिगोचर होता है, तत्क्षण उसी पदार्थकी अन्य स्वरूपसे उत्पत्ति भी ज्ञातत्व है-यथा-

जगत तो प्रवाहसे अनादि चला आता है, किसीका मूलमें रचा हुआ नहीं है । काल-स्वभाव-नियति-कर्म-चेतन (आत्मा) और जड़ पदार्थ-इनके सर्व अनादि नियमोंसे यह जगत विचित्र रूप प्रवाहसे चला हुआ उत्पाद-व्यय-ध्रुव रूपसे इसी तरें चला जायेगा ।[३९].

परमकृपालु परमात्माके निर्देशित 'उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य' रूप त्रिपदी पर आश्रित ये षट् द्रव्य अनादिकालसे ध्रौव्य रूप अवस्थित भी हैं और उत्पाद-व्यय-रूप अनवस्थित-परिणमनशील भी-जैसे-मूल द्रव्यसुवर्ण, ध्रौव्य रूपसे नित्य विद्यमान रहता है, लेकिन पर्यायरूप कुंडल, हार, बाजुबंधादि उत्पाद-व्यय रूपसे कभी अस्तितवमें आते हैं और कभी विनष्ट होते भी दृष्टिगत होते हैं। अतएव द्रव्यार्थिक नयसे जीवका अस्तित्व अनादि-अनंतकालीन है और पर्यायार्थिक नयसे जीव-मनुष्य, तिर्यंच, नारक, देवादि नाना स्वरूपसे विद्यमान रहता है। जैसे- "यह संसार प्रवाहसे अनादि है तैसे ही सिद्ध पद भी अनादि है। जीव भी अनादिकालसे ही मोक्षपदको प्राप्त होते चले आते हैं।"[४०] भगवान श्री महावीर स्वामी और उनके अंतेवासी, भाव-मार्दवके स्वामी, शुद्ध उपयोग युक्त, विनयवान श्री रोहाके प्रश्नोत्तर दृष्टव्य है-

प्र. "पुव्विं भंते ! लोए पच्छा अलोए, पुव्विंअलोए पच्छा लोए ?"

उ. रोहा ! लोए य अलोए य पुव्विं पेते पच्छा पेते; दोवी एए सासया भावा अणाणु पुव्वीएसा।

प्र. "पुव्विं भंते ! जीवा पच्छा अजीवा, पुव्विं अजीवा पच्छा जीवा ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालचक्र स्वरूप

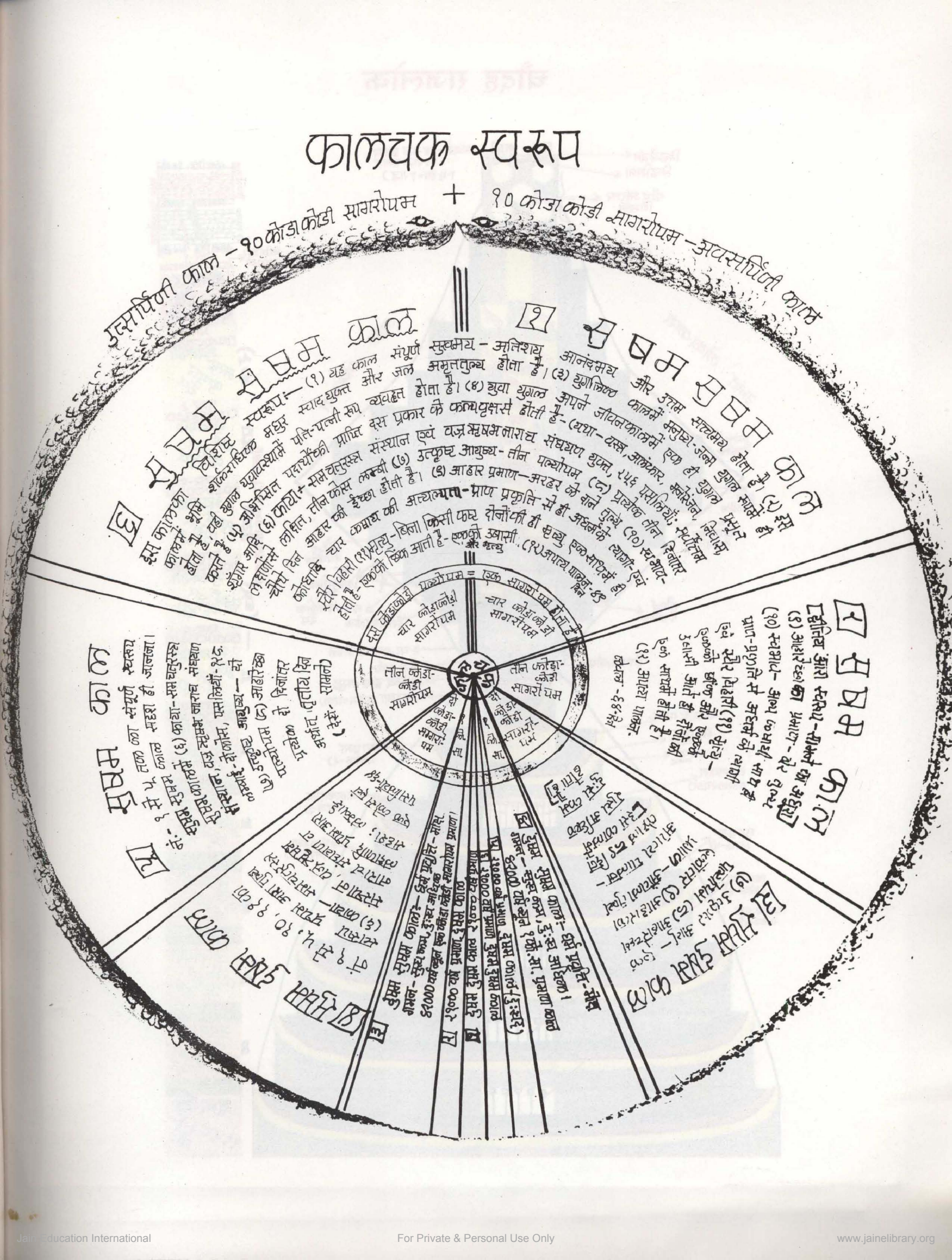

१० कोडाकोडी सागरोपम + १० कोडाकोडी सागरोपम
उत्सर्पिणी काल – १० कोडाकोडी सागरोपम
१० कोडाकोडी सागरोपम – अवसर्पिणी काल
६ सुषम सुषम काल
१ सुषम सुषम काल
दस कोडाकोडी पल्योपम = एक सागरोपम होता है
चार कोडाकोडी सागरोपम
चार कोडाकोडी सागरोपम
तीन कोडाकोडी सागरोपम
तीन कोडाकोडी सागरोपम
२ सुषम काल
५ सुषम काल
३ सुषम दुषम काल
४ सुषम दुषम काल

चौदह राजलोक

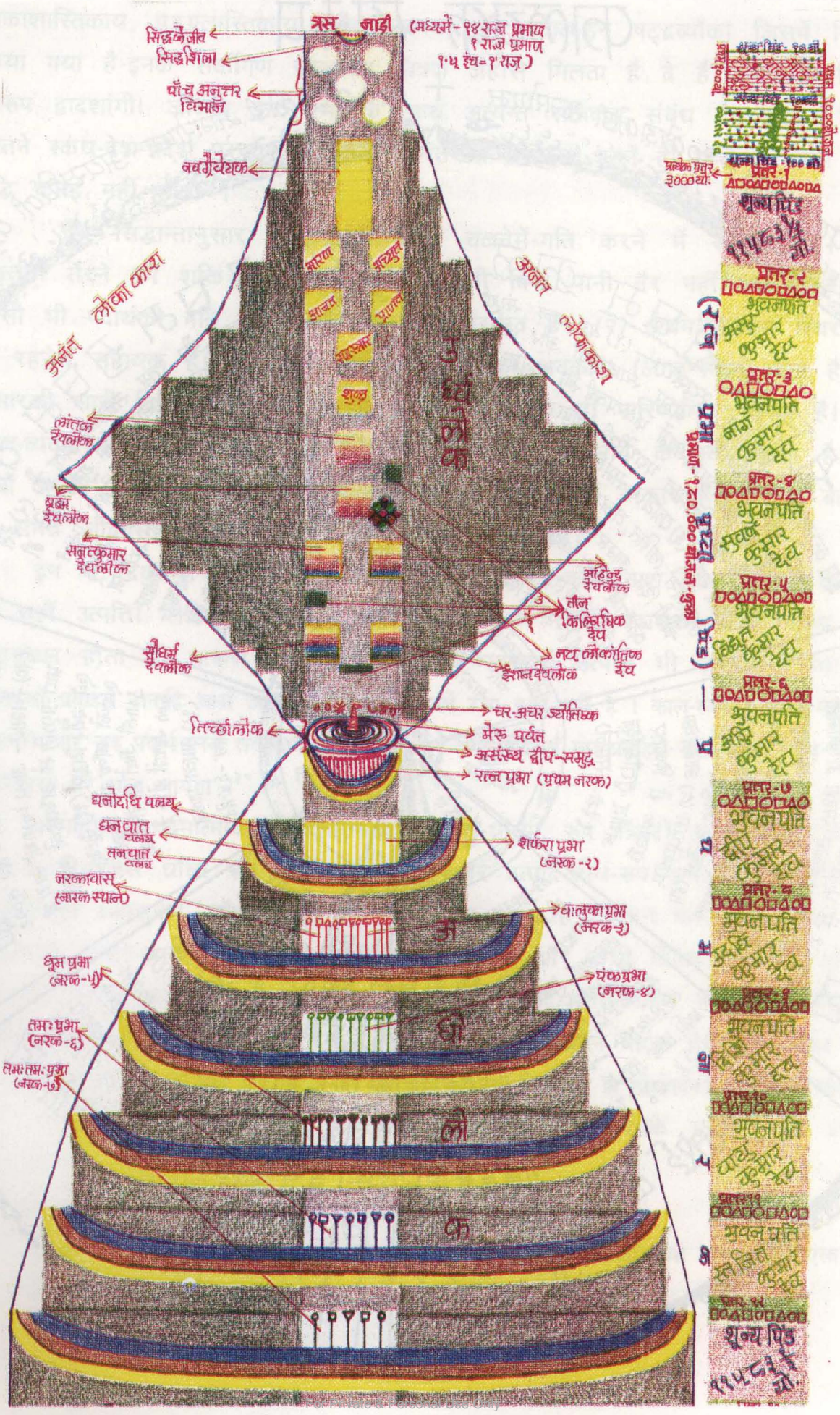

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उ. जहेव लोए य अलोए य तहेव जीवा य अजीवा य, एवं भवसिद्धाय-अभवसिद्धाय, सिद्धि-असिद्धि, सिद्धा-असिद्धा.....से णं अंडए कओ ? कुक्कुडीओ । सा णं कुक्कुडी कओ ? अंडयाओ । एवमेव रोहा ! साय अंडए, साय कुक्कुडी पुव्विंपेते, पच्छापेते दुवे-ते सासय भावा ।"[४१].

इसी तरह *मोक्ष मार्गका, विश्वके समस्त पदार्थोंका, नय-निक्षेप प्रमाणोंका, अनेकान्त-स्याद्वादादिका, लोकालोकका, विश्वमें सर्वश्रेष्ठ जीवविज्ञानका,* सम्यक् दर्शन-स.ज्ञान-स.चरित्र रूप *रत्नत्रयीका* सत्य तत्वमय सुदेव-सुगुरु-सुधर्मरूप *तत्वत्रयीका,* देव-मनुष्य-तिर्यंच-नरकादि *चार गतिका, जीवोंकी गति-आगति (जन्म-मरणादि)का,* साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकारूप *व्यवस्थित कानूनबद्ध चतुर्विध संघका,* सर्वोत्कृष्ट अहिंसादि सर्वविरति मार्ग स्वरूप *पंच महाव्रतोंका,* धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल रूप **षट् द्रव्योंका,** एक परमाणु पुद्गलसे द्वयाणुकादि स्कंध स्वरूप *परमाणुसे स्कंध पुद्गलोंकी व्यवस्थाका,* जीवोंको होनेवाले घाती-अघाती आदि रूप *अष्टकर्म बन्ध, कर्म-मुक्ति अर्थात् कर्म सिद्धान्त और कर्म व्यवस्थाका, कार्मणादि अष्ट वर्गणाओंका,* जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्झरा, मोक्ष रूप *नवतत्त्वोंका,* अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप रूप *नवपदोंका,* अणुव्रत (पांच), गुणव्रत (तीन), शिक्षाव्रत (चार) रूप देशविरति मार्ग योग्य *बारह व्रतोंका,* आत्माके गुण विकास क्रम रूप *चौदह गुण स्थानकोंका, चौदह राजलोक स्वरूप लोक व्यवस्थाका और उसकी रचनाके विचारादिकी शाश्वत सैद्धान्तिकताका निरूपण* शाश्वत जैनधर्मके ग्रंथोकी एवं उनके प्ररूपक श्री अरिहंत भगवंतोंकी और उनके रचयिता गणधर भगवंतोंकी-परम्परासे पूर्वाचार्यादि अनेक विद्वत्पुंगवोंकी अखंड़, अनंत करुणासे ही निष्पन्न आविर्भाव है-यथा- "इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंत जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतं संसार कंतारं वीईवईंसु; एवं पडुप्पण्णेऽवि, एवं अणागाएऽवि ।

"दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयावि णत्थि, ण कयाइ णासि, ण कयाइ न भविस्सइ ।

"भुविं च भवति य भविस्सत्ति य, अयले, धुवे, णितिए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए, णिच्चे ।

"से जहा णामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ णासि, ण कयाइ णत्थि, ण कयाइ ण भविस्सत्ति । भुविं च भवति य भविस्सत्ति य, अयला, धुवा, णितिया, सासया, अक्खया, अव्वया, अवट्ठिया, णिच्चा ।" [४२]

(८) क्षेत्रगत शाश्वतता- विश्वधर्मके अंदाज़से जैनधर्म चौदह राजलोककी त्रसनाड़ीमें आराध्य धर्म है। यह सकल पंचेन्द्रिय जीवोंकी साधना स्वरूप है, तो अन्य एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियादि• जीवोंके लिए श्रेयस्कर-प्रेयस्कर-उपस्कर है। उर्ध्वलोकके वैमानिक•, तिर्च्छालोकके ज्योतिष्क और अधोलोकके भुवनपति• एवं व्यंतरादि• चारों निकायके देवोंके लिए आराध्य-उपास्य-सेव्य है।

इस जैन धर्माचरण और धर्मभावन रूप सम्यक्त्व प्राप्त अधोलोकस्थित नरकावासके नारकभी कर्माधीन वेदनाको समभावसे सहते हुए नए कर्मबंधनसे बच सकते हैं। वेदना-पीडा-और परपीड़न सम्यक् रूपेण सहते हुए दुर्ध्यानसे बचावकर आत्मकल्याण कर लेते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिर्च्छालोकके तिर्यंच भी (जलचर, खेचर, भूचरादि पशु-पक्षी) इससे अपनी आत्म साधना-त्रिविधाराधना करते हैं, तो मनुष्य संसार समुद्रसे इसीके बल पर किनारा कर लेते हैं।

एक तोता पालीतानाके सिद्धगिरि-शंत्रुजय पर्वत पर बिराजित श्री आदीश्वर भगवानकी प्रतिमाकी नित्य पूजा-अर्चना करता था, वह मरकर मनुष्य गतिको प्राप्त हुआ । उस मानव बालक-सिद्धराज जैन-को पूर्वभव स्मरण रूप 'जातिस्मरण' ज्ञान हुआ तव इस बातका पर्दा खुला"[४३] ।

आश्चर्य होगा यह जानकर कि एक कुत्ता वम्वईसे पालीताना तीर्थयात्रा के संघमें साथ था, जो उपवास-एकासनादि तप मनुष्यकी भाँति (श्रावक सदृश) करता था, प्रवचन सुनता था और भगवानके दर्शन-वंदनादि करके प्रभु भक्ति भी करता था ।

एक कछुआ-वड़ौदाकी एम्वेसेडर रेस्टोरांमें था-जो परमात्माके मंदिरमें नित्य प्रदक्षिणा करते हुए वीतराग-देवाधिदेवके दर्शन करता था, शाश्वत मंत्र-श्री नमस्कार महामंत्र- ध्यानसे सुनता था और रात्री-भोजन त्याग-पर्वतिथि हरि सब्जी त्याग-प्रासुक पानी वापरना आदि जैन-श्रावकोंके नियमोंका यथोचित पालन करता था"[४४].

ऐसे अनेक उदाहरण जैनागमों-शास्त्रों-इतिहासादिके स्वर्णपृष्ठों पर अंकित हैं। मध्यलोकके मनुष्य क्षेत्रमेंसे (ढ़ाइद्वीपमेंसे) पाँच महाविदेह क्षेत्रमें इसकी आराधना अस्खलित धारा प्रवाहरूप निरंतर आराधित है, जबकि अन्य पाँच भरत-पाँच ऐरावत-में काल प्रभावसे मर्यादित है। यथा- "पुक्खरवरदीवड्ढे, धायई संडे अ जंवूदीवे अ भरहेरवय विदेहे, धम्माइगरे नमंसामि"[४५]. अतएव इन क्षेत्रोमें मानव भवोपकारी धर्मकी अविच्छिन्न आराधनाकी अविरत धारा प्रमाणित होती है।

इस प्रकार क्षेत्रापेक्षया भरत-ऐरावत---दस क्षेत्रोंमें अवसर्पिणी कालमें तृतीय आरेके अंतसे पंचम आरेके अंत तक और उत्सर्पिणी कालमें तृतीय-चतुर्थ आरेमें धर्मप्रवृत्ति नव-पल्लवित होती है-फूलती है-फलती है जबकि इसके अतिरिक्त कालमें धर्माराधनायें लुप्त हो जाती हैं; महाविदेह क्षेत्रमें न उत्सर्पिणी काल है-न अवसर्पिणी, न युगलिक युगकी व्यवस्था है न धर्म विच्छेद, न कभी तीर्थंकरोंका विरह-न उनसे प्ररूपित धर्मकी कभी विच्छिन्नता-न व्युत्पत्ति --- सर्वदा धर्मका सातत्य एवं सान्निध्य बना रहता है। कालचक्रकी कोई परिगणना वहाँ नहीं होती। क्षेत्रके विशिष्टातिशयके कारण, वहाँ अपने स्वाभाविक रूपसे सर्वदा-सर्वत्र-संपूर्ण जैन धर्म स्वरूप वृत्ति-प्रवृत्ति और आत्माभ्युदय ही नज़र आता है।

इस प्रकारके लक्ष्यसे पर्यालोचन करें तो जैन धर्मकी शाश्वतता समझना अतीव सहज एवं सरल है। पाँच महाविदेहकी १६० विजयोमें (प्रत्येक विजयका क्षेत्रीय स्वरूप पूर्णतया एक भरत या ऐरावत क्षेत्र समान होता है) से जधन्यकालमें बीस या दस और उत्कृष्ट कालमें प्रत्येक विजयमें तीर्थंकरोंका सदेह विचरण एवं जैन धर्मकी सर्वोत्कृष्ट प्रभावना होती है। -यथा

"वत्तीस चउसठ चउसठ मलिया, इगसय सट्ठि उकिट्ठाजी,
चउ अड अड मली मध्यमकाले, बीस जिनेश्वर दिट्ठाजी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो चउ चार जधन्य दस जंबू धायइ पुक्खर मोझारजी,

पूजो प्रणमो आचारांगे प्रवचन सारोद्धारजी ।"

अतएव चौदह राजलोक जितने विशाल क्षेत्रको दृष्टिपथ पर रखते हुए जैनधर्मकी शाश्वतताका परीक्षण करें, तो सभी सहजतासे स्वीकार करेंगें कि, क्षुल्लक ऐसे भरतैरावत क्षेत्रोंको छोड़कर, उससे कईं गुणे विस्तृत क्षेत्रमें जैन धर्मकी आराधना-साधना-उपासना निरंतर करते हुए कर्म निर्जरा करके जीव मोक्ष प्राप्ति करनेमें पर्याप्त रूपसे सक्षम बनते है। तिर्च्छालोकके मनुष्य क्षेत्रमें भरतैरावत क्षेत्रापेक्षया जैन धर्म ज्वार-भाटा सदृश प्रमुदित एवं प्रषुप्त है, तो महाविदेह क्षेत्रापेक्षया शाश्वत भावसे अखंड़, अव्याबाध, अस्खलित रूप आराधित है।

(५) कालगत शाश्वतता- श्री केवलज्ञानी भगवंतके प्रत्युत्पन्न ज्ञानलवसे ज्ञेय पदार्थोंके त्रिकालवित् सर्वसंपूर्ण-अक्रमिक भावोंको ज्ञात किया जाता है। उन्हीं भावोंको ज्ञानी भगवंतोंने एवं पुर्वाचार्योंने कालचक्रके स्वरूप-निरूपणको साथ लेकर अनंत सुख स्वरूप शाश्वत और प्रामाणिक धर्मका जिक्रभी किया है। जिसकी साधनासे अनंत जीव मोक्षसुखको प्राप्त कर गये हैं-कर रहे हैं और करेंगें। शाश्वतताके संदर्भमें यहाँ कालचक्रका यत्किंचित् अत्यन्त संक्षेप स्वरूपोल्लेख अस्थानीय न होगा। इसके दो विभागके छ-छ आरे होते है।

कालचक्र स्वरूप -काल प्रभावके कारण प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालमें काया-प्रमाण, कायबल, बुद्धि, आयु, कांति, सुख, समृद्धि, गुण, रिद्धि, पृथ्वी, जलादिके रसकसमें उत्तरोत्तर वृद्धि-हानि दृष्टिगोचर होती है।

(अवसर्पिणीके प्रथम तीनों आरोंका स्वरूप कालचक्रके चित्रानुसार ज्ञातव्य है।) इसके तृतीय आरेके प्रान्त समयमें कल्पवृक्षके अभिप्सित दानमें कमी आती है, कभी तो देते ही नहीं, जिससे युगलिकोंमें ममत्व-लोभादि दुष्ट भावनायें उद्भावित होने लगती हैं। पल्योपमके• आठवें भाग जितना काल तृतीय आरेके समाप्त होनेमें शेष रहने पर युगलिकोंके झगड़ोंके न्याय करने और अपराधीको दंड देने हेतु एक वंशमें सात कुलकरोंकी प्रसिद्धि हुई। वे कुलकर ही न्यायाधीश और राजा सदृश होते हैं।

इस अवसर्पिणी कालके विमलवाहन और चाक्षुष्मान् कुलकरोंके समयमें केवल 'हा'कार (हा ! तुमने यह क्या किया ?) दंड था; यशस्वान् और अभिचंद्रके समयमें 'हा'कार और 'म'कार (सामान्य अपराधके लिए 'हा'कार और विशिष्टके लिए 'ऐसा मत करना') दंडनीति रहीं; प्रश्रेणि, मरुदेव और नाभिके समयमें तिसरी- 'धिक्कार' नीति भी जोड़ दी गइ थी।

इन्हीं सातवें नाभि कुलकरके कुलमें तृतीय आरेके ८४ लाख पूर्व•-८९ पक्ष शेष रहते हुए प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवका जन्म हुआ। इस अवसर्पिणीमें प्रथम विवाह आपका ही अन्य कन्यासे--इंद्र द्वारा रचा गया, जिससे युगलिक प्रथाका• अन्त हुआ। साथसाथमें कल्पवृक्ष नष्ट होने पर खाने हेतु धान्य उत्पन्न होने लगता है। बादर अग्नि प्रकट होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर लोगोंकी विनती और नाभि कुलकरके आदेशसे श्री ऋषभदेवजी इस अवसर्पिणीके प्रथम राजा बनकर शिल्पादि स्त्री-पुरूषोंकी कलायें सिखाते हैं। तदनन्तर आपने ही प्रथम दीक्षा लेकरके आत्म साधना करते हुए केवलज्ञानकी ज्योत सर्वप्रथम प्रज्वलित की-जो कभी तेज, कभी मंद होने पर भी संप्रतिकालके अंतिम भगवान श्री महावीर स्वामी तक विश्वके प्राणीयोंको -- विशेष रूपसे भरतक्षेत्रके भव्यजीवोंके उत्कृष्ट जीवनके प्रशस्त राजमार्गको प्रकाशित करती रही है। आपके निर्वाणके प्रश्चात्८९ पक्षके व्यतीत हो जाने पर तृतीय 'सुषम-दुःषम' आरेकी समाप्ति होती है ।

तत्पश्चात् ४२,००० साल कम एक कोडाकोडी सागरोपम प्रमाणोपेत चतुर्थ 'दुषम-सुषम' नामक आरेमें धर्म-कर्मका साम्राज्य रहा। द्वितीय तीर्थपति श्री अजितनाथसे अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत-तेईस तीर्थंकर धर्मका प्रादुर्भाव एवं प्रचलन करते हुए स्व-पर कल्याण में तत्पर हुए। इस आरे के सर्व भाव महाविदेह क्षेत्रकी विजयोंकी भाँति ही होते हैं। इस आरेके अंत होने पर मोक्ष मार्गमें हानि होती है। भगवान श्री महावीरके निर्वाण पश्चात् ८९ पक्ष व्यतीत होने पर यह आरा समाप्त होता है।

तदनन्तर २१,००० साल पर्यंत दुषमकालके भाव प्रवर्तीत होने लगते हैं। इसमें बहुलतासे दुःखकी अनुभूति विशेष होती है। सुखमें भी दुःखागमनकी भ्रान्ति चित्तको परिताप करती रहती है। मानवकी उत्कृष्ट आयु १२५ साल और उत्कृष्ट अवगाहना (ऊँचाई) सात हाथकी, आहार अनियमित होता है। इस कालकी समाप्तिके पहले ही जैन धर्म शनैःशनैः ह्रास होते होते विच्छिन्न हो जायेगा। अंतमें चतुर्विध संघ रूप केवल चार धर्मीजन साधु श्री दुप्पसह सूरिजी म.सा., साध्वी श्री फल्गुश्रीजी म., श्रावक श्रीनागिल, श्राविका सत्यश्री नामक-ही रहेंगें। उनके कालधर्म-मृत्यु पश्चात् जैन धर्मका प्रकाश भरतैरावत क्षेत्रसे लुप्त हो जायेगा। इस कालके प्रारंभसे ही क्रषाय, कामासक्ति, मद-अभिमान, क्रूरता, हिंसा, मिथ्यामत, पाखंड़, उत्सूत्र प्ररूपणा, कपट-कदाग्रहादिकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है; तो उत्तमाचार, कुलीनता, विनय, मर्यादा, विद्या प्रभाव, मैत्रीभाव, घी-दूध-धान्यादि सार पदार्थोंके सत्व, आयुष्य, मैत्री, भावादि अनेक गुणोंकी उत्तरोत्तर हानि दृष्टिगोचर होती हैं, जिसका प्रत्यक्ष अनुभव हम कर रहे हैं क्योंकि वर्तमानमें यही आरा प्रवर्तमान है।

अंतिम २१००० साल प्रमाणोपेत 'दुषमदुषम' नामक एकांत दुःखमय कालका प्रारंभ होता है, जिसमें निःकेवल दुःख, वेदना, परितापयुक्त जीवनयापन करते हुए; दिनमें भयंकर-असह्य गरमी और रात्रीमें कातील सर्दी सहते हुए; गंगा-सिंधु या रक्ता-रक्तवती नदियोंके बिलोंमें निवास करनेवाले, उत्कृ. बीस सालकी आयुष्यधारी, एक हाथ अवगाहना (उँचाई)वाले, अमर्यादित आहारेच्छावाले, परस्पर कलेशवाले, दीन, हीन, दुर्बल, दुर्गंधमय, रोगीष्ट, अपवित्र, नग्न, आचारहीन, धर्मरहित, पुण्यरहित, केवल मांसाहारी (मत्स्यादि जलचरोंको नदी किनारेकी रेतमें गाड़कर दिनमें सूर्य-गरमीसे पकनेवाले मांसके आहारी) और आयुष्य पूर्ण होने पर नरक-तिर्यंचगामी मनुष्य रहेंगें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छः सालकी स्त्री अनेक बालकोंको एक साथ प्रसूत करके महाक्लेशका अनुभव करेगी। इस *अवसर्पिणीके वर्णनसे प्रतिलोम क्रमसे उत्सर्पिणीके छः आरोंका स्वरूप ज्ञातव्य है । उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीकालके बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम• प्रमाण एक कालचक्र बनता है।* **यथा**-"एक अवसर्पिणीकाल अर्थात् जो सर्व सारभूत वस्तुओंका क्रमसे नाश करता चला जाता है तिसके छे हिस्से हैं, तथा उत्सर्पिणीकाल अर्थात् सर्व अच्छी वस्तुओंको क्रमसे वृद्धिमान करता चला जाता है........यह अवसर्पिणी अरु उत्सर्पिणी मिलकर दोनोंका एक कालचक्र बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण होता है । ऐसे कालचक्र अनंत पीछे व्यतीत हो गए हैं और आगेको व्यतीत होवेंगें.........इस तरह अनादि अनंतकाल तक यही व्यवस्था रहेगी ।"[४८] यह स्वरूपालेखन केवल भरतैरावत क्षेत्राश्रयी किया गया-जहाँ जिन धर्माराधना पूर्णिमा और अमावास्या के चंद्रकलाओंकी सदृश वृद्धि-हानि होती रहती है। लेकिन महाविदेह क्षेत्रकी सर्व विजयोंमें धर्माराधनायें निरंतर होती रहती हैं तीर्थंकरके विरहकालमें भी उनके पथ-प्रदर्शक केवली भगवंत एवं साधु-साध्वीके निर्देशनमें आराधना होती रहती है। वहाँ सदा-सर्वदा मोक्ष मार्गकी आराधना और मोक्ष प्राप्ति होती ही रहती है। काल प्रभावसे ही तथा प्रकारके परिणाम प्राप्त होते रहते हैं।

अतएव निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि जैन धर्म अनादिकालसे अविच्छिन्न रूपसे प्रवाहबद्ध स्वरूपसे नित्याराधित है और रहेगा। श्री स्कंदक परिव्राजकके साथ प्रश्नोत्तर समय भगवान महावीरके उद्गार स्पष्ट है-*यथा* - "कालओणं लोए ण कयावि न आसी, न कयावि न भवति, न कयावि न भविस्सति; भविंसु व भवति य भविस्सइ य, धुवे, णितिए, सासते, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए णिच्चे-णत्थि पुण से अंते ।........से त्त दव्वओ जीवे सअंते, खेत्तओ जीवे स अंते, कालओ जीवे अणंते, भावओणं जीवे अणंता णाण, दंसण, चरित्त, गुरुलहु, अगुरुलहु पज्जत्ता.......एवं खलु चउव्विहा । सिद्धि पज्जता-दव्वओ सिद्धि सअंता, खेत्तओ सिद्धि सअंता, कालओ सिद्धि अणंता, भावओ सिद्धे अणंता.......कालओ सिद्धि अणंते, भावओ सिद्धे अणंते" ।[४९]

(६) भावगत शाश्वतता- यथानाम तथा गुणानुसार 'जैन' शब्द-निष्पन्न भावको ग्रहण करें तो मोहनीयादि कर्म सेनापतियोंके अनंत कर्मकटकको, मानवजीवन रूपी रणक्षेत्रके विविध व्यामोह रूप व्यूहचक्रोंको भेदनेके लिए यम-नियम-योगादि साधनास्त्रोंसे और तप-जप ध्यानादि विभिन्न आराधनायुधोंकी सहायतासे अथक-अनवरत-अखंड परिश्रम करके विशिष्ट आत्म-विजय संपन्न-विजयशील-जिनेश्वर-वीतराग सर्वज्ञ द्वारा प्रकाशित और प्रसारित धर्म-जैनधर्म है; जो धर्मसाधककी आत्माके राग-द्वेषादि दूषणोंको दूर करनेवाला एवं वीतरागादि गुण प्राप्तिके पथको प्रदर्शित और प्ररूपित करनेवाला है ।

यह जीव सृष्टि जैसे कालगत अनादि-अनंतकालीन है वैसे ही उन जीवोंकी भागवत आराधना-साधना-उपासना स्वरूप धर्मभी अनादि अनंत स्वयं सिद्ध ही है-यथा-'मनुष्यमें धर्मरूप गुण वास्तवमें है कि नहीं ?' इस प्रश्नका प्रत्युत्तर देते हुए आचार्यप्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. लिखते हैं- "धर्म रूप गुण मनुष्यमें वास्तविक है, क्योंकि धर्म जो होता है सो धर्मीका स्वरूप ही होता है-जैसे मिसरीकी मिठास। इस 'धर्म' पदके कहनेसे ही वास्तविक 'धर्म-धर्मी'का अविष्वग् भाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध सिद्ध होता है ।.....जैनियोंका यह मंतव्य है कि, जगत अनादि है, ईश्वर-भगवान हमारा सन्मार्गदर्शी (रहनुमा) और दुर्गतिपातसे रक्षक है ।.....धर्मका परम पुरूषार्थ यह है कि जगत्वासी जीवको नाना गतिके जन्म मरणादि शारीरिक और मानसिक दुःखोंका नाश करके परमपद-सिद्धपदमें अर्थात् ईश्वर पदमें प्राप्त करता है।"[५०]

इस धर्मकी आराधना दो प्रकारसे होती है-पंच महाव्रत पालन रूप सर्वविरति याने साधुपनेसे और द्वादश पालनरूप देशविरति या सम्यग् दृष्टि अविरति गृहस्थ धर्माचरणसे।

श्री तीर्थंकर भगवंत अपने तीर्थंकर नामकर्म रूप पुण्य कर्मोदयसे प्राप्त केवलज्ञानमें भासन होनेवाले भव निस्तारक धर्मामृत, पियूषगिरासे प्रवाहित करते हैं, जिसे श्री गणधर भगवंत-क्रोडोंकी क्षुल्लक रौप्य मुद्रिकाओंको एक कोहिनूर हीरेमें समाविष्ट करनेकी चेष्टा स्वरूप, उस श्रुत सागरको---सूत्र रूप गागरमें समाविष्ट कर देते हैं। वही गागर-सूत्रसमूह-सन्दूक स्वरूप द्वादशांगी की रचना-गणिपिटक कहलाती है । इसकी अगाधता आश्चर्यकारी है-यथा- ५१,०८,८४,६२१.१/२ श्लोकोंका एक पद होता है और ३,६४,४६००० पद प्रमाण एक अंग बनता है। ऐसे ग्यारह अंग सूत्र, और १६३८३ हस्तिप्रमाण मषिपूंजसे लिखा जाय उतना विस्तृत बारहवां 'दृष्टिवाद' अंग होता है। भरतैरावत क्षेत्रमें इस अवसर्पिणी काल प्रभावसे बुद्धि-याददास्त-हानिके कारण शनैः शनैः लुप्त होते होते संक्षिप्त बनते जाते हैं। साम्प्रतमें सार स्वरूप केवल ६,५९,३३० श्लोक प्रमाण पैंतालीस आगम स्वरूप साहित्य अवशिष्ट रह पाया है, जिनके सहारे भवभ्रमणके हेतुरूप जुल्मगार कर्मराजाकी कैदसे मुक्त होनेके लिए यत्किंचित् अमोघ उपाय प्राप्त हो सकते हैं। जबकि अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल प्रभावसे विमुक्त-विशिष्ट क्षेत्र महाविदेहमें उपरोक्त सूचित संपूर्ण श्रुतसागर सदा-सर्वदा-सर्व विजयोमें स्थिर रूपसे उपलब्ध होता है। जिससे आराधक आत्मा त्रिकालाबाधित आराधना करके आत्मकल्याण कर सकते हैं।

अतएव निष्कर्ष यह निवेदित है कि, <u>द्रव्य ही भाववृद्धिका कारण बनता है इससे जैसे द्रव्य शाश्वत है वैसे ही भावगत जैनधर्म शाश्वत है।</u>

जैन धर्म की ऐतिहासिक परम्परा :-

अनादिकालीन जैनधर्मके शाश्वत स्वरूपको ज्ञात कर लेनेके पश्चात् उसकी ऐतिहासिक परम्परा जाननेकी उत्कंठा होना सहज स्वाभाविक है।

ढ़ाई द्वीप स्थित पाँच महाविदेह क्षेत्रकी (प्रत्येककी चार चार) बीस विजयोंमें विचरण करते हुए एवं उत्कृष्ट या मध्यमकालमें विचरण किये हुए तीर्थंकरोंके जीवन-कवन संबंधित साहित्य जैन ग्रन्थ-शास्त्रोमें आलेखित है। वर्तमान कालमें पाँच महाविदेह क्षेत्रकी एक सौ साठ विजयोमेंसे बीस विजयोमें-प्रत्येकमें एक एक *श्री सिमंधर, श्री युगमंधर, श्री बाहु, श्री सुबाहु, श्री सुजात, श्री स्वयंप्रभ, श्री ऋषभदेव, श्री अनंतनाथ, श्री सुरनाथ, श्री विशालदेव, श्री व्रजधर, श्री चंद्रानन, श्री चंद्रप्रभ, श्रीभुजंगदेव, श्री ईश्वरनाथ, श्री नेमिप्रभ, श्री वीरसेन, श्री महाभद्र, श्री देवयशा, श्री अजितनाथ*[५१] -स्वनाम धन्य बनानेवाले बीस तीर्थंकर विचरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर रहैं हे और मानव जन्मका सार्थक्य करानेवाले आध्यात्मिक अवबोध रूप धर्म प्ररूपणा करके असंख्य आत्माओंको भवनिस्तारिणी आराधना निरूपित करनेवाली अमोघ-देशनासे लाभान्वित कर रहै हैं।

इसी तरह पाँच भरत-पाँच ऐरावत क्षेत्रमें प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालके चौबीस तीर्थंकर भी अपने 'तीर्थंकर नामकर्म'रूप पुण्य-भुक्ति करते हुए स्व-परात्म कल्याणमयी आत्मोद्धारक-मधुर गिरा प्रवाहको प्रवाहित करते हैं, जिस प्रशस्त मार्गका आराधन अनेक भव्य• जीवात्माको निस्तार (भवसे) करानेमें सहायक बनता है। वर्तमानकालीन पंचम आरेमें इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें चरम तीर्थपति श्री महावीरोपदिष्ट धर्माराधना प्रर्वतमान है।

जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें अनादि कालसे प्रबहमान, अनंत कालचक्रोंके व्यतीत होते होते वर्तमान अवसर्पिणी कालकी तीर्थंकर परम्परा-अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम में कुछ न्यून काल प्रमाण-अति दीर्घ विरहकाल पश्चात्-तृतीय 'सुषम-दुःखम' नामक आरेके चौर्यासी लक्ष पूर्व और नवासी पक्ष शेष रहते हुए प्रारम्भ होती है ।

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव जीवन - चरित्र ---

अषाढ़ कृष्णा चतुर्थीके दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें चंद्रका योग आने पर 'सर्वार्थसिद्ध•' नामक अनुत्तर देवलोकसे च्यवकर सातवें कुलकर श्री नाभिकी युगलिनी मरुदेवाकी रत्नकुक्षीमें प्रथम तीर्थपतिका चौदह महास्वप्न• सूचित अवतरण हुआ, एवं चैत्र कृष्णा अष्टमीको गगन मंडलमें-ज्योतिषशास्त्रानुसार सर्वग्रह सर्वोच्च स्थान पर आते ही श्री ऋषभदेव भगवंतका जन्म हुआ जिससे तीनों लोक आलोकित हुए, साथ ही चौर्यासी लक्ष योनिकी सकल जीव राशिको अवर्णनीय सुखानंदका आह्लाद मिला। छप्पन दिक्कुमारिकाओंने एवं सौधर्मेन्द्रादि चौसठ इन्द्रान्वित असंख्य देव-देवियोंने अपने अपने आचारानुसार भगवंतका बड़े ठाठसे-भक्तिभाव भरपूर-जन्मोत्सव किया। पिता-नाभि कुलकरने भी यथायोग्य जन्मोत्सव किया।

८४ लाख पूर्व वर्षकी आयुमर्यादा युक्त, ५०० धनुष प्रमाण तनुधारी, सुवर्णवर्ण-सुंदर-सौष्ठव युक्त वपुवान् श्री ऋषभदेवका, यौवनवयसे भावित होने पर इन्द्रों एवं इन्द्राणियों द्वारा सुमंगला और सुनंदा नामक दो युवतियोंसे, इस अवसर्पिणी कालका-युगला धर्म निवारण के प्रतीक रूप-सर्व प्रथम विवाह किया गया। तबसे भरतक्षेत्रमें लग्न प्रथाका प्रादुर्भाव हुआ। छ लाख पूर्व तक उत्तमोत्तम सुख-समृद्धि विलसते हुए आपके सौ पुत्र और दो पुत्रियोंका परिवार हुआ। इनके अतिरिक्त भी अनेक पौत्र-प्रपौत्रादिका परिवार भी प्राप्त हुआ। बीस लाख पूर्व वर्ष व्यतीत होने पर उन मिथुनकोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेको, उनका न्याय और रक्षण करने को, श्री नाभि कुलकरकी प्रेरणा और आदेश प्राप्त करके पुरुषाद्य-प्रजापति-प्रथम राजन् के रूपमें आपका इन्द्रादि देवों द्वारा राज्याभिषेक किया गया। उन युगलिकोंके निवास योग्य १२यो. x ९यो. की 'विनिता' नामक नगरी-अलकापुरी सदृश सुवर्णनगरी-इंद्रकी आज्ञासे बसायी गई। उसकी सुचारु व्यवस्थाके लिए उग्र, भोग, राजन्य एवं क्षत्रिय कुलोंकी स्थापना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की गई। आपने असि-मसि-कृषि रूप जीवनयापनकी रीति-नीति, बादर अग्नि की स्वयं उत्पत्ति होने पर भोजन व्यवस्था विधि, स्त्रियोंकी चौसठ, पुरुषोंकी बहत्तर कला एवं सौ प्रकारके शिल्प रूप सांसारिक अनेकविध कलाओंको-शिक्षा संस्कारोंको प्रकाशमान और प्रवर्तमान करके नीति सम्पन्न, सुख शांतिमय और सुचारु व्यवस्था सह त्रेसठ लाख पूर्व पर्यंत स्वस्थ राज्य संचालन किया।

जन्मसे ही मति-श्रुत-अवधि• -प्रमुख तीन ज्ञानके धारक श्री ऋषभदेव भगवंतने अपनी आयुके एक लाख पूर्व वर्ष शेष रहते हुए अवधिज्ञानसे अपने दीक्षाकालको जानकर भरतादि सौ पुत्रों एवं अनेक प्रपौत्रोंको विभिन्न प्रदेशोंके राज्य पर स्थापन करके नवलोकांतिक• देवोंकी 'तीर्थ प्रवर्तमान करनेकी' विनतीको लक्ष्यमें रखकर, एक वर्ष पर्यंत यथेष्ट वार्षिक दान प्रदान करते हुए गृहवास त्यागकर चैत्र कृष्णा अष्टमीको, आत्म शुद्धयार्थ विनिता नगरीके सिद्धार्थवन नामक उद्यानके अशोक वृक्षके नीचे द्रव्यसे चउमुष्टि केशलुंचन करके और भावसे सर्व कषायादि दूर करने स्वरूप भावमूंड होते हुए उत्तराषाढ़ा नक्षत्रमें चंद्रका योग होने पर दो निर्जल उपवास युक्त ४००० पुरुषोंके साथ आत्मसंयम स्वरूप सम्यक्-चारित्र महामहोत्सव पूर्वक अंगीकार किया।

तत्पश्चात् छद्मस्थावस्थामें भिक्षाविधि और भिक्षाचर से अपरिचित-अनजान लोगोंसे मुनि योग्य अन्न-जलकी भिक्षा चारसौ दिन तक न मिलनेसे चारसौ उपवास हुऐ। तदनन्तर हस्तिनापुर नगरीमें विचरण करते हुए, आपके दर्शन होते ही जातिस्मरण ज्ञान• प्राप्त होने पर भिक्षा-विधि आपके प्रपौत्रको ज्ञात हुई जिससे आपको निर्दोष आहारकी प्राप्ति हुई और आपने उस निर्दोष एषनीय इक्षुरससे चारसौ उपवासका पारणा किया।

इस तरह संयम धारण करनेके पश्चात् अनवरत सहस्त्राब्द पर्यंत अहर्निश अप्रमत्त दशामें, निरंतर तप-ध्यान-, यम-नियम से भावित-आत्म साधन लयलीन-कर्म कलुषित निजात्माको, विशुद्ध-निष्कर्मा बनाने हेतु प्रचंड यज्ञ रूप आराधना-साधनामें तत्पर बनकर परिषह-उपसर्ग•, संकट-विकट, कष्ट-कठिनाइयोंको समभावसे सहते हुए और कर्मकटकको विदारते हुए फागुण कृष्णा एकादशीको पुरिमताल नगरके शकटमुख उद्यानमें न्यग्रोध नामक उत्तम वृक्षके नीचे, निर्जल तीन उपवास युक्त, उत्तराषाढा नक्षत्रमें चंद्रका योग होने पर अविनाशी अनंत केवलज्ञान-केवल दर्शनकी ज्वलंत-ज्योत-प्रकाशी, आप-पूर्णज्ञानी-सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी बने।

इस हर्षोल्लासपूर्ण अवसरमें सोनेमें सुहागेकी तरह आपके ज्येष्ठ पुत्र भरतके साथ आपके दर्शनको, हाथी पर बैठकर आयी हुई माता---जिसने आपके विरहमें रोते रोते नेत्र-रोशनी गंवा दी ऐसी असीम ममतामयी माता---आपका निर्ममत्वयुक्त अवर्णनीय वैभव-शोभा देखकर स्वयं प्रतिबोधित होती है और सांसारिक संबंधोकी अनित्यताकी भाव-धारा पर अग्रसर होते होते सर्व घातीकर्म क्षय करके अ-क्षर केवलज्ञान और केवलदर्शनको संप्राप्त करती हैं; संयोगसे उसी समय सर्व अघाती कर्मके क्षयकी भवितव्यताके कारण इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवसर्पिणी कालकी सर्व प्रथम मोक्षगामी आत्माके गौरवसे गौरवान्वित बननेका परम सौभाग्य प्राप्त करती है।

वीतराग श्री ऋषभदेवजीके केवलज्ञानकी प्राप्तिके प्रसंगसे चारों निकायके देवों द्वारा भक्ति स्वरूप चाँदी, सुवर्ण, रत्नादि युक्त समवसरण• निवेशित किया जाता है। नर-नारी-साधु-साध्वी, देव-देवी स्वरूप बारह पर्षदा• मध्य इस अवसर्पिणी कालके प्रथम केवली-अरिहंत-पैंतीस गुणालंकृत गिरासे भव्य जीवोंको भव-निस्तारिणी देशना देते हैं। उस समय ऋषभसेन पुंडरिकादि, अनेक राजा-राजकुमारादिने आत्म कल्याणकारी चारित्र अंगीकार किया।

आपने हज़ार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष पर्यंत केवली पर्यायमें विचरण करके भव्य जीवोंके लिए शिक्षा-दीक्षा और आत्म कल्याणकारी धर्मका प्रादुर्भाव-प्रचलन-प्रसारण किया। आपकी निश्रामें पुंडरिकादि ८४ गणधर•, ८४००० साधु, ब्राह्मी-सुंदरी आदि तीन लाख साध्वियाँ, श्रेयांसादि ३,०५,००० श्रावक, सुभद्रादि ५,५४,००० श्राविकारूप चतुर्विध संघने आत्म कल्याण किया।

इस अवसर्पिणीकालके युगलिक धर्म निवारक, प्रथम भूपति, प्रथम साधु, प्रथम ब्रह्मचारी, प्रथम केवली, प्रथम धर्म प्ररूपक, प्रथम तीर्थपति, प्रथम अरिहंत श्री ऋषभदेव (श्री आदिनाथजी) महा कृष्णा त्रयोदशीके दिन अष्टापद पर्वतके शिखर पर १०,००० साधुओं के साथ, निर्जल छः उपवास युक्त, अभिजित नक्षत्रमें चंद्रका योग प्राप्त होने पर पल्यंकासनमें विराजित-संसार सागरसे निस्तार करानेवाले-सर्व सांसारिक दुःखोंका अन्त करानेवाले-निर्वाणपदको-परमपद-सिद्ध पदको प्राप्त कर सिद्धशिला पर विराजित हुए।

अन्य तीर्थंकरोका जीवन चरित्र-(सामान्य परिचय)

प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथजीके निर्वाणानंतर ५० लाख क्रोड़ सागरोपम में बहत्तर लाख पूर्व वर्ष न्यून काल शेष रहते हुए द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथजीका च्यवन हुआ, जन्म हुआ यावत् निर्वाण हुआ। पाँचों कल्याणकका स्वरूप चौबीस तीर्थंकरोंकी तालिका से दृष्टव्य है।

प्रत्येक दो तीर्थंकरोंके बीच-अल्पकालीन तीर्थंकरोंका विरह होता है। पूर्व तीर्थंकरके निर्वाण पश्चात् उन्हींका शासनकाल माना जाता है, जब तक परवर्ती तीर्थंकरको केवलज्ञान नहीं होता है। परवर्ती तीर्थंकरके केवलज्ञान-प्राप्तिके पश्चात् उनके तीर्थके आविष्कारसे पूर्व तीर्थंकरका चतुर्विध संघ नूतन तीर्थंकरका शासन शिरोमान्य कर लेते हैं। यही क्रम अनादिकालीन अनंत चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरोंमें परम्परासे अबाधित चलता रहता है।

सामान्यतया प्रत्येक तीर्थंकर पूर्वके किसी जन्ममें प्रायः कोईनकोई निमित्त से सम्यक्त्व• की प्राप्ति करते हैं और तीर्थंकर भवकी अपेक्षा पूर्वके तृतीय भवमें *'तीर्थंकर नामकर्म•'*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निकाचित• करनेके लिए *"सवि जीव करुं शासन रसी"*-सर्व जीवात्माकी कल्याण कामनाके साथ बीस स्थानक• तपाराधन करते हैं। आयु पूर्ण होने पर शुभ कर्म भोगनेके लिए स्वर्गलोकमें अथवा सम्यक्त्व प्राप्ति पूर्व ही अशुभायुष्य कर्मबंध हो गया हो तो पाप कर्मके फल भोगने हेतु नरकमें जाते हैं। उदा. भगवान श्री महावीरके परमभक्त महाराजा श्रेणिक भावि उत्सर्पिणीकालमें प्रथम अरिहंत होनेवाले हैं-आज रत्नप्रभा• नरकमें अशुभ फल भोगते हैं-

देव या नरकभवका आयुष्य पूर्ण करने पर वहाँसे च्यवकर चौदह स्वप्न सूचित रत्नकुक्षि माताके उदरमें अवतरित होते हैं। गर्भकालमें भी अरिहंतके प्रभावसे माता-पिता-परिवारादिमें सुख-समृद्धि और शुभ भावोंकी वृद्धि होती रहती है। गर्भकाल पूर्ण होने पर सर्व ग्रह, सर्वोच्च स्थान पर आने से, जैसे पूर्व दिशा दिनकरको उदित करती है, वैसे ही माता प्रसव-वेदनाके कष्ट रहित-सुखपूर्वक अर्धरात्रीके समय परम तारक त्रिलोकीनाथको जन्म देती हैं। आपके जन्मके पुण्य-प्रभावसे त्रिलोकके, चौर्यासी लक्ष योनिके सकल जीवोंको सुखाह्लाद का अनुभव होता है। घोरातिघोर अंधकारमय नरकमें भी ज्योतिर्मय उद्योत फैल जाता है।

शिशु परमात्मा के जन्मके प्रभावसे छप्पन दिक्कुमारियों (देवियों) के आसन कंपायमान होनेसे, अवधिज्ञानसे परमात्मा-जन्म जानकर निज-निज स्थानसे जन्मोत्सवके लिए आती हैं; तो चारों निकायके वैमानिकादि चौसठ इन्द्रों सहित सर्व देव सौधर्मेन्द्रके आदेशानुसार मेरु पर्वत पर जिन-जन्मोत्सवके लिए-स्नात्र महोत्सव करनेके लिए विभिन्न तीर्थोंके, क्षीरोदधि आदि समुद्रोंसे जल एवं वनोपवनोंसे औषधादि-पुष्पादि विभिन्न पूजा सामग्री लेकर आते हैं और मेरु पर्वतकी पांडुकवनकी पांडुकबला नामक सिंहासन रूप स्फटिक शिला पर बैठे हुए सौधर्मेन्द्रके उत्संगमें बिराजमान प्रभुका जन्माभिषेक करते हुए भक्ति करते हैं। पश्चात् प्रातःकाल पुत्र जन्मकी बधाई मिलते ही प्रभुके पिता-नराधिपकी ओरसे नगरमें सर्वत्र-सर्व नगरजनों द्वारा धूमधामसे-आनंदोल्लाससे-जन्मोत्सव मनाया जाता है।

तीन ज्ञान संयुक्त बाल तीर्थंकर शुक्ल पक्षके चंद्रकी भाँति वृद्धिगत होते होते जब यौवनवय-प्राप्त होते हैं, तब गुणवान-शीलवान और स्वरूपवान एक या अनेक कन्यारत्नसे पाणिग्रहण करके-भोगावली कर्मको भोगते हुए पुत्रादि परिवार संयुक्त, वैभव विलास युक्त संसारलीलामें जलकमलवत् रमण करते हैं। पिताकी प्रेरणा व आदेशसे राज्यलक्ष्मीकी धुरा वहन करते हुए स्वस्थ और सफल-शांत और स्थिर राज्य संचालन करते हैं।

संसारसे निर्लेप और निर्वेदित चित्तयुक्त रहनेवाले स्वयंका दीक्षाकाल अवधिज्ञानसे जानकर अनुजबंधु या निजांगज-युवराजका राज्याभिषेक करके लोकांतिक देवोंकी *"धर्मतीर्थ प्रवर्तमान करनेकी"* विज्ञप्तिको लक्ष्यमें रखते हुए एक वर्ष पर्यंत-प्रतिदिन एक क्रोड़ आठ लक्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुवर्ण मुद्राओंका दान करते हैं अर्थात् एक वर्षमें तीनसौ अठ्यासी क्रोड़ अस्सीलाख सुवर्ण मुद्राओंका (वर्तमान कालके हिसाबसे प्रत्येक दिन नवहजार मण सुवर्ण होता है) दान करते हैं। उनकी दानशालासे चार प्रकारका---भोजन-वस्त्र-आभूषण और सुवर्ण मुद्राओंका---दान होता है।[५२] वर्षान्ते सुरासुरेन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा गीत-गान-नृत्यादि से निष्क्रमणोत्सवपूर्वक रत्नशिबिकारूढ होकर नगरीके बाहर उद्यानमें, श्रेष्ठ वृक्षके नीचे वस्त्रालंकारादि सर्व समृद्धि त्यागकर, द्रव्यसे पंचमुष्टि केशलुंचन करके और भावसे विषय-कषाय, राग-द्वेषादि रहित बनकर आत्म-कल्याणकारी भागवती प्रव्रज्या अंगीकार करनेके लिए-अगार से अनगार बननेके लिए---इंद्र प्रदत्त देवदूष्य वस्त्र ग्रहण कर, सिद्ध परमात्माको नमस्कार करते हुए आजीवन सामायिक व्रत (चारित्र) का उच्चारण-सूत्रपाठ करते है। अतएव चारित्ररूपी रथारूढ होकर कर्मकटकसे युद्ध करके विजयशील बननेके लिए कटिबद्ध होते हैं। तत्काल संयमके सहोदर सदृश ढाईद्वीपके संज्ञी पंचेन्द्रियके मनोगत भाव दर्शानेवाला चतुर्थ मनःपर्यवज्ञान आविर्भूत होता है।

दीक्षानंतर अष्ट प्रवचन माता• धारक, सर्व जीव प्रतिपालक, भारंड तुल्य अप्रमत्त, वीतराग दशामें-निज कर्मोन्मूलनमें वज्र सदृश-परिषह एवं उपसर्गको धैर्यपूर्वक सहते हुए तपाराधना, ध्यानोपासना एवं आत्म साधना करते हुए चार घातीकर्मोंका क्षय होनेसे सम्पूर्ण-अविनाशी-लोकालोक भास्कर-त्रिकालवित् सर्वद्रव्यके सर्व पर्यायोंको हस्तांवलक सदृश जानने-देखनेवाला, अक्रमिक केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त करते हैं- सर्वज्ञ बनते हैं ।

देवेन्द्रों और नरेन्द्रों द्वारा केवलज्ञान प्राप्तिके स्वर्णावसरके उपलक्ष्यमें महोत्सव किया जाता है। चार निकायके देवों द्वारा दस हज़ार सोपान युक्त प्रथम चांदीका, पाँच हज़ारसीढीवाला द्वितीय सुवर्णका, पाँच हज़ार पौड़ीयुक्त तृतीय रत्नका-ऐसे तीन गढ़ और सुवर्ण रत्नमय सिंहासनवाला-एक योजन परिमाणवाले समवसरणकी रचना की जाती है, जिसमें जिनेश्वर '*श्री तीर्थाय नमः*' उच्चारण पूर्वक, पूर्वाभिमुख सिंहासनारूढ होते हैं और व्यंतर देवों द्वारा विकुर्वित अरिहंतके बिंब तीन दिशाओंमें बिराजित किये जाते हैं। ऐसे चारों दिशा स्थित चतुर्मुखसे अरिहंत बारह पर्षदाको उद्‌बोधित करते हुए भव-निस्तारिणी, हित-मित-पथ्य, अमृतधारामय, सूर-लय-बद्ध, पैंतीस गुणालंकृत देशना प्रकाशित करते हैं। वीतराग द्वारा प्रसारित त्रिपदी-"*उपन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा*" प्राप्त होते ही बीज बुद्धिके स्वामी-गणधर भगवंत वटवृक्ष सदृश-द्वादशांगीकी रचना करते हैं। इस तरह बारह गुणयुक्त, अठारह दोषमुक्त, चौतीस अतिशय अलंकृत, नव स्वर्णकमल पर पादधारी, जघन्यसे क्रोड़ देवोंसे सेव्यमान अरिहंत परमात्मा निज आयुष्य पर्यंत विचरते हुए विश्व कल्याणका ध्वज़ फहराते हैं। प्रत्येक तीर्थंकरके शासनरक्षक यक्ष-यक्षिणी, भक्तजनोकीं मनोकामनायें पूर्ण करते हैं।

आयुष्य पूर्ण होनेके कुछ समय पूर्व संलेषणा रूप अनशन• करते हैं। आयुकालका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर बादर मन-वचन-काय योग और सूक्ष्म मन एवं वचन योग क्रमसे रोध करते हुए शुक्लध्यानको ध्याते हुए निर्वाणकाल पांच ह्रस्वाक्षर अ,ल,इ,ऋ,लृ- उच्चारणकाल पूर्व सूक्ष्मकाय योगका रोध करते हैं अर्थात् मन-वचन-कायाके सूक्ष्म एवं बादर योगोंका त्याग करते हुए शुक्लध्यानके चतुर्थपादमें स्थिर बनकर शैलेशीकरण करके अवशिष्ट कर्मोंको क्षीण करते हुए, सर्व कर्म रहित होकर मोक्षपद-निर्वाण पदको प्राप्त होते है।

चरम तीर्थपति श्री महावीर स्वामी चरित्र -

"वीरः सर्व सुरा सुरेन्द्र महितो, वीरं बुधाः संश्रिताः ।
वीरेणाभिहतः स्वकर्मनिचयो, वीराय नित्यं नमः ।।
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं, वीरस्य घोरं तपो ।
वीरे श्री धृति कीर्ति कान्ति निचयः श्री वीर भद्रं दिश ।।"[५३]

"*आत्मैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः*"- पंक्तिको चरितार्थ करनेवाले और अशुभ कर्मोदयकालमें सहनशीलताका मूर्तिमंत स्वरूप, चरम अरिहंत श्री महावीर स्वामी अषाढ़ शुक्ल षष्ठीको उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें चंद्रका योग होने पर प्राणत कल्पसे च्यवकर माहणकुंड-ग्राम नामक नगरके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी देवानंदा नामक अर्धांगिनीकी कुक्षिमें १४ स्वप्नसे तीर्थंकरपनेको सूचित करते हुए अवतरित हुए। त्रिलोकमें तेज़ प्रसरा।

आश्चर्यभूत गर्भ परिवर्तन-यह शाश्वत नियम है कि प्रत्येक तीर्थंकर क्षत्रियादि उच्च कुलोमें ही जन्म लेते हैं। लेकिन कर्म सिद्धान्तके निश्चित और अनूठे परिपाकका मूर्तिमंत स्वरूप हमें तीर्थपतिका ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न होना-आश्चर्यकारी घटना स्वरूप दृष्टिगत होता है। जिसका कारण यह है कि सम्यक्त्व प्राप्तिके पश्चात् तृतीय-मरिचिके भवमें 'अपने प्रथम वासुदेव, चक्रवर्ती और चरम तीर्थंकर स्वरूप उत्तमोत्तम पदप्राप्ति करानेवाले उत्कृष्ट पुण्यका और इस अवसर्पिणी कालके प्रथम तीर्थंकर (आदिनाथ) प्रथम चक्रवर्ती (भरत महाराजा) और प्रथम वासुदेव (त्रिपृष्ठ)-दादा, पिता और स्वयंको बननेका सौभाग्य--उत्तम कुल प्राप्ति का अत्यंत अभिमान किया;[५४] साथ ही साथ बिना आलोचना-प्रायश्चित किये ही वह भव पूर्ण करके अनेक भव भ्रमण प्राप्त किये। उस कुलाभिमानने नीच (याचक) कुलके लिए कर्मबंध करवा दिया; जो तदनन्तर असंख्य क्षल्लुक भव और छः ब्राह्मण भवों में भुगतते हुए बयासी दिन प्रमाण कर्म शेष रह गया था, इस चरम भवमें उदयको प्राप्त हुआ। फलस्वरूप याचक कुलमें देवानंदा माताकी कुक्षिमें बयासी दिन रहना पड़ा।

नीचकर्मके भुक्तान बाद तुरंत ही प्रथम स्वर्गके सौधर्मेन्द्रका सिंहासन कंपायमान हुआ जिससे अवधिज्ञानसे प्रभुको देवानंदाजीकी कुक्षिमें ज्ञात करके तत्क्षण आनंद-प्रमोद एवं विलाससे निवृत्त होकर शक्रस्तव• किया। और अपने कर्तव्यका चिंतन करते हुए अपने हरिणीगमेषी नामक सेवक देवको गर्भ परिवर्तनका आदेश दिया। तदनुसार उस देवने क्षत्रियकुंड़ ग्राम नगरके राजवी सिद्धार्थकी पटराणी-त्रिशलादेवीकी कुक्षिमें संक्रमित किया[५५].

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(वर्तमान में भी ओस्ट्रेलियाके एक डोकटरने सफल ओपरेशन करके गर्भ-संक्रमण (परिवर्तन) करके यह प्रक्रियाकी सत्यताकी पुष्टि की है।) गर्भके प्रभाव से माता त्रिशलादेवी चौदह महास्वप्नोंका अर्धनिद्रामें दर्शन करती हैं।[५६].

पंचम दुषमकालका प्रभाव-"मेरे हिलने से माता को कष्ट न हों" ऐसे भक्ति युक्त गर्भस्थ शिशु भगवंतने अंगोपांग गोपन किये-स्थिर हो गए; लेकिन कालप्रभावके कारण सुखप्रद निमित्त किये गए कार्यभी दुःखमय अनुभूति करवाते हैं-इस न्यायसे माताको दुःख होने लगा। गर्भकी अशुभ कल्पनासे शोकाकुल और व्यग्र होकर रुदन करने लगीं, जिससे समस्त परिवार और नगरजन भी व्यथित हुए। अवधिज्ञानसे माताको शोकाकुल जानकर भगवंतने एक उंगली हिलाकर अपनी स्वस्थताका-स्फुरनका अनुभव करवाया और माता-पितादि परिवार, नगरजनों आदिको शोकमुक्त करवाया।

जन्म कल्याणक और जन्मोत्सव-इस तरह अंतिम अरिहंत माता देवानंदाकी कुक्षिमें बयासी दिन एवं माता त्रिशलाकी रत्नकुक्षिमें सार्ध छ मास पले। माता त्रिशलाके शुभ दोहद राजा सिद्धार्थने पूर्ण किये। अन्ततोगत्वा चैत्र शु.१३के दिन प्रत्येक ग्रहकी सर्वोच्च स्थिति होने पर और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें चंद्रका योग होने पर सकल जीवराशिके कल्याणकारी और सुखाह्लादप्रद परमात्माका जन्म हुआ। छप्पन दिक्कुमारिकाओंने सूतिकर्म संपन्न करके नृत्य-गानादि द्वारा आनंदोल्लास प्रदर्शित करके जन्मोत्सव मनाया।

तदनन्तर पंचरूपधारी सौधर्मेन्द्र द्वारा मेरु शिखर पर प्रभु को जन्माभिषेक निमित्त ले जाया गया। असंख्य देवों द्वारा अत्यंत विपुल जलराशिसे मस्तक पर अखंड धारासे अभिषेक किया जाने लगा तब सौधर्मेन्द्र चिंतित हो उठे-- "नवजात शिशु परमात्मा इतने जलराशिको कैसे सहेंगें ?" इस विचार तरंगको अवधिज्ञानी भगवंतने निराकृत करने हेतु चरण अंगूठे के स्पर्शमात्रसे अचल मेरु पर्वतको कंपायमान करते हुए आत्माकी अनंत शक्ति और तीर्थंकरोंके उत्तमोत्तम पुण्योदय एवं विशिष्ट प्रकारके वीर्यान्तराय कर्मक्षयोपशमसे प्राप्त उत्कृष्ट वीर्य प्रभावका परिचय करवाया।[५७] प्रातःकाल माता-पिता-परिवार-नगरजनों द्वारा बड़े ठाठसे भव्यातिभव्य रूपसे जन्मोत्सव मनाया गया। आपके पुण्य प्रभावसे परिवार एवं नगरजनोंके सुख-समृद्ध-शांति यश आदिकी वृद्धि होनेसे गुण निष्पन्न ऐसा *"वर्धमान"* नामकरण किया गया। यथा-

"करी महोत्सव सिद्धारथ भूप, नाम धारे वर्धमान"-[५८]

बालक्रीडा-वीर उपनाम प्राप्ति- बचपनमें मित्रोंके साथ क्रीड़ा करते समय भयंकर महाकाय-सर्प (भोरिंग-जो देवमाया थी) को हाथमें रस्सीकी भाँति निर्भीकतापूर्वक उठाकर दूर रख दिया और साहस एवं वीरताका परिचय करवाया। तदनन्तर खेलमें साथी (देवने) डरावना पिशाचरूप किया तबभी मुष्टि प्रहारसे देवको वश करके, वर्धमान कुमारने उस देवद्वारा *"वीर"* उपनाम प्राप्त किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माता-पिता द्वारा मोहवश ज्ञानार्जनके लिए अवधिज्ञानी भगवंतको पाठशाला ले जाया गया जो अयुक्त था। अतएव सौधर्मेन्द्रने ब्राह्मणका रूप धरकर अध्यापकके मनकी शंकाओंकी पृच्छा की, जिनका अवधिज्ञानवंत वीर प्रभुने प्रत्युत्तर रूपसे जो शब्द-पारायण-शब्दानुशासन प्रकट किया वही *"जैनेन्द्र व्याकरण"* के नामसे प्रसिद्ध हुआ।[५९]

यौवनवय सम्प्राप्त परमात्मा-सुवर्णवर्ण, सात हाथ (३२५ से.मी.) अवगाहना, अत्यंत सुंदर-सौष्ठवयुक्त-तेजस्वी तनसे लाभान्वित होनेपर भी अनासक्त एवं निर्मोही भावसे, केवल कर्मोदयके उदय और माता-पिताके अत्याग्रहवश समरवीर भूपतिकी 'यशोदा' नामक कन्यासे पाणिग्रहण करते हैं। भोग-विलास विलसते हुए, परिणाम स्वरूप 'प्रियदर्शना' नामक पुत्रीरत्न की प्राप्ती होती है। माता-पिताके अत्यधिक वात्सल्य-स्नेहवश आपने वैराग्यभाव गोपनीय रखा।

दीक्षाग्रहण- वीतराग श्री वीर प्रभुने अट्ठाईस सालकी आयुमें-मात-पिताके निधन बाद, और ज्येष्ठ बंधु नंदीवर्धनके निर्बन्धसे भाव-यत्यालंकृत, नित्य ब्रह्मचर्य धारीक, विशुद्ध ध्यान तत्पर, कायोत्सर्ग• लीन, प्रासुक एवं एषनीय अन्नजलसे प्राणवृत्ति करते हुए एक वर्ष व्यतीत किया तब नव लोकान्तिक देवोंकी तीर्थ प्रवर्तमान करनेकी विनतीको लक्ष्यकर, तीर्थंकरोंके आचार रूप वार्षिक दान देकर तीस वर्षकी पूर्ण युवावस्थामें दीक्षाग्रहण हेतु *"चन्द्रप्रभा"* नामक सुशोभित शिबिकारूढ़ होकर नंदिवर्धन नृपादि जन समुदाय एवं सौधर्मेन्द्रादि देवगण द्वारा कराये गए निष्क्रमणोत्सव युक्त ज्ञातखंड-उद्यानमें अशोकवृक्ष नीचे सर्व वस्त्रालंकार त्यागकर और देव-प्रदत्त देव-दूष्य वस्त्र धारण कर, द्रव्यसे पंचमुष्टि केशलुंचन कर, और भावसे राग-द्वेषादिसे विमुक्त-मुंड बनकर मृ.कृ.१०को हस्तोत्तरा नक्षत्रमें चंद्रका योग प्राप्त होनेपर दो उपवासके तप युक्त *सर्वविरति-चारित्र* एकाकीने ग्रहण किया। तत्क्षण चतुर्थ *मनः पर्यवज्ञान* प्रगट हुआ। (यह ज्ञान सर्व विरतिधरको ही होता है)[६०]

*कैवल्य लाभ-*परमयोगी, अत्यंत वाचंयम, तीन योग नियंत्रक, निरापवाद-उत्कट-तीव्र चारित्रधारी, निर्निमेष आत्म-ध्यान सेवी, बाईस परिषह और (देव-दानव-मानव-तिर्यंचकृत) भयंकर उसर्गोंको[६१] सहते हुए, उत्कृष्ट अहिंसा-संयम-तप रूप धर्म साधक, असंग होकर, धर्मध्यान-शुक्लध्यान• धारारूढ सार्ध बारह वर्षमें ३४९ दिन ही पारणा (एकासन•) करके आहार ग्रहण करनेवाले, शेष दिन निर्जल उपवासधारी; उग्र ध्यान रूप अग्नि कसौटी पर आत्माको कसके कर्म निर्जराके सफल यज्ञकी उपासना करते करते पृथ्वीतल पर विचरते हुए, ऋजुवालुका नदी-तटके, जृंभक गाँव बाहर, श्यामाक नामक गृहस्थके खेतमें 'अस्पष्ट' नामक व्यंतरके चैत्यके पास शाल वृक्षके नीचे, दो उपवास युक्त उत्कटिक आसनसे आतापना लेते हुए, शुक्लध्यान मग्न-क्षपक श्रेणि• पर आरोहित-चार घनघातीकर्म क्षय करके वै.शु. दसमीको शामके चतुर्थ प्रहरमें चंद्रका हस्तोत्तरा नक्षत्रमें योग होने पर लोकालोक प्रकाशक, त्रिकालवित्, सकल संशय विनाशक वरकेवलज्ञान-वरकेवलदर्शनसे लाभान्वित हुए। सर्व जीवोंको हर्षोल्लास हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और देव-देवियों द्वारा बड़े ठाठसे कैवल्य-महोत्सव मनाया गया।

अभावित पर्षदा और तीर्थ स्थापना-देवोने रजत-सुवर्ण-रत्नमय तीन प्राकार-युक्त, रत्नमय सिंहासनालंकृत समवसरणकी रचना की। विरति परिणामके अभावज्ञाता-सर्वज्ञ-देवाधिदेवने तीर्थंकर नामकर्म-भुक्ति के लक्ष्यसे और आचार निर्वाहके कारण देशना प्रवाह बहाया जिससे यह आश्चर्य घटित हुआ कि सर्व तीर्थंकरकी प्रथम देशना सुनते ही भव्य नर-नारी भवनिर्वेद प्राप्त होनेसे सर्वविरति या देशविरति यथाशकित ग्रहण करते हैं और तीर्थपति तीर्थकी स्थापना करते हैं; जबकि चरम तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामीकी आद्य देशनामें तथाभावयोग्य नर-नारीके अभावसे अथवा अगम्यकारणवश किसीको विरति परिणाम नहीं हुए, न किसीने विरतिधर्म अंगीकार किया, अतएव तीर्थ स्थापना हो न सकी अर्थात् प्रथम देशना निष्फल हुइ। [६३] देशना समाप्ति पश्चात् श्री वीर प्रभुने लाभालाभके कारण विहार कर अपापापुरीमें पदार्पण किया। देव विरचित समवसरणमें देशना प्रारंभ हुई। उस समय अपापानगरीके ब्राह्मण सोमिल द्वारा आयोजित यज्ञमें आमंत्रित, ४४०० शिष्य परिवारवाले विचक्षण-विद्वान ग्यारह द्विज, प्रभुकी सर्वज्ञतामें शंकित होते हुए वाद करनेके लिए उद्यत हुए। भ. महावीरने उनकी प्रत्येककी शंकाओंका बिना पूछे ही सत्योक्ति युक्त वेदवाक्योंके अवलंबनसे ही समाधान करने पर इन्द्रभूति आदि ग्यारह द्विजोंने सर्वज्ञताके झूठे गर्वको त्यागकर भगवंतका शिष्यत्व अंगीकार किया। परमात्मा वीरने "त्रिपदी" प्रदान की, जिसके अवलंबनसे द्वादशांगी की रचना की गई। अतएव जगद्गुरु भ. महावीरने '*गणधरपदप्रदान*' रूप वासनिक्षेप किया, और द्रव्य-गुण पर्यायसे तीर्थकी अनुज्ञा प्रदान की। चंदनबालादि अनेक कन्या एवं नारीवृंद को दीक्षा प्रदान कर साध्वीपदका वासनिक्षेप किया। हज़ारों नरनारियोंने देशविरति (श्रावक) धर्म अंगीकृत करके आत्मकल्याण पथ पर पदार्पण किया। इस तरह चतुर्विध संघ स्थापित हुआ।

केवलीपर्याय--विचरण कालमें श्रेणिक, कुणिक, अभयकुमार, आर्द्रकुमार, मेघकुमार, नंदिषेण नृपति चेटक, और उसकी सुज्येष्ठा-चिल्लणादि सात बेटियाँ, सुलसा, अंबड़ परिव्राजक, ऋषभदत्त-देवानंदा, प्रियदर्शना-जमालि, आनंद-शिवा, कामदेव-भद्रा, चुलनीपिता-श्यामा, सुरादेव-धन्या, चुल्लशतक-बहुला, कुंडकोणिक-पुष्पा, शब्दालपुत्र-अग्निमित्रा, महाशतक-रेवती, नंदिनीपिता-अश्विनी, लांतकपिता-फाल्गुनी, मृगावती, प्रसन्नचंद्र, दशार्णभद्र, शालिभद्र साल-महासाल, धन्य, रोहिणेय चोर, खूनी दृढ़प्रहारी, अर्जुनमाली, सुदर्शन श्रेष्ठि, उदायन राजर्षि, आदि अनेक भव्यात्माओंने आपकी शरण ग्रहण करके, आपके चरण चिह्नों पर चलकर आत्मकल्याण--अपवर्ग या स्वर्गादिकी उत्तमोत्म गतियोंके लाभकी प्राप्ति की है।

इस अवसर्पिणी कालमें गर्भहरण, चमरेन्द्रका उत्पादादि दस आश्चर्यकारी• प्रसंग प्राप्त होते है, जो असंख्य कालचक्र व्यतीत होने पर प्रादुर्भूत होते हैं। सामान्यतया केवली पर्यायावस्थामें 'अशाता वेदनीय कर्म•का' उदय नहीं होता है, लेकिन आपके कैवल्य-प्राप्ति पश्चात् आपसे ही प्राप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेजोलेश्या सिद्धिका, आपके छद्मस्थकालमें अपने आप शिष्यत्व अंगीकार करलेनेवाले 'गोशाला' ने, आप पर ही क्रोधमें आकर प्रयोग किया, जिससे आपको छ मास पर्यंत खून मिश्रित शौच और पित्तज्वरकी पीडा हुई। एक आश्चर्यकारी घटना और भी घटित हुई। स्वर्गलोकके देव अपने मूल रूपमें कभी तिर्च्छालोकमें नहीं आते, लेकिन, कौशाम्बी नगरीकी पर्षदामें सूर्य-चंद्र-मूल (शाश्वत) विमानमें आये और धर्मदेशना श्रवण की।

प्रभु वीरके शासनमें ही गोशालक, जमालि आदि निह्नव•-प्रत्यनीक• हुए, जिन्होंने सर्वज्ञ (वीतराग)-वाणी विरुद्ध मनस्वी-मिथ्या-काल्पनिक धर्म प्ररूपणा-प्रचार-प्रसार अपनी कुबुद्धिकी मिथ्या धारणा पर निर्भर होकर, मिथ्यात्व कर्मके उदयसे किया।

निर्वाणकाल-इस प्रकार तीस साल गृहवास सार्ध बारह वर्ष छद्मस्थावस्था-साधनाकाल ओर सार्ध उनतीस वर्ष केवली पर्याय-कुल बहत्तर सालकी आयु संपन्न करके सर्व तीर्थंकर सदृश बादर और सूक्ष्म तीनों योग-निरोध ओर शैलेशीकरण करके, 'अव्यभिचारी समुच्छिन्न किया• नामक शुकल ध्यानके चतुर्थ पाद पर स्थित (सर्व कर्मक्षयसे) यथात्मस्वभाव, ऋजुगतिसे उर्ध्वगमन करके कार्तिक वदि अमावास्याकी अर्धरात्री व्यतीत होने पर सर्वार्थसिद्ध मुहूर्त में चंद्रका स्वाति नक्षत्रमें योग प्राप्त होते ही निर्जल दो उपवास युक्त, पर्यंकासन स्थित, पावापुरीमें हस्तिपाल राजनकी सभामें अठारह देशके राजाओं सहित बारह पर्षदा मध्य अखंड़ सोलह प्रहर (४८ घंटे) तक निरन्तर देशना प्रवाह प्रवाहित करते करते चरम तीर्थपति श्री महावीर स्वामीने परम पद की प्राप्ति की-सिद्धशिला पर सादि अनंत स्थिति प्राप्त की। [६४]

भगवान महावीरका शासन (सिद्धान्त एवं व्यवहारका समन्वय)- भगवान महावीरने आचारमें अहिंसा (उपलक्षणसे पंचमहाव्रत) ओर विचारमें अनेकान्त, स्याद्वाद और सापेक्षवादकी अनुपम एवं अद्वितीय भेंट विश्वको दी है। विश्व वत्सल परमात्मा प्ररूपित यह अनूठी धर्मदेनको आपके अनुयायियों द्वारा ज्ञान-ध्यान, तप,-जप, साधना-उपासना, निःस्पृहता-परोपकारिता-सरलता, तर्क-प्राविण्यादि द्वारा ज्ञात करके, अनुप्रेक्षित करके; अनुभूत करके; और अमारि प्रवर्तन, अनुकंपादि क्रिया स्वरूप एवं त्याग-वैराव्यके उपदेश स्वरूप अन्यको ज्ञात, अनुप्रेक्षित, अनुभूत करवाके यथोचित-यथाशक्ति सातक्षेत्रकी-जो रत्नत्रयीका प्रतिनिधित्व करते हैं-पुष्टि की। परिणामतः जैनधर्म अद्यापि पर्यंत संपूर्ण-अखंड़-अक्षुण्ण-अपरिवर्तित यथास्थित कर्मनिर्जराके हेतुभूत सिद्ध हुआ है ।

जिन शासनके स्वर्णाक्षरी पृष्ठों पर दृष्टि स्थिर करने पर दृष्टिपथमें उतर आती हैं-अपनी दिव्य प्रतिभासे पत्थरको सुवर्णमय बनानेवाले *पूर्वाचार्यों*; न्यायशास्त्रके उत्तमोत्तम एवं अनन्य ग्रन्थों (द्वादशार नयचक्रादि जैसे) के रचयिता *सूक्ष्म बुद्धिमान तार्किकाचार्यों*; एक श्लोकके अष्टलक्ष विभिन्न अर्थ होते हों ऐसे *अष्टलक्षी* और जिनमें एक श्लोकके सात अर्थ करके सात तीर्थंकरोंके जीवन चरित्रका निरूपण होता हों ऐसे *सप्तसंधान एवं द्वयाश्रय काव्योंके रचयिता श्रेष्ठ कवियों*; वादमें वाक्यका प्रारम्भ स्वरसे न हों-ऐसी विचित्र शर्तोंके साथ वाद करनेवाले असाधारण बुद्धि वैभव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युक्त *अजेय वादियों*, वीणावादन करते करते तीर्थंकरनामोपार्जन (पुण्योपार्जन) करनेवाले *कलाकार उपासकों* कामदेवके गृहमें (वेश्याके घर) वास करके उसके (कामके) अस्तित्वको ही धराशायी करनेवाले *आदर्श-कामविजेता ब्रह्मचारियों*; नृत्य करते या नाटकके पात्राभिनय करते करते केवलज्ञान संप्राप्त करनेवाले *कलाविज्ञों*; भोजन करते, शृंगार करते या लग्न मंडपमें विवाह करते करते केलज्ञान हाँसिल करनेवाले *निर्मोहियों*; पलनेमें झूलते झूलते ग्यारह अंगका अभ्यास करनेवाले *अद्‌भूत प्रज्ञावान बालकों* की पंक्तियाँ।[६५].

इनके द्वारा जिनेश्वरोपदिष्ट विविध प्रकारसे धर्मकी आराधना प्रवाहित हुई-यथा-

एकविध धर्म- स्यात् से अस्यात् (आंशिक मत्यादि ज्ञानसे केवलज्ञान-केवलदर्शनरूप)की आराधना और अनेकान्तसे एकान्तकी उपासना, अर्थात् वीतराग भावसे एकमात्र कर्मक्षयके लक्ष्यरूप एकान्तिक मोक्षमार्गकी आराधना-साधना।

द्विविधधर्म- (१) श्रुतधर्म-(२) चारित्र धर्म (i) श्रुतधर्म--श्रुतधर्ममें रत्नत्रयीके दो अंग समाविष्ट होते है। सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान। मनुष्यादि चार गति, धर्मास्तिकायादि षट्‌द्रव्य, एकेन्द्रियादि षट्‌काय, कृष्णादि षट् लेश्या, वैशेषिकादि षट् दर्शन, जीवाजीवादि नवतत्त्व, अरिहंतादि नवपद, चौदह गुण स्थानक, असंख्य योजन प्रमाण चौदह राजलोक एवं अनंत अलोकाकाशका स्वरूप, आत्मविज्ञान एवं कर्मविज्ञान, जीव विज्ञान एवं पुद्‌गलादि अजीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान और शरीर विज्ञान आयुर्वेद एवं ज्योतिष, इतिहास-भूगोल-गणित, राजनीति एवं समाजनीति आदि अनेकानेक द्रव्यानुयोग और गणितानुयोगको सरल व स्पष्ट रूपेण समझानेवाला बोधप्रद कथानुयोगका निरूपण-जिसे प्रत्यक्ष एवं परोक्षादि प्रमाण; 'स्यात्' युक्त सप्तभंगी-स्याद्वाद, सप्तनय भंग समन्वित अनेकान्तवाद, नामादि चार निक्षेपासे स्पष्ट किया गया है। इसे सम्यक् रूपसे ज्ञात करना यह सम्यक् ज्ञान और यही ज्ञात किये ज्ञानको संपूर्णतया सम्यक् श्रद्धासे हृदयंगम करना, आत्मसात करना-निःशंक सद्दहणा करना यह है सम्यक् दर्शन ।

(ii) चारित्रधर्म-चारित्र धर्मके दो भेद है-सर्वविरति (साधुधर्म), देशविरति (श्रावक धर्म)। सत्रह भेदसे संयम; दशविध यतिधर्म; (केवल उदर पूर्त्यार्थ-भ्रमर रसग्रहण-वृत्तिसदृश) दोष रहित आहार गवेषणा; नवकल्पी विहार; केशलुंचन; धर्मोपदेश प्रदान; प्रतिदिन पाँच प्रहर (१५ घटें) आत्मबोधकारक, कर्म निर्जरा प्रधान स्वाध्याय; स्वावलंबन; सहनशीलता; स्वात्माभिमुखताके सहारे स्वपरोपकारार्थ एवं अनुभवज्ञान-विभिन्न भाषाज्ञानादि उपार्जनार्थ तीर्थाटन करते हुए क्षेत्र-स्थान या व्यक्तिके प्रति ममत्व भावसे पर होकर आत्मगंगाके निर्मलत्व हेतु बहते पानी सदृश पैदल विहार करना; विशिष्ट दिनचर्या; मृत्युभी महोत्सवके समान अर्थात् दैहिक अवसानको 'जीर्ण वस्त्र त्याग' सदृश अथवा 'नूतन वस्त्र धरने' समान आनंद-मंगल अवसर माना जाय-इन लक्षणों युक्त-पापसे पूर्णतया निर्वृत्ति रूप साधु धर्म है । पाप प्रवृत्तिसे आंशिक विरमण रूप आत्म कल्याणकारी श्रावकधर्म-देशविरति धर्म होता है। श्रावक धर्मके दो भेद-**A.** श्रुतधर्ममें संपूर्ण श्रद्धावान् लेकिन अविरति कर्मोदय(चारित्र मोहनीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर्मोदयसे) प्रत्याख्यानादि नहीं कर सकते लेकिन आठ प्रकारके दर्शनाचारोंका संपूर्ण निरतिचार पालन करनेवाले **अविरति सम्यक् दृष्टि श्रावक** और (ii) जधन्य-मध्यम-उत्तम-तीन भेदवाले **देशविरति श्रावक**। जधन्य---ऐसे श्रावकोंमें अविरति सम्यक् दृष्टि श्रावकके गुण विद्यमान होते ही है, इसके अतिरिक्त स्थूल प्राणातिपातसे विरमण, अभक्ष्य भक्षणका त्याग और नवकारशी आदि प्रत्याख्यान करनेवाले श्रावक आते है। मध्यम--इनसे अधिक विकसित गुणोंके धारक, धर्मयोग्य षट्कर्म--- 'देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दानं'; छः आवश्यक--- 'सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान'; आदि नित्य करें और श्रावक करणीके प्राण आधारस्तंभ बारह व्रत- 'पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत'--जिन्होंने अंगीकार किये हैं ऐसे श्रावक मध्यम कहलाते हैं और उत्तम---इनसे एक कदम आगे-सचित आहार त्यागी, एकबार भोजनकर्ता (एकासन कर्ता), संपूर्ण-त्रिविध ब्रह्मचर्य पालक, और श्रावक योग्य कर्तव्य अहर्निश निष्ठापूर्वक पालन करनेवाले श्रावक उत्तम कहलाते हैं।

त्रिविधधर्म- सम्यक् रत्नत्रयी (ज्ञान-दर्शन-चारित्र)की आराधना रूप; अथवा नवपद समाहित अरिहंत-सिद्ध रूप सुदेव, आचर्योपाध्यायसाधु रूप सुगुरु, और सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपरूप सुधर्म--- तत्वत्रयीकी साधना स्वरूप अथवा पूर्वाचार्य निर्दिष्ट-अहिंसा, संयम, तपरूप मंगल अनुष्ठान रूप ये त्रिविध त्रिविध आराधना-साधना-उपासना।

चतुर्विध धर्म- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावाश्रित-दान, शील, तप, भाव रूप आराधना अथवा एकांत कर्मनिर्जराकारक धर्म-अर्थ-काम- मोक्षरूप आराधना धर्म। क्रोधादि चार कषाय के निग्रह करने हेतु-चार संज्ञा के त्यागपूर्वक चार प्रकारके धर्मध्यानकी साधनारूप धर्म।

पंचविध- अहिंसा-अमृषा (अनृत त्याग)अस्तेय-अब्रह्म त्याग-अपरिग्रह रूप पाँच व्रतोंकी आराधना अथवा परम और चरम इष्ट फल प्रदाता-अरिहंत, सिद्ध, सूरि, पाठक, साधु पद स्थित पंच परमेष्ठि भगवंतकी आराधना; अथवा ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार रूप पंचाचारकी साधना; अथवा ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण, पारिष्ठापनिका-समितिकी उपासना रूप पालना; आदि अनेक आराधना-साधना-उपासनाकी प्ररूपणा की है।

इस प्रकार विविध आराधना-साधना करके, योग-उपयोग युक्त, अप्रमत्त भावसे अनंतानंत कर्मक्षयकी हेतुभूत अनुपमेय आराधनाके बल पर आस्थाके आगार ऐसे अणगार, चौदह गुणस्थानक-मिथ्यादृष्टि, सास्वादन, सम्यक-मिथ्या दृष्टि (मिश्र), अविरति सम्यक् दृष्टि, देशविरति, प्रमत्त सर्वविरति, अप्रमत्त सर्वविरति, अपूर्वकरण (निर्वृत्ति बादर), अनिर्वृत्ति बादर, सूक्ष्म संपराय, उपशांत मोह, क्षीण कषाय, सयोग केवली, अयोग केवली---पर क्रमशः आरोहण करते हुए, आत्मलक्षी विकास प्राप्त करते हुए अंततोगत्वा यह जीवात्मा सर्व कर्म रहितावस्था-मोक्षानंदका आह्लाद प्राप्त करता है-सिद्धशिला पर सिद्धिपद प्राप्तिका अधिकारी बनता है, जो संसारमें आत्माकी चरम एवं परम अवस्था है। अथवा कहो कि आत्माका सत्य, शिवंकर, सुंदर स्वरूप है-उत्तमोत्तम प्राप्ति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह तो हुआ पारलौकिक-आध्यात्मिक उन्नतिके साधना-पथका आलेखन। लेकिन, वीतराग श्री महावीर केवल आदर्शवादी ही नहीं थे; उनके सर्वांगिण केवलज्ञानमें व्यवहारभी तादृश था। यही कारण है कि उनके उद्‌बोधनोंमें निश्चयके साथ व्यवहारका, परलोकके साथ इहलोकका, निःकर्मा आत्म स्वरूपके साथ सकर्मा आत्माके रूपका, निजात्माकी पूर्णानंद एवं चिदानंद मस्तीके साथ पुद्‌गलानंदके स्वरूपका, अध्यात्मके साथ भौतिकता-भोग विलासका यथास्थित अवलोकित निरूपण-चक्षुगोचर होता है।

सिद्धान्त संग्रह- भ. महावीरकी अर्थयुक्त गंगोत्रीके अमृतमय वाक्‌प्रवाहको गणधर भगवंतोंने सूत्र रूप बांधोंमें संग्रहित किया और परमात्माकी अनुज्ञा प्राप्त, वही गंगोत्री शुद्ध और सहेतुक बन गई-जो कंठाग्र (मुखपाठ) पठन-पाठन द्वारा अवधारित होती रही। आगे चलकर नवम-दसम शताब्दि पश्चात् लिपिबद्ध हुई एवं पंचांगी* स्वरूप पाकर मानो अत्यंत जाज्वल्यमान-तेजस्वी विद्युत्किरण सदृश स्पष्ट विस्तृत और बाल अभ्यासीके अभ्यास योग्य बनी। तदनंतर पूर्वधर श्री आर्यरक्षित सूरिजी म.के पृथक् अनुयोग व्यवस्थापन द्वारा विशिष्ट स्पष्टीकरण और सरलता पा गई। जिसमें जैन-जैनेतरके लिए भूत-भावि-वर्तमान, द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, आराधना-विराधना का स्वरूप, आत्माके जीवसे शीव तक चौदह गुणस्थानक क्रमारोहणकी समुचित व्यवस्थाका एवं अन्य विभिन्न प्रकारके अनेक विषयोंका पर्याप्त पथप्रदर्शन प्राप्त होता है।

जिन शासनमें गुणी (व्यक्ति) पूजाको स्थान नहीं है क्योंकि व्यक्ति विशेषकी पूजासे दृष्टिराग आविर्भूत होता है-जो कर्मबंधका मुख्य कारण है;जबकि गुणपूजासे गुणानुरागिता प्रगटती है। प्रत्युत्पन्न गुणानुरागसे वीतरागता उद्‌भवित होती है और कर्म-निर्जराका भी साधन बनती है जो अंतिम साध्य-मोक्ष प्रप्तिकी सहायक है। ऐसे ही सर्वज्ञ-केवलज्ञान-गुणधारी, अनंत पदार्थ विषयोंका संपूर्ण-सर्वांग-समीचीन-सार्थक उद्‌घाटन करते हैं। उन्हीं उद्‌घाटित ज्ञानकी, उनके और अनुवर्ती आचार्यादि-मुनि भगवंतों द्वारा प्ररूपणा की जाती है।

जैन सिद्धान्तों एवं क्रियाधर्मका विहंगावलोकन करानेवाले उपरोक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि मर्मग्राही और तलस्पर्शी ज्ञानार्जन करके परहिताय प्रदान करनेवाले एवं पशु-पक्षी या सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव-जंतु आदि जीव मात्रकी रक्षाके लिए प्राण न्योच्छावर करनेवाले; मरणान्त कष्ट दाताको भी कर्म निर्जराके परमोपकारी साथी माननेवाले; अलौकिक प्रज्ञा-प्रतिभाके स्वामी फिरभी सहज निरभिमान स्वभावी; सर्वदा-सर्वत्र-सर्वको सुलभ, सुगम और सानुकूल जैनाचार्योंकी समस्त जीवन वृत्ति-प्रवृत्ति सकल श्री जैन संघ और विशाल जन समुदाय के लिए उपकारी एवं सर्वजन-सर्वजीव हितकारी ही होती है। उनकी जीवन शैली ही अत्यंत प्रभात्शाली होती है। उनके कदम-कदम पर प्रत्येक आचार-विचारमें रत्नत्रयीका ही प्राधान्य होता है। सत्य ज्ञानार्जन पश्चात् उसका स्वीकार और असत्यका प्रतीकार करनेमें नित्य अग्रसर होनेवाले ये महामुनि महान क्रान्तिकारी सदृश अपने बुलंद व्यक्तित्व एवं प्रभाविक चरित्रसे ही जनसमूहका सफल और सक्षम नेतृत्व कर सकते हैं और स्व-पर आत्म कल्याण कर सकते हैं। उनको अलग रूपसे व्यवहार प्ररूपणाकी आवश्यकता ही नहीं होती। उनका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचरण ही उपदेश होता है। जैसे महात्माजीने गुड़ न खानेका आचरण करके बालकको दिखाया तब उस बालकने भी आप ही गुड़ खाना छोड़ दिया। वैसे ही उन महापुरुषोंका आचरण ही भक्तगण पर प्रभाव छोड़ जाता है और जन समुदाय उनका अनुसरण करने लग जाता हैं।

सिद्धान्त एवं व्यवहारका समन्वयः- भगवान श्री महावीर स्वामीके सिद्धान्तों की उपयोगिता सर्वदेशीय, सर्वदा, समान रूपसे अनुभव होती है, क्योंकि वे सिद्धान्त-शाश्वत सत्यता समेटे हुए हैं-सर्वज्ञके मुखारविंदकी सुवास सर्वके लिए समान सुखदायी होती है। तत्कालीन समाजको वे सिद्धान्त जितने उपयोगी थे और हो सके, शायद इससे कईं गुणा प्रबलतम आवश्यकता साम्प्रतकालमें महसूस हो रही है। -यथा

संसारभरके जीवोंको मरण भयसे मुक्त करा सकता है 'अहिंसा'का अमोघ अस्त्र;

विश्वासका वातावरण वितरित हो सकता है 'अनृत त्याग' के एलान से;

समस्त दुनिया की 'संपत्ति-सुरक्षा'की चिंताकी चिनगारी से लगी अशांतिकी आग बुझ सकती है भ. महावीर के 'अस्तेय'के आदेश पालनसे;

मानवोंके तन-मनके अमर्याद स्वच्छंदाचार और व्यभिचारको अंकुशित कर सकता है अब्रह्मका संपूर्ण त्याग या स्वदारा (स्वपत्नी) संतोषव्रतका अंगीकरण;

अखिल विश्वकी अपरिमित आवश्यकताओंको परिमित बनाकर, लोभ-लालचसे मुक्त एवं धनवानोंको दीन-दुःखी के बेली बननेका सौभाग्य सम्पन्न कराता है-अपरिग्रह का सिद्धान्त या परिग्रहके परिमाण की प्ररूपणा।

अग्रोल्लिखित अनुसार मानसिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तनावों से आराम प्रदाता है अनेकान्तवाद-स्याद्वाद-सापेक्षवाद का व्यावहारिक उपयोग-जिससे मिल सकता है अनेक क्लिष्ट उलझनोंका यथाशीघ्र-सुखद-संतोषप्रद समाधान और विश्व शान्ति का रामबाण औषध।

इस तरह सर्वांग-सम्पूर्ण-विश्व धर्म के सिद्धान्तोंको जीवन मूल्य बनाकर आचरण करकें कल्याण साधना हों यही जैन धर्मकी आत्मा की आवाज़ है।

अब ऐसी कल्याण साधना करनेवाले महानुभावोंका परिचय प्राप्त करें।

भगवान महावीर स्वामीकी शिष्य पट्टावली (परम्परा):-[६६]

वीतराग-देवाधिदेव श्री महावीर स्वामीके केवलज्ञान प्राप्ति पश्चात् सर्वज्ञ भगवंतने चतुर्विध श्री संघ की स्थापना की। 'त्रिपदी'के प्राप्त होने पर बीजसे वटवृक्षकी भाँति बीज़ बुद्धिधारी उनके ग्यारह मुख्य शिष्य-गणधर-और अन्य चौदह हज़ार साधुओंके समुदायको भिन्न भिन्न नव विभाग-गण (एक ही गुरुके पास समान वाचना-अभ्यास-प्राप्त करनेवाला शिष्य समूह) में विभक्त किया गया। अन्ततोगत्वा भगवान महावीर स्वामीके जीवनकालमें ही, इन्द्रभूति गौतम और सुधर्मास्वामीको छोड़कर शेष नव गणधर, सर्व कर्मक्षय करके अजर, अमर, अक्षय ऐसे सिद्धपद प्राप्त हुए-मोक्षगामी बने। इसलिए उन सबसे वाचना (शिक्षण) प्राप्त करनेवाले सर्व मुनियोंकी जिम्मेवारी पंचम गणधर श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुधर्मा स्वामीके पास आयी जो उन्होंने केवलज्ञान प्राप्ति तक निभायी। केवली पर्यायमें जम्बूस्वामीको अपना उत्तराधिकारी बनाकर आयुष्य पूर्ण होते ही मोक्ष पाया। उन्हींकी परम्परा अद्यापि अक्षुण्ण रूपसे चली आ रही है।

श्री सुधर्मा स्वामी---वैशाली के कोल्लाग सन्निवेश के अग्निवैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण पिता धम्मिल और माता भद्दिलाके घर वीर सं.-पूर्व ८०में उनका जन्म हुआ। अप्रतिम मेधा और पारदर्शी प्रज्ञा के स्वामी, विनम्र और विनयी सत्य शोधकने परमात्माकी वाणीमें सत्यका चमकार पाया और तीस वर्षकी आयुमें शिष्यत्व स्वीकार किया-भगवंतके अंतेवासी बनकर रहे। बानवे वर्षकी आयुमें केवलज्ञान प्राप्त करके वी.सं. २०में मोक्ष प्राप्त किया। बीज बुद्धिके स्वामी सुधर्माजीने दीक्षोपरान्त द्वादशांगी और चौदह पूर्वकी रचना करके गणधर पद प्राप्त किया था एवं अपने आयुष्यकी परिसमाप्ति पूर्वही जम्बूस्वामीको उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था।

श्री जम्बू स्वामी--- राजगृहीके काश्यप गोत्रीय वैश्य कुलवाले नगर श्रेष्ठि ऋषभदत्त और धारिणीके अपत्य तेजस्वी रूप सम्पन्न-चरम केवली जम्बूस्वामीका जन्म वी.सं पूर्व १६में हुआ। सुधर्मा स्वामीसे प्रतिबोधित-ब्रह्मचर्य व्रतधारी जम्बूस्वामीने माता-पिताके अत्याग्रह और प्रसन्नताके कारण आठ श्रेष्ठि कन्याओंसे शादी करके प्रथम रात्रिमें ही वैराग्यमयी गिरासे उनको प्रतिबोधित करके आठों पत्नी, उनके माता-पिता और ५०० चोरके स्वामी प्रभवादिके साथ---प२६-के साथ चारित्र ग्रहण किया। आगमाभ्यास-पूर्वाभ्यास करके-उत्कृष्ट आराधनासे घातीकर्म क्षय करके चरम केवली बने और ८० वर्षकी आयु पूर्ण करके वी.सं. ६४में निर्वाणपदको प्राप्त हुए। चरमनिर्वाणी बने।

प्रभव स्वामी--प्रथम श्रुतकेवली-[६१] ५०० चोरोंके अधिपति कात्यायन गोत्रीय-क्षत्रिय कुलीन विंध्यनरेशके पुत्र आर्य प्रभव, जम्बूस्वामीसे प्रतिबोधित होकर तीस सालकी आयुमें श्री जम्बूके साथ ही दीक्षित हुए वीर सं. १, और विद्याध्ययन करके प्रथम श्रुतकेवली बने। उन्होंने जम्बूस्वामीके निर्वाण पश्चात् वी.सं. ६४में आचार्यपदका उत्तरदायित्व स्वीकार किया और १०५ वर्षकी आयु पूर्ण करके वी.सं. ७५में शय्यंभव सूरि महाराजको पट्टका उत्तरदायित्व सौंपकर स्वर्गवासी बने।

आर्य शय्यंभव सूरि--अहंकारी, प्रकांड-पंड़ित श्री शय्यंभवका जन्म राजगृहीके वत्स गोत्रीय ब्राह्मण कुलमें हुआ-वी.सं.३६। यज्ञ करते समय जैन साधुसे प्रतिबोधित होने पर प्रभव स्वामीसे सत्यज्ञान प्राप्त होते ही जैनत्वका निर्भीकतासे स्वीकार कर मनकपिता वी.सं. ६४में जैन मुनि बने और चौदह पूर्वी-श्रुतकेवली होकर वी.सं. ७५में आचार्यपद पाया। ६२ वर्षकी आयु पूर्ण करके वी.सं.९८में स्वर्गवासी हुए। अल्पायुष्क पुत्र मनकको चारित्र प्रदान करके श्रुतसागरको 'दस वैकालिक' गागरमें समाविष्ट करके सुंदर आराधना करवायी थी। इन्होंने अनेक ब्राह्मणोंको आध्यात्मिकताका सम्यक् स्वरूप समझाकर जैनानुकूल बनाकर जिन शासनकी महती प्रभावना की।

आर्य यशोभद्र सूरि--तुंगीकायन गोत्रीय कर्मकांडी ब्राह्मण कुलमें यशोभद्रजीका जन्म वी. सं. ६२में हुआ। आ. शय्यंभव सूरिजीकी प्रेरक पियूषवाणीसे प्रतिबोधित होकर वी.सं.८४में दीक्षा अंगीकार की। श्रुताभ्यासानन्तर चौदह पूर्वी होकर वी.सं.९८में आचार्यपद प्राप्त किया। अपने गुरुकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाँति इन्होंने भी ब्राह्मणोंको अध्यात्मोन्मुख बनाकर याज्ञिकी हिंसासे मुक्त किया, जिससे यज्ञमें हिंसाका स्थान अहिंसाने लिया। आर्य संभूति और आर्य भद्रबाहु स्वामीको शासनकी बागडौर सौंपकर ८६ सालकी आयुमें वी.सं.१४८में ५० वर्ष तक युग प्रधानपद धारी प्रभावक आचार्य श्री कालधर्मको प्राप्त हुए।

आर्य संभूति विजयजी--माढ़र गोत्रीय ब्राह्मण कुलमें वी.सं. ६६में जन्मे और आचार्य यशोभद्रजीके उपदशसे जैनत्व वासित परम वैराग्यसे वी.सं. १०८में दीक्षा ग्रहण की। पूर्वागमोंका अध्ययन करके वी.सं. १४८में आचार्य पद प्राप्त किया। उनकी निश्रामें श्रुत सम्पन्न गुरुभाई श्री भद्रबाहु स्वामी, कामविजेता श्री स्थुलभद्र, घोर अभिग्रहधारी श्रेष्ठ मुनि मंड़ल एवं प्राज्ञ-प्रतिभा सम्पन्न यक्षादि साध्वियाँ आदि बारह प्रमुख शिष्य सह विशाल परिवार था। यक्षा साध्वीजी म.को श्री सिमंधर स्वामीसे चार चूलिकायें [६२] प्राप्त हुईं थी। ४२ वर्षकी आयुमें दीक्षा और बयासी वर्षकी आयुमें युगप्रधान बनें। नब्बे वर्ष की आयु पालकर वी.सं. १५६में स्वर्गवासी हुए।

भद्रबाहु स्वामी---प्राचीन गोत्रीय-विशिष्ट महाप्राण ध्यानके[६३] ध्याता-महासत्त्ववान् श्री भद्रबाहु स्वामीका जन्म वी.सं. ९४में हुआ और दीक्षा वी.सं. १३९में लेकर, श्रुतकेवली बनकर, वी.सं १५६में सूरिपद प्राप्त किया। ७६ वर्षकी आयु पूर्ण करके वी.सं.१७०में स्वर्गवासी हुए। उनके चार स्थविर शिष्य और दृढ़ाचार पालक-निरंहकारी-धर्म प्रवचन तत्पर-दृढ़ प्रतिज्ञ चार शिष्य थे, जो प्रतिज्ञाका पालन करते करते काल-कवलित हो गए। वीर द्वितीय शताब्दिके बारह वर्षीय दुष्कालानन्तर स्थुलभद्रने उनके पास चौदह पूर्वका अध्ययन किया। भद्रबाहुजीने ४५ आगमोंमेंसे आचार शुद्धिके विभिन्न प्रायश्चित्त-विधिविधान निरूपण करनेवाले महत्त्वपूर्ण चार छेदसूत्रोंका उद्धार किया। 'छेद' नामक प्रायश्चित्तके आधार से उनका 'छेदसूत्र' नामकरण किया।

आर्य स्थुलभद्र वि. -- अंतिम श्रुतकेवली, सुतीक्ष्ण प्रतिभा सम्पन्न-उच्च कुलोत्पन्न-श्री संभूती विजयजीके धीर-गंभीर-दृढ़ मनोबली-विनयवान-गुणवान शिष्य-श्रमणवर्गभूषण-कामविजेता-मंत्रीश्री शकड़ालके ज्येष्ठ पुत्र श्री स्थुलभद्रजीका जन्म वी.सं. ११६में गौतम गोत्रीय ब्राह्मण कुलमें हुआ था। नर्तकी कोशाके संपर्कसे विषय-वासनामें लुब्ध, लेकिन राजनैतिक षड्यंत्रमें पिताकी मृत्युके समाचारसे मोहतंद्रासे सहसा जागृत होकर-वैरागी बनकर संयम स्वीकार किया वी.सं. १४६ में श्री संभूति मुनिके पास। आगमाध्ययन पश्चात् कोशाको भी उसके घर चातुर्मास करके प्रतिबोधित की और व्रतधारी श्राविका बनायी। भद्रबाहुजीके पास नेपाल जाकर चौदह पूर्वकी विपुल ज्ञान राशिको धैर्यतासे ग्रहण करके श्रुतधाराका रक्षण किया। आयुके अंतिम १५ दिन अनशन करके वी.सं. २१५में ९९ वर्षकी आयु पूर्ण करके स्वर्गवासी हुए।

आर्य महागिरिजी---प्रथम दसपूर्वी, महाप्राज्ञ, परमत्यागी, श्री शील-द्युति सम्पन्न, सुदक्ष आचार्य, निरतिचार संयमाराधक, जिनकल्प[६४] तुल्य साधना के विशिष्ट साधक, एलापत्य गोत्रीय श्री महागिरिजीका जन्म वी.सं. १४५में हुआ। यक्षाजीसे पालित होनेसे बहुमुखी प्रतिभा-सम्पन्न बने। वी.सं. १७५में संयम स्वीकार किया। स्थुलभद्रजीसे अध्ययन बाद आचार्य पदका उत्तरदायित्व तीस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साल निभाया। अनेक मुनियोंके वाचना-दाता, उग्रतपस्वी, जिनकल्प विच्छेद होने पर भी आत्म विशुद्धिके लिए जिनकल्प तुल्य साधनामें गणकी निश्रामें रहकर भयंकर उपसर्गादिमें निष्प्रकंप-निराबाध-निःसारभोजी-स्मशानादिमें स्वेच्छासे साधनारत बनकर कर्मनिर्जरा की। अपनी १०० सालकी आयु पूर्ण कर मालवामें वी.सं. २४५ में स्वर्गवासी बने।

आर्य सुहस्ति सूरिजी--- महान शासन प्रभावक सुहस्तिजीका जन्म वी.सं. १८१में हुआ। यक्षाजी द्वारा पालित और वैराग्यवासित बनकर वी.सं. २१५में स्थुलभद्रके शिष्य हुए। उसी वर्ष गुरुजीके स्वर्गवाससे गुरुभ्रातासे ही अध्ययन किया। आचार्यपद वी.सं. २४५में प्राप्त करके गुरुभ्राताकी निश्रामें ही संघ संचालन एवं धर्मप्रचार कार्य करने लगे। सम्राट संप्रतिको प्रतिबोधित करके सवालक्ष जिनमंदिर और सवाक्रोड जिन प्रतिमा, सातसौ दानशालायें आदि प्रभावक कार्य करवाये। संप्रतिने कर्मचारियों द्वारा अनार्यदेशमें[६५] भी मुनि विचरणका मार्ग प्रशस्त किया। भद्रामाताके पुत्र अवंतिसुकुमालको प्रतिबोधित करके दीक्षा देकर आत्म कल्याणकी ओर प्रेरित किया। ज्ञानके भंडार और धर्मधूराके समर्थ संवाहक सुहस्तिजीके बारह प्रमुख शिष्य थे। कुल ११० वर्षकी आयु पूर्ण करके वी.सं. २९१में कालधर्म प्राप्त हुए।

आर्य सुस्थित और आर्य सुप्रतिबुद्ध--- कुमारगिरि पर विशिष्ट तपाराधनाकारक काकंदीमें सूरिमंत्रके [६६] एक क्रोड जाप कारक और इसीलिए कोटिकगण प्रणेता-व्याघ्रापत्य गोत्रीय सुस्थितजीका जन्म वी.सं. २४३में हुआ। दोनों सहोदर काकंदीके राजकुमार थे। वी.सं. २७४में दीक्षा लेकर संयम साधनासे आत्मविकास करते हुए एवं शास्त्रीय ज्ञानार्जन करके वी.सं २९१में आचार्य पद प्राप्त किय। खारवेलकी आगमवाचनामें[६७] ये दोनो उपस्थित थे। आपके पाँच शिष्य मुख्य थे । कुमारगिरि पर वी.सं. ३३९ में स्वर्गवासी हुए।

आर्य इन्नदिन्न→ आर्य दिन्न सुरीजी →आर्य सिंहगिरि - इन तीनोंकी कोई भी विशिष्ट विगत या विशेष समय संकेत नहीं मिलता है। संभवतः चौथीके उत्तरार्ध से छठीके पूर्वार्ध तक माना जा सकता है।

आर्य वज्र स्वामी --- पूर्व जन्ममें गौतम स्वामीसे प्रतिबोधित होकर इस जन्ममें माँके मोहको छुडाने के लिए रो-रोकर माताको परेशान करनेवाले वज्रका जन्म वी.सं. ४८८में हुआ। राज दरबारमें पिताके रजोहरणको[६८] लेकर नाचनेवाले, तीन वर्षकी आयुमें ही साध्वीजी महाराजके ग्यारह अंगका पठन-पाठन सुनते सुनते ही उसे कंठस्थ करनेवाले वज्रस्वामीने वी.सं. ४९६में दीक्षा लेकर श्री भद्रगुप्तजीसे विशेष विद्याध्ययन करके दसपूर्वी ज्ञाता बने। मित्र देवने परीक्षानन्तर गगनगामिनी और वैक्रिय लब्धियाँ[६९] दी। पाटलीपुत्रकी अति श्रीमंत कन्या रुक्मिणीकी क्रोड़ोंकी सम्पत्ति ठुकराकर उसे प्रतिबोधित करके दीक्षा दी। आपकी वाचना शैलीकी उत्कृष्टता देखकर गुरुजीने आपको वाचनाचार्य पद प्रदान किया, बादमें वी.सं. ५४०में आचार्यपदारूढ हुए। भयंकर अकालमें श्री संघको एक पट्ट पर बैठाकर गगनमार्गसे सुभिक्षतावाले नगरमें ले आये वहाँ पर्युषणा पर्वमें अपनी लब्धिके बलसे पद्मद्रहकी लक्ष्मीदेवीसे सहस्त्रदल कमल और मित्र-मालीसे बीस लाख पुष्प लाकर शासन प्रभावना की एवं इससे प्रभावित बौद्ध राजाको प्रतिबोधित करके जैनधर्मी बनाया। क्षीणायु जानकर रथावर्त गिरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर अनशन[७०] करके वी.सं ५७६में स्वर्गवासी हुए। इनसे वयरी शाखा निकली। इन्द्रने इनका स्वर्गवास जानकर रथावर्त गिरि आकर वंदना-प्रदक्षिणा की। *(इनके बाद दशपूर्व और चार संघयण बलका[७१] विच्छेद हुआ।)*

आर्य वज्रसेन सूरि --- जन्म वी.सं. ४९२, दीक्षा-५०१, युगप्रधान पद ६१७ और स्वर्गवास वी.सं. ६२०में हुआ। ये आर्य वज्र के शिष्य थे। सोपारकमें बारह वर्षीय अकाल प्रान्ते श्री जिनदत्त श्रेष्ठि और उनके चार पुत्र नागेन्द्र-निर्वृत्ति-चंद्र और विद्याधरको प्रतिबोधित करके दीक्षा दी। उन चारोंसे उनके नाम निष्पन्न चार कुल हुए। 'लक्ष्यमूल्यके चावलकी प्राप्तिसे सुभिक्ष'की गुर्वाणी से आधारित आगाही करके जिनदत्त और ईश्वरी के सर्व परिवारको बचा लिया। प्रतिबोधित करके आत्म कल्याणके लिए सिंचित किया।

आर्य चंद्रसूरि---इनसे चंद्र गच्छका प्रादुर्भाव और सामंतभद्रसे बनवासी गच्छका प्रारम्भ हुआ।

सामन्त भद्रजी---विक्रमकी द्वितीय शताब्दिमें 'आप्त मीमांसा' ग्रंथकी रचना की। बहुलता से वे बन-जंगलोमें-एकान्तमें रहते थे इसलिए निर्ग्रन्थ गच्छका नाम 'बनवासीगच्छ' हुआ।

श्री वृद्धदेव सूरि ---स्वर्गवास वी.सं.६९६ ➔ **श्री प्रद्योतन सूरि** ➔ **श्रीमानदेव सूरि** ---तक्षशिला श्री संघकी महामारी शांतिकरण हेतु नाड़ोलमें 'श्री लघु शान्ति स्तव' रचकर तक्षशिला भेजा जिसके पाठादिसे उपद्रव शान्त हो गया।

श्री मानतुंग सूरि---४८ तालोंकी जंजीरे तोड़नेके निमित्तभूत चमत्कारिक-प्रभावशाली भक्तिरस भरपूर 'भक्तामर स्तोत्र' और रोगोपशाताकारक-धरणेन्द्र देव प्रदत्त अठारह मंत्राक्षराधारित भयहर 'नमिउण स्तोत्र' के रचयिता श्री मानतुंगजीका जन्म वाराणसीके ब्रह्म क्षत्रिय धनदेव श्रेष्ठिके घर हुआ था। प्रथम वे दिगम्बर साधु चारुकीर्ति से प्रतिबोध पाकर दीक्षा ग्रहण करके महाकीर्ति बने। तदनन्तर निज भगिनि प्रेरित श्वेताम्बरीय दीक्षा श्री अजितसिंहजीके पास ली और मानतुंग नामसे प्रसिद्ध हुए। तपोविधिपूर्वक आगम ज्ञाता बने। गुरुने आचार्य पद प्रदान किया। उन्होंने जिनशासन प्रभावनाके अनेक कार्य किए। **वीर सूरि ➔ जयदेवसूरि ➔ देवानंद सूरि** *(स्वर्ग:वी.सं. ८४५)* **➔ विक्रमसूरि** *(स्वर्ग-वी.सं. ८८२)* **➔ नरसिंह सूरि ➔ श्री समुद्र सूरि** *(वी.सं ९९३ कालिकाचार्यजीने सांत्सरिक प्रतिक्रमण[७२] भा.सु. ५ के बदले भा.सु. ४ के दिन करना प्रारम्भ करवाया वी.सं. १०००। सत्यमित्राचार्यके पश्चात् सर्व पूर्वका ज्ञान विच्छेद हो गया)* **➔ (द्वितीय) श्री मानदेव सूरि ➔ श्री विबुधप्रभ सूरि ➔ श्री जयानंद सूरि ➔ श्री रविप्रभसूरि**-इन्होंने वी.सं ११७०में नाड़ोलमें श्री नेमिनाथ भगवंतकी प्रतिष्ठा करवायी। *(वी.सं. ११९०में युगप्रधान- 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' के रचयिता श्री उमास्वाति हुए)* **➔ श्री यशोदेव सूरि ➔ श्री प्रद्युम्न सूरि**-शास्त्रार्थ निपुण, जैन एवं वैदिक दर्शन निष्णात, ग्वालियर और त्रिभुवनगिरिके महाराजाओंके प्रतिबोधक श्री प्रद्युम्न सूरिजी म. महान प्रभावक आचार्य थे। उनके शिष्य राजकुमार अभयदेवने दीक्षा लेकर विविध विषयोंमें निष्णात बनकर 'सम्मति तर्क' ग्रन्थ पर २५००० श्लोक प्रमाण टीका 'वाद महार्णव' की रचना की।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपधानवाच्य ग्रन्थकर्ता मानदेव सूरि (तृतीय) --*(इसी समयमें 'आम' राजा प्रतिबोधक श्री बप्पभट्टाचार्यजी वी.सं. १२७० में हुए)* ➔ विमलचंद्र सूरि ➔ श्री उद्योतन सूरिजी---आबू तलहटीके 'तेली' गाँवमें संतानवृद्धि-सहजयोग जानकर एक वटवृक्षके नीचे एक साथमें आठ शिष्योंको आचार्य पदवी प्रदान की (तबसें 'वनवासी गच्छ'का पाँचवा नाम 'वड़गच्छ' चला वी.सं. १४६४) इनका स्वर्गवास पंद्रहवी शतीमें हुआ)

सर्वदेव सूरि---चंद्रावतीमें कुंकण मंत्रीको प्रतिबोधित करके दीक्षा दी। वी.सं.१४८०में राम सैन्यपूरमें ऋषभदेव और चन्द्रप्रभके चैत्योंकी प्रतिष्ठा करवायी। ➔

रूपदेव सूरि ➔ सर्वदेव सूरि (द्वितीय) ➔ यशोभद्र सूरि और नेमिचन्द्र सूरिजी *(उद्योतनसूरि ➔ वर्धमान सूरि ➔ जिनेश्वर सूरि और बुद्धिसागर सूरि ➔ जिनचंद्र सूरि ➔ नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरि आदि-खरतर गच्छ परम्परा का प्रारम्भ)*

यशोभद्र सूरिजीके पट्टधर श्री मुनिचंद्र सूरि--- धर्म बिन्दु, योगबिन्दु, उपदेशपदादि ग्रंथोके रचयिता। गुरुभाईको प्रतिबोध देने हेतु 'पाक्षिक सप्ततिका' ग्रन्थकी रचना की। *(चन्द्रप्रभजीने 'पौर्णमिया गच्छ' चलाया जो पाक्षिक पूनमकी मानते हैं जबकि उपाध्याय नरसिंहजीने वी.सं. १६८३में 'अंचलगच्छ स्थापित किया)*

अजितदेव सूरि--- 'स्याद्वाद रत्नाकर' के रचयिता, दिगम्बर विजेता, आरासणमें श्री नेमिनाथजीकी प्रतिष्ठाकारक, फलवर्धिमें चैत्य-बिम्बकी प्रतिष्ठा करवानेवाले शासन प्रभावक आचार्य श्री अजितदेव सूरिजी म. का स्वर्गवास १६९० में माना जाता है *(इनके समयमें देवचंद्र सूरिजीके शिष्य, कुमारपाल प्रतिबोधक, कलिकाल सर्वज्ञ, साढे तीन क्रोड़ श्लोक रचयिता, युग निर्माता, पांडित्य, पारसमणि, असाधारण प्रज्ञा सम्पन्न और विद्याधिष्ठात्री श्री सरस्वती देवीके कृपापात्र, लब्धिधारी, विविध गुप्त विद्याओंके ज्ञाता, अलौकिक प्रतिभा सम्पन्न, अनेक सद्गुण श्रेणिमंड़ित आचार्य श्री हेमचंद्र हुए जिनसे जिनशासनकी महती प्रभावना हुई)*

समर्थवादी श्री विजयसिंह सूरि (वी.सं. १७०५) ➔ श्री सोमप्रभ सूरिजी--- 'सुक्ति मुक्तावली' (सिन्दुर प्रकर) के रचयिता, महामंत्री जिनदेवके पौत्र और सर्वदेवके पुत्र सोमप्रभजीका जन्म वैश्य वंशीय पोरवाल-जैन धर्मीय आस्थायुक्त संस्कारवाले परिवारमें हुआ। श्री विजयसिंह सूरिजीके पास दीक्षा ग्रहण करके आगमज्ञाता बने जिससे गुरुने योग्यता जानकर आचार्यपद प्रदान किया। कुशल कवि, मधुर वक्ता और समर्थ साहित्यकार थे। सुमतिनाह चरियं, कुमारपाल पड़िबोहो, शृंगार-वैराग्य तरंगिणी *(एक ही श्लोकके शृंगार और वैराग्य-दोनों प्रकारसे अर्थघटन हों)* सिन्दूर प्रकर, शतार्थकाव्य-कल्याणसार (प्रत्येक श्लोकके सौ अर्थ हों) आदिकी रचना की है। इनका समय अठारहवीं शतीका माना जाता है।

मुनिरत्न या मणिरत्न सूरि ➔ श्री जगच्चंद्र सूरि---त्यागी, वैरागी, विशिष्ट कोटिके विद्वान, महातपस्वी, पोरवाल वंशीय श्रेष्ठि पूर्णदेवके लघुपुत्र जिनदेवने पारिवारिक संस्कारसे वैरागी बनकर दीक्षा ली। गंभीर शास्त्राध्ययनसे योग्य बनकर आचार्य पद प्राप्त किया। मेवाड़ शास्त्रार्थमें अभेद्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहे। संघमें फैले शिथिलाचारको दूर कर चारित्रनिष्ठ और शुद्ध समाचारी स्थापित करने हेतु यावज्जीव आचाम्ल तपका[७३] अभिग्रह किया, जिससे प्रभावित हुए मेवाड नरेश झैलसिंहने उन्हें 'महातपा'का बिरूद दिया। स्वर्गः वी.सं. १७५७ वीर शालिगाँव में। (तबसे 'बडगच्छ'का नाम 'तपागच्छ' चला, जो वर्तमानमें भी सर्वमान्य चल रहा है।)

देवेन्द्र सूरिजी---तत्त्व निष्णात, संस्कृतके अधिकृत विद्वान, सैद्धान्तिक एवं आगमिक ज्ञान के गंभीर ज्ञाता, 'पंच कर्मग्रन्थ' प्रणेता, रोचक एवं प्रभावक व्याख्याता, विशाल शिष्यगणधारी, मधुर कवि श्री देवेन्द्र सूरिजी म.ने कर्मग्रन्थोंकी स्वोपज्ञ टीका, सिद्ध पंचाशिका सूत्रवृत्ति, धर्मरत्नवृत्ति, श्रावक दिनकृत्य सूत्र, सुदर्शन चरित्र, वन्दारुवृत्ति (श्रावकानुविधि) 'कुलक' आदि अनेक दार्शनिक सूत्रों और मधुर स्तोत्रोंकी रचना की। स्वर्गः वी.सं. १७९७में हुआ।

धर्मघोष सूरिजी---ये देवेन्द्र सूरिके शिष्य थे। अपने गुरुबंधु विद्यानंद सूरिजीको साथमें रखकर, इन्होंने खंभातमें लघुपौषधशालाका निर्माण करवाया।

सोम प्रभ सूरि (द्वितीय)---जन्म वी.सं १७८० से स्वर्ग. १८४३। बहुश्रुत-शास्त्रनिपुण, श्री धर्मघोष सूरिजीके शिष्य एवं श्री परमानंदादिके गुरु श्री सोमप्रभजीने ग्यारह वर्षकी उम्रमें दीक्षा और बाईस वर्षकी आयुमें आचार्य पद प्राप्त किया। चितौड़के ब्राह्मणोंसे बुद्धिकौशल्यसे विजय पायी। भीमपल्लीमें ज्योतिषशास्त्रके बल पर अनिष्ठ घटनाका संकेत देकर श्री संघको संकटसे बचाया। २८ चित्रबंध काव्य रचना से काव्यसंयोजना कौशल्य का विशिष्ट परिचय प्रदान किया।

सोमतिलक सूरीजी म.---इन्होंने 'क्षेत्रसमास'-भौगोलिक ग्रन्थकी, रचना की।

देवसुंदर सूरिजी---(इनके शिष्य गुणरत्नसूरिजीम.ने महत्त्वपूर्ण धातु संकलनका व्याकरण ग्रन्थ-'क्रियारत्न समुच्चय', दार्शनिक ग्रंथ 'षड्दर्शन समुच्चय' की तर्करहस्य दीपिका टीका, कल्पान्तर्वाच्य (पर्वाराधन और कल्पसूत्र उपयोगिता), चतुःशरण, आतुर प्रत्याख्यान, संस्तारक और भक्त परिज्ञा-इन प्रकीर्णक ग्रंथ, छ कर्मग्रंथ, और क्षेत्रसमासादि सूत्रों पर अवचूरि रची। इसके अतिरिक्त 'अंचलमत निराकरण' ग्रंथकी रचना की।

सोमसुंदर सूरि---विशाल शिष्य समुदाय---जयसुंदर, मुनिसुंदरादिके गुरु श्री सोमसुंदर सूरिजीने राणकपुरके त्रैलोक्य दीपक-धरण महाप्रासाद-१४४४ स्तंभयुक्त जिनमंदिरकी प्रतिष्ठा ६६ वर्षकी आयुष्यमें वी.सं. १९६६में करवायी थी।

मुनिसुंदर सूरि---सहस्त्रावधानी[७४], शास्त्रार्थ कुशल, "वादी गोकुलसंड" एवं "काली सरस्वती" *(ये दो पदवी गुजरात सुलतान मुजफ्फर खाँ और दक्षिणके पंडितने दी थी)* सिद्ध सारस्वत, पंचम प्रस्थानके[७५] २४ बार आराधक; साहित्य रचना, धर्म प्रभावना मंदिर निर्माणादि में देदीप्यमान नक्षत्र, उग्र तपसे 'पद्मावती' देवीको प्रसन्न करनेवाले, 'संतिकर' स्तोत्र रचनासे महामारी उपद्रव निवारक, तीड़ उपद्रव रोककर 'अमारि' का प्रवर्तन करानेवाले, चौदह वर्षकी बाल वयमें त्रैवेद्य गोष्ठि[७६] ग्रन्थके रचयिता, उपदेश रत्नाकर (स्वोपज्ञ वृत्ति)के स्वयिता श्री मुनिसुंदर सूरिका जन्म वी.सं. १९०६, दीक्षा-१९१४, वाचक-१९३६, सूरिपद-१९४८, और स्वर्गः १९७३ में हुआ। ये गच्छनायक, ग्रन्थकार, कवि, प्रभावक,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंत्रविद्या-शील, इतिहासकार, शास्त्राभ्यासी, तपस्वी, तेजस्वी, विद्या पुरुष थे।

रत्नशेखर सूरि---श्राद्ध प्रतिक्रमण वृत्ति, श्राद्ध विधि सूत्र वृत्ति, लघुक्षेत्र समास, आचार प्रदीपादि ग्रन्थ रचे। *(इनके कालमें जिन प्रतिमा और आगम-पंचांगी उत्थापक लूंपक लिखारीसे लूंपक (लौंका) मत निकला जिसमें प्रथम साधु-'भूणा' नामक बना। आगे चलकर वी.सं. २१७९में लवजीने मुंह पर कपड़ा बांधकर स्थानकवासी-ढूंढ़िया पंथका प्रचार किया; जो ३२ आगम मानते हैं। उनके २२ फाँटे-२२ टोले होनेके कारण ये बाईस पंथीभी कहलाते हैं।)*

लक्ष्मीसागर सूरि---श्री सोमसुंदर सूरिजीके शिष्य माने जाते हैं।

सुमति साधु → हेमविमलसूरि *(इनसे विमल शाखा निकली)* **→ आनंद विमल सूरि** *(वी.सं. २०४२में नागपुरीय तपागच्छसे अलग होकर प्रार्श्वचंद्रजीने पार्श्वचंद्र गच्छका प्रवर्तन किया)* **→विजयदान सूरि-(स्वर्ग. वी.सं. २०९२) → विजय हीरसूरिजी**---म. सम्राट अकबर प्रतिबोधक, जगद्गुरु, राजसन्मानित आ. हीरसूरि म. का. जन्म वी. सं. २०५३ ओशवाल परिवारमें पालनपुरके कूरा और नाथीबाई की संतानरूप हुआ। तेरह साल की आयुमें विजयदान सूरि म.के पास दीक्षा ली और न्यायादि एवं धर्मशास्त्राभ्यास करके हीर-हर्ष मुनिने २०५७में पंडित और २०५८में वाचक पद प्राप्त किया और २०६० में आचार्य पदारूढ हुए तबसे वे हीरसूरि नामसे प्रसिद्ध हुए। सम्राट अकबरके आमंत्रणसे फतहपुर सिक्री जाकर अकबरको प्रतिबोधित करके एवं उसके जीवन पर्यंत अपने दो शिष्योंको वहाँ रखकर उसे जैनधर्ममें स्थिर किया और वर्षमें छ मास पर्यंत अमारि पालन करवाया। वी.सं. २१२२ के भादों शुं.११को कालधर्म प्राप्त सूरिजीका अग्नि संस्कार अकबर बादशाह द्वारा भेंट की गई जमीनमें किया गया तब उस स्थल पर स्थित आम्र वृक्षको अकालमें आमफल लगे थे। उनके नाम स्मरण मात्रसे सर्प-विष नष्ट होता था। उनके दो हज़ार शिष्य विभिन्न स्थलों पर शासन प्रभावना करते रहते थे।

विजयसेन सूरि---प्रखर धर्म प्रचारक, उत्तम व्याख्याता, उग्र विहारी, गुरु प्रति भक्तिवान और धर्म प्रति श्रद्धाशील, श्री हीर सूरि म. के सबल सहायक-उनकी ख्याति को चारचांद लगानेवाले-उनके उत्तराधिकारी, प्रभावशाली व्यक्तित्वधारी श्री विजयसेन सूरि म. सम्राट अकबरको विशेष रूपसे प्रभावित करके और दृढ़ धर्म श्रद्धाशील बनाकर लाहोरमें 'सवायी हीरजी' पदवीसे अलंकृत हुए। अकबरकी सभाके विद्वान ब्राह्मणोंसे वादमें विजयी हुए। अकबरके आग्रहसे लाहौरमें निरन्तर दो चातुर्मास किये जिससे उनकी गुरु म.से अंतिम भेंट-उग्रविहार करने पर भी-न हो सकी। सुविशाल गच्छका सफल संचालन करते करते वी.सं.२१४२ में स्वर्गवासी हुए। उनको आचार्यपद अहमदाबादमें प्राप्त हुआ। उन्होंने जिनशासनकी महती प्रभावना की।

श्री विजयदेव सूरि म.---प्रभावशाली संघनायक, विशाल विचारश्रेणीधारी, उदार हृदयी, विद्वान, जहांगिरि महातपा, जनप्रिय विजय देव सूरिजीका जन्म गुजरातके ईलादुर्ग (ईडर) नगरमें पिता 'स्थिर'-माता 'रूपा' के घर वी.सं.२१०४में हुआ। पारिवारिक धार्मिक संस्कारवश माता रूपादेवीके साथ अहमदाबादमें वी.सं.२११३में माघ शु. १०को वासदेवने दीक्षा ली। मुनि विद्याविजयको विद्यार्जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करके योग्यता प्राप्त करनेसे गुरु म.ने उन्हें वी.सं. २१२५ मृ.कृ.५. को पंडित और २१२७में आचार्यपद प्रदान किया और विजयदेवसूरि बने एवं वी.सं. २१२८में गच्छानुज्ञा प्रदान की। मामा म. धर्मसागरजीके गच्छके साथ कुछ सैद्धान्तिक विचारभेदके कारण उनकी और उनके गुरु विजयसेन सूरि म. की गच्छ परंपरा भिन्नभिन्न हो गई। उन्होंने उदयपुर नरेश जगतसिंहको प्रेरित करके नगरमें अहिंसाका पालन करवाया। ईडरके राय कल्याणमल्लादि भी उनसे विशेष प्रीति रखते थे। उन्होंने अपने शिष्य कनकविजयजीको आचार्यपद देकर आ. विजयसिंहके नामसे उत्तराधिकारी बनाया, जो उनके जीवनकालमें ही स्वर्गवासी हुए। आचार्य देवसूरि म.का स्वर्गवास ऊनामें वी.सं. २१८३ में हुअ।

विजय सिंहसूरि---तपागच्छमें कियोद्धार करके संविज्ञ मार्ग प्रवर्तनकी भट्टारक श्री विजय देव सूरि म.की तीव्राभिलाषाको इन्होंने मूर्तिमंत रूप देनेके लिए अपने शिष्य पंन्यास सत्य विजयजी गणि आदिको साथमें रखकर प्रयत्न किये और वी.सं. २१७६में महा सुद त्रयोदशी गुरुवारको पुष्य नक्षत्रमें संविज्ञ साधु-साध्वीके लिए पैंतालीस बोलका पट्टक तैयार किया। महाशु.२ २१७८में, अहमदाबाद में उनका कालधर्म हुआ।

पंन्यास सत्यविजयजी गणि---परमशांत, संवेगी, त्यागी, वैरागी, संयमी, शुद्ध क्रिया प्रेमी, विद्वान, तपस्वी, ध्यानी, शासन प्रभावक पं. सत्यविजयजी लाडलुंके दुग्गड़ गोत्रीय वीरचंद ओसवाल और माता विरमदेवीके अपत्य शिवराजके रूपमें अवतरित हुए। वी.सं. २१३७में विजयसिंह सूरिजीका शिष्यत्व स्वीकार करके अध्ययनादि करके विद्वान बने। उनके क्रियोद्धार पट्टक पर हस्ताक्षर करके विजयदेवसूरिजीकी आज्ञासे वी.सं. २१८१में महा सु. १३ को उनकी ही निश्रामें रहकर पाटणमें अपनाया। स्वेच्छासे भट्टारक पद त्यागकर जीवनपर्यंत पंन्यास ही बने रहे। आनंदघनजीके समकालीन, उनके साथ वर्षों तक बनमें बसकर महान तप एवं योगाभ्यासमें लीन रहनेवाले वृद्धावस्थामें अंतिम चातुर्मास पाटणमें करके वी.सं. २२२६, पो.कृ.१२ को सिद्धयोगमें अनशन कर समाधिपूर्वक कालधर्म प्रात हुए।

पं. कर्पूर विजयजी---बचपनमें ही माता-पिता वीरा-भीमजी की छत्रछायासे वंचित हो जाने के कारण बुआके घर बचपन व्यतीत करनेवाले कानजीका जन्म पाटणके पासके वागरोड़ गांवमें वी.सं. २१७४में हुआ। पं. सत्य विजयजी गणीके पास २१९० में कर्पूर विजय नामसे दीक्षित हुए। शास्त्राध्ययनसे योग्यता प्राप्त करनेसे आ. श्री विजयप्रभ सूरिने उन्हें आनंदपुरमें पंडित पदसे विभूषित किया।- पं. सत्य विजयजी के पट्ट पर २२२६में स्थापन हुए। अनेक धर्मकृत्य करवाकर शासन प्रभावना की। श्रा.कृ.१४, २२४५ को कालधर्म प्राप्त हुए उनके दो मुख्य शिष्य थे-पं. वृद्धि विजय और पं. क्षमाविजयजी।

पं. क्षमाविजयजी---आबू पर्वतके पोयंद्रा गांवके चामुंडा गोत्रीय ओसवाल शाह कला श्रेष्ठि और माता वनांदेवीके आत्मज खेमचंदका जन्म हुआ। श्री वृद्धि विजयजी से प्रतिबोध पाकर दीक्षा ली और क्षमाविजय बने वी.सं. २२१४। तीर्थयात्रा के साथ साथ शास्त्राभ्यास करके पाटणमें पंन्यास पद प्राप्त किया और वी.सं. २२४५में गुरुके पट्ट पर बिराजित हुए। पाटण-कावी आदि तीर्थस्थानोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंजनशलाका-प्रतिष्ठादि धार्मिक अनुष्ठान करवाकर शासन प्रभावना करते करते अहमदाबादमें जिन विजयजीको उत्तराधिकार प्रदान कर २२५६ आसो मासमें कालधर्म प्राप्त हुए। उनकी गेय रचनायें स्तवनादि अद्यापि लोक जिह्वाग्रे हैं।

पं.श्रीजिन विजयजी---अहमदाबाद के श्रीमाली धर्मदास और माता लाड़कुंवर बाईके पुत्ररत्न खुशालका जन्म वी.सं. २२२२में हुआ था। पं. क्षमाविजयजीके धर्मोपदेशसे वैरागी बनकर २२४०में जिनविजयजी नामसे दीक्षित हुए। २२५२से श्री संघका उत्तरदायित्व स्वीकार किया। उमदा एवं उच्च चारित्र पालकर विविध तीर्थस्थानोंकी यात्रा करके पादरामें २२६९में श्रा.शु.१०को कालधर्म प्राप्त हुए। उनकी कृतियाँ-कर्पूरविजय गणि रास-क्षमाविजयरास, जिन स्तवन चौबीसी, जिन स्तवन बावीसी आदि अनेक स्तवन, सज्झाय, स्तुति हैं।

पं. उत्तम विजयजी---अहमदाबादके शेठ बालाचंदके घर वी.सं. २२३०में पूंजाशाहका जन्म हुआ। २२४८में खरतरगच्छीय देवचंद्रजीके पास जैन विधि-विधान ज्ञात किये। सुरतसे समेत शिखरजीके छ'री पालित संघमें भी विधि-विधानके लिए साथमें गए। वहाँ मधुवनमें रात्रिमें किसी देवने उन्हें श्री नंदीश्वर द्वीप तीर्थ-यात्रा एवं श्री सिमंधर स्वामीके समवसरणके साक्षात् दर्शन करवाये। यात्रानन्तर वै.शु.६, २२५६में श्री जिन विजयजीके पास दीक्षा अंगीकार की। श्री देवचंद्रजीके पास द्रव्यानुयोगादि शास्त्राभ्यास और सुरतके यतिवर्य श्री सुविधि विजयजीसे अभ्यास किया। उपधान, तीर्थयात्रादि शासन प्रभावनाके अनेक कार्य करके और अनेक स्तवन-सज्झाय-स्तुति आदि साहित्य सर्जन-सेवा करते करते वी.सं. २२९७-महा शु. ८ रविवारको कालधर्म प्राप्त हुए।

पं. पद्मविजयजी---अहमदाबादके श्रीमाली श्रावक गणेशभाई और माता झमकुबाईके पुत्र पानाचंदका जन्म वी.सं. २२६२में भादो शु.२को हुआ। मौसी जीवीबाईके सत्संगसें धर्म संस्कार पाकर और पं. श्री उत्तमविजयजीके व्याख्यानमें श्री महाबल मुनिका चरित्र सुनकर दृढ़ वैराग्य वासित बनकर २२७५में चारित्र ग्रहण किया। मुनि पद्मविजयजीने विद्यार्जनसे. आगमाभ्याससे योग्यता पाकर २२८०में विजय धर्मसूरिजीसे पंडितपद प्राप्त किया। उपधानतप, तीर्थयात्रा, सिद्धाचलादि तीर्थस्थानोमें जिनमंदिर-जिनप्रतिमाके अंजनशलाका-प्रतिष्ठा-जिर्णोद्धारादि विविध कार्योंसे शासन प्रभावना करके समर्थ विद्वान-चतुर व्याख्याता;अनेक रासाकाव्य, स्तवन, सज्झाय, स्तुति-पूजा-देववंदन चरित्रकाव्यादि के रचयिता कुशल कवि अंतिम २८ दिन उत्तराध्ययन सूत्रकी सुंदर आराधना करते हुए, ५७ वर्षके दीक्षा पर्यायानन्तर चै.सु. ४, २३३२ में स्वर्गवासी बने।

पं. रूपविजयजी---२३-२४वीं शतीके विद्वान-उत्तम कवि, वैदक शास्त्र के कुशल निष्णात थें। आपका पृथ्वीचंद्र चरित्र, अनेक रासाकाव्य-पूजा-स्तवन, सज्झाय, स्तुति देववंदनादि रचनायें प्रचलित हैं।

पं. कीर्ति विजयजी---खंभातके विशा श्रीमाली ज्ञातिमें कपूरचंदजीका जन्म वी.सं. २२८६ में हुआ। पैंतालीस वर्षकी आयुमें श्री रुपविजयजीके पास पालीतानामें दीक्षा ली। स्वरूपवान, तेजस्वी, त्यागी, ध्यानी गणिजीने गुजरात और मेवाड़ पर बहुत उपकार किए हैं। आपके विद्वत्तादि अनेक गुण सम्पन्न-एक से बढकर एक ऐसे पंद्रह महान शिष्य थे। कई शिष्योंकी तो अपनी भव्य परम्परा आजभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यमान है।

पं. कस्तुर विजयजी--- त्यागी, वैरागी, तपस्वी, ज्ञानी, प्रभावक पं. कस्तुर विजयजीका जन्म वीशा पोरवाल ज्ञातिमें वी.सं. २३०७में और २३४०में बडौदामें कालधर्म प्राप्त हो गए।

पं. श्री मणिविजयजी (दादा)---गुजरातके भोयणी तीर्थके पास अघार गाँवमें विशा श्रीमाली श्रेष्ठि जीवनदास और माता गुलाबबाईके पुत्र मोतीचंदजीका जन्म वी.सं. २३२२ में हुआ। प्राथमिक व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त करके व्यापारार्थ पेटली गाँवमें बसे। कीर्तिविजयजी म.के परिचयसे वैरागी बनकर २३४७ में मारवाड़के पाली शहरमें दीक्षा ग्रहणकी और वी.सं. २३९२में पंन्यास पद प्राप्त किया। महातपस्वी, अति प्रसन्न मुखाकृति, अप्रतिबद्ध विहारी, प्रशान्त मूर्ति, विनीत, भक्ति-वैयावृत्यकारी, सेवा परायण, मिलनसार-सर्वप्रिय, गम्भीर असाधारण निःस्पृही, अकिंचन, प्रमाद परिहारी, सर्वदा जागृत ज्ञानदशा, सरल, बाल ब्रह्मचारी महात्माने ५९ वर्ष विशुद्ध चारित्राराधना करके-करवाके, ज्ञान-तपादिसे बाह्याभ्यन्तर जीवन पवित्र बनाकर, अंतमें चार आहारका त्यागकर वी.सं. २४०५ - आ शु. ८ को कालधर्म प्राप्त हुए। उनके सात शिष्य श्री अमृत विजयजी, श्री बुद्धि विजयजी, श्री प्रेमविजयजी, पं श्री गुलाब विजयजी, पं. श्री शुभविजयजी, श्री हीर विजयजी और श्री सिद्धि सुरीश्वरजी (बापजी)-सप्तर्षिकी भाँति तेजस्वी नक्षत्र थे। उन्हीं शिष्योंके हज़ारों शिष्य-शिष्याओंका विशाल परिवार सांप्रत कालमें विचरकर विविध प्रकारसे जिनशासन सेवा-प्रभावना के कार्य कर रहा है।

श्री बुद्धि विजयजी (बूटेरायजी)---दृढ़ मनोबली, सत्य और स्पष्ट वक्ता, पंजाबमें सत्य-संविज्ञ मार्गके प्रथम प्रवर्तक, प्रभावक व्यक्तित्ववाले, पंजाब-राजस्थान और गुजरातमें जिनशासनकी शान चमकानेवाले, पंजाबी साधुओंमें प्रथम पंक्तिके, धर्मग्रन्थोंके गहन अभ्यासी, क्रियाकांड निपुण बूटेरायजीने लुधियाना नज़दीक दुलवा गांवके शीख परिवारके टेकसिंह और माताजी कर्मोदेके घर शुभ स्वप्न सूचित वी.सं. २३३३ में जन्म धारण किया। बचपन से ही धार्मिक वाचनका लगाव था। पूर्वजन्म संचित शुभ कर्मोंके कारण उनको साधु बननेके भाव जागे और माताकी आज्ञा व अंतरकी आशिष लेकर 'सच्चा साधु' बनने हेतु सच्चे और अच्छे गुरुकी तलाश करनेके लिए अनेक साधुओंसे परिचय किया। आखिरकार २३५८में स्थानकवासी साधु बने। संस्कृत और अर्धमागधीका ज्ञान सम्पादन करके शास्त्राध्ययन किया और लगातार पाँच साल तक बराबर परिशीलन किया। फल स्वरूप अंतरसे मूर्तिपूजाका विरोध नष्ट हो गया और अधिकाधिक चिंतन मननसे श्रद्धा बलवत्तर-दृढ़तर होती गई। इस पाँच वर्षके परिभ्रमणसे उन्हें दो शिष्य--मूलचंदजी और वृद्धिचंदजीकी प्राप्ति हुई। उन्हें लेकर वे गुजरातकी ओर पधारें और श्री मणिविजयजी के पास संवेगी दीक्षा अहमदाबादमें २३८२में ग्रहण कीः नाम रक्खा गया-बुद्धि विजय, लेकिन, वे बूटेरायजीके नामसे ही प्रसिद्ध हुए। गुरु-शिष्य त्रिपुटीने सत्य धर्मकी मशाल प्रज्वलित की और उसके प्रचार-प्रसारके लिए कटिबद्ध बने। उन्होंने यतियोंके विरुद्ध बुलंद आवाज़ उठायी और संवेगी मार्गकी विजय पताका दिग्गंतमें फहरायी। संवेगी साधुओंको सम्माननीय स्थिति अर्पित की। पश्चात् स्वदेश-पंजाब जाकर छ साल सतत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचरण करके, धर्मसभाओंमें और व्यक्तिगत चर्चाओंसे धार्मिक वादविवाद और मतभेद उपशांत किये। पुनः वी.सं २३९९में गुजरात पधारें।

तदनन्तर पू. आत्मारामजी महाराजने सोलह साधुओंके साथ आपका शिष्यत्व स्वीकार किया, जो प्रसंग अपने आपमें ऐतिहासिक सिद्ध हुआ।

श्री बूटेरायजी म. जैसी अप्रतिम प्रतिभा और अनूठी व अद्वितीय प्रभावकता तत्कालीन समाज़में बेमिसाल थी। उन्होंने अपने शिष्य पू. श्री मूलचंदजी म. को गुजरात, पू. श्री वृद्धिचंद्रजी म. को सौराष्ट्र, पू. श्री आत्मारामजी म.को पंजाब और पू. श्री नीतिविजयजी म. को सुरतादि दक्षिणके प्रदेशोंका विचरण करवाके विशाल परिवार सम्पन्न करनेमें सफलता पायी। सत्यवीर महायोगी, साम्प्रत संघनायक और अपने चरित्र नायक श्री आत्मारामजी म.के प्राणाधार वी.सं. २४०८में कालधर्म प्राप्त हुए।

निष्कर्ष---इस प्रकार शाश्वत जैन धर्मके शाश्वत सिद्धान्तोंके प्ररूपकों और प्रचारकों-प्रसारकों में चौबीस तीर्थंकरोंकी परम्परामें अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी और उनकी परम्परामें (पट्टावली) पट्ट परम्पराके निर्देशानुसार परम पूज्य न्यायाम्भोनिधि, सत्यकी साक्षात् प्रतिमूर्ति, विद्वद्वर्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी (श्री आत्मारामजी) महाराज साहबजीका स्थान कहाँ-कैसा-कितना महान है उसका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। अब आपका जीवन-चरित्र प्रकाशित करनेकी ओर अग्रसर होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वंदे श्री वीरमानन्दम्

पर्व द्वितीय

श्री आत्मानन्दजी महाराजजीका जीवन तथ्य

" सद्विद्योन्नमनं सुधारितजनं धर्मक्रियोद्द्योतनं,
क्लृप्तार्हदभवनं, सुयोजितधनं सद्ग्रन्थनिष्पादनम् ।
आत्मारामुनेरधर्मशमनं सद्देशनादेशनं,
लोकोद्धारघनं गुणोपनमनं, धन्यं परं जीवनम् ।। " [१]

शाश्वत धर्मकी परम्पराके वर्तमान अवसर्पिणीकालीन चौबीस तीर्थकरोंमें से अंतिम कर्णधार श्रमण भगवान श्री महावीर स्वामीजीके अनुगामियोंकी परम्परामें तिहत्तरवे क्रम पर बिराजित चरित्रनायक युगप्रधानाचार्य प्रवर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. सा. के (सन १८३६ से १८९६ ई.) प्रभावशाली-प्रतिभा सम्पन्न-प्रतापवंत व्यक्तित्वका परिचय अत्र करवाया जा रहा है।

गुणागारका प्रास्ताविक परिचय---महापुरुषोंकी शक्ति अचिन्त्य होती है। अतीत के वे वारिसदार, वर्तमानको सुसंस्कृत करके-नये ही रूप रंगसे सजाकर, कल्याणमय-मंगलकारी-सुंदर भावि दर्शाते हैं। सार्वभौम सत्यके मूर्तिमंत स्वरूप, सत्यनिष्ठ, धीर-वीर श्री आत्मानंदजी महाराजजी के जीवनमें सत्यके प्रति पग-पग पर आकंठ श्रद्धा रस छलकता है। वे अपने गुरुजन पूज्य श्री अमरसिंहजी म. को, उनकी प्रशंसा पुष्पवृष्टि और स्नेह एवं वात्सल्यकी रेशम डोरके प्रत्युत्तरमें स्पष्ट वक्ता बनकर-नम्र तथापि दृढ भावसे-कहते हैं--- "आप मेरे मन परमपूज्य और समादरणीय हैं, परन्तु क्या किया जाय ? आगमवेत्ता पूर्वाचार्योंके लेखोंके विपरीत अब मुझसे प्ररुपणा होनी अशक्य है। मैं तो वही कहूँगा जो शास्त्रविहित होगा शास्त्र विरुद्ध-मनःकल्पित आचार विचारोंके लिए अब मेरे हृदयमें कोई स्थान नहीं रहा । और मेरी आपसे भी विनम्र प्रार्थना है कि आप झूठे आग्रह छोडकर तटस्थ मनोवृत्तिसे सत्यासत्यका निर्णय करनेका यत्न करें और शास्त्रीय दृष्टिसे प्रमाणित सत्यको बिना संकोच स्वीकार कर लीजिए ।" [२]

सत्यके गवेषक-सत्यके प्ररूपक-सत्यके प्रचारक; सत्यके विचारी-आचारी-प्रचारी एवं सत्यके संगी व साथी *अमर 'आत्मा'* -जिनका अंतरंग सत्यसे लबालब भरा था, तो बहिरंग व्यक्तित्वके परिवेशमें सत्यके ही सूर प्रवाहित थे; सत्यकी सुरीली लय पर केवल सत्यका नर्तन था। ऐसे सत्यकी ज्वलंत ज्योतिर्मय विभूति-जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराजजी के विराट् प्रकाशपुंजके एक अणुरूप-किरण-मात्र प्रकाशित करनेका आयास, आस्थायुक्त भक्तिकी शक्ति स्वरूप अनायास ही आकार ले रहा है।

आपके समयकालीन परम भक्त श्री जसवंतराय जैनीने आपके जिस स्वरूपको प्रत्यक्ष रूपमें-स्वचक्षुसे निहारा है उसे वे यथास्वरूप आलेखित करते हैं----"श्री आत्मारामजी महाराज जैन कुलोत्पन्न न थे। वह थे एक महान योद्धा क्षत्रियके पुत्र। क्षात्रत्व था उनकी नस-नसमें। उनकी साधुवृत्ति भी क्षत्रियत्वसे खाली न थी। वह थे सद्धर्म प्रचारक, जैन शासनके युगप्रधान, जैन धर्मके प्रभावक, जैन प्रजाके ज्योतिर्धर, वादिमुखभंजक; उनमें थी कला-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निरुत्तर करनेकी, उनमें शक्तिथी-परास्त करनेकी; बरसता था नूर-उनके चेहरे पर; बरसतीथी पियूषधारा उनके मुखारविंदसे; लग जाती थी झड़ी अनेक युक्ति प्रमाणोंकी- जब वे व्याख्यान देते थे; झुकते थे जाने-अनजाने, चरणोंमें-जब दिखतीथी दिव्यमूर्ति चली जाती.....जिस दीर्घ नयन, विशाल ललाट और देव स्वरूपकी यह मनोहर छवी है वह जरूर धर्ममूर्ति,सत्य वक्ता, परम साहसी, निर्भीक, विशेषज्ञ, विद्वान शिरोमणी, परम पुरुषार्थी, वाल ब्रह्मचारी, दूरदर्शी, विद्यावारिधि, अनेक गुण निधान, धीर, वीर, गंभीर और अवतारी पुरुष है । [३]

और अब उपलब्धि कराती हूँ श्रेष्ठ 'आत्मा' के विश्व स्तरीय श्रेष्ठतम सम्मानकी, जिससे उनके प्रति मस्तक श्रद्धासे अवनत और गौरवसे उन्नत हो जाता है---

"No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain community as Muni Atmaramji. He is one of the noble band sworn from the day of initiation of the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the higest priest of the Jain community and is recognised as the highest living authority on Jain religion and literature by Oriental Scholars-" [४]

आबाल्यकाल सत्तर सालके अध्ययन पश्चात् पांडित्य-कीर्तिलाभ द्वारा सभा-विजयी और राजा-महाराजाओंसे ख्याति-प्रतिपत्ति कमानेवाले दिग्गज विद्वान श्रीमान् परिव्राजक योगजीवानंद स्वामी परमहंसजी,- सत्यही आत्मा है जिसकी-ऐसे सर्वोत्कृष्ट जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीके प्रभावपूर्ण-सत्यसारभूत उत्तम ग्रन्थरत्न- 'जैन तत्त्वादर्श 'और' अज्ञान तिमिर भास्कर'के वाचन-चिंतन-मनन से अभिभूत होकर अत्यंत विनयपूर्वक प्रणिपात करते हुए, अपनी लेखिनी के उत्तम प्रशस्ति-पुष्पोंकी माला समर्पित करके निजात्माको कृतकृत्य मानते हैं-यथा-

"योगा भोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो,
दिग्जेताजेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितोजिष्णुजिह्वैः ।
जीयाद्दायादयात्री, खलबलदलनो, लोललीलस्वलज्जः,
कैदारौदास्यदारी, विमलमधुमदो, दामधामप्रमत्तः ।" [५]

कलकत्ताकी रोयल एशियाटिक सोसायटीके ओन. सेक्रेटरी और श्री 'उपासक दशा' आगम सूत्रके अनुवादक-सम्पादक एवं संस्कृत-प्राकृतके विद्वान---डॉ.ए.एफ.रुडोल्फ होर्नल-ने आपके प्रश्नोत्तर रूप मार्गदर्शनसे प्रभावित होकर अपने 'उपासक दशा' (आगम सूत्र)सम्पादित ग्रन्थको, आप के प्रति श्रद्धायुक्त समर्पित करते हुए उस समर्पण पत्रिकामें जो भावोद्गार भरते हैं-हृदयस्पर्शी हैं-

"दुराग्रह ध्वान्त विभेदमानो, हितोपदेशामृतसिन्धुचित्तः
संदेह संदोह निरासकारिन्, जिनोक्त धर्मस्य धुरंधरोऽसि (१)

"अज्ञान तिमिर भास्करमज्ञान, निवृत्तये सहृदयानाम्
आर्हत् तत्त्वादर्शग्रन्थमपरमपि भवानकृत् ।। (२)

"आनन्द विजय श्रीमन्नात्माराम महामुने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मदीय निखिल प्रश्न व्याख्यातः शास्त्रपारग ।। (३)

"कृतज्ञता चिह्नमिदं ग्रन्थ संस्करणं कृतिन्

यत्न संपादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया ।।" (४) [६]

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ-- ऐसे कई देश-विदेशके विद्वान-पंडित, राजा-महाराजा, महात्मा-साधु-संन्यासियोंकी अनन्य प्रशस्तियाँ प्रापक उत्तम आत्मा का जिस समय इस धरती पर अवतरण और विचरण होनेवाला था, उस समय इतिहास शहादत-बलिदान-वीरता-पराक्रमकी ओर करवट बदल रहा था। बाह्यसे मनमोहक-मंद समीर, आभ्यन्तरसे सभ्यता और संस्कृतिके मूलभूत संस्कारों पर कुठाराघात करनेवाली विषाक्त हवाके झकोरोंकी तरह समाजको दिशाभ्रान्त करता जा रहा था। माँ भारतीके बाल नैतिक एवं आर्थिक रूपसे बिछे हुए षड्यंत्रोंकी जालमें फँसकर, क्रूरता से बेहाल होते जा रहे थे। 'सोनेकी चिडिया' के अंग-प्रत्यंग विक्षिप्त होते जा रहेथे। अंग्रेजी साम्राज्यकी नागचूड, प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। नैराश्य और जड़तापूर्ण प्राचीन धर्म और सुधारवादी नए पंथ एवं धर्मोंके बीच संघर्ष प्रारंभ हो गया था। अज्ञानसे घिरे लोग अपने गौरवपूर्ण इतिहासको भूल चूके थे। समाज तन-मन-धनसे शक्तिहीन-दुर्बल, विवेकहीन-अंधविश्वास और रूढ़ि परंपरासे जड़ होता जा रहा था। इस तरह एक और अनेकविध मत-मतांतर आधारित धर्म और दूसरी ओर भौतिक वृत्तियोंको चौंधियानेवाले पाश्चात्य शिक्षणके प्रभावने भौतिकवादी तरंगोंमें बहकर लोगोंको सत्य धर्मकी सुधसे विमुख कर दिया था।

जैन समाज भी इससे अछूता कैसे रह सकता है ? ज्ञानवान् एवं प्राणवान् जैनी अज्ञान और मूढ़ताकी आंधीके थपेड़ोंको झेलता हुआ, शिथिलाचारी-संयम और तप त्यागके त्यागी-केवल भेखधारी साधुसंस्थाके नेतृत्वमें स्वार्थ और लोलूपताके प्रहारोंसे खंड़-खंड़ हो रहा था। धर्म नेताओंकी धार्मिक नैतिकताके अस्त होते सूर्यके कारण भ्रान्त एवं क्लान्त श्रावक वर्गमें अनेक भ्रान्तियाँ फैल रहीथीं।

"कई जैन शिख पंथमें शामिल हो गए थे। बहुतसे अपने आपको सनातनधर्मी कहने लगे। जो व्यक्ति जैन धर्मके नियमों पर स्थिर न रह सकें वे आर्य समाजकी ओर झुक पड़े। सारांश यहि कि जैनों पर चारों ओर से छापा मारा जाता था और रक्षाके कोई उपाय दृष्टि गोचर न होता था। ऐसे समयमें जबकि.....जैन समाजमें ज्ञानका सूर्य अस्त हो चूका था और अज्ञानने डेरा जमाया हों-समाजकी रक्षाके लिए एक महान और उत्साही व्यक्तित्वका प्रकट होना अनिवार्य था, जो अपनी विद्वत्तासे सुप्त जैन समाजको जागृत कर उसे अपने कर्तव्योंसे परिचित करवाता और विरोधियोंके निराधार आक्षेपोंका खंडन करके समयकी आवश्यकतानुसार जैन समाजको जगाकर जैन धर्मका डंका देश-विदेशमें बजाता। मूर्तिपूजाकी विरोधी तरंगोंका मुकाबला कर उन्हें पीछे धकेल देता।" [७]

शिशु आतमका क्षत्रिय कुलमें अवतरण---ऐसे कस्मकसके नाजूक समयमें-एक सत्ता के अस्त और दूसरीके उदयकाल या क्रान्तिकालमें पंजाबके पराक्रमशाली, रण कौशल्य के कीर्तिकलश सदृश कलश जातिके, चौदहरा कर्पूर ब्रह्मक्षत्रिय कुलके, साहसिक-स्वाश्रयी-शूरवीर एवं युद्धप्रिय *'गणेशचंद्र'* और स्नेह एवं मधुरताकी मूर्ति *'रूपादेवी'* के संसारमें-जैनशासनके समर्थ ज्योतिर्धर, शास्त्र और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयमकी शेर-गर्जना से शिथिलता, जड़ता, पाखंड़के युगव्यापी अंधकारके एक मात्र विदारक, नवयुग निर्माता, यथानाम तथा गुणोपेत, चूंबकीय आध्यात्म शक्तिके स्वामीका-उदीयमान दिनकर जैसे पृथ्वीके श्री और सौंदर्यको वर्धमान करनेवाले देवरूपधारी बालक *'आत्मा'* का-परमोत्तम और महामंगलमय चैत्र मासकी शुक्ल प्रतिपदा-वि.सं.१८९४ (गुजराती-वि.सं.१८९३)-तदनुसार ई.स.१८३६ गुरुवार-पंजाब स्थित जीरा तहसिलके लहरा गाँवकी पावन धरा पर अवतरण हुआ।[८]

माता-पिता और स्नेहीजनोंके लाडप्यार और पारिवारिक सुखमें झुलता बचपन ---

"होनहार बिरवानके होत चिकने पात"-लोकोक्ति अनुरूप आपका वदनकमल विशिष्ट तेज, अद्‌भूत कान्ति और स्वभावसिद्ध प्रभाविकताके कारण मूल्यवान हीरेकी तरह चमकता था; तो प्रकृतिकी गोदमें पलनेवाले नैसर्गिक शारीरिक सौष्ठव प्राप्त उनका अनुपम लालित्य भी जन-मनको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला था। उनके अवतारी जीवने उस समय मानवाकार धारण किया, जब धार्मिक तत्त्वोंका संहार हो रहा था, लोग धर्मसे विमुख होते जा रहेथे। सद्धर्म प्रकाशक और प्रचारक विरले ही थे। पाखंड़-शिथिलता और अविद्याका अंधकार विस्तृत होता जा रहा था। तत्कालीन ग्राम्यजीवनकी छबि अंकित करता हुआ रेखाचित्र दृष्टव्य है-यथा- "उस समयके तरुण दिनभर खेला करते थे। प्रकृतिका अनाच्छादित विस्तीर्ण प्रांगण ही उनका क्रीडास्थल होता, सूर्यकी जीवनदायिनी किरणें ही उनकी त्वचाके लिए पौष्टिक विटामीनका काम देतीं, नदीमें सतत बहनेवाला शीतल-स्वच्छ जल उनका स्फूर्तिवर्धक पेय होता, गाँवके खेतोंमें उत्पन्न होनेवाली हरी-हरी ताज़ा सब्जियाँ व ऋत्वानुसार पकनेवाले फल उनके आहारका काम देतें तथा धारोष्ण दूध और सदा शीतल लस्सी उन्हें उसी प्रकार स्वादिष्ट लगती जैसे देवताओंको अमृत ! किसी साधु-संतके मुख-कमलसे सुना गया एकाध उपदेशात्मक दोहा अथवा नैतिक आख्यान उनके ज्ञानभंडार भरनेके लिए पर्याप्त था।[९]

ऐसे परिवेशमें अक्षरज्ञानसे वंचित रहनेवाले दित्ताने अपनी विशिष्ट प्रतिभासे ताश या शतरंजका खेल हों या कबड्डी आदिकी स्पर्धा; साहसिकता स्वरूप निशानबाजी-मल्लयुद्ध-गदायुद्ध हों या चित्रकारितादि अनेकविध कलाक्षेत्रोंमें सदा-सर्वदा विजय ध्वज ही फहराया था। अपने मित्रोंको सैनिक शिक्षा देनेवाले इस बाल योद्धाके लिए सेनानियोंकी हूबहू नकल करना-मनोविनोदके साधन जैसा था। वे अपने साथियोंके बेताज़ बादशाह थे, तो नैतिकता-प्रमाणिकता में भी अपना सानी नहीं रखते थे। सच्चाईमें उनके वचनोंको ही प्रमाणरूप माना जाता था।

माँ भारती जिस समय स्वतंत्रताकी प्रसुति पीड़ासे कराह रही थी, हिन्दुस्तानके कोने-कोनेमें जब शौर्य-साहसके बिगुल बज रहे थे, ऐसे नाज़ूक कालमें-गणेशचंद्रजीका आत्मज़-पिताके अनुकरण स्वरूप हाथमें नंगी तलवार लेकर डाकूओंसे अपने घरकी सुरक्षाके लिए खडा रहनेवाला दित्ता-सत् और सत्यशास्त्र रूप शस्त्रोंके बलपर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वर बनकर सारे समाज़की अंतरंग शत्रुओंसे रक्षा करनेको कटिबद्ध हों इसमें क्या आश्चर्य?! आपकी नाड़ियोंमें बहनेवाले पराक्रमी पिताकी शूरवीरताके संस्कारयुक्त खूनके कारण कूट-कूट कर भरी पड़ी साहसिकता और निर्भीकताके बल पर ही जीवनके हर मोड़ पर डटकर मुकाबला करके आप सदा विजयी बनकर गुज़रें हैं-चाहे बचपनमें नदीमें से डूबती मुस्लिम अबलाको उसके अंगज़ समेत बाहर निकाल कर बचानेका प्रसंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हों या युवानीमें पूज्य गुरुदेव एवं साथियोंकी रक्षा हेतु भिल्ल से भीड़ कर उसे सबक सिखानेका अवसर हों; चाहे किशोरावस्थामें पालक पिताश्री जोधाशाहकी लखलूट सम्पत्तिका लुभावना आकर्षण छोड़नेका पल हों या स्थानकवासी संप्रदाय के अत्यंत सम्माननीय और प्रतिष्ठित जीवन त्यागनेका समय आयें-हर वक्त दृढ़ निर्धारसे सत्यपंथके प्रवासी बनकर विजयकूच ही की हैं। साथसाथमें आत्मिक-अहिंसक युद्धमें भी वीरता-धीरताके बल पर आंतररिपुओंको परास्त करनेमें सदाबहार बसंतकी भाँति खिल उठे हैं।

लघुवयमें पितृवियोग---लेकिन, गणेशचंद्रजी अपने प्रिय पुत्रकी साहसपूर्ण बालचर्यामें बीज़रूपसे रही हुई गुणसंततिके भाव विकासको देखनेके लिए सौभाग्यशाली न बन सके; न वीर पुत्र आत्माराम, वीरपिताकी पुनित छत्रछायामें अपने चमत्कारपूर्ण भावि जीवनको विकासमें लानेकी उपयुक्त सामग्रीसे लाभान्वित हो सके। भाग्य विधाताकी भव्य बुलंदीने हिंसात्मक वीरताकी परिणति प्रगट होने पूर्व ही उसे अहिंसात्मक परिवेशका पुट देकर प्रमार्जित करनेकी चेष्टा की। तात्त्विक दृष्टिसे कर्मोदयसे प्राप्त इस परिस्थितिके निर्माणमें निःसंतान जागीरदार सोढ़ी अत्तरसिंहजीकी, आत्मारामजीको अपने वंशतंतु कायम करनेवाले पुत्र रूपमें प्राप्त करनेकी प्रबल जिगिषा रूप दृष्टि निमित्त बन गई। क्योंकि महन्त श्री सोढ़ीजीकी पैनी दृष्टिसे, दित्ता-किसी वनराज शेरकी संतान भेड़-बकरोंके समूहमें गलतीसे रास्ता भूलकर आ पहुँची हैं[१०], अथवा कोई तेजस्वी नक्षत्र टूटकर पृथ्वीपर आ गिरा है, जो भविष्यमें या तो राजा होगा या राजमान्य गुरु।[११].

अत्तरसिंहजीकी 'पुत्रदान' याचनाको ठुकरानेके परिणाम स्वरूप गणेशचंद्रजीको जीवनसे हाथ धोना पड़ा और नव पल्लवित पौधे स्वरूप अबोध बालक दित्ताको, उसकी भाग्यदोरने जीराके लाला जोधेशाहजीके घर पहुँचाकर धर्मामृतसे अभिसिंचित जीवनोद्यानमें विकस्वर होकर अहिंसा धर्मके वट-वृक्ष स्वरूप पानेका सौभाग्य बक्ष दिया वि.सं.१९०६। [१२]

जोधाशाहजीके घर परवरिश---बाल दित्ताका दिल इस समस्यामें उलझा था कि आखिर इस प्रकार प्राणप्यारे 'माँ-बाप' अपने कलेजेके टूकड़ेको क्यों त्याग रहें हैं? अफसोस, इस उलझनको सुलझानेवाला इस नये घर-परिवार-परिवेशमें, समयके प्रवाहके अतिरिक्त कोई न था। शनैः शनैः देवीदास नामाभिधान दित्ता इस नये वातावरण-परिवार-मित्रमंडलादिके साथ हिल मिल गया। पारिवारिक जनोंके निःसीम वात्सल्य-प्यार दुलारने मनके घावको रुझानेमें अक्सीर मल्हमका कार्य किया-और अब उसका मन लगने लगा।[१३]

उस परिवारके धार्मिक संस्कार रूप 'अहिंसा परमो धर्म'की प्रकाशमान तेज़रेखाने उसे पतंगेकी भाँति अपनी ओर आकर्षित किया, जिसने अपनी अंतिम सांस तक उस तेज़रेखा को विशेष प्रज्ज्वलित और प्रकाशित रखनेके लिए सर्वस्व समर्पित किया।

प्रत्येक प्रभाविक व्यक्तित्वधारी अपनी प्रारंभिक अवस्था-किशोरावस्थामें जिस मानसिक कसमकसका सामना करता है, वही अनुभव वे भी करने लगे। आत्मा की अगोचर-अदम्य शक्ति का स्रोत फूट पड़नेके लिए विवश बनता जाता था। मनोमंथन मानसिक बिलोड़न कुछ करनेके लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मचल रहा था। कभी गंभीर तो कभी चंचल तन-मनका प्रवाह दिशा ढूंढ रहा था। वे अगम्य गूढ शक्तियोंकी करामतें देवीदासकी ऊंगलियोंसे बरबस बहने लगीं। किसीसे भी मार्गदर्शन या शिक्षा पाये बिना ही उन ऊंगलियोंसे खिंची गईं रेखायें अपने आपमें अनूठे चित्र स्वरूपको ग्रहण कर लेने लगीं। कैसा भी दृश्य एक बार देख लेने पर उसका तादृश चित्र बनाना, मानों उनके बायें हाथका खेल था। पशु-पक्षी हों या नर-नारीका; नैसर्गिक सौंदर्य हों या कल्पना पंखेरुकी उड़ानका चित्र हों-चित्रित करनेमें वे बड़े ही निपुण थे। अंग्रेजों और सिक्खोंकी लड़ाई, दोनों सेनाओंका परस्पर युद्ध, दौड़ते घुड़स्वार, इधर-उधर भागते हुए सशस्त्र सैनिक, सैन्यकी चलती हुई पल्टनको चित्रित करना हों या जोधाशाहजी के मकानको चित्रितकर उसमें स्वयं लालाजी और पारिवारिक जनोंका रेखाचित्र अंकित करना हों वा ताशके पत्ते चित्रित करने हों-ये और उनके सदृश कईं चित्रोंको चित्रित करना इनके मनोरंजनका साधन था।[१४]

एकबार एक अफसरके 'ताश' मंगवाने पर, उदार-जिंदादिल, मित्रमंडलीके इस अफसर 'आत्मारामजी'ने जब हस्तचित्रित ताश भेंट कर दिया, उस वक्त प्रसन्नतासे उस परदेशी अफसरने इस बाल-कलाकारकी अद्‌भूत कलाकी हार्दिक प्रशंसा करते हुए, बड़े भारी सम्मानसे पुरस्कृत किया। लेकिन, अफसोस, एक गैरसे तारिफ़ पानेवाले इस महान कलाकारकी स्वजन-स्नेहीजनोंने-'घर की मूर्गीदाल बराबर'-न उसकी कद्र समझी, ना उन उत्तम कृतियोंका कोई संकलन ही किया -नाहि कहीं नामोनिशान तक रहा;जो प्रायः किसी भव्य संग्रहालय या कला प्रदर्शनीको शोभायमान करनेका सम्पूर्ण सामर्थ्य रखती थीं। ऐसा क्यों हुआ ? शायद, तत्कालीन जनसमाजकी घोर अज्ञानता, कला-परख का अभाव, संग्राहक रसिक-परीक्षक कला दृष्टि शून्यता-या ग्रामीण जड़-मूर्खता ही मानो!

ऐसे अनेक चित्रोंके अंकनकर्ता-इस बाल चित्रकारने क्रमशः पुख्तता प्राप्त कर जैन समाजके मानचित्रको भी समूचे-सुंदर ढ़ंगसे यथासमय-यथायोग्य इस कदरसे चित्रित किया; अपनी दूरंदेशीय कल्पनाके ऐसे स्वर्णिम-सुरम्य रंग भरे जो आज भी जैन संघके समस्त साधु और श्रावक समाज़ रूप दोनों नेत्रोंको प्रमोदित कर रहे हैं। उसी रंगमें रंगा जैन धर्म, आपके ही अथक-अविश्रान्त-अतुल परिश्रमके परिणाम स्वरूप सारे विश्वमें श्रीयुत् वीरचंदजी गांधीके सहयोगसे प्रचलित-प्रकाशित एवं प्रसारित हो पाया। आपकी उन गूढ शक्तियोंकी ही देन है कि अद्यापि अन्य धर्मावलम्बी-आस्थावान् भक्तगण उन्हें अंतरकी गहराईसे चाहते हैं।

यही चित्रांकन आपके विविध ग्रन्थालेखनमें भी कदम-कदम पर बिखरे पुष्पकी सजावट देते हैं यथा - (१) अशरणके शरण श्री अजितनाथ भगवंतकी स्तवना करते हुए शरण्य-भावांकन---

"जन्म मरण जल फिरत अपारा.....हुं अनाथ उरझ्यो मझधारा.....
कर्म पहार कठन दुःखदायी.....नाव फसी अब कौन सहायी ।
पूर्ण दया सिन्धु जगस्वामी, झटति उधार कीजोजी.....तुम सुणीयोजी.....।[१५]

(२) पैनी दृष्टिसे किया गया संसारकी क्षण भंगुरताका चित्रण -

"आलम अजान मान, जान सुखदुःख खान, खान सुलतान रान, अंतकाल रोये हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रतन जरत ठान, राजत दमक भान, करत अधिक मान, अंत खाख होये हैं ।।
केसुकी कली-सी देह, छीनक भंगुर जेह, तीनही को नेह एह, दुःख बीज बोये है ।
रंभा धन धान जोर, आतम अहित भोर, करम कठन जोर, छारनमें सोये हैं ।"[१६]

(३) ज्ञान प्राप्तिके प्रति समाजकी उदासीनता देखकर दुःख व्यक्त करते हुए उद्‌गार तत्कालीन समाज स्वरूपको मूर्तिमंत करते हैं-मुसलमानोंके राजमें जैनोंके लाखों पुस्तक जला दिए गए और जो कुछ शास्त्र बच रहे हैं, वे भंड़ारोंमें बंद कर छोड़े हैं। वे पड़े पड़े गल गये हैं, बाकी दो-तीन सौ वर्षमें गल जायेंगें। जैसे जैन लोग अन्य कामोमें लाखों रूपये खरचते हैं, तैसे जीर्ण पुस्तकोंके उद्धार करानेमें किंचित् नहीं खरचते हैं। और न कोई जैनशाला बनाकर अपने लड़कोंको संस्कृत धर्मशास्त्र पढ़ाता है। जैनी साधुभी प्रायः विद्या नहीं पढ़ते हैं, क्योंकि उनको खानेका तो ताज़ा माल मिलता है, वे पढ़के क्या करेंगें ? और यति लोग इन्द्रियोंके भोगमें पड़े रहे हैं, सो विद्या क्यों कर पढ़ें ? विद्या के न पढ़ने से तो लोग इनको नास्तिक कहने लग गए हैं, फिर भी जैन लोगोंको लज्जा नहीं आती हैं ।"[१७]

ऐसे अनेक सजे हुए हीरे-रत्नोमें कोहीनूर की तरह शान-शौकत चमकानेवाली और दर्शक-पाठक वृंदको आश्चर्यके उदधिमें डूबोनेवाली कलाकृति हैं-'जैन मत वृक्ष'। राष्ट्रीय, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक और कलाके परिवेशमें जिस कृतिकी कोई कल्पना भी न कर सकता था; उस अंधाधूंध अंधकार युगमें आपने अवसर्पिणीकालकी वर्तमान चौबीसीके आद्यंत तीर्थंकरोंका और चरम तीर्थपतिकी पट्ट परंपराका इतिहास शाखा-प्रशाखा-फूलपत्तियोंके नयनरम्य सुहावने समूहसे सुशोभित वृक्ष-रूपमें चित्रित करके अनूठे कल्पना चित्रण का पुट पेश किया है।

बाल सुलभ चेष्टारूप इन्हीं चित्रोंके रेखांकनने विकासपथके चरणचिह्नों पर स्वयंकी अदम्य-अगम्य-अदृश्य शक्तिको संचरित, करनेका जब प्रयत्न किया गया, तब चिरपरिचित फिरभी प्रच्छन्न सत्य और अहिंसाके मार्गकी प्राप्ति जीवनसूत्रके रूपमें हुई। रोम-रोमसे मुखरित सत्यनिष्ठाके प्रभावसे ही आप अपने समय के महान और सामर्थ्यवान युगपथदर्शक-युग प्रवर्तक-युग निर्माता बन सके। बाल वयमें-समवयस्क साथियोंमें जिस परम सत्यवादी दित्ताकी साक्षीको वृद्धभी मान्य करते थे; वही युवक आत्मारामकी युवानीमें सत्य ही साँसथी-सत्य पर ही आश थी; सत्यही आपके प्राण थे और सत्य ही आपका प्रण भी।

लाखोंमें एक---यह वह समय था जब देवीदास कभी तो भावि महान चित्रकारके रूपमें नयनपथमें झलकता था तो कभी परमोकारी-जीवदया प्रतिपालकके रूपमें स्वयंके जी-जानकी परवाह न करके अन्यके जीवनको बचाता हुआ-मौत के मुँहमेंसे वापस खिंचनेवाला स्वरूप दृष्टिगोचर होताथा;[१८] कभी प्रकृतिकी गोदमें घूमते नज़र आते या कभी नदीमें तैरते हुए। यही कारण है कि आपने सौष्ठवयुक्त, तेजस्वी, प्रतिभावंत, मांसल गात्रोमें छिपी पंजाबी व्यक्तित्वयुक्त आकर्षक देह विभूतिकी अपूर्व दैवी शोभा नैसर्गिक रूपसे ही प्राप्त की थी। 'लाखों में एक'-ऐसी तासीरवाला व्यक्तित्व वह होता है जिसका बाह्याभ्यन्तर स्वरूप समान रूपसे चमकता हों। देवीदासकी देवतुल्य अद्‌भूत कांतिसे युक्त सुगठित-सुडोल-लम्बीकाया, विशाल ललाट, उज्ज्वल-तेजस्वी-सुदीर्घ नेत्रयुगल, सागर सी गंभीर मुखमुद्रा और मेरुसदृश उन्नत एवं निश्चल वक्षःस्थल, असीम वात्सल्य पूर्ण-विश्व प्रेमसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छलछलाता हृदयकमल सुदृढ एवं मज़बूत भुजायें, प्रबल पुण्य प्रभावसे शोभायमान चूम्बकीय-चमत्कारिक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व बाह्य रूपरंगकी आभा बिखेर रहा था; तो आजीवन सत्य भेखधारीकी सत्यके ही मूर्तिमंत स्वरूपमें, जन्मजात नेतृत्वकी झलकती और छलकती दिलेरी एवं मर्दानगी युक्त रोम-रोममें निवसित क्षात्रवट, साहसिकता, निर्भीकता, सहनशीलता, गंभीरता, धीरता एवं वीरताके साथ वाक्संयमितता, दृढ़ता, उदारता, दया-करुणा और परोपकार परायणतादि अंतरंग गुणयुक्त आध्यात्मिक सुमन समूहोंकी सुवास सर्व जन-मनको आह्लादित कर रहीं थीं।

धार्मिक व्याप और जैन मुनिसे परिचय---ऐसे होनहार वीर बालक देवीदासने जैनधर्म संस्कार युक्त धर्मप्रेमी जोधाशाहजीके परिवारके अहिंसक संस्कार रश्मियोंको झेलना-सिखना प्रारम्भ किया। शनैः शनैः देवीदासके कोरे कागज जैसे निर्मल-स्वच्छ मानस पट पर सामायिक-प्रतिक्रमणादि धार्मिक अनुष्ठानोंका सुरुचिपूर्ण अंकन होने लगा। लहराके ग्रामीण वातावरणमें से बाहर आकर जीरामें लालाजीके घर सुंस्कारोंकी सुवास पाकर देवीदासका अंतरपट बाग-बाग हो गया। घरके वातावरणके स्वाभाविक प्रभावसे वे कैसे वंचित रह सकते थे? यहीं पर ही उनके हृदयकी हलचलसे तरंगित मनोवृत्तियोंको उचित मार्गदर्शन मिला। लालाजी से कुछ व्यावहारिक एवं व्यापारिक शिक्षा प्राप्त होने लगी और उधर आवागमन करनेवाले व चातुर्मास बिराजित जैन मुनियों से धार्मिक अभ्यासमें प्रगति होने लगी। देवीदासने नवतत्त्वादिके ज्ञानार्जनके साथसाथ उन मुनिराजोंके सहवासमें आत्मिक जागृतिका अनुभव किया। वैराग्य गर्भित देशना प्रवाहोंके शीतल पानसे अद्यावधि किया हुआ ज्ञानाभ्यास आत्म चिंतनकी धाराको सबल करने लगा।[१९] फल स्वरूप विषैले, अस्थिर, असार संसारके प्रति इस नवयुवकके मनमें निर्वेद पनपने लगा संसार के प्रति निर्लेपता, उदासीनता, और संयम प्रति झुकाव बढ़ने लगा।[२०]

संसार त्याग भावना---चिन्तनके इस आलोडनमें उन्होंने आलोकित किया-क्या ?-संसारका मार्ग सरल है-जीवन यापनके लिए ठीक है, लेकिन लक्ष्य बिन्दुकी प्राप्ति करानेवाला तो त्यागका कठिन मार्ग ही है। जीवन युद्धमें बल और साहस आवश्यक है, लेकिन, युद्धमें क्रूर-हिंसक-अनेकोंके प्राणनाशक विजय सच्ची है अथवा अंतरमनकी बुराइयों पर विजयी बनना-सच्ची वीरता है ? शाश्वत सुख किससे?-हिंसक युद्ध विजयसे या इन्द्रिय दमनसे विषय-वासना पर विजय प्राप्त करवानेवाले अहिंसक युद्धसे? अंततः आपने पाया शांतिप्रद-आध्यात्मिक आनंद क्या है-कहाँ है-कैसे प्राप्त किया जाय ?

उनके चित्तप्रदेशके चिंतन कुसुमोंने त्याग मार्गकी सुवाससे अपने दिल-दमागको पूरित कर दिया-सारे जीवनको सुवासित कर दिया। फलस्वरूप त्यागमार्ग अंगीकार करके साधुजीवन स्वीकृत करनेका दृढ़-अटल-अविचल निश्चय कर बैठे। न चलित कर सके उसे स्नेह और वात्सल्यभरे जोधाशाहजीकी लखलूट संपत्ति या सांसारिक, वैवाहिक, वैभविक लालचके बंधन[२१] एवं न रोक सकी ममतामयी माताकी दिलकी, मातृऋणका बदला चूकानेके कर्तव्यकी पुकार अथवा अविरत बहनेवाली अश्रुधाराकी फिसलानेवाली जंजीर।[२२] आपको तो श्रेयस्कर था केवल, स्व-पर आत्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्याणकारी, जीवनोन्नतिमुख उत्तम-आध्यात्मकी पुनित प्राप्ति; सच्ची सुख प्राप्तिका सच्चामार्ग-त्यागमार्ग; जिस फकीरीके घुमक्कड, कठोर तप और त्यागमय, कठिनतम जीवनको अपना कर रंक से राय, जीव से शीव, छोटे से बड़े तक प्रत्येक व्यक्ति अनंत-अव्याबाध-अक्षय सुखमय परमपद प्राप्त करते है वह साधु जीवन।

दीक्षाग्रहण---आपके दृढ़ निश्चयको जानकर एवं अनुभव करके ममतामयी माता और वात्सल्य मूर्ति धर्म पिता-परिवार-मित्र-स्नेहीजन-सभी हार मान गये। सभीने अंतरके हार्दिक आशीर्वाद-शुभ कामनाओंके साथ संन्यस्त जीवनके लिए संमति देकर अपने लाड़लेको विदा किया। माता-पिता-परिवारकी संकीर्ण परिधिमें से मुक्त विश्व संकुलके लाडले आत्मारामने अहिंसा-सत्यादिकी ज्वलंत ज्योतरूप पंच महाव्रत धारणकर स्वनाम सार्थक-उज्ज्वल, धन्य व महान बनानेके लिए साधु जीवनको अंगीकृत किया-वि.सं. १९१०। मृगशिर शुक्ल पंचमी तदनुसार ई.स. १८५३।[२३]

ममतामयी माता के संतोषपूर्ण अनराधार बरसते आशिषके बल पर, ढूंढक गुरु श्री जीवनरामजीका शिष्यत्व स्वीकार कर आत्मारामजीने अहिंसा-सत्यादिकी बुलंदीवाले उत्तम जीवन राह पर त्रिविध त्रिविध आत्म समर्पण कर दिया और बन गये मुनि श्री आत्मारामजी महाराज। ज्ञानार्जनकी अभिरुचिके जो बीज बचपनमें बोये गये थे, अब मस्तिष्क धराको फोड़कर अंकुरित हो रहे थे। शनैः शनैः छोटेसे गमलेमें से एक विशाल वटवृक्ष बननेको लालायित हो रहे थे। दीक्षोपरान्त तुरंतही विद्या व्यसनी इस नवयुवकने अपनी सारी शक्ति ज्ञानार्जनमें ही लगानी प्रारंभ की।

ज्ञान पिपासा तृप्ति एवं संयमाराधनार्थ सतत परिभ्रमण---ज्ञान प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा, तेज़ याददास्त और स्वच्छ-निर्मल बुद्धिसे-अभ्यास नैया अनेक विद्वान साधु एवं गृहस्थ रूपी पतवार के सहारे ज्ञान महार्णवकी तरंगो पर शीघ्रगतिगामी लक्ष्यबिन्दु तक पहुँचनेके लिए बावली बन रही थी। पल मात्र भी प्रमादका सेवन अध्ययन-रत आत्माको कैसे सुहाता ? अग्निमें ईंधनकी भाँति ज्ञान क्षुधासे पीड़ित आत्माको कितना भी पढ़े संतुष्टि कहाँ ? प्रत्युत, जितना पढ़े उतनी लगन बढ़ती जाती थी।

आपके गुरुश्री जीवनरामजी म. इतने अधिक ज्ञान सम्पन्न तो थे नहीं कि इस ज्ञान क्षुधाग्निको संतुष्ट कर सकें।[२४] इसी कारणवश आपको ज्ञान प्राप्तिके लिए तनतोड़-अविरत-अद्वितीय, प्रयत्न-परिश्रम और प्रवास करने पड़े। जहाँ कहीं, किसी भी ज्ञानीका जिक्र हुआ, किसी कोनेमें भी ज्ञान-प्राप्तिके आसार मिले, आप तुरंत वहाँ पहुँच जाते और उस अमूल्य ज्ञान-वारिका पान करते नहीं अघाते। ज्ञानामृत पानके लिए तो वे विश्वके कोने कोनेमें जानेको तत्पर थे। पाँच वर्षमें ही साधिक दस हज़ार श्लोक कंठस्थ करके, ३२ आगम शास्त्रोंकी थाह पाकर-सकलागम पारगामी बनकर तत्कालीन समाजके अनेक प्रतिष्ठित विद्वान ढूंढ़क साधुओंकी पंक्तिमें स्थान पाना-उनकी बुनियादी, ठोस विद्वता का कीर्ति कलश था।

स्थान-स्थान पर गंभीर ज्ञान-गरिमाके स्वामीके चर्चे होने लगे थे, लेकिन इस सम्मान युक्त कीर्ति पताकाने उन्हें प्रसन्न करनेके प्रत्युत अधिक असमंजस भरी उदासीनता और उलझनमें उलझा दिया। मनघडंत पंचायती अर्थोंके आलाप और 'टब्बा'के अस्पष्ट अर्थोंके कारण मनमें उभर रही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंकाओंसे व्युत्पन्न संघर्षने उन्हें बेचैन बना दिया। मनोसाम्राज्यकी विचार संततिने, पटवा वैद्यनाथ एवं मुनि फकीरचंदजीकी अमृत तुल्य-संस्कृत, प्राकृतके व्याकरणाभ्यास करनेकी-हितशिक्षा और काव्य, कोष, छंदालंकार, व्याकरणादिको व्याधिकरण माननेकी बेइलमीके मध्य तुलना करते करते सत्य गवेषक आत्मा के विवेक-चक्षु उद्घाटित हुए;[२५] तब उन्होंने अनुभव किया कि इस मूर्तिपूजा विरोधी समाजसे अधिक प्राचीन, अन्य मूर्तिपूजा समर्थक और पंचांगी स्वरूप पैंतालीस आगमोंकी रचना एवं अनेकों गच्छ-सम्प्रदायोंके पूर्वाचार्यों रचित अनेक संस्कृत-प्राकृत साहित्यसे अत्यधिक समर्थ व समृद्ध समाज है। इनमेंसे जैनत्वका सच्चा प्रतिनिधित्व कर्ता किसे माना जाय ? और किसे अपनाया जाय?

सत्यकी झाँकी और श्री रत्नचंद्रजीका विशिष्ट सहयोग---ज्ञान प्राप्तिमें बाधक साम्प्रदायिक रूढ़ियोंकी दिवारें और अपने पूज्य गुरुजीके निषेधोंकी परवाह किये बिना सच्चे पथिकका अन्वेषण, त्रिकालदर्शी सर्वज्ञ प्ररूपित अनंतज्ञान राशिकी ओर प्रवृत्त हुआ।[२६] फलतः व्याकरण-न्यायादिका अभ्यास; विहारमें आनेवाले विभिन्न स्थानोंके ज्ञानभंड़ार स्थित अनुपम श्रुतवारिधिका पान; जैन संस्कृतिको गौरवान्वित बनानेवाली हजारों भव्य प्रतिमायें और अनेक प्राचीन विशाल जिनमंदिरादिके निदर्शन;[२७] देशुग्रामसे प्राप्त श्री शीलांकाचार्य कृत 'श्री आचारांग सूत्रकी टीका'का अध्ययन;[२८] उन सबके शिरमौर रूप, श्री रत्नचंद्रजी म.से आग्राके चातुर्मासमें प्राप्त अनेक शंकाओंके समाधानकारक एवं आत्मोल्लासको वृद्धिगत करनेवाला सत्य-शुद्ध-असंदिग्ध आगमज्ञान व मनमें उठनेवाली प्रत्येक उलझन एवं चर्चास्पद विषयोंका युक्तियुक्त सुलझाव[२९]-इन सबने श्री आत्मारामजीके अंतरात्माकी निश्चल आस्था प्राचीन आदर्श और निर्मल शास्त्र सिद्धान्तोंकी ओर दृढ़ कर दी।

साथियोंसे परामर्श---मुनिश्री रत्नचंद्रजीके संपर्क पश्चात् उनकी ही हितशिक्षा के प्रभावसे सत्यनिष्ठ श्री आत्मारामजीने प्रभु-प्रतिमाकी निंदा अपवित्र हाथोंसे शास्त्रोंके स्पर्शका त्याग किया और ढूंढ़क वेशमें ही गुप्त रूपसे मंद फिर भी निश्चल गतिसे प्रचार-प्रसारके लिए अपने सहयोगी-साथी श्री विश्नचंदजी आदि साधुओंको भगवान श्री महावीर द्वारा प्ररूपित आदर्श जैन धर्मकी प्राचीनताकी, द्रव्य और भावसे आदर्श मूर्तिपूजा की, जिन प्रतिमा एवं जिनमंदिरोंकी विधेयात्मकताकी प्रतीति; स्थानकवासी साधुवेश एवं मुंहपत्ति विषयक निरूपण तथा भ. महावीर स्वामीकी गच्छ परंपरामें ढूंढ़क संप्रदाय का स्थान ("है ही नहीं"-यह बात)-इन सबका अनेक मूल-आगम ग्रंथो और तत्संबंधी पंचांगीरूप अनेक शास्त्रीय ग्रन्थोंके संदर्भ पाठोंकी शास्त्रीय चर्चासे संतुष्ट करके; सत्य तथ्यके अन्वेषणकी ओर मोड़कर मन परिवर्तन द्वारा जैन धर्मके सच्चे राह पर स्थिर किया एवं दृढ़ आस्थावान बनाया।[३०]

वि.सं. १९२१ के मालेर कोटलाके चातुर्मासमें शास्त्रीय दृष्टि और तटस्थ मनोवृत्तिसे अपने साथियोंको तैयार करके अर्थात् सर्वेसर्वा विशुद्ध जैन धर्मानुगामी मानसधारी बनाकरके सज्ज करनेके पश्चात् चातुर्मासकी समाप्तिके समय ढूंढ़क वेशान्तर्गत ही गुप्त रूपसे शुद्ध श्रद्धानयुक्त सम्यक् धर्मके प्रचार-प्रसारके निर्धारित कार्यके लिए कटिबद्ध किये; परिणामतः इन्हीं साधुओंके एकनिष्ठ-लगनयुक्त सहयोगसे भविष्यमें गंतव्य स्थानको प्राप्त कर सकें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सद्धर्मकी प्ररूपणा-अमृतसरमें पूज्यजी अमरसिंहजीसे पूज्य गुरुदेवके, सत्यधर्म प्ररूपणायुक्त उपदेश विषयक-बोलचाल रूप कलहके फल स्वरूप और दिल्ही-बडौतादि-ग्राम-नगरादिमें पूज्यजी द्वारा आपके विरुद्ध किए गए प्रत्यक्ष प्रचारके कारण अब आपने प्रच्छन्न रूपसे उपदेश देना त्यागकर प्रकट रूपसे शुद्ध धर्मकी प्ररूपणा 'जिन प्रतिमा न पूजने'की विरुद्ध एवं ढूंढ़क परंपरा, साधुवेशादिके सत्य स्वरूपका उपदेश देना अंबालासे प्रारम्भ किया।[३१] विशिष्ट शास्त्रीय प्रमाणोंके ज्ञान प्रकाश और प्रतिभा प्राचुर्यसे जैसे शेर गर्जना करते हुए अबोध जनताकी गहरी निंद हटाकर ज्ञान गंगामें स्नान कराते हुए शुद्ध और पवित्र किया। आपके प्रवचनोंसे प्रभावित अनेक लोगोंने सनातन जैन धर्मको पूर्ण श्रद्धासे स्वीकारा। पंजाबका प्रत्येक क्षेत्र आपके स्वागत के लिए लालायित बना।

पूज्यजीके मेजरनामा (प्रतिवाद-पत्र) प्रकरण, भक्तोंको मूर्तिपूजा विरुद्ध उकसानेके भरसक प्रयत्न, अपनी आम्नायके साधुओंको न मिलने देनेका नियम करवाना, श्रावक भक्तोंको श्री आत्मारामजी म.को. गौचरी-पानी-वसति (आहार-पानी-स्थान) न देनेका आदेश---आदि हर प्रकारसे हाथ-पैर मारनेके बावजूदभी पूज्यजी अपनी डूबती नैयाको बचा न सके। श्री आत्मारामजी म.का सच्चे जिनशासनकी प्रभावनारूपी जहाज़ अविरत गतिसे ध्येय प्राप्तिकी और प्रगतिमान था। हज़ारो भाविक भक्त उसमें बैठकर भवरूप समुद्र पार करने के लिए अत्यंत उत्कंठित हो उठे थे। बचपनसे ही उल्टे प्रवाहमें तैर कर अन्योंका उद्धार करने के वीरत्व और साहसपूर्ण जन्मजात स्वभाववाले श्री आत्मारामजी महाराजने अनेक विटम्बना-विरोधोंके अवरोधादि आंधी-बवंड़रके सामने अथक परिश्रम पूर्वक बड़ी धीरता-वीरता-गंभीरतासे हज़ारों ढूंढ़क पंथके मलिन संस्कार वासित अज्ञानी श्रावकोंको शुद्ध-संपूर्ण श्रद्धासे प्राचीन जैन धर्म परंपरामें प्रविष्ट करानेका श्रेय प्राप्त किया। जैसे विरोधकी हवा टिमटिमाते दीपकको नामशेष कर सकती है, लेकिन धगधगायमान अग्निको तो अधिकाधिक प्रदीप्त करनेका ही कारण बनती है। यह गौरवान्वित चित्रण निम्न शब्दोंमें अंकित है- "श्री आत्मारामजीके सत्यनिष्ठ आतमबल पर अवलम्बित क्रान्तिकारी धार्मिक अंदोलनने ढूंढ़क मतके अभेद्य किलेको छिन्न भिन्न कर दिया.....लगभग दस वर्षके (१९२१ से १९३१) इस क्रान्तिकारी धार्मिक आंदोलनोंमें उन्हें जो सफलता प्राप्त हुई उसकी साक्षी पंजाबके गगनचुंबी अनेकों जिनालय और उनके सहस्त्रों पूजारी हमें प्रत्यक्ष रूपमें दिखाई दे रहे है ।"[३५]

पाखंड, शिथिलता और अविद्याके अंधकारके एक मात्र विदारक, सद्धर्मके प्रचारक और प्रसारक विरल विभूति श्री आत्मारामजी महाराजजीका यथार्थ चित्रण दृष्टव्य है---

"छूटा था देवपूजन और भक्ति भावना भी,
यह भी खबर नहीं थीं, क्या धर्म है बिचारा ?

इस देशमें कहीं भी, कोई न जानता था, होता है साधु कैसा जिन धर्मका दुलारा ? ऐसे विकट समयमें अनेक आपत्ति और विरोधका सामना करना और जैनधर्मके सच्चे स्वरूपका प्रचार करना इसी माईके लालकी हिम्मत थी ।" [३३]

तभी तो कहा जाता है कि विरोध ही महान पुरुषोंकी धीरताकी कसौटी है। कई सालोंसे आदर्श जैनधर्म पर सर्वेसर्वा अधिकार जमानेवाले ढूंढ़क पंथके बादल आच्छादित थे। उन घने बादलोंको अनिलवेगी श्री आत्मारामजी म.सा. एवं उनके वीर साथियोंने क्षत-विक्षत कर बिखेर दिया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। लोगों के अज्ञानका पर्दा हट गया था। पढे लिखे श्रद्धालु आत्मार्थी श्रावक ढूंढ़क पंथका त्याग कर धड़ाधड़ जैन धर्म अंगीकार कर रहे थे। वातवरण यहाँ तक उत्तेजित हो गया था कि पूज्यजीको आहार-पानी आदि न मिलने के संभावित ड़रसे पंजाबसे मारवाडादि अन्यत्र विहार कर जानेके विचार आने लगे ।[३४]

ढूंढ़कमत त्याग---इस भाँति क्रान्तिकारी---बवंडर सदृश पूरजोश धार्मिक आंदोलनोमें यशस्वान् ज्वलंत विजयी, श्रावकोंकी शुद्ध जैनधर्म-मूर्तिपूजादि-में आस्थाके मूलको दृढ़ एवं स्थिर करनेवाले श्री आत्मारामजी म.सा. और उनके साथियोंको इस शास्त्र बाह्य-घृणित कुवेश-ढूंढ़क साधुवेशका परित्याग करके किसी सुयोग्य निर्ग्रन्थ-साधुका शिष्यत्व स्वीकारनेकी आवश्यकताका एहसास होने लगा, ताकि श्रावकोंको प्रत्येक दृष्टिसे सच्ची जैन साधुताका ज्ञान हो सके। अतः वि.सं. १९३१ के चातुर्मासोपरान्त लुधियानामें सभी मिले। विचार विमर्थ करते हुए गुजरातकी ओर जानेका निश्चय किया जिससे अति विशाल जैनसंघसे भी परिचय हो सकें। अथवा मानो पंजाब श्री संघकी सत्य धर्म प्रति दृढ़ आस्थाकी नींव पर अब विविध धर्मानुष्ठानोंके और धर्माचरणोंके विशाल और व्यवस्थित भवन निर्माणके लिए साधन जुटाने-अति दुर्गम एवं दूरस्थ स्थानोंकी तरफ प्रस्थानका निश्चय किया गया। आपके इस प्रस्थान के मुख्य तीन ध्येय हृदयस्थ थे (१) प्राचीन जैन परंपराके साधुवेशको विधिपूर्वक धारण करना (२) प्राचीन तीर्थोंकी यात्रा (३) तदनन्तर पंजाब वापस लौटकर विशुद्ध जैन परंपराकी स्थापना करना।[३५]

गुजरातमें पर्दापण---तदनुसार लुधियानासे महाभिनिष्क्रमण हुआ। मानो संसार-त्यागसे भी दुर्दम-दुर्द्धर्ष साम्प्रदायिक फिरकेबंधीसे मुक्तिका शुभारम्भ हुआ। विहार करते करते मालेर कोटला, सुनाम होते हुए हाँसी जाते समय रास्तेमें एक रेतके टीले पर मुँह पर बंधी मुहपत्तिका त्याग किया[३६] और हाँसी-भिवानी होते हुए मारवाड़की ओर पधारें।

जीवनमें सर्व प्रथम पालीके श्रीनवलखा पार्श्वनाथजीके मंदिरमें परमात्माके दर्शन करके अपने आपको भाग्यवान बनानेका प्रारम्भ किया। वहाँसे वरकाणा, नाडोल, नाडलाई, राता महावीर, राणकपुर, आबू-देलवाडा-अचलगढ़, सिद्धपुर, भोयणी आदि अनेक मारवाड गुजरातके तीर्थोंकी, आत्माको परमपावन करनेवाली और कर्मज्वालासे जलती हुई आत्माकी हुताशको शांत करके कर्मनिर्जरा रूप शीतलता प्रदान करनेवाली अमोघ-अमूल्य-अद्‌भूत-अपूर्व यात्रा करते हुए आप सोलह साधु गुजरातके सुप्रसिद्धनगर अहमदाबाद पधारें।

आपकी धार्मिक क्रान्तिके अरुणोदयकी आभा आपसे पूर्व ही मारवाड़-गुजरातादि अनेक स्थानोंके श्रावकोंके नेत्रोंको उन्मिलित कर रही थी। वे बड़ी उत्कंठासे और आतुरतासे उस दिनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, जब आपकी ज्ञानामृत रसीली व विद्वत्तापूर्ण प्रवचनधाराका लाभ प्राप्त कर सकें। आपके प्रति सम्मानयुक्त-अनूठी-अंतरंग भक्तिके भाव तब दृश्यमान होते हैं, जब अहमदाबादके नगरशेठ, प्रमुख श्रावकोंके साथ करीब तीन हज़ार श्रावकोंको लेकर उचित स्वागतार्थ तीन कोस तक अगवानी करने आये और बड़े हर्षोल्लास एवं धूमधामसे अभूतपूर्व नगरप्रवेश करवाया[३७]। तदनन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्मल बुद्धिसे उद्‌भावित, मुसलाधार बरसते मेघ जैसी अनन्य विद्वत्तापूर्ण-अर्थसभर-प्रखर प्रतिभापूर्ण, अनूठी शैलीसे परिमार्जित व्याख्यान वाणीका श्री संघने कुछ दिनों तक आस्वाद लिया।

पवित्र शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा---तत्पश्चात् प्राचीन जैन श्वेतांबर परंपराके इतिहासमें जिस शाश्वत तीर्थकी अपरंपार महिमा गायी गई है; जो अत्यंत पवित्र और महान माना गया है; जिसके उत्तुंग शिखर पर २७०० से अधिक छोटे-बड़े मंदिरोंका मानो एक नगर बस गया है, और उस नगरके राजमहल सदृश-प्रथम तीर्थपति श्री ऋषभदेव भगवंतका प्रासाद शोभा दे रहा है; जिसके लिए कवि श्री पद्मविजयजी म.सा.ने गाया है-

"कलिकाले ए तीरथ मोटुं, प्रवहण जिम भर दरिये विमलगिरि....."[३८]

"भवि तुमे वंदो रे, सिद्धाचल सुखकारी; पाप निकंदो रे गिरि गुण मनमां धारी"....[३९].

और जिस महातीर्थकी यात्राके महत्तम उद्देशको दिलमें धारण कर पंजाबसे प्रस्थान कियाथा ऐसे तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजीकी यात्राके लिए आप अहमदाबादसे पालीताना पधारें ।

पानी लबालब भरा सरोवर बारिशके पानी से छलकने लगता है वैसे ही पुनित गिरिराज सिद्धाचलजीके नयनगम्य होते ही सभी के हर्षोल्लासकी तरंगे हिलोरें लेने लगीं। हृदय सरोवरसे भावोद्रेक छलछलाता हुआ बहने लगा और जैसे ही चिरंतन अभिलसित, प्रशमरस निर्जरते देवाधिदेव-वीतराग श्री आदिनाथजीका, उस विशाल जिनमंदिरमें दिदार किया तब अपनी सुध-बुध जैसे खो बैठें। नयनोंने पलक झपकना छोड़ दिया और सांस भी जैसे ध्यानमग्नतामें सहायभूत बननेके लिए स्थिर हो गई; तनका चैतन्य मानो परमात्माके चक्षुमें प्रतिबिम्बित होनेलगा और प्रतिमा-स्थित मूर्तित्व तनमें तिरोहित हो गया। ऐसे तद्रुप बने अंतस्तलकी गहराईसे स्वर फूट पड़े--

"अब तो पार भये हम साधो, श्री सिद्धाचल दर्श करी रे ....."[४०]

तीर्थका माहात्मय गाया है- "पशु पंखी जहाँ छिनकमें तरिया, तो हम दृढ़ विश्वास गहयो रे....."

उसी तादात्म्यमें लयलीन गद्‌गद् कंठसे दिल खोलते है--

"दूर देशान्तरमें हम उपने, कुगुरु कुपंथको जाल पर्यो रे,
श्री जिनआगम हम मनमान्यो, तब ही कुपंथको जाल जर्यो रे ।
तो तुम शरण विचारी आयो, दीन-अनाथको शरण दियो रे,
जयो विमलाचल पूरण स्वामी, जनम जनमको पाप गयो रे....."[४०]

तीर्थयात्राका फल क्या चाहते हैं-- "मुझ सरिखा निंदक जो तारो....."[४०]

अनादिकी अध्यात्म-प्यास बुझाते बुझाते ऊपर ही सारा दिन कैसे बीता इसकी भी सुध नहीं- न भूख, न प्यास; न थकान, बस एक ही लगन लगी थी--

"आत्माराम अनघ पद पामी, मोक्षवधू तिन वेग वरी रे....."[४०]

मन भरके मानस प्यासकी तृप्तिमें कुछ दिन पालीतानामें ही निरन्तर यात्रा लाभ लेते हुए ही बिताये। आखिर परम तृप्ति और अमिट प्यासका सम्मिलित भाव दिलमें लिए अहमदाबाद पधारें।

सभी को परम संतोष था कि जो शास्त्रीय और ऐतिहासिक संदर्भोका परिशीलन किया था,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह शत प्रतिशत प्रमाणित है और ढूंढ़क मत सम्मूर्च्छिम है, जिसका भगवान महावीर स्वामीजीकी पट्ट परंपरामें कोई स्थान नहीं हैं।

इस यात्रामें यह भी अनुभूत हुआ कि तत्कालीन समाजमें संविज्ञ शाखीय साधु पीली चद्दर ही पहनते हैं। श्वेत चद्दरधारीको साधु नहीं लेकिन शिथिलाचारी और परिग्रहधारी यति माने जाते हैं। अतः आपने भी अपनी चद्दर पीली बना ली।

संवेगी दीक्षाग्रहण---(श्री बुद्धिविजयजी म.सा.का शिष्यत्व अंगीकार)-अहमदाबादमें पदार्पण पश्चात् तुरंत ही दूसरा ध्येय-संविज्ञ सद्गुरुसे शिष्यत्व स्वीकार करनेकी-ओर ध्यान केन्द्रित किया और सर्वानुमतसे, अपने सदृश-अजैन कुलके-पंजाबी, प्रथम ढूंढ़क परंपरामें दीक्षित और आगम अध्ययनोपरान्त गुजरातमें आकर शिष्यों समेत 'अविच्छिन्न वीर परंपरा'में संविज्ञ दीक्षा अंगीकार करनेवाले-सद्धर्मके प्रचारक और प्रसारक, सर्वांग सुयोग्य, सत्यान्वेषी, क्रान्तिकारी, अत्यन्त पवित्र चारित्रवान्, शांतमूर्ति, महातपस्वी, समताधारी, नम्र और विवेकी, उदारता-सहनशीलतादि अनेकानेक गुणोपेत परम पूज्य *श्री बुद्धि विजयजी म.सा.*का शिष्यत्व प्राप्त करनेको सौभाग्यशाली बने-वि.सं. १९३२ अषाढ मास, वदि दसमी तदनुसार ई.स. १८७५-**श्री आत्मारामजी से श्री आनंदविजयजी** म.सा. बने। अन्य पंद्रह साधुओंका भी विजयान्त नामवाले विभिन्न नामकरण किये गए और श्री आनन्द् विजयजीके शिष्य बनाये गए।[४१]

गुरुवर्य-पू. श्री बुद्धि विजयजी (बूटेरायजी) महाराज---तत्कालीन पंजाबी जैन समाजमें से लुप्त होती जाती सत्यधर्म परंपराको, मानो मृतप्रायः जैनधर्मको संजीवनी देनेवाले धार्मिक क्रान्तिकी चिनगारी रूप प.पू. बूटेरायजी म.सा. लुधियानाके दुलवा गाँवके गिल गोत्रीय टेकसिंहजीके कुलमें माता कर्मोदेकी कुक्षिसे संवत १८६३में उदित होकर, माताके वात्सल्य भरपूर सुसंस्कारोंसे वासित उत्तमोत्तम राहकी ओर आध्यात्मिक उन्नतिकी लगनसे कदम बढ़ाते गये-ढूंढ़क दीक्षा ग्रहण की, संवत १८८८ और श्री नागरमलजीके शिष्य बने[४२] आपकी गिरिशिखर सी भव्य एवं प्रतापी देहमें गुण गौरवशाली आत्मा निवसित थी। पंजाबी खड़तर देहमें भी सुंदरता, सुकुमारता व सज्जनता दर्शनीय थे। परम त्यागी, अत्यंत निस्पृही, महायोगी, सत्य-संयमकी मूर्तिके विशाल भाल प्रदेशमें ब्रह्मचर्यका तेज़ चमकता था।[४३]

आगम बत्तीसीका अध्ययन करते करते जब आपको यह सत्यप्रतीत हुआ कि 'मुंहपत्ती बांधना शास्त्र विरुद्ध है"-उसी वर्ष बालक आत्माराम का इस धरातल पर अवतरण हुआ। यह वह समय था जब अदृष्ट भाविके गर्भमें एकही मंजिलके दो अजनबियोंको एक दूसरेसे अवश रूपसे नज़दीक लानेके प्रयत्न हो रहे थे।

असाधारण व्यक्तित्व, अद्भूत शक्ति, असीम प्रतिभा, आदर्श आध्यात्मिक जीवनके सुंदर समन्वयधारी श्री बुटेरायजी म.सा.-नम्र और मीठी जबानसे श्रुताधारित युक्तियुक्त तर्क एवं लाजवाब दलीलोंसे प्रतिपक्षीको म्हात करनेवाले धर्मनेताने अनेक कष्ट और भयंकर अपमान हँसते हँसते झेले थे। श्रुताभ्याससे सत्यकी गवेषणा करके सत्यधर्मकी प्ररूपणा और प्रचार करते हुए जब आपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढूंढकपनेका त्याग किया, उसी वर्ष श्री आत्मारामजी म.ने स्थानकवासी दीक्षा अंगीकार की। आपने जहाँ प्रकट रूपसे सर्व प्रथम मूर्तिपूजा-मंडनरूप सत्योपदेश प्रवाहित किया, वहीं-गुजरावालामें-आपके अनुगामी श्री आत्मारामजी म.ने अंतिम सांस ली और जिस दिन आप स्वर्गवासी हुए उसी चैत्र शुक्ल एकमको श्री आत्मारामजी म.सा.का जन्म हुआ था।[४४] आपके मूर्तिपूजा मंडनके बोये बीजको श्रीआत्मारामजी म.सा.ने तन-मन-आत्मा---सर्वस्व समर्पित करके सत्योपदेश रूप वारिराशिसे अभिसिंचित करके अंकुरित किया और विकस्वर भी। आपके पू. मूलचंदजी म.आदि अन्य शिष्यवृंदभी था, लेकिन पूर्वदर्शित अनेक प्रकारसे आपसे सादृश रखनेवाले-आपके ही चरणचिह्नोंका अनुपमेय अनुसरण करनेवाले श्री आत्मारामजी म.का. सानी कोई नहीं था।

दीक्षानन्तर हृदयस्पर्शी सिख देते हुए श्री आनंदविजयजी महाराजजी की प्रखर विद्वत्ता और अद्वितीय योग्यता पर गौरवान्वित बनते हुए उनको प्राचीन जैनधर्मके वैभवको प्रमाणित करनेवाली प्रतिभा सम्पन्न गिरासे उन्नत जिनमंदिरोंकी और उनके पूजकोंकी सुध लेनेके लिए प्रेरित किया। आपभी गुरु महाराजके हार्दिक आशिर्वादसे उल्लसित बनकर घने बादलोंसे घिरे जैनधर्मको उन बादलोंसे मुक्त-प्रकाशित उज्ज्वलता प्राप्त करवाने हेतु उन घने जलदको क्षत-विक्षत करनेके सपने संजोने लगे।[४५]

संयमचर्या-धर्मप्रचार-शास्त्रार्थ हेतु विचरण---आपका अहमदाबादका, प्रथम चातुर्मास, ऐतिहासिक एवं यादगार रहा। विशेषकर इस चातुर्मासमें आयोजित श्री शांतिसागरजीके साथ, उनके एकान्त पक्ष (इसकालमें सच्चे साधु और श्रावक धर्मका पालन नहीं किया जा सकता; इसलिए न तो कोई सच्चा साधु है न श्रावक) का प्रलाप बंद करवाने हेतु शास्त्रार्थमें विजयश्री वरके आपने उनके उपदेश-दावानलसे संतप्त जैन समाजको मानो पुष्करावर्तके मेघ-सी अपूर्व शांति प्रदान कर अपने कीर्तिकीरिटमें एक हीरेकी वृद्धि की।[४६]

चातुर्मास पश्चात् सिद्धाचल-गिरनारादि तीर्थोंकी यात्रा करते हुए चातुर्मास हेतु भावनगर पधारें। इस चातुर्मासमें वहाँ के राजा साहबके निवास स्थान पर उनके ही आर्य समाजी गुरु श्री आत्मानंदजीके साथ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'-पर आधारित वेदान्त चर्चा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या'-में समन्वयात्मक, निश्चय और व्यवहार नयाश्रित समाधान करके सबको सानंदाश्चर्य और संतुष्टि प्रदान की।[४७] चातुर्मासोपरान्त पालीताना पंचतीर्थ एवं गिरनारादिकी तीर्थयात्रा श्री संघके साथ करके, पंजाबकी धरती पर नवपल्लवित होते हुए पौधेकी सुध लेनेके लिए आप पंजाबकी ओर मूड़े। रास्तेमें तारंगाजी-आबू-पंचतीर्थ की यात्रा करते हुए पाली पधारें। यहाँ चातुर्मासके लिए जोधपुर श्री संघकी विनती होने पर चातुर्मास जोधपुर किया। व्याख्यान वाणीकी बागडोरके ईशारे उन्मार्गगामी संघको सन्मार्गगामी बनानेका श्रेय प्राप्त करते हुए जैनधर्मकी डाँवाडोल-सोचनीय परिस्थितिको स्थिरता प्राप्त करवायी।[४८] तदनन्तर आप दिल्ही होते हुए अंबाला पधारें।

यहाँ आपके शास्त्रविहित साधुवेशके दर्शनका यह अवसर अत्यंत अनुमोदनीय था। इस भावानुप्रणित द्रव्य साधुतासे सभी अत्यधिक प्रभावित हुए। भक्तोंने अनुभव किया जैसे, 'उनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्नेहशील पिता उनके लिए अनमोल उपहार लिए उनकी सुध लेनेके लिए वापस आये हों'।[४९] प्रतिदिन विभिन्न स्थानोंमें विचरण और प्रभावक प्रवचनों रूपी मार्गदर्शनके कारण पूर्वके श्रावकोंकी आस्था दृढ़ीभूत हुई, कई नये श्रावक और साधु भी बने। पंजाबके इस पाँच वर्षके विचरणने पूर्वके अपूर्ण कार्यको वेगवान बनाते हुए शुद्ध सत्यधर्मके प्रचार-प्रसारका शंख फूंककर सोयेको जगाया, जागेको उठाया-आगे कदम बढ़ानेको प्रेरणा की।

प्रथम चातुर्मासोपरान्त लुधियानामें फैली जीवलेवा-ज्वरकी बिमारीने आपके शिष्य श्री रत्नविजयजी म.का भोग लिया और आपको भी चपेटा देकर बेहोश बना दिया। धबराहटमें चिंतित श्री संघ द्वारा आपको अंबाला ले जाया गया। चिकित्सा अनंतर आप स्वस्थ बने और चारित्र धर्ममें लगे दोषका प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध बने।[५०]

साहित्य सृजन---उन दिनों ज्ञान-शून्य-भ्रान्त जनताके मनोमालिन्यकी शुद्धिके लिए अपनी लेखिनीको मुखरित करते हुए, मौखिक उपदेशकी अपेक्षा बहुव्यापक एवं चिरस्थायी बनने योग्य उपदेशको अक्षरदेह रूप *"नवतत्व संग्रह"*, *"जैन तत्त्वादर्श"* जैसे ग्रंथोकी रचनाको प्रकाशित करवाया-जो जैन धर्मके वास्तविक मूल सिद्धान्तोंको समझानेमें अत्युपयोगी सिद्ध हुए। आर्य समाज-संस्थापक श्री दयानंद सरस्वतीजीके *'सत्यार्थ प्रकाश'*में की गई जैनधर्मकी झूठी प्रतारणाके प्रत्युत्तर रूप *'अज्ञान तिमिर भास्कर'* ग्रन्थकी रचना की। पंजाबके प्रभु-प्रतिमा-पूजन विधिसे अनभिज्ञ जैनोंके लिए हिन्दीमें *'सत्रहभेदी पूजा'* की रचना की।

विशुद्ध जैन परंपरामें दीक्षित होनेके पश्चात् आपने पंजाबमें *अंबाला शहर, लुधियाना, जंड़ियाला, गुजरांवाला, होशियारपुर*-में पाँच चातुर्मास करके और अन्य नगरं-ग्रामोंमें विचरण करके जो क्रान्तिकारी धार्मिक आंदोलन चलाया उसमें आशातीत सफलता प्राप्त की। प्रभु पूजा-प्रभावनादिके निरंतर प्रचारसे सहस्त्रों श्रावक-श्राविकाके दिलमें शुद्ध श्रद्धा जागृत करके मानों वर्षोंसे रूठी जैनश्रीको पुनः अनुपम हृदय सिंहासन पर स्थापित किया।[५१]

इस तरह कार्यसिद्धि करके अनेक नवदीक्षित साधुओंके छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान करवाने के लिए, इसके अधिकार-प्रदाता-गणि श्री मुक्ति विजयजी म.सा. अहमदाबादमें बिराजित होने से, पुनः गुजरातकी ओर चल पड़े। हस्तिनापुरादि तीर्थयात्रा करते हुए बिकानेर चातुर्मास करके जोधपुरादि स्थानोमें परिभ्रमण करते करते गुजरातकी ओर विहार किया।

विभिन्न लाभालाभयुक्त मारवाड़-गुजरातकी यह अंतिम विहार-यात्रामें- *बीकानेर, अहमदाबाद, सुरत, पालीताना राधनपुर, महेसाणा, जोधपुर*-के सात वर्षावासमें नये कीर्तिमान स्थापित किये, तो साथमें हृदय हिलादेनेवाली बड़ी भारी चोटभी खाई। लेकिन वीतराग पथका यह पथिक नम्रता और समतासिक्त स्थित-प्रज्ञताके साथ कर्तव्य पथ पर आगे कदम बढ़ाता ही गया।

गुजरात प्रवेश पूर्वही पालीमें श्री लक्ष्मीविजयजी म.का और गुजरातसे प्रस्थान पश्चात् दिल्हीमें आपके प्रिय प्रशिष्य श्री हर्षविजयजी म.का. कालधर्म• हो गया। तो राधनपुरमें बड़ौदाके लाडीले नवयुवक श्री छगनभाईने आपके चरणोंमें जीवन समर्पित किया-छगनभाई बन गए मुनि वल्लभ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो विश्व वल्लभ बनकर आपके भावि उत्तराधिकारी बननेका सौभाग्य लिए हुए थे; एवं जो हर्षविजयजी म.के शिष्य और श्री लक्ष्मीविजयजी म.के प्रशिष्य थे। फिरभी आप स्थितप्रज्ञ रहकर कार्यान्वित बने रहें।

अहमदाबादके चातुर्मास बाद आपने पालीताना पधारकर मुख्य-मुख्य श्रावकोंकी सम्मति और सहयोगसे वहाँके पैंतीस प्रभावशाली-चित्ताकर्षक जिनबिम्बोंकों एवं अहमदाबादादि विभिन्न स्थानोंमें से कुल १५० प्रतिमाजी पंजाबके विभिन्न नगरोंके लिए भेजे, जो आपकी गुजरात यात्राकी उत्तम उपलब्धि मानी जा सकती हैं।

आपके इस विहार दौरान सुरतके चातुर्मासमें आपके कलाकार-रूप व्यक्तित्वमें निखार आता है। आपकी कल्पनाके पंख उड़ान भरने लगते हैं और मंझिल तय होती है *"जैन-मत-वृक्ष"*के अनूठे-धार्मिक, ऐतिहासिक, राजकीय वृत्तोंको मूर्तिमंत करनेवाली उत्तमोत्तम कलाकृतिके रूपमें। जिस कालमें धार्मिक-ऐतिहासिक वृत्तोंकी छान-बीन या परंपराओंके चित्रण नगण्य थे अथवा जन मानसकी वृत्ति ही उस ओर नहीं थीं, वहाँ ऐसी कल्पना युक्त रंगीन कलाकृतिका प्रस्तुतीकरण वाकई अमूल्य और अनुपमेय था।

ज्ञानोद्धार अर्थात् ज्ञानभक्ति---ज्ञानोपगरण और ज्ञानके प्रति आपके अंतरका हार्दिक सम्मान दृष्टिगोचर होता है, जब आप खंभात-पाटण-महेसाणा आदि धर्म-स्थानोंके प्राचीन ग्रंथ भंड़ारोंका निरीक्षण करते हुए अघाते नहीं। वहाँकी प्राचीनतम हस्तलिखित प्रत एवं पुस्तकोंके जिर्णोद्धार के लिए महेसाणामें कायमी फंड़योजना, ग्रंथोका पुनर्लेखनादि कार्य उनके अनन्य ज्ञान प्रेमके प्रतीक हैं। पाटण ज्ञानभंड़ारोंके पुनरुद्धारका कार्य शिष्यों-प्रशिष्योंको सौंपकर इस दिशामें नया कदम उठाया।

'स्व' उन्नतिके साथ 'पर'का भी खयाल आपके हृदय कमलमें था। 'उपासक दशांग' सूत्रके संपादक और अनुवादक-रोयल एशियाटिक सोसायटीके मानद सचीव डॉ. होर्नलकी शास्त्रीय पदार्थों आदिके बारेमें संदिग्धता और शंकाओंका स्पष्ट, शास्त्राधारित एवं तर्कबद्ध सचोट प्रत्युत्तर रूप मार्गदर्शन देकर उनका हार्दिक प्रेम संपादन किया था; फल स्वरूप उन्होंने अपना ग्रंथ आपके नाम, सुंदर प्रशस्ति रूप पुष्प परिमल सह समर्पित किया।[५२]

अहमदाबादमें श्री जेठमलजी रिखकी *'समकित सार'* पुस्तकके प्रत्युत्तरमें "सम्यक्त्व शल्योद्धार"की रचना की; तो सुरतमें हुक्म मुनिके आगम विरुद्ध *'अध्यात्म सार'* पुस्तकको प्रश्नोत्तर रूप पड़कार फेंककर भारत वर्षके विद्वानों द्वारा उसे अमान्य ठहराया। पाटणमें तीन स्तुतिवालोंको ललकारते हुए *"चतुर्थ स्तुति निर्णय"*की रचना की। इनके अतिरिक्त आराधना हेतु *"बीस स्थानक पूजा"*, *"अष्ट प्रकारी पूजा"*, *"स्नात्रपूजा"* आदिकी रचना की। गद्य रचनाओंमें आपके अजेय वादित्वके दर्शन होते हैं तो पद्य रचनाओंमें समर्पित भक्त हृदयके भाव विशिष्ट संगीतज्ञकी कवित्व शक्ति द्वारा प्रस्फूटित होते अनुभूत होते हैं।

शास्त्रीय चर्चा-जैन सिद्धान्तोंकी सिद्धि एवं पुष्टि---बिकानेर नरेश और उनके संन्यासी महात्माके दिल---जैन दर्शनकी नींव रूप स्याद्वाद एवं अनेकान्तवादकी व्यापकता और प्रमाणिकताको लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक जैन-जैनेतर ग्रन्थोंके संदर्भ सहित विचार-विमर्श करके अवर्णनीय प्रसन्नतासे भर दिए।[५३] तो जोधपुर नरेशके भाई प्रतापसिंहजीको "जैनधर्ममें आस्तिकता-नास्तिकता और मोक्षका स्वरूप" एवं जैनधर्मके 'अनीश्वरवाद'का नीरसन-विविध शास्त्राधारित खंडन-मंडन युक्त विशद विवेचन करके प्रभावित करते हुए आपके सत्य और शुद्ध विचारोंका स्वीकार करवाया;[५४] और लिंबडी नरेशके संस्कृतज्ञ विद्वान पंड़ितोंसे संस्कृतमें और लिंबडी नरेशको सरल हिन्दी भाषामें गंभीर, मार्मिक, तलस्पर्शी वाणीसे शास्त्रोक्त संदर्भ सहित 'ईश्वर-सृष्टि-कर्ता'का विरोधकरके, ईश्वरको ज्ञाता रूपमें सिद्ध करके उनके मनका उचित समाधान किया।[५५] आपकी परम मेधा और अपूर्व दर्शनिक पांडित्यके चमकार हम पग पग पर पाते हैं।

जीवनका अनमोल उपहार-(सूरिपद प्राप्ति)---इस यशोमंदिरके स्वर्णिम शिखर सदृश उत्तमोत्तम यश प्रदाता अवसर पालीतनाके चातुर्मास पश्चात् अपरंपार उल्लास बीच संपन्न हुआ। यतियोंके वर्चस्वको चौपट करनेवाले, अजयेवादी, तार्किक शिरोमणि, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न-जैन संघकी विभूति-चुंबकीय व्यक्तित्वके स्वामी, महामना मुनिराज श्री आनंदविजयजी महाराजके नम्र और निर्मल अंतःकरणकी सम्पूर्ण अनिच्छा होते हुए भी यतियोंके रहे-सहे वर्चस्वको समाप्त करने हेतु; यति समाजकी चुनौतिके प्रत्युत्तर रूप-विकट परिस्थितिमें श्री संघकी मान-प्रतिष्ठा स्थिर रखने हेतु; एवं ढ़ाईसौ वर्षोंसे सूरि-सिंहासनकी रिक्तता पूर्ति हेतु की गई भारत वर्षके समस्त जैन-संघोकी श्री पंचपरमेष्ठि•में तृतीय स्थान स्थित सूरिपद स्वीकारनेकी-हार्दिक विनतीको अवधारण करते हुए धर्मवीर-ज्ञानवीर-चारित्रवीर-आपने, यशकीरिट कलगी स्वरूप, संविज्ञ श्वेताम्बर आम्नायके महान-उत्तरदायित्वपूर्ण आचार्यपद गौरवको गौरवान्वित करनेका श्रेय प्राप्त किया, मानों सूरिपदका ढ़ाई सदियोंसे प्रसुप्त पुण्य जाग उठा।[५६] साधु समाजका विलुप्त अधिकार पुनः प्रकाशित हो उठा।

आपने देखा कि समाजके उद्दीप्त उल्लासके जोशको थोड़े समयके लिए भी रोक पाना अति दुष्कर है, और पूर्वाचार्योंमें भी बिना योगोद्वहनके पदस्थ होनेकी एक परंपरा प्राप्त होती है। अतः आप आचार्यपद योग्य योगोद्वहन• किए बिना ही शासन सम्राटका प्रतीक सूरिराजका ताज़ धरकर मुनिराज *श्री आनंदविजयजी से श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी* नामाभिधान भगवान महावीर स्वामीजीकी पट्ट परंपराके तिहत्तरवें स्थानको शोभायमान करनेके लिए भाग्यवान बने[५७] और पश्चात्वर्तियोंको भाग्यवान बनने-बनवानेके दरवाजे खोल दिए। (हाँलाकि आपने अपने आप किसी शिष्यको आचार्य पद नहीं दिया)

इन्हीं भावोंको श्री जयभिक्खुजी इस तरह व्यक्त करते हैं- "इस सूरिपद पर अन्य बातोंकी तरह यति और श्री पूज्योंने कब्जा कर लिया था।.....प्रतिष्ठा, योगोद्वहन, दीक्षा प्रदान परभी उनकी नागचूड़ थी। वह तभी टूट सकती है जब प्रतिष्ठा करा सके, योगोद्वहन करा सकें, दीक्षा दे सकें ऐसे आचार्य संविज्ञ साधुओंमें हों। इस कारणसे प्रबल पुरुषार्थी श्री आत्मारामजी महाराजने अगवानी की। वि.सं. १९४२में पालीतानामें श्री संघ समक्ष आचार्य पद लेकर हिम्मतसे जाहिर किया कि आगमके योगोद्वहन किये बिना भी विद्वान और चारित्रशील साधु आचार्यपद प्राप्त कर सकते हैं। उस कालमें यह एक महान क्रांति थी।"[५८]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पुण्य प्रचयके पीठबल एवं एकसे बढ़कर एक उत्तरदायित्वपूर्ण शासनसेवाके उत्तम अवसरोचित कार्योंसे जिनशासनका सूर्य अपनी पूर्ण शान-शौकतसे चमकने लगा। 'सोनेमें सुहागे' सदृश जोधपुर निवासियोंने आपको आग्रह पूर्वक विशिष्ट बिरुद 'न्यायांभोनिधि' से नवाजित किया। तबसे आपने '*न्यायम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.*'के शुभ नामसे प्रसिद्धि पायी।[५९]

परमप्रिय मातृभूमि पंजाबकी पुकार आपको बरबस अपनी ओर खिंच रही थी। 'चकोरको चंद्रिकाकी कशिश' या 'कमलिनी को चंद्रकी आश' समान ही श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वजीकी हृदयतंत्रीका तालमेल पंजाबके भाविक भक्तोंके दिलसे जुड़ा हुआ होनेके कारण-दिनभर चारा चरकर शामको निजस्थान पर पहुँचनेके लिए लालयित रहनेवाले पशु-पक्षी सदृश आचार्यदेव भी पंजाबकी ओर उमड़ते हुए भावोद्रेकके साथ खिंचे चले आते हैं।

पंजाबी वनराज गुजरात-मारवाड़में गर्जते हुए और सब पर अपनी धाक जमाते हुए, सभी पर अपना रुआब छोड़कर वापस पंजाबकी ओर मूड़ता है। अब आपका लक्ष्य है बाल-मानस भक्तोंकी सुध लेकर उनको दिलोजानसे रत्नत्रयीकी आराधनामें स्थिर करना। जैसे, अत्यन्त कष्ट झेलते हुए प्रसुत संतान के पालन पोषण व शिक्षा संस्कारके प्रति ममतामयी माता-स्नेहकी साक्षात् प्रतिमा-उदासीन नहीं रह सकती, वह तो हर प्रकारसे प्रयत्न करती ही रहती है अपने अंगजके सर्वांगिण विकासका और वृद्धिका-तुष्टि, पुष्टि, संतुष्टिका।

यह समय था, जब जैन दिवाकर श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा., अपने प्रतिभापूर्ण प्रभावकी प्रखर रश्मियाँ फैलाकर सर्वत्र सर्वको तेजोमयता प्रदान कर रहे थे। आपके पंजाबमें पदार्पण होते ही पंजाबी-जैन समाजके उद्धारके विभिन्न कार्यक्षेत्रोंमें संचरणके चक्र गतिमान हुए। तदन्तर्गत रत्नत्रयीकी आराधना करके करवाके उनका सर्वदेशीय सम्मार्जन और संवर्धन करके रत्नत्रयीकी आराधनाको उन्नतिकी ओर अग्रसर किया। **सम्यक् दर्शन**को निर्मलतर करते हुए आपने श्री जिन-प्रतिमा एवं श्री जिन-मंदिरोंके अंजनशलाका और प्रतिष्ठा महोत्सवके कार्यक्रम विभिन्न स्थानो पर आयोजित करवाये-यथा-वैशाख शुक्ल-६, वि.स.१९४८ को अमृतसरमें भगवान श्री अरनाथजीकी,[६०] एवं उसी वर्ष-१९४८ बसन्त पंचमी को होंशियारपुरमें भगवान श्री वासुपूज्यजीकी[६१] और मृगशिर शु. १५-१९५२को अम्बालामें भगवान श्री सुपार्श्वनाथजीकी[६२] प्रतिष्ठायें बड़ी धूमधामसे करवाई, साथ ही साथ, जीरामें १९४८ मौन एकादशी• के दिन श्री चिन्तामणी पार्श्वनाथजीकी;[६३] १९५१-माघ शु.१३को पट्टीमें भ. श्री मनमोहन पार्श्वनाथजी[६४] एवं १९५३ वैशाख शु. १५को सनखतरामें श्री आदिनाथजी[६५] भ. आदि अन्य अनेकों जिनबिम्ब समेत अंजनशलाका-प्रतिष्ठा करवायी।

सम्यक् ज्ञानकी विशुद्धिके लिए १९४८में पट्टीमें 'चतुर्थ स्तुति निर्णय', 'श्री नवपदजी पूजा'; १९४९में अमृतसरमें 'चिकागो प्रश्नोत्तर'; १९५०में जंडियालामें 'श्री स्नात्रपूजा'; १९५१में जीरामें 'तत्त्व निर्णय प्रासाद', 'ईसाई मत समीक्षा', 'जैन धर्मका सवरूप'[६६] आदि अनेक ग्रंथोकी रचना करके हिन्दी जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साहित्यको समृद्ध किया। इसके अतिरिक्त सैंकड़ों प्राचीन ग्रन्थोंको भंड़ारोंसे निकलवाकर उनकी नकलें करवायीं और उनका वाचन एवं संशोधन किया, जिनमें निम्नलिखित ग्रंथ विशेष उल्लेखनीय हैं-शब्दाम्भोनिधि-गंधहस्ति महाभाष्य, वृत्ति-विशेषावश्यक, वादार्णव, सम्मति तर्क, प्रमाण प्रमेय मार्तंड, खंडनखंडखाद्य-वीरस्तव, गुरु-तत्त्व विनिर्णय, नयोपदेशामृततरंगिणि वृत्ति, पंचाशक सूत्रवृत्ति, अलंकार-चूड़ामणि, काव्य प्रकाश, धर्मसंग्रहणी, मूलशुद्धि, दर्शनशुद्धि, जीवानुशासन वृत्ति, नवपद प्रकरण, शास्त्रवार्ता समुच्चय, ज्योतिर्विदाभरण, अंगविद्या इत्यादि.....[६७]

इस तरह अपनी लेखिनीको मुखरित करनेके साथ साथ वाद-विवाद और विचारविमर्श या चर्चाओं द्वारा अनेक जीवोंको प्रतिबोधित करते हुए जिनशासनकी महती सेवामें यथायोग्य योगदान दिया-यथा-अंबालामें अनेक जैन-जैनेतर शास्त्रोंके संदर्भयुक्त विवेचनसे जैनदर्शनकी ईश्वरवादीता अथच आस्तिकताको मंडित करते हुए आर्य समाजी पं.लेखारामजीको संतुष्ट किया;[६८] तो लुधियानाके कट्टर आर्यसमाजी और प्रखर प्रचारक ब्राह्मण युवक कृष्णचंद्रजीको आपकी तर्कबद्ध-तेज़स्वी ज्ञानज्योतिने आजीवन आपका अनन्य चरणोपासक और जैन दर्शनके प्रति दृढ़ आस्थावान बना दिया;[६९] और मालेरकोटलाके लाला गोंदामलजी, जीवामलजी आदि अनेक जैनेतरोंको मूर्तिपूजक जैन बनाया;[७०] साथमें मुन्शी अब्दुल रहमानको 'भिक्षावृत्ति'-यह परोपकार परायण साधुओंका शास्त्रोक्त आचार है, ऐसा समझाकर आजीवन मांस-मदिरादिका सर्वथा त्याग करवाया;[७१] जबकि रायकोटमें जैन-जैनेतर समाजमें वेधक व्याख्यान वाणीसे उपदेश देकर धर्मबोध करवाया और मूर्ति पूजाका प्रचार किया।[७२] जालंधरमें आर्य समाजी ला. देवराज और मुन्शीरामको 'ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वका' खंडनकर-साक्षी रूपका मंड़न करके 'कर्म ही जीवके लिए फल प्रदाता' किस तरह है और 'इश्वर फल प्रदाता' क्यों नहीं-इन बातोंका तर्कबद्ध समाधान दिया[७३]

सम्यक् चारित्रकी निरतिचारपने परिपालना करते हुए, चारित्रवान्-संयमके खपी ऐसे साधकोंकी साधनामें सदैव तत्पर रहे हैं। संयमकी ईच्छुक बहनको १९५१में जीरामें दीक्षा देकर 'श्री उद्योतश्रीजी' नामसे घोषित किया[७४] और १९५०में पट्टीमें अपने साथके नवीन साधुओं को छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान किया, जिनकी उन्हीं दिनोंमें दीक्षा हुई थी[७५]

इस प्रकार अनेक ग्राम नगरोंके हज़ारों नरनारियोंको "ज्ञान-क्रियाभ्यां मोक्षः"[७६] के स्वरूपको समझाकर आत्म कल्याणकारी "सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः"[७७] रूप प्रशस्त मार्गकी ओर प्रेरित करके स्व-परके सम्यकत्वको शुद्ध करनेका सफल प्रयत्न आजीवन करते रहें। इन सबके केन्द्रमें जीवनके प्रत्येक पलको पूर्ण रूपसे आत्मिक कल्याणरूप कर्म निर्जराकी सम्यक् आराधनामें बिताने के लिए यथाशक्य और यथाशक्ति पालन करने-करवानेकी मनोभावना झलकती है।

बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी का गुणावलोकन (नवयुग निर्माता) :-

"शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे"
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने ।।"

जैसे हर पर्वतमें माणिक्य रत्न नहीं होता, न प्रत्येक हाथीके कुंभस्थलसे मोती ही झरते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है; न सर्वत्र साधु होते है, न प्रत्येक वन चंदनका होता है;। अतः प्रत्येक जीव मनुष्य नहीं होता, न प्रत्येक मनुष्य संत होता है; सभी संत सच्चे साधुत्वयुक्त नहीं, न सभी सच्चे साधु सदैव युगनिर्माण कर सकते हैं। लाखों-क्रोडोंमें एक होता है 'नवयुग निर्माता', जो स्वात्म कल्याणके साथसाथ निःस्वार्थ भावसे परोपकारमें अहर्निश मशगूल रहें ताकि सामान्यजनोंको अंधकारसे प्रकाशकी ओर, अज्ञानसे ज्ञानकी ओर, अधःपतनसे उत्थानकी ओर, एवं उत्क्रांतिसे संक्रातिकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा दे सकें।

नवयुग निर्माता---जिस समय सभी गहरी निंदकी मदहोशीमें मस्त होते हैं, वह मार्गका निर्माता, पथ-प्रदर्शक और जन साधारणका नेता-सर्वतोमुखी प्रतिभाका स्वामी, सत्य क्रान्तिका मशालची, तत्कालीन युगका महारथी-मानों अंधकारकी काजलकाली कादम्बरीमें अपने सात्त्विक एवं आत्मिक शस्त्रों पर पानी चढ़ाता रहता है; क्योंकि केवल तत्त्वज्ञानी या उपदेशक 'नवयुग निर्माता' नही बन सकता। श्री सुशीलजीके शब्दोंमें- "ऐतिहासिक प्रमाणकी आवश्यकता पर इतिहासका भंडार खोल दें, शास्त्रीय युक्तियाँ या न्याय विषयक जरूरत पड़े तो शास्त्रीय एवं न्यायकी तर्कबद्ध-अकाट्य पंक्तियाँ सम्मुख रखें; तुलनात्मक शैलीसे यदि किसी नवीन रचना निर्माण करनी पडें तो भी वह पीछेहठ न करें; सामान्य जन देख सकें ऐसी विधि-आचार-मर्यादा और अन्य क्रियाओंमें सबके अग्रणी रहें - वही नूतन और पुरातन युग मध्य अटूट सेतु बन सकता है या नवयुगको निमंत्रण दे सकता है।"[७९]

समाज कल्याणके साक्षात अवतार---नूतन धार्मिक उत्क्रान्तिसे गठित हुआ आपका जोशीला व्यक्तित्व, तत्कालीन राष्ट्रीय-सामाजिक-धार्मिक अशांति, अविश्वास, अव्यवस्थाके फलस्वरूप व्युत्पन्न हिंसाके तांड़वसे संत्रस्त हुआ। यतिवर्ग-संविज्ञ साधु और ढूंढ़क आम्नायोंके मध्य, कुसंप-शिथिलाचार-शास्त्रीय उटपटांग विचार-आचारोमें गोते खा रही अबूध-जैन जनताको देखकर श्री आत्मारामजीकी अंतरात्मा जैसे चित्कार कर उठी। उसी कसकने आपको कमर कसने पर मज़बूर किया। आपने प्राणोंसे प्रिय-संपूर्ण सत्य स्वरूप-जिनशासन और उसके अनुयायी वर्ग-जैनोंके उद्धारमें अपने जानकी बाज़ी लगा दी। एक अति ही सुव्यवस्थारूढ़ सुधारक-क्रान्तिकार-युगनिर्माताके रूपमें हमारे सामने पेश होते हुए आपने एलान किया, "रूढियोंको मैं तपागच्छकी समाचारी माननेको तैयार नहीं हूँ"।[८०] श्री पोपटलालजी के शब्दोमें "आत्मारामजीने खास नया कुछ नहीं किया, पर पुराने-अच्छेको संभालकर, निरर्थक और निर्बलको तोड़कर उसके स्थान पर नया बांधकाम आवश्यकतानुसार कर लेने का सबल प्रयास किया है।"[८१].

एक महान विप्लववादी सदृश गतानुगतिक संकुचितता और व्हेम, अचलासनारूढ एवं प्राणशोषक कुरूढियाँ व गलत मान्यताओंके गहन अंधकारको आपने अनेकानेक शास्त्राधारित युक्तियुक्त प्रमाणोंसे भरपूर शुद्ध शाश्वत धर्मके सिंहनादसे विदारा-मानो एक कुशल सर्जन डॉक्टरने जैन समाजके सड़ित-गलित अंगोंका ओपरेशन करके एक मृत-तुल्य मरीज़को उबार लिया अथवा जैसे किसी निष्णात इन्जिनियरने जर्जरित ऐसे जैन सामाजिक महलके तूटे-फूटे खंड़हरको गिराकर उसी मज़बूत नींव पर नवनिर्माण किया और 'कथिरसे कंचन' करनेकी कलायुक्त, अज़ीबोगरीब नूतन कलाकारने सुंदर सदन सजानेकी भरसक कोशिश की। जैनोंको स्वकर्तव्य सन्मुख होना सिखाया।

जैनोंकी पतितावस्थाका मूल और गूढ़ कारण व्यक्त करते हुए आपने अपने '*अज्ञान तिमिर*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भास्कर' ग्रंथमें निर्देश किया है कि, अन्य कार्योंमें लाखों रुपये खर्चनेवाले इन जैनोंमें विद्याके प्रति अरुचि एवं सम्यक् ज्ञानकी अज्ञानताका व्याप ही मुख्य है। इस सूक्ष्मताकी ओर केवल अंगूलीनिर्देश ही नहीं किया लेकिन इसके उद्धारके लिए शिक्षाके प्रचार एवं ज्ञान भंड़ारोंकी व्यवस्थादि रूप चिकित्सा भी दर्शायी है।

जैनोंके साधर्मिक वात्सल्यका विश्लेषण करते हुए *"जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर"* ग्रंथमें मार्गदर्शन करते हुए आप लिखते हैं कि- "श्रावकका बेटा धन हीन या बेरोजगार हों उसे रोजगारीमें लगाना या उसे जिस कार्यमें सिद्दत हों-आवश्कता हों-उसमें मदद करना सच्चा साधर्मिक वात्सल्य है। साधर्मिकोंको सहाय करनेकी बुद्धिसे जिमाना (भोजन कराना) यह सच्चा साधर्मिक वात्सल्य है अन्यथा वह 'गधे खुरकनी' मानी जायगी।"[८२] इस तरह समाजकी चेताको जागरूक और स्वस्थ बनानेके लिए आपके प्रयत्न निरंतर होते रहते थे। धर्म सद्भावके जीवन्त प्रतीक-आपका जीवन ज्ञान-ध्यान लीन और आपका आचार्यत्व लोकमंगलकी भावनासे प्रदीप्त था।

युग निर्माणकी महत्त्वपूर्ण कूंजी घूमाते हुए आपने सामाजिक एकताका ताला खोल दिया। ऐक्यमें छिपी प्रचंड ताकातसे पूरे समाजको अभिज्ञ किया। श्वेताम्बर समाजके अखिल भारतीय संगठनको दृष्टिगत रखते हुए आपने सुरतके चातुर्मास-वि.सं. १९४२-में 'दि जैन एसोशियेशन ऑफ इन्ड़िया, बम्बई' के कार्यकर्ताओंको अपने सहयोगका संपूर्ण विश्वास दिलाया था। इसके अतिरिक्त अमृतसर-श्री जिनमंदिरकी प्रतिष्ठाके अवसर पर आपने सबको उद्बोधित करते हुए कहा कि, "पारस्परिक एकतामें लाभ है और इसीमें शक्तिका रहस्य है।.....स्मरण रहें, शास्त्रकारोंने श्री संघका पद बहुत ऊँचा किया है। श्री संघके सामने प्रत्येकको मस्तक झुका देना चाहिए। धनवान और शक्ति सम्पन्न भाइयोंका परम कर्तव्य है कि, वे अपने साधनहीन भाइयोंकी यथासंभव सहायता करें। गुजरात-सौराष्ट्रके भाइयोंने पंजाबमें मंदिर निर्माण और पुस्तक भंड़ार स्थापित करने में सहायता देकर एक अनुकरणीय आदर्श आपके सम्मुख उपस्थित किया है।"[८३] उसी प्रतिष्ठावसर पर आपने धार्मिक एवं सामाजिक महोत्सवों या प्रसंगों पर होनेवाले आडम्बर, झूठे दिखावे आदिमें होनेवाले फिज़ूल खर्चको रोकनेके लिए भी प्रेरणा दी और सादगी एवं संयमितताके पथ पर कदम बढ़ानेके लिए सभीको आकृष्ट किया।

एक कदम आगे बढ़कर तत्कालीन सामाजिक दूषण-बाल विवाह और विधवा विवाहको दर्शित करते हुए आगमिक स्पष्टीकरण दिया हैं-- "आचार दिनकर"-ग्रन्थमें आठसे ग्यारह वर्षकी लडकीके विवाहको कथित किया है, वह प्रायः लौकिक व्यवहारके अनुसार है। जैनागमोंमें तो 'जोव्वणगमणमणुपत्ता' इति वचनात् वर कन्या यौवनको प्राप्त हों तब विवाह करना लिखा है। 'प्रवचन सारोद्धार'में सोलह वर्षीय कन्या और पचयीस वर्षीय पुरुषके संयोगसे उत्पन्न संतान बलिष्ठ बतायी है। इत्यादि मूलागमसे तो बाल लग्न और वृद्ध विवाहका निषेध सिद्ध होता है।"[८४]

होशियारपुरके 'जैन स्वर्णमंदिर'की प्रतिष्ठाके सुअवसर पर भी आपने फरमाया "बाल विवाह और पर्देकी कुप्रथा मुस्लिम शासनकालमें प्रचलित हुई। इसके पहले इसे कोई जानता न था। अब वह समय व्यतीत होचूका है। इसलिए उन प्रथाओंको भी विदा कर देना उचित है। बाल विवाह सर्वनाशका कारण है। इससे मस्तिष्क और शरीरका विकास रूक जाता है-व्याधियाँ होती हैं। जबतक वीर्य परिपकव न हों, पढाई समाप्त न हों, विवाह न करें"।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहृदयी उदारता और विशालता---धार्मिकताकी कट्टरताके उस युगमें विशाल हृदय जलधिमें, प्रेमल और अन्य धर्म प्रति उदारता एवं सहिष्णुताकी लहरें आपके उद्‌बोधनों वार्तालाप एवं साहित्यमें तरंगित होती अनुभूत होती हैं, जो आपने प्राप्त की हुई जैनधर्मकी देनरूप गुणानुरागिता और गुण पूजाके श्रेष्ठतम आदर्शोंका परिपाक हैं। कुल-जाति-देश-धर्मके मतमतांतरोंको लांघकर आपने घोषित किया कि, "सच्चरित्र ही सच्ची मनुष्यताका मापदंड है ।.....कोई पुरुष या स्त्री, किसी भी जाति या धर्मका क्यों न हों, जो ईच्छा निरोधपूर्वक शीलका पालन करता है वही श्रेष्ठ गिना जाता है ।"[८५]

आपके दिलमें केवल जैनधर्मकी उन्नति और समुत्थान की ही लगन नहीं थी, लेकिन सारे समाजके अभ्युदयकी उत्कट आकांक्षा थी। आपके ही शब्दोमें- "जैसे अयोग्य भूमिमें बोया बीज फलीभूत नहीं होता और विना नींवका भव्य प्रसाद स्थिर नहीं होता वैसे विना योग्यताके, साधु या गृहस्थ धर्म भी प्राप्त नहीं हो सकता। इसलिए सभी भिन्नभिन्न मतावलम्बियोंको चाहिए कि वे अपनी जाति और अपने मतकी बुराइयोंको त्याग करते हुए अपनेमें योग्यता प्रकट करके धर्मके अधिकारी बनें ।.....नाना प्रकारके धर्मशास्त्रोंका अवलोकन करनेकी आवश्यकता इसलिए है कि पक्षपात रहित होकरके माध्यस्थ भावसे सर्व मतोंके शास्त्रोंका अध्ययन करके तत्त्वविचार करनेसे जीवको सत्य मार्गकी प्राप्ति होती है ।"[८६]

आगे चलकर अवतारोंके प्रति अपने मनोभाव प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं कि- "हिन्दुस्तानमें थोड़े थोड़े काल पीछे ईश्वरको अवतार लेकर अनेक तरहके विरुद्ध पंथ चलाने पड़ते हैं । न जाने हिन्दुस्तानियों पर परमेश्वरकी क्या कृपा है जो वह जल्दी-जल्दी अवतार लेता है" ।[८७]

विश्व शान्तिदूत :- आपके विलक्षण मार्गदर्शनानुसार आचरण करके स्थायी रूपसे विश्व स्तरीय धार्मिक शांति प्रस्थापित हो सकती है। "प्रेक्षावानोंको.....सर्व शास्त्रोंके कहें तत्त्वोंकी प्रथम-श्रवण, पठन मनन, निदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्ति प्रमाणसे बाधित हों, उसका त्याग कर देना चाहिए और बाधित न हों उसे स्वीकार कर लेना चाहिए परंतु मतोंका खंडन-मंडन देखकर किसी भी मत पर द्वेष बुद्धि कदापि नहीं करनी चाहिए।"[८८]

आज संभवतः सामान्य प्रतीत होनेवाली उपरोक्त बातें तत्कालीन क्रान्तिवीरों और युग सुधारकोंके लिए अत्यंत दुष्कर परिश्रम साध्य थीं। अधुना दृश्यमान अद्यतन जैन समाज़का मानचित्र, नवयुग निर्माता-प्रचंड़ भास्करकी दीप्रज्योत और महासौम्य एवं दर्शनीय संयम तेज़रूप जिनशासन गगनांचलके झलहल ज्योतिर्धरके दूरदर्शी एवं पारदर्शी सुदीर्घ नेत्रकमलोंमें प्रतिबिम्बित अखंड़श्रद्धा और उज्ज्वल प्रकाशकी देन थी। उन्हींका सामर्थ्य था। उन्हींका हौसला था। उन्हींका अध्यवसाय था।

आपने अहसास किया कि विश्वमें फैल रही हिंसा-असमानता और पक्षपात ही जगतकी अशान्तिके लिए जिम्मेवार है। उनके निवारणके लिए जैनादर्श-अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त ही अमोघ शस्त्र हैं। क्योंकि अहिंसाके कारण प्राणीमैत्री, अपरिग्रह द्वारा त्यागवृत्ति और अनेकान्तसे निष्पक्ष दृष्टि प्राप्त होगी तब ही विश्वशांति संभवित बन सकेगी। इस प्रकार उस खंडन-मंड़नके युगके आधुनिकरण कर्ता-उस आधुनिक भगीरथने अपने दो हाथोसें दो प्रकारकी---*(१) खंडनात्मक* -अर्थात् कुरीतियाँ, अंधविश्वास, मिथ्या आंडबरादिको हटाने स्वरूप विध्वंसात्मक *(२) मंडनात्मक*-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् साधर्मिक अभ्युदय, पीड़ित-दलित-विधवादिके उत्थान, साहित्य प्रकाशन, शिक्षाप्रचारादि रचनात्मक----भागीरथीको बहाकर समाज़ सेवा की जड़ोंको भली भाँति सिंचा, फलतः आज वह विशाल वृक्ष बना है - जिसके मीठे फल सभी चख रहे हैं-समाज सुधारका आस्वाद ले रहे हैं।

पूज्य आचार्यश्री ही ऐसे सर्व प्रथम जैन साथु थे जिन्होंने ऐसे समाजोत्थानके कार्य-सेवाको प्राधान्य दिया और उसके लिए अपना जीवन तक समर्पित किया। आपका निजी आध्यात्मिक जीवन ज्ञान-ध्यानमें लीन था साथ ही आचार्यत्व भी विश्व कल्याण कामनासे ओतप्रोत था।

जीवन-एक प्रयोगशाला---आपका जीवन एक विशाल और वैविध्यपूर्ण प्रयोगशालाका जीवंत स्वरूप कहा जा सकता है, जिसमें सत्यका अन्वेषण, क्रान्तिकारी परिवर्तनका निर्देशन और भगवान महावीरके अहिंसा और विश्वमैत्रीके संदेश रूप निष्कर्ष पाये जाते हैं) आदर्श मानवता, पुनित परोपकारिता, सुयोग्य साधुतायुक्त मौलिक मार्गदर्शिता आपके कीर्ति कलेवरको न खत्म होने देगी; न अपरिमित विद्वत्तापूर्ण, प्रतिभा सम्पन्न, शासन प्रभावकतासे निबद्ध अ-क्षर अक्षरदेहको विस्मृतिके गर्भमें विलीन होने देगी। पू. श्री चरण विजयजी महाराजजी आपके प्रति हार्दिक उद्‌गार अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं- "साकार धर्म, सशरीर ज्ञान और मूर्तिमान चारित्र यदि कहीं एक स्थान पर ही देखने हों तो वे पूज्य श्री आत्मारामजी म.सा. में ही दृष्टिगोचर होते हैं।"[८९]

इसीका मूर्तिमंत स्वरूप साकार हो उठता है आपके कार्योमें, यथा-नामशेष होती हुई आदर्श संस्कृतिके जाज्वल्यमान-भव्य प्रतीक रूप जिर्ण-शीर्ण जिन प्रसादोंकी रक्षा हेतु श्री संघको प्रेरित किया तो उनके अभाव स्थानोंमें या क्षेत्रोमें नूतन चैत्य-निर्माणके लिए आह्‌वान किया, जो तत्कालीन परिस्थितिमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था।

अज्ञानांधकारमें भटकनेवाले अपने निराधार जैन समाजको नेत्रांजनके लिए एक क्रान्तिकारी कदम उठाया, जो प्रायः आपका स्थान महर्षि श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा.की श्रेणिमें स्थापित करता है। जैसे श्री दिवाकरजी म.सा.ने तत्कालीन परिस्थितियोंके कारण एक क्रान्तिकारी कदम स्वरूप, परंपरागत प्राकृतमें रचानेवाले जैन वाङ्मयको, संस्कृतमें रचनेका प्रारम्भ किया; ठीक, वैसे ही आपने भी, संस्कृत-प्राकृत भाषाकी प्रकांड-पांडित्यपूर्ण विद्वत्ता होने परभी, परिस्थितिके अनुरूप-जब संस्कृत-प्राकृत भाषा का अध्ययन प्रायः नामशेष हो रहा था तब-लोकभाषा हिन्दीमें अपनी समस्त साहित्यिक रचनायें की और जन समाज एवं जैन समाजको प्राचीन साहित्यकी उपादेयता समझाने हेतु अपूर्व-अहमियत-प्रयत्न किये; जो अपने आपमें संपूर्ण सफल रहें और जिससे विश्व मानव मस्तिष्ककी अनेक गलतफ़हमियोंका भी नीरसन हुआ। जैनधर्म-जैन सिद्धान्त और जैन समाजका भव्य ललाट गौरवसे उन्नत बन सका। फल स्वरूप ज्ञान प्राप्त समाज जड़तासे मुक्त होकर संभ्रान्त अवस्थासे निर्भ्रान्त वातावरणको पाकर अभ्युदयकी राह पर अग्रसर हुआ। "श्री आत्मारामजीने देखा कि संसारका त्याग करना-धन दौलत पर लात मारकर साधु-वेश धारण करना कठनि नहीं किन्तु साधारण साधुओंके लिए झूठे साम्प्रदायिक बंधनोंको तोड़ना या तुड़वाना दुष्कर हैं.....संन्यास मार्गमें प्रविष्ट होते ही साम्प्रदायिक बन्धनोंको आभूषण मानने लग जाते हैं, चाहे वे बंधन उनकी साधनाके लिए हानिकारक ही क्यों न हों.....साधु होने पर मिथ्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिष्ठा का मोह और भय उसके ज्ञान नेत्रों पर परदा डाल देते हैं।"[९०] इसी पर्देको लात मारकर आपने संविज्ञ दीक्षा ग्रहण की और अन्योंको दीक्षा-प्रदान अवसरों पर भी आपने उचित मूल्योंको निभाया और आदर्श साधु संस्थाका निर्माण किया। संयम जीवनके प्रत्येक क्रियानुष्ठानों-आचार-विचार-व्यवहार, आराधना-साधनाको, ज्ञान-प्राप्ति और चारित्र गठनकी प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातोंका भी कड़ी निगरानीसे पालन करके और करवाके यतियों और शिथिलाचारियोंकी नागचूड़से संविज्ञ साधु समुदायका उद्धार करके समाजके सामने उत्तम प्रायोगिक आदर्श प्रस्तुत किया।

"आप ढूंढ़कवेश छोड़कर संविज्ञ साधु बने यह कल्पनातीत साहस भी आपकी उत्कृष्ट मनोदशा, केवल सत्यके स्वीकारके लिए अप्रतिम नैतिक हिंमत और सत्यको विजयी एवं असत्यको पराजित सिद्ध करनेकी हार्दिक अभिलाषाका श्रेष्ठ प्रयोग ही है। अथवा 'सर्व धर्म परिषद-चिकागो'में जैन समाजके भक्त अनुयायीओंके प्रखर विरोधका सामना करके दृढ़ निर्धारके साथ जैन धर्मकी यशस्वी विजय पताका फहराने के लिए श्रीयुत वीरचंदजी गांधीको अमरिका भेजनेवाले इस महान गुरुदेवकी प्रायोगिक सिद्धिको ही प्रमाणित करता है।"[९१] आपकी जीवन प्रयोगशालाके प्रयोगोंका मुख्य ध्येय सत्यावलम्बन कहा जा सकता है जिसमें से सत्यका निर्मल नीर जीवन-तृप्ति प्रदान करता है।

जीवन-गुणोंका समुच्च-नम्रता व निरभिमानता ---

"निर्मल थे गंगाजल - से तुम,

विस्तृत उच्च हिमालय - से तुम,

पावन नीलनभांचल-से तुम,

तुममें जल-थल-गिरि-नभ छवि छायी सुखधाम।"[९२]

आपके जीवन राहमें फूल नहीं बिछे थे, लेकिन आप स्वयं फूल बनकर महके-सुवास बिखेरी।"

शायद समुद्रकी अगाधताका पता लगाया जा सकता है, लेकिन सच्चे साधक-महा पुरुषोंके गुणोंकी असीमताका वर्णन करना असंभव-सा है। वे आकाश-तुल्य-अनंत होते हैं। लेकिन सुरीश्वजीके अंतस्तलके उद्‌गारकी ओर गौर करें- 'सर्व गुणोंमें निरभिमानता नम्रता मुख्य गुण है, यह बात मत भूलना। जिसका रस-कस सूख गया हो वह सूखा वृक्ष ठिठुरकर-अक्कड़ बनकर खड़ा रहता है, लेकिन जिसमें रस है, जो प्राणी मात्रको मीठे फल प्रदान करता है वह तो नीचे झूककर ही अपनी उत्तमता सिद्ध करता है। नम्रतासे शरमाता नहीं है। हमें पके फलसे झूकनेवाले आम्र-तरु सदृश सर्वदा नम्रीभूत बन कर लोकोपकार करना चाहिए।"[९३]

इसी हार्दिक-नम्र मनोवृत्तिने ही, अपनी राहोंमें रोड़ा अटकानेवाले-प्रचंड विरोधकी आँधी फूंकनेवाले-पूज्यजी अमरसिंहजीके, रास्तेमें मिलनेपर दो हाथोंसे प्रेमपूर्वक नीचे बिठाकर, विनयपूर्वक विधिवत् वंदना करवायी थी; तो स्वंय आचार्य पदारूढ़ होने पर भी अपने बड़े गुरुजनोंसे वंदन-व्यवहार और उचित विनय विवेकका ध्यान रखवाया था। गुरुजी जीवनमलजीने जब आपके विरोधमें निकाले गए अमरसिंहजीके प्रतिवाद-पत्र पर अपने हस्ताक्षर किये तब भी उसी नम्रताने गुरुके दोष दर्शन नहीं होने दिये थे; तो अचलगच्छीय श्री हेमसागरजी-जो अपने आपको जंगम युगप्रधान मान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बैठे थे, उनको-एक जगह पर आपके होनेवाले स्वागत जुलूसमें अपनेसे आगे चलनेकी स्वेच्छासे संमति देकर संतुष्टि प्रदान की और समाजमें नम्रता-उदारता-सरलताकी अनमिट छाप अंकित कर ली।

पू. मूलचंदजी महाराजके भेजे हुए ध्रांगध्राके दो अजनबी शख्शोंको दीक्षा दे देनेके पश्चात् अहमदाबादके अग्रणी-नगरशेठका, उनको दीक्षा-प्रदानके निषेधका पत्र आता है, तब अत्यंत पश्चात्तापके साथ अपनी अपूर्णता-जल्दबाज़ी और तुच्छ बुद्धिका स्वीकार करके हार्दिक नम्रताका नमूना पेश करनेवाले[१४] सूरिजीके निश्चयात्मक निर्धारको कलकत्ताके बाबू बद्रीदासजीकी नम्र अर्जभी परिवर्तीत नहीं कर सकती है।[१५] अर्थात् आपकी नम्रतामें नमायेपनका आभास नहींहे, न कमज़ोर कायरोंकी झलक हैं, लेकिन निरभिमानतायुक्त स्वतंत्रताकी सच्ची दिलेरी छलकती है।

आपकी नम्रता और निरभिमानताकी चरमसीमा तब अनुभूत होती है, जब आप-एक दिग्गज विद्वान, मान-सम्मान एवं आदर-सत्कारके उत्तुंग शिखर पर स्थित थे, सत्यासत्यके निर्णयानन्तर तृणवत् मान करके बेझिझक बेफिकर स्थानकवासी समाजको त्यागकर भगवान श्री महावीर स्वामी के सत्य पंथके पथिक बननेको सन्नद्ध हुए। उस समय २२ वर्षके दीर्घ दीक्षा पर्यायका आग्रह न रखते हुए अहमदाबादमें पूज्यपाद मुनीश्री बुद्धिविजयजी (श्री बूटेरायजी म.)की निश्रामें, शुद्ध-संविज्ञ-चारित्र-संयम मार्ग अंगीकार करके, विधिवत् भगवान महावीरकी आज्ञाको ही सर्वोपरि मानकर स्वीकार किया।

साहसिकता---भारतके महान संतरी पंजाब-जिसकी ऐतिहासिक भूमि-रत्नगर्भा वसुंधरा-की शक्ति अपार है-, उसने, स्वयंके बाहुबलसे बंदीखानेकी बेडियाँ तोड़कर मुक्त होनेवाले बलवान और बंड़खोर बापके बहादूर बेटेकी भेंट जैन जगतको दी। जिसकी नैष्ठिक साहसिकताने नूतन ज्ञान रश्मियाँ युक्त तीक्ष्ण-भेदक विवेक चक्षुका उद्‌घाटन करके संप्रदायकी सूक्ष्म बेडियोंको तोड़कर और तुड़वाकर स्व-पर जीवनका उद्धार किया, समाजको नया राह दिखाया और अंधकार गर्तसे उद्धारनेवाले सत्यालोकका स्वरूप प्रस्तुत करके अपने खूनके परंपरागत अधिकारको स्थापित किया; मानो अपने उत्तराधिकारका सात्त्विक उपभोग किया।

जीवन संग्राममें असत्यके विरुद्ध निर्भीक योद्धाकी तरह लड़ते रहें और द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसार मृतप्रायः जैन परंपराओंकी कईं भ्रान्तियाँ निवारण करके नये आयाम और नये अर्थोंमें रुपांतरित किया। सत्य धर्मके प्रचारका मार्ग तलवारकी धार सदृश दुर्गम था और परिस्थितिको सत्यानुकूल बनाना लोहेके चने चबाना था। लेकिन, आपकी सत्यदर्शी साहसिकताने ही आपके व्यक्तित्वको एक क्रान्तिकारका रूप प्रदान किया। जो केवल कल्पनाके सुनहरे स्वप्न ही नहीं देखते थे, वैचारिक आंदोलनोंको क्रियात्मक रूप भी देनेका तत्काल प्रयत्न करते थे-"आपके चारित्रमें धगधगायमान ज्वालामुखीकी प्रलय-प्रचंड़ता नहीं है, लेकिन भूकंपकी विनाशकता है। ग्रीष्मके मध्याह्न सूर्यकी भीषणता नहीं, पर सर्दीको दूरकर, बादलको बिखेरकर, ओस और कोहरेको शोषित करनेवाले बाल रविकी शनैः शनैः वृद्धिगत दमदार गरमी है। बर्फिली शिलाओंको घसिटते, पहाडोंको विदारते, अनेक हस्तोंसे सागरको भेटनेवाले महानदकी प्रखर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशालता नहीं, लेकिन काँटे-कंकरोंको धकेलती, निर्मल नीर प्रदान करती, खेंतोको सिंचती, जरूरत पड़ने पर कभी तुफानी बनती हुई, फिरभी, शांतिपूर्वक सागरको मिलनेवाली नदीकी मीठी प्रबलता है। एक ही तीरसे प्रतिस्पर्धीको हरानेकी नहीं लेकिन एक के बाद एक तीरोंको छोड़कर वादीको सकपकानेकी शूरवीरता है।"[९६]

आपकी साहसिकताके परिणाम स्वरूप जैन समाजकी वर्तमान उन्नतिका चित्रण करते हुए 'श्री विजयानंदावतार' काव्यमें जैन कविने अंकित किया हुआ चित्रण-

"चहुँ ओर सुधारस धार बही, मलयानिल मंद बयार बही;
मधुमय सुवसंत प्रचार हुआ, आनंद विजय ! आनंद विजय !
पतितोंका प्रभु उत्थान किया, मृतकोंको जीवनदान दिया;
गण प्राण पुनः संचार हुआ, आनंद विजय ! आनंद विजय !
फिर जैन धर्म उद्धार हुआ, प्रभुका अनंत उपकार हुआ;
यह भारत स्वर्गागार हुआ, आनंद विजय ! आनंद विजय !"[९७]

आपकी साहसपूर्ण शेरगर्जनासे ही तो तत्कालीन मिथ्यात्व और पाखंड़, प्रपंच और कृत्रिमता-सभीमें एक साथ तूफानी खलबली मच गई थी। नम्रताका परिचय देते हुए पूज्यजी अमरसिंहजीको विधिवत् वंदना करनेवाले इसी साहसिक वीरकी हिम्मत थी जो उनके झूठे निर्देश-प्रायश्चित्त लेनेके-करने पर पूज्यजीको स्पष्ट कह देते हैं-"मैं क्यों प्रायश्चित् लूँ? आपके श्रावक मोहनलाल और छज्जूमल यदि झूठे हैं तो वे प्रायश्चित्त करें और आप झूठे हों तो आपको प्रायश्चित्त लेना चाहिए।"[९८] विरासतमें पायी सच्चे सैनिककी संस्कारयुक्त साहसिताके कारण आप न कभी इरना सिखे थे, न हारना जानते थे। एक बार सिरोही से आबू जाते समय रास्तेमें डाकूओंके भयसे श्रावकोंने चार सिपाही साथमें दिए। रास्ते में डाकूओंका नाम सुनते ही सिपाही दूसरे रास्तेसे जानेकी प्रार्थना करने लगे उस समय आपने उन्हें उलाहना देते हुए जोश और हिंमतका संचार किया-आगे बढ़ाया और कुनेहपूर्वक व्यवस्थित आयोजनसे साधुओंके डंडे बंदूककी तरह कंधे पर रखवाकर सैनिक दलका आभास खडा करके डाकुओंको भगा दिया।

ऐसे साहसवीर धर्मनायक जिंदादिलीसे जीवन जी गये और औरोंको भी जिला गये। उन्हें विश्वास था कि सत्यमार्गके पथिककी बाधायें हवाके मामूली झोंकोंसे ही दूर हो जाती हैं। सत्यके प्रति प्रेम और श्रद्धायुक्त ठोस ज्ञानका साहस-ये चिंतामणी रत्न हैं जिनके सामने सर्व मुश्किलें नगण्य हैं। साहसके विद्युत् केंद्र सदश आपके सान्निध्यमें जैन समाजने अनूठी चेतना-शक्तिका अनुभव किय।

श्री आत्मारामजी महाराजका जीवन और आदर्श चरित्र, सत्यनुरागी, सेवामय, सम-शम-श्रम का ज्वलंत उदाहरण और सच्चे श्रमणका प्रतिक हैं।

विद्या ददाति विनयम्- "एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो"-[९९]

इस आगमाधारको सर्वदा हदयस्थ रखनेवाले प्रकांड पांडित्य युक्त समर्थ एवं प्रतिष्ठित विद्वान पूज्य सुरीश्वरजीके अंतःस्तलका कोने कोना अहंकाररहित व विनयसे ठसाठस भरा हुआ था। वे विशेष रूपसे यह ध्यान रखते थे कि उनकी लेखिनीसे ऐसा कोई आलेखन कभी न हों जो भ. श्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर की मूलवाणीके तात्पर्यसे विरुद्ध हों। आपके विविध ग्रन्थोंमें लिपिबद्ध कुछ भाव- "इन सर्व प्रश्नोत्तरोंमें जो वचन जिनागमके विरुद्ध भूलसे लिखा गया हों उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ। सुज्ञजन आगम अनुसार उसे सुधार कर लिख दें.और मेरे कहे अपसूत्रका अपराध माफ कर दें।"[१००] जहाँ अपनी प्रगल्भ-व्युत्पन्नमति-बुद्धि प्रतिभारूप योग्यताके बल पर किसी शब्द या वाक्यका अर्थ लिखा है, जैसे कच्छ प्रदेशके अंजार गामके पास श्री भद्रेश्वरजी तीर्थमेंसे प्राप्त प्राचीन ताम्रपत्र पर अंकित पंक्तिका अर्थ लिखा है, वहाँ भी विनेय बनकर निर्दिष्ट किया है- "इस चैत्यका एतिह्य रूप खरडे तथा कच्छ भूगोलमें लिखा है श्री वीर संवत तेईस वर्षमें यह जिन चैत्य बनाया। इस लिए हमने ताम्रपत्रके लेखकी कल्पना भी इसके अनुसार ही की है। किसी गुरु-गम्यतासे नहीं। इसलिए इसकी कल्पना कोई बुद्धिमान यथार्थ रूपसे अन्य प्रकारसे करके मुझे लिखें तो बडा उपकार होगा।"[१०१]

जबकि श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीके 'अयोगव्यवच्छेद' एवं 'लोकतत्त्व निर्णय' नामक ग्रन्थ और श्री हेमचंद्राचार्यजीके ग्रन्थ 'महादेव स्तोत्र'के श्रेष्ठ विद्वत्ताके परिचायक अविकल अनुवाद और भावार्थ प्रस्तुत करके जो अपील की है-विनीत संस्कारोंकी द्योतक हैं-यथा-।

"सर्वश्री संघसे हम नम्रता पूर्वक विनती करते हैं कि 'महादेव स्तोत्र', 'अयोग व्यवच्छेद', 'लोक तत्त्वनिर्णय' नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमें मिली नहीं है। केवल मूल मात्र पुस्तकें मिली हैं। वे भी प्रायः अशुद्ध हैं। परंतु कितने मुनियोंकी प्रार्थनासे बालावबोध रूप किंचिन्मात्र भाषा लिखी है। उनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसे कुछ अन्यथा व जिनाज्ञा विरुद्ध लिखा गया हों तो हमें मिथ्या दुष्कृत हों। अगर हमारी बाल क्रीडामें भूल हो गई हों तो सुज्ञजनों द्वारा उसका सुधार कर लेना चाहिए।"[१०२]

उपरोक्त विवरणमें जैसे जिनेश्वरोंकी वाणी एवं पूर्वाचार्योंके वचनोके प्रति जो अखंड आस्थापूर्ण विनयभाव दष्टिगोचर होता है, ऐसा ही अगाध श्रद्धायुक्त विनय समकालीन महापुरुषोंके प्रति भी प्रवाहित होता रहता है-यथा-१ गुरुबंधु श्री वृद्धिचंद्रजीसे स्वयं आचार्य होते हुऐ भी वंदन व्यवहार करना।[१०३] २. श्री मूलचंदजी महाराजके शिष्य श्री लब्धिविजयजीम.को भी स्वयंज्ञान-गुण और आचार्यत्वसे बडे होने पर भी दीर्घदीक्षा पर्यायी होनेसे वंदना करनेकी तत्परता बतायी[१०४] ३. सुरत चातुर्मासान्त श्री संघके श्रावकोंकी श्रेष्ठ साधु विषयक पृच्छा समय, अन्य समुदाय• के होने पर भी विद्वान श्री मोहनलालजी महाराजजीकी ओर प्रशंसापूर्ण निर्दश किया और स्वंयसे श्रेष्ठ दर्शाकर श्रावकोंको आश्वस्त किया।[१०५] ४. स्वंय आचार्य होने पर भी जब तक गणि श्री मूलचंदजी महाराज जीवित थे तब तक अपने साधुओंको योगोद्वहन• और बडी दीक्षा जैसे कार्य उनसे ही करवाकर उनके प्रति विनयपूर्ण सम्मान प्रदर्शित किया।[१०६] ५. जैन समाजके अरिहंत और केवली भगवंतोंके विरहमें सर्वोत्तम, पंचपरमेष्ठिके पंचपदोमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण-प्रजातंत्र राष्ट्रके राष्ट्रपति तुल्य-महत्तम, आध्यात्मिक गुरुताके सम्माननीय एवं उत्तरदायित्वपूर्ण पदासीन बनानेके गौरवपूर्ण अवसरोचित श्री संघकी विनती पर, आपका श्रेष्ठ विनयपूर्ण और केवल सामाजिक भावना प्रदर्शित करता हुआ प्रत्युत्तर- "संवेगी समुदायमें मेरी आचार्यकी उपाधिकी क्या आवश्यकता है ? मैं गुरुदेवके चरणोमें सबसे छोटा सेवक हूँ। दीक्षामें बडे मेरे गुरुभाई मौजूद हैं। मेरे लिए यह शोभास्पद नहीं कि मैं अपनेको उनसे बडा बनाऊँ। मैं इस पदके योग्य भी नहीं हूँ.....।"[१०७]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके जीवनमें ऐसे अनेक प्रसंग घटित हुए, जो आपके जीवनमें *'विद्या ददाति विनयम्'* उक्ति चरितार्थ करनेवाले और नयन युग्मोंको विस्मित करनेवाले हैं।

महातपस्वी---अपूर्व त्यागमूर्ति, शास्त्रानुसारी शुद्ध संयम यात्राके यात्री श्री आत्मारामजी म. बाह्याभ्यंतर त्याग युक्त उग्र तपस्वी थे। सर्व परिग्रह परत्व ममता-मोह या मूर्च्छारूप बाह्य त्याग और राग-द्वेषादि कषाय रूप आभ्यंतर त्यागसे सर्वांग संयमी, विकट कष्ट-उग्र परिसह या भयंकर उपसर्गमें भी धैर्य और क्षमा धारण करके निरतिचार-रत्नत्रयी-स. दर्शन, स. ज्ञान, स. चारित्रकी उत्कृष्ट आराधनामें लयलीन रहना उनकी महानताका मापदंड था।

उज्जवल नयनों मेंसे झलकती तपश्चर्याकी ज्योति तपोमय मुखारविंदको अधिक प्रकाशित करती थी। बाह्याभ्यंतर तपकी साक्षात् प्रतिमा निर्मल आत्मामें उग्रता या क्रोधकी अलोपतासे मनोहर और देदीप्यमान-प्रसन्न वदनकमल शोभायमान होता था। रसनेन्द्रियको आपने इस सीमा तक जीत लिया था कि बिना स्वाद या जिह्वा लोलूपताके-एकही पात्रमें सभी भोज्य सामग्री मिलाकर, जीवन गुजाराभर आहारग्रहण कर लेते थे। यदि आहार न मिला तो भी 'तपोवृद्धि' मानकर नित्यक्रममें लग जाते थे। कईंबार आहार-पानीके बिना ही दिन पर दिन निकल जाने पर भी कभी ग्लानि महसूस नहीं की- "गोड़वाड़ के मरुस्थल और भीषण मार्गों से होते हुए पंजाबकी ओर पैदल यात्रा करना साहसी, तपस्वी और सहनशील साधुओं के ही सामर्थ्यमें हैं। कईंबार आपको व आपके साथ साधुओंको दो या तीन उपवासकी तपश्चर्याके साथ विहार करना पडताथा.....कईंबार मीलों तक पानी या आबादीका निशान भी नहीं दिखता था और आहारपानीका कष्ट सहन करना पडता था।" [१०८] सच्चे त्याग और उग्र तपके बिना आप जैसी ज्वलंत शासन प्रभावना और धर्मप्रचारकी शक्यता कभी नहीं हो पाती।

विशुद्ध नैष्ठिक ब्रह्मचर्य---चुंबकीय और चमत्कारिक अध्यात्म शक्तिके स्वामी, विश्ववंद्य, निर्मल-नैष्ठिक-आजन्म भीष्म ब्रह्मचर्यके प्रतापी किरणोंसे देदीप्यमान वदन कमलके दर्शन मात्रसे या सान्निध्यके प्रभावसे आधि-व्याधि-उपाधि, तन-मनका मालिन्य या रोग-शोकादि कष्ट दूर भाग जाते थे। इस महान ज्योतिर्धर के अंग-प्रत्यंग-उपांगसे फैलनेवाले ब्रह्मतेज़की प्रतापी रश्मियोंका प्रभाव, आपकी जलद-सी गंभीर गिरामेंभी झलकता था "श्री आत्मारामजी म.के भव्य और मनोहर शरीरके रोमरोम और अणु-अणुसे ब्रह्मचर्यकी पवित्र सुवास फैलती थी। अखंड ब्रह्मचर्यके उत्तम प्रभावसे ही वे विश्वमें वीतरागका शुद्ध सनातन मार्ग प्रसारित कर सकें। [१०९]

दूरदर्शी आचार्य---समाजकी नाड़ परख कर उसे हितकारी राहका निर्देशन करनेवाले युग-प्रवर्तक और नवयुग निर्माताके दूरदर्शीपनेका दर्शन हमें होता है जब जैन समाजकी ओरसे श्री वीरचंदजी गांधीके धर्म प्रचार हेतु विदेश गमन पर आक्रोश व्यक्त करते हुए उन्हें जैन संघसे बहिष्कृत करनेका निर्णय होने जा रहा था, तब आपने चेतावनी के सूरसे ललकारा था-- "याद रखना, आज धर्मके लिए श्रीयुत गांधी समुद्र पार 'चिकागो विश्वधर्म परिषद'में गये थे। मगर शीघ्र ही एक समय थोड़े ही अरसेमें आवेगा कि अपने मौज़-शौकके लिए, ऐश-आरामके वास्ते तथा व्यापार करने, लोग समुद्र पार-विलायत आदि देशामें जायेंगें। उस समय किन किनको बाहर करोगे ?"[११०] –जो आज शतप्रतिशत सत्य सिद्ध हो रहा है। परंपरागत रूढ़ियोंके परिवर्तनके लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी जो प्रेरणायें आपके प्रवचनोंमें बार-बार होती रहती थी-ये आपके इसी दूरदर्शीपने के गुणसे उद्‌भवित होती मालूम पड़ती है जिसकी महती आवश्यकता आज सवासौ सालके बादभी हम महसूस करते हैं।

संयम प्रदान करनेमें भी जो कुशलता आपने अपनायी थी-व्यक्तिकी योग्यायोग्यताकी परख कर लेने के बाद ही योग्य व्यक्तिको ही दीक्षा-प्रदान करनेकी प्रणालिका अपनायी, वह वर्तमान युगमें कितनी आवश्क है उसका अनुभव समाज हितैषी प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है। फिलहाल साधु जीवन के शिथिलाचार, मिथ्या-पाखंड़ादि देखते हुए प्रतीत होता है कि योग्यायोग्यके बिना परीक्षण, शिष्य परिवारवृद्धिके ही एक लक्ष्यसे दी जानेवाली दीक्षायें ही कारणभूत है। यही कारण है कि आपकी अपनायी दीक्षा-प्रदान-प्रणालीका से व्यूत्पन्न आपका विशाल शिष्यवृंद आत्मार्थी-समाजोपकारी अर्थात् स्व-पर कल्यणार्थी था और है भी।

इससे भी एक कदम आगे बढ़कर दीक्षोपरान्त शिष्य समुदायकी समुचित एवं सर्वांगिण विकासलक्षी कार्यशीलताके लिए आप सदैव तत्पर रहते थे। जैन साध्वाचारकी सच्ची प्रतिष्ठाके प्रणेता, अनुशासन प्रिय, इस सूरिराजने जरा-सी भी शिथिलता या असावधता होने पर शिष्योंकों प्रायश्चित्त रूप दंड़ दिया था। गुर्वाज्ञा भंग करनेवालेको कड़े शब्दोमें फटकार दिया था। साधु जीवनोचित स्वावलंबनमें बेदरकारको-अन्य पर पराधीन रहनेवाले शिष्योंकी भर्त्सना होती थी। साधुओंके, साध्वीगण या श्राविकाओंके साथ परिहासजनक या बेमर्याद बातें या अनुचित वर्ताव पर कड़ी चेतावनी और सख्त प्रायश्चित्त दिया जाता था।

गुरुमाताके रूपमें---प्रतिदिन शिष्य परिवारको नियमित धर्म शिक्षण देते थे, तो ज्ञान वृद्धिके लिए स्वानुभूत तथ्योंकी एवं सत्योंकी गोष्ठि करते थे। कभी धार्मिक-सैद्धान्तिक-दार्शनिक चर्यायें होती रहती थीं तो कभी सामान्य जीवन प्रसंगोंमें से आध्यात्मिक शैलीसे परामर्श करते थे। जैसे "एकबार एक गाँवमें कहीं पर प्रासुक जल पीने के लिए न मिला। तब साधुओंने छाछ प्राप्तिके लिए प्रयत्न किये लेकिन वह भी नसीब न हुई। इतनेमें निराशाकी बदली हटानेवाले आशारूप सूर्य सदृश किसी वृद्धने उस गाँवके मुख्य जमींदारका घर निर्दिष्ट किया। सभीने वहाँसे यथावश्क छाछ प्राप्त की।" इस प्रसंग पर परमार्थ निकालते हुए आपने साधु मंडलीको कहा कि गाँवके सभी घरोंमें छाछ थी, लेकिन वह मुखिया हीरासिंगके घरसे लायी हुई थीं, जिसमें सभीने आवश्यकतानुसार पानी मिलाया था, इसलिए किसीने छाछ नहीं दी। लेकिन हीरासिंगके घर उसकी अपनी ही छाछ थी इसलिए वह निर्भेल और प्रचूर मात्रामें थी। यही कारण था कि हीरसिंगने सबकी तृप्ति हो जाय उतनी छाछ दी। परमार्थ---यहाँ हीरासिंगकी छाछ यह जैन दर्शन और गाँवके घर-यह अन्य दर्शन समझें। जैन दर्शनके ही विविध नय रूप कुछ कुछ सिद्धान्तोंको स्वीकार करके और उसमें अपना (पानी) कुछ नमक-मिर्च मिलाकर मनघड़ंत सिद्धान्त बने जो एकान्तवादका पानी मिलनेसे दीर्घकालीन नहीं बने। उदित होकर, थोडे समय फैलकर, विस्मृतिके गर्भमें चले जाते हैं। और जैन दर्शन अपने निजी सिद्धान्तोंके कारण और परिपूर्ण-छलाछल-भरपूर होनेके कारण वह चिरंजीव है-अनादि अनंतकाल-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाश्वत संतुष्टि प्रदाता है। जिनशासनके किसीभी सिद्धांतोंको स्वीकारनेवाले कोईभी दर्शनका समन्वय जिनशासनके अनेकान्तवाद और स्याद्वादमें प्राप्त होगा ही। क्योंकि, षट् दर्शनोंका निर्मल समन्वय जिनशासनमें है। इसलिए हे भाग्यवान ! आप इधर उधरके ठोकरें लगनेवाले भ्रमणको छोड़कर हीरासिंग जैसे शुद्ध-निर्मल-सिद्धान्तवाले-जिनशासनकी शरण लें, जिन शासन आपके स्वागतके लिए हीरासिंगके समान सदैव-सर्वत्र प्रसन्नतासे तत्पर है"---ये है आपकी बुद्धि प्रतिभाका चमकार।

बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी---आप, जैसे विनीत, गुर्वाज्ञा प्रतिपालक, अनुशासित, ध्येयलक्षी, सत्य गवेषक कर्मठ शिष्य थे वैसे ही प्रबल अनुशास्ता, सिद्धांतवादी, दूरदर्शी, उत्तर दायित्वके समुचित पालक, आश्रितों एवं शिष्य परिवारके लिए वात्सल्य निधि-श्रेष्ठ गुरुभी थे।

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'—इस उक्तिको सार्थक कर्ता महान गुरुवर्यका चित्रण विद्वान शिष्य श्रीकान्तिविजयजीम.की हस्तलिखित अप्रकाशित डायरीमें इस प्रकारहै-"श्री आत्मारामजी स्वभावतः बहुत ही आनंद युक्त पुरुष थे। कईबार अत्यंत निर्दोष आनंद करते। कभी कभी शास्त्रीय राग-रागिनी गाकर स्वर-लय आदि समझाते। कभी गणितानुयोगकी गंभीर समस्यायें स्पष्टतः समझाते। समय होनेपर आकाशके ग्रह-तारोंकी पहचान करवाते। कभी न्यायशास्त्रकी गहन बातें और नय-निक्षेपका महत्व सरल भाषामें स्पष्ट करते। कभी कभी स्वयमेव पूर्व-उत्तरपक्ष स्थापनाकर चर्चाकी शैलीका उदाहरण उपस्थित करते। श्रावकोंको उनके लिए उपयोगी सिद्ध होनेवाले उपदेश देते। दीक्षामें अपनेसे बड़े किसीभी मुनिराजके समागमका अवसर आता तो अभिमान रहित उन्हें वंदना करनेको तत्पर रहते। मना करने परभी विनय धर्मानुसरण करते हुए वंदन व्यवहार करते। ज्ञान और विनयके तो वे भंडार थे।"[111]

वाक्संयम-(तोल तोलकर बोल)---महान व्यक्तियोंका महत्वपूर्णगुण है वाणी और वर्तनमें साम्य। जो अपने वचनका मूल्य स्वयं नही निभाता उसके वचनोंको औरोंके सामने भी निरर्थकता-निर्माल्यता धरनी पड़ती है। पू. गुरुदेवकी वाणी अमूल्य थी। उन्हें वचनगुप्तिका महत्व अतीव था। वचनपालनके लिए वे दृढ़ निश्चयी थे और शिष्य परिवारसे भी वैसी ही अपेक्षा रखते हुए एकबार अपने प्रिय प्रशिष्य श्री हर्ष विजयजी म.कोभी टोक दिया था। "यदि आपको नहीं जाना था, तब बोलने के पहले विचार क्यों नहीं किया ? जो बोलो वह तोलकर बोलो। अब घोघाके श्रावकोंको वचन दे चूके हों तो उसका पालन करना ही होगा। यदि तुम स्वयं ही अपने वचनोंका मूल्य न जानोगे तो दूसरेभी फूटी कौडीकी किंमत न रखेंगें ।"[112] और श्री हर्ष विजयजीको घोघा जाना ही पड़ा-वचन पालनके लिए।

आप जानते भी थे और मानते भी थे मौनकी शक्ति-इसलिए उनका प्रत्येक वचन प्रभावपूर्ण, प्रतिभाशाली और प्रतापी-वर्चस्वयुक्त था। वचन सिद्धि उनके चरण चूमती थी। उनकी वाणीसे मानो अमृत रसकी बूंदें टपकती थीं, जिनका पान श्रोताको अमर आत्मानंद प्राप्त करवाता था। गरिमामयी गिरा आपके अनुपम गौरवान्वित व्यकतित्वको अलंकृत करती थीं।

'समयं मा पमायं–प्रमादका आपके जीवनके किसी कोनेमें, कहीं परभी, कोई स्थान न था। आपके जीवनका एक एक पल अनमोल था। प्रत्येक समयके लिए कुछ कार्य और प्रत्येक कार्यके लिए समय निश्चित रहता था। यहाँ तक की आराम-आहार-निहार-सभीके लिए निश्चित समय था। और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धारित समय पर ही निश्चित कार्य करनेकी दृढ़ता भी गौर करने योग्य थी। समयके पाबंद गुरुदेव किसीकी भी परवाह नहीं करते थे। अहमदाबादसे विहार करते समय नगरशेठ समय चूके। आपने उनकी परवाह किये बिना ही, औरोंके रोकने पर भी न रुककर, विहार कर ही दिया। कलकत्ताके बाबूजीकी रुक जानेकी विनती भी अमान्य करते हुए बिना संकोच कह दिया कि, "कार्यक्रम निश्चित हो चूका है इसलिए अब नहीं रुक सकते।" लाभ लेनेके लिए बाबूजीकोभी चलना पड़ा। सुरतके श्रावक सांवत्सरिक प्रतिक्रमणका समय हो जाने पर भी तैयार नहीं थे, तब चेतावनीके स्वरमें प्रतिक्रमण प्रारम्भ करनेकी घोषणा कर दी, जिससे सभी धड़ाधड़ तैयार होकर बैठ गए।

आपकी दैनिक जीवनचर्या इसका ज्वलंत उदाहरण हैकि एक अहोरात्रिमें आप केवल चारसे पाँच घंटोके लिए विश्राम करते थे। इसके अतिरिक्त एक मिनिटका समय कभी-कहीं पर, किसीके साथ बेकारमें व्यर्थ नहीं करते थे। तभी तो अपनी इतनी छोटी जिंदगीमें जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें चंचूपात किया और सफल जिंदगी जिंदादिलीसे जी गये। इतना विशाल और गहन अध्ययन एवं अध्यापन, लेखन एवं पठन, व्याख्यान एवं वाद, साधु सुधार एवं समाज सुधार आदि अनेकानेक स्व-पर कल्याणकारी विशिष्ट कार्य सम्पन्न कर सकें।

समयज्ञ संत---केवलज्ञानके दर्पणमें सनातन सत्य और मूलभूत सिद्धांतोंको देखकर सरल और संक्षिप्त रूपमें प्ररूपित करना यह सर्वज्ञोंका उपकार है। लेकिन उसे चिरकाल तक स्थायी स्वरूपमें समाजमें प्रसारित और प्रचारित करना यह समयज्ञोंके स्वाधीन हैं। समयको पहचानकर समाजका पथप्रदर्शक समयज्ञ कहा जाता है। जैसे पूज्य गुरुदेव समयका मूल्य अमूल्य आंकते थे, वैसे ही समय अर्थात् कालमान-प्रवाहित समयके भी पारखी थे। आपके जीवनमेंभी समय समय पर ऐसे समयज्ञताके चमकार दृष्टिगोचर होते हैं।

सर्व प्रथम स्थानकवासी रूढ़ि परंपरानुसार व्याकरण न पढ़नेकी गुर्वाज्ञाको भी समयज्ञ संतने लांघकर व्याकरणके साथ काव्यालंकार और न्यायादिका भी अभ्यास किया। फलतः शास्त्र सिद्ध सत्यका परिचय हुआ। तत्काल आपने प्रबल-झंझावाती विरोधोंके बीच सत्यका ध्वज लहराया और स्थानकवासी, आर्यसमाजी, थियोसोफिस्टोंके मूर्तिपूजा विरोधी बखेडोंको---उन्हीं क्षेत्रोंमें मूर्तिपूजाका बिगूल बज़ाकर, मूर्तिपूजाके शास्त्रीयाधारों पर मंड़ाण कर भावपूर्वक-प्रेमसभर-मूर्तिपूजा तत्पर-श्रद्धावान समाजका सृजन करके---बिखेर दिया।

इससे आगे बढ़कर यथासमय, समर्थ विद्वत्ता और दृढ़क समाजके श्रद्धाभाजन होनेके प्रत्युत, समयज्ञ संत आत्मारामजीने सुयोग्य गुरु श्री बुद्धिविजयजी म.सा.की निश्रा एवं शिष्यत्व स्वीकार करके संविज्ञ विधि पक्ष अनुशासनको अंगीकृत किया। यह उनकी समयज्ञताका ही चमकार था कि, एक सफल सुकानी सदृश अगाध ज्ञान और युक्ति प्रमाण न्यायकी अकाट्य तर्कबद्ध विश्लेषण शैलीरूपी पतवारोंसे झूठी प्ररूपणा और क्षुद्र मतभेदोंके भंवरोंमें फसनेवाले जैन संघ रूपी जहाज़को बचा लिया। भारत वर्षके समस्त श्री संघोकी सूरिपद स्वीकारनेकी विनतीको, अपनी हार्दिक अनिच्छा होते हुए भी यतियोंके वर्चस्वको दूर करने हेतु ही, मान्य रखकर समयज्ञ साधु श्री आनंदविजयजी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्विजयानंद सूरि बने और संविज्ञ साधु संस्थाके लिए आचार्यपदका मानो द्वारोद्घाटन किया। वही समयज्ञता झलकती है श्री वीरचंदजी गांधीको, विश्वधर्म परिषदमें भाग लेकर जिनशासनकी महती प्रभावना करवानेकी दीर्घदर्शी ख्वाहीश पूर्ण करनेके लिए अमरिका भेजनेमें; फलतः पाश्चात्य विश्वमें जैन धर्मकी सच्ची प्ररूपणा और जैन सिद्धांतोंके प्रति जिज्ञासा प्रगट हुई एवं वर्तमान युगमें दृष्टिगोचर होनेवाले जैनधर्मके ये प्रचार और प्रसार शक्य हो सके। समयके योग्य परीक्षक सूरिजीने प्राकृत एवं संस्कृतमें प्रकांड़ पांडित्य होने परभी तत्कालीन सामाजिक परिस्थितिको लक्ष्यमें रखकर अपना संपूर्ण साहित्य लोकभाषा-हिन्दीमें ही रचा और जैन वाङ्मयको लोकभोग्य बनाया। कालप्रवाहको सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण दृष्टिसे पहचानकर श्रावक समाजकी कुरूढि-परंपराये एवं अज्ञानतादि के अंधकारसे उद्धार करके आलोकित करनेवाले जैन समाजके प्रथम हितैषी सूरिराजके स्वरूपका हमें श्रीमद्विजयानंदजी सुरीश्वरजीमें अनायास ही दर्शन होते हैं। (आपके प्रवचनोंके निर्देशन और साहित्य सागरकी सर्जन लहरियोंके प्रतिघोषोमें इस ध्वनिको अनुभूत कर सकते हैं।)

इस समयज्ञ सूरिजीकी विशाल और उदार भावनाने विश्वधर्मके सर्वथा सुयोग्य जैन धर्मका उपदेश केवल जैनोंको लक्ष्य करके ही नहीं, जैनेतरों-सर्व मानव मात्रके लिए-उपयोगी बन सके ऐसी लाक्षणिक शैलीमें प्रवाहित किया।

संस्कृति एवं मनीषियोंकी जीवंत संस्था---आपके समयमें ज्ञानको जैसे हवा लग गयी थी। इस शेर-ए-पंजाबकी आक्रोशपूर्ण दहाड़की गूंजसे सुषुप्तोंकी निंद खुली। जैन समाज़ आहिस्ता आहिस्ता करवट बदलता हुआ जागृत होने लगा। आपने अपने अमोघ प्रवचन और अपूर्व लेखनसे शिक्षाके महत्वको प्रसारित किया और प्रचारित भी, जिससे शिक्षाकी ओर कदम बढ़ाते हुए जागृत समाजको योग्य मार्गदर्शन देते हुए कईं विद्वान साधु एवं श्रावकोंको धर्मज्ञानाभिज्ञ बनाये जहाँभी गये संस्कृति प्रचार और विद्वान पंड़ितोंके निर्माण योग्य अनेक कार्य किये।

मूर्तिपूजाके उत्थापक ढूंढ़क समाज़, आर्यसमाज़, ब्रह्म समाज़, प्रार्थना समाज़, थियोसोफिस्टादि से लोहा लेना बच्चोंका खेल न था। इसलिए तद्विषयक मनीषियोंको अत्यंत प्रोत्साहित करते हुए जैनधर्म-गंगाको क्षीण प्रायः होनेसे बचाकर इस अद्यतन भगीरथने उसे भागीरथीका रूप प्रदान किया। जैन संस्कृति और साथ साथ हिन्दू संस्कृतिके उत्थान-विकास-विस्तृतीकरणके लिए अथक परिश्रम और प्रयत्न आपके प्रवचन और साहित्यमें अनेक स्थानों पर मिलते हैं।

ढूंढ़क समाजमें रहकर ही मुंहपत्ती विरुद्ध और मूर्तिपूजाका प्रचार करना मानो 'दिन दहाड़े चांद दिखानेवाली बात थी। लेकिन, दृढ़ आस्थावान, मानो सत्यके अभिन्न अंग, स. ज्ञानतपोमूर्तिने पंजाबमें चिरकाल तक भ. महावीरके शाश्वत-शुद्ध धर्मको अविचल बनानेके लिए; जी-जान पर खेलकर प्रयत्न किये और ज्वलंत विजय पायी। वर्तमान जैन समाजकी चतुर्विध संघकी-सर्वदेशीय जाज्वल्यमान परिस्थिति आपही के जीवनकी फनागिरिका फल है। साधु संस्थाकी दयनीय दशाको प्राणवान बनाने और विशालता प्रदान करके अक्षय कीर्ति कमाई है।

मंत्रवादी सूरिराज---सभी धर्मोंमें मंत्र-तंत्रका विशिष्ट स्थान माना जाता है। मंत्रसे अशक्य प्रायः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्यभी सिद्धि प्राप्त बन जाते हैं। मंत्रवादी यदि उसका सदुपयोग करें तो इन मंत्र-तंत्रसे जगतकी अनेक प्रकारसे कल्याणकारी सेवायें की जा सकती हैं। मंत्रका विषय बुद्धिगम्य नहीं श्रद्धास्थित होता है। आपके पासभी यह मंत्र रहस्य था, जिसका आपने शासन प्रभावनाके लिए उपयोग किया था। और अपने शिष्य-प्रशिष्यादि परंपरामें भी प्रदान किया था-यथा-"आत्मारामजी महाराजके विद्वान शिष्य श्री शान्ति विजयजसे एकबार वार्तालाप करते हुए पूछनेपर श्री शांतिविजयजीने बताया कि, "रोगापहारिणी, अपराजिता, श्री सम्पादिनी आदि जैन विद्यायें मेरे परमोपकारी गुरु आत्मारामजी म.ने प्रसन्नतापूर्वक मुझे दी हैं, जो उन्हें मेड़ता निवासी - बड़े मंत्रवादी और सदाचारी वयोवृद्ध यतिजीसे प्राप्त दुई थीं । यतिजीने जिनशासनके अनूठे प्रभावक और अतियोग्य अधिकारी जानकर ही ये सिद्ध विद्यायें, अपने अयोग्य शिष्योंको न देकर आपको दी थीं, जो केवल पाठ करनेपर कार्य सिद्धि करवाती थी । आपने भी अत्यंत विनम्रता एवं प्रसन्नतापूर्वक धर्मोपयोगके लिए इसे शिख ली थी और प्रसंग आने पर उपयोग करके जैनधर्म प्रभावना की थी ।"[११३]

इसके लिए एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। अंबालाके श्री सुपार्श्वनाथ भगवानके श्री जिनमंदिरजीकी प्रतिष्ठावसर पर सम्पूर्ण तैयारी हो जानेके पश्चात् अचानक घनघोर काली घटायें घिर आयीं और जैसे बरस पड़ने पर तुली हुईं थीं। रंगमें भंग होने ही वाला था। श्रावकोंकी विनती ध्यानमें लेते हुए-प्रतिष्ठाका योग्य मुहूर्त संभालनेके लिए--आपने मंत्रित बांस गड़वाया। बादल बिन बरसे ही बिखर गये। लेकिन आश्चर्य यह हुआकि जब तक बांस गड़ा रहा तब तक बादल उमड-घूमड़कर आते और बिना बरसे ही बिखर जाते। जब उस बांसको विसर्जित किया गया-तुरंत ही वर्षाका आगमन हुआ। 'ऐसा क्यों और कैसे हुआ' ? इस प्रश्नका आधुनिक वैज्ञानिक युगमें-मंत्र तंत्र को न माननेवालोंके पास कोई उत्तर नहीं।

अनूठी व्याख्यान कलाके स्वामी---जिनकी वाणीमें पत्थरको भी मोम-कठिनको भी कोमल-बना देनेकी शक्ति है, ज्ञानकी गरिमायुक्त विद्वत्ता बाल सुलभ सरलता, ओजसयुक्त प्रभावकता, काव्यमय रस माधुर्य और प्रसंग या भावानुरूप आरोह-अवरोकी अस्खलित प्रवाहिता, चित्रकार-सी वर्णन शैली और संगीतज्ञकी स्वर और लयबद्ध थिरकन, यथायोग्य शब्दचयन शक्ति और भाषाका प्रभुत्व झलकता हों वह व्याख्याता श्रोताओंको स्तब्ध प्रतिमा सदृश जकड़कर रख सकता है। श्रोता प्रवचनके प्रवाहमें बहते बहते अपने आपको भूल जाता है-प्रवचनमें डूब जाता है-सुधबुध भूलकर जैसे अनुभूत करता है कि, यह पीयूषधारा अनवरत बरसती रहें- बहती रहें और में निरंतर अमृतपान करता रहुँ; इसका कभी अंत न हों। "आचार्यश्रीकी वाणी भवसागरसे पार उतारनेवाली नौकाके समान थी । जबवे बोलते थे मानो देव पुरुष बोल रहा हो.....उस विराट योगीकी वाणी मेघके समान गंभीरथी, जो श्रोताओंको मोहनिद्रासे जगा देती थी । वाणी इतनी सरल जैसे शिशुकी मुस्कान, मधुर ऐसी जैसे मिश्रीकी डली-जो कोई उसे सुनता आत्मलीन हो जाता था" [११४]

सुरीश्वरजीकी ऐसी गुणालंकृत वाणीका पान करनेका सौभाग्य जिसको मिला वे अपनेको धन्य मानते हैं। सुरत शहरके सुरचंद्र बदामी अपने बाल्यकालके स्मरण मुकुरमें अंकित कुछ चित्रोंको उद्घाटित करते हुए उपरोक्त बातोंको सिद्ध करते नज़र आते हैं---"महाराजश्रीकी व्याख्यान शैलीसे श्रोतागण इतना मुग्ध बना रहता था कि प्रारंभसे अंत तक व्याख्यान होल ठसाठस भरा रहता था। महाराजश्रीकी व्याख्यान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कला अत्यंत असाधारण आकर्षणयुक्त थी। ओजस्वी भाषा दिलको छू लेती थी, तो अतिशय सरल भी थी। मेघध्वनि तुल्य गंभीर और सतत सुनते ही रहनेका मन हों ऐसी थी .....कई लोग तो सोचते थे, आपका व्याख्यान सुनने और समझनेकी उन्हें अत्यावश्यकता होने से उन्हें व्याख्यान पीठके एकदम नज़दीक बैठनेका मौका मिले।" [११५] आपके व्याख्यानमें सुनाये जानेवाले शिक्षाप्रद फिरभी सरल और मधुर दृष्टांत बच्चोंकों भी याद रह जाते थे। उसकी कुछ अलप-झलप झाँकि *"श्री विजयनंदाभ्युदयम् महाकाव्यम्"*- जीवन चरित्र ग्रंथमें श्री हीरालाल वि. हंसराजजीने सुंदर ढंगसे दी है। सप्त व्यसन त्याग या राग-द्वेष परिणति त्याग, अनेक पत्नीत्व-बालविवाह-दहेजादि कुरूढियों जैसे गंभीर या गहन विषयोंको भी रोचक प्रवाही शैली के भाववाही दृष्टांत द्वारा पेश करना आपकी व्याख्यान कलाका उत्तम गुण था। "आपकी विषय विवेचन शैली ऐसी मनोहर थी कि एक छोटा बच्चा जिस भावसे उसको समझ पाता था वैसाही विद्वान भी। आपश्रीकी दैवी व्याख्यान कला पर, पदार्थ निरूपण शक्ति पर और सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व प्रतिपादन शैली पर हज़ारो आत्मायें-साक्षर-मंत्रमुग्ध बन जाते थे। अनेक तत्त्व गवेषक दूर-दूर से आपकी वाणीके अमृतपान करनेके लिए आते थे।[११६]

व्याख्यान कलाकी भाँति ही आपका प्रत्युत्पन्न मति उत्तरदान भी अद्वितीय था। "सरलता, कुशलता, गंभीरता, उदारता, शान्ति, स्थित प्रज्ञता, निष्पक्षता, दूरदर्शितादि अनेक गुण आपके प्रत्युत्तरमें दृष्टिगोचर होते हैं।"[११७] इसके अतिरिक्त प्रश्नकर्ताकी जिज्ञासा, परिस्थिति, योग्यायोग्यतादिका भी ध्यान रखते थे जिससे प्रश्नकर्ता संतुष्ट होकर निरुत्तर हो जाते थे। जैसे किसीने पूछा, 'आप रामको नहीं मानते'? आपका प्रत्युत्तर था-"हम सिद्ध पद प्राप्त पुरुष-राम-को अवश्य मानते हैं और श्री नमस्कार महामंत्रके स्मरण करते समय द्वितीय पद 'नमो सिद्धाणं' से नमस्कार भी करते हैं।"

किसीने पूछा-'यदि सब साधु हो जाय तो आहार-पानी कौन देगा ?' आपका प्रत्युत्तर था 'जंगलके वृक्ष देने लगेंगें।' (यदि उत्तर असम्भव है तो प्रश्नभीतो असंभव ही है)

मालेर कोटलामें किसी मुस्लिमके प्रश्न "साधुको मांगकर खाना अच्छा नहीं है। उसे तो परिश्रम करके खाना चहिए"।-उत्तर था-"हमें, हम पाँच महाव्रत पालतेहुए, कौनसा काम कर सकते है यह बताओ।" उसका "जंगलकी लकड़ियाँ इकट्ठी करके बेचने के प्रस्ताव पर आपने समझाया कि उसको भी अगर उसके स्वामीसे मांगनी ही पड़ेगी। इससे हमारा यह भोजन याचना-माधुकरी-अच्छा है।

इस तरह सामान्य प्रश्नकर्ता अपने अनुसार और विद्वान अपने अनुरूप समान संतोष प्राप्त करते थे। जैसे जर्मन विद्वान डो. होर्नल 'उपासक दशांग' सूत्रके अनुवाद समय उत्पन्न समस्याओंके प्रत्युत्तर प्राप्त करके ऐसे प्रभावित हुए कि अपना ग्रन्थ आपके नाम समर्पित कर दिया। वैसे ही कईं हिन्दू या आर्य समाजी, मुस्लिम या ईसाई विद्वानोंको भी आपने अनेक शास्त्राधारित प्रमाण प्रस्तुत करके प्रसन्न कर दिये और निरुत्तर भी।

उत्कट वैराग्य भाव होनेपर भी आपको शुष्क आध्यात्मिकताका सहारा स्वीकार्य नहीं था। शासनोन्नतिके पथ पर खंड़न-मंड़न, वाद-विवाद और युक्ति-प्रयुक्तिके प्रतिपक्षियोंके आलबेल-पड़कारको झेलकर शास्त्रोक्त, प्रामाणिक, युक्तियुक्त खंड़न-मंड़नकी पटुतासे तार्किक शिरोमणी गुरुदेवने शुद्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्ररूपणा करके हुक्म-मुनि-शांतिसागर-जेठमलादि साधु एवं हिन्दु-मुस्लिम-आर्यसमाजी-ईसाई आदि समस्त विद्वानों-पंड़ितोंको चुन चुनकर मानो काहिल करते रहें-उत्सूत्र प्ररूपकों और जिन शासनकी हिलना करनेवालोंको चूप कराते रहें।

सुशीलजीके शब्दोमें 'युक्ति और प्रमाणोंकी तो आप टंकशाल थे' [११८]। आपका शास्त्रीय ज्ञान अगाध था। जब किसी विषयको लेकर चर्चा या शास्त्रार्थ के समय उस प्रश्नको सर्वांगिण रूपसे विश्लेषित करते हैं तब मानो जैसे टंकशालमें से मुद्रायें झरती हों ऐसे ही पूर्वाचार्योंके संदर्भ वचनोंकी वृष्टि होती थी। जैसे-'*चतुर्थ स्तुति निर्णय*' भाग-१-२ नामक छोटेसे ग्रंथमें ही-जिसमें केवल सामुदायिक एक प्रश्नकी ही चर्चा है-(७०) सत्तर प्रामाणिक ग्रंथोंके संदर्भ प्रस्तुत किये हैं-जैसे लगता है प्रतिवादीकी आसपास प्रमाणरूप बाणोंके ढेर पर ढेर लादे जा रहे हों।" और उसे घेर कर चूप होनेपर मजबूर कर रहे हों। "यदि आपको ख्यातनाम वादकुशलता प्राप्त करनी हों या जैन दर्शन-अनेकान्त दर्शनका संपूर्ण परिचय पाना है अथवा उसके खजाने को देखना है तब आपको सर्व प्रथम श्री आत्मारामजी म.के पुस्तकोंको पढ़ना चाहिए जिससे अल्पकालमें आप प्रौढ़-धुरंधर तार्किक बन जायेंगें।"[११९]

तार्किक शिरोमणि---क्षोभहीन पांडित्ययुक्त विद्वानोंमें शास्त्रार्थों द्वारा स्व-स्व धर्मके जय-पराजयकी स्पर्धाके उस युगमें तत्वोंकी खुले दिलसे चर्चा होती थी और परस्पर खंडन-मंड़नभी जिंदादिलीसे होते रहते थे। न्यायके उस बौद्धिक समरांगणमें ब्रह्मतेज परिपूर्ण-तार्किक शिरोमणी, अजेय योद्धाकी अदासे ऐसे अखूट-अजस्त्र-अकाट्य तर्कबाणोंकी वर्षा करनेवाले श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी ऐरावण हस्ति सदृश शोभायमान होते थे। आपके सामने कोई वादी ठहर नहीं सकता- "सशास्त्र प्रमाण, प्रबल तर्क एवं वादविवादके लिए युक्तियोंका खजाना आपको श्री आत्मारामजी महाराजजीके पुस्तकोंमेंसे प्राप्त हो जायेंगें।"[१२०] *अत्यन्त विशाल साहित्यिक अध्ययनमें* इन सबका राज़ छिपा है। इस गंभीर ज्ञान गरिमा रूप, अज्ञानांधकार के उदीयमान दिनकरका स्वर्णिम तेज़ जिनशासनको अद्यावधि आलोकित कर रहा है। जैन इतिहासका अवलोकन करनेसे ज्ञात होताहै कि नव्य न्यायका पूर्णतया आचमन करनेवाले समर्थ उपाध्याय श्री यशोविजयजी म.के बाद उनके अनुगामियोंमें श्रुताभ्यासका प्रवाह क्षीणतर होता जा रहा था उसे पुनः विस्तृत महानद स्वरूपमें प्रवाहित करनेका श्रेय श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.को मिलता है, जिन्होंने अपनी तार्किक-न्याय बुद्धिके द्वार खुले रखकर शास्त्रीय अभ्यास किया और अन्योंकोभी उसके लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया।

जिस समय मुस्लिमोंके आक्रमण एवं राज्य भयके कारण ज्ञानराशि संजोये शास्त्रीय पुस्तकोंको संरक्षण हेतु-मानों नज़रोंसे ओझल रखे जाते थे; मुद्रित या प्रकाशित ग्रन्थ तो नाम मात्रके ही थे और हस्तलिखित प्रतादि भी ज्ञान भंड़ारोंकी संदूकोंमें बंद रखे थे। ऐसी दुष्कर परिस्थितिमें भी आपने येन-केन प्रकारेण, जहाँ-तहाँसे अत्यंत विशाल पैमाने पर पुस्तकोंको प्राप्त करके तत्त्व परीक्षक एवं समीक्षककी दृष्टिसे अध्ययन किया जिसमें वेद-वेदभाष्य-वेदान्त; स्मार्तपुराण; बौद्ध-मुस्लिम-ईसाई; श्वेताम्बर-दिगम्बर-ढूंढ़क आदि अनेक धर्मोंका-मतोंका और आम्नायोंका लुप्त और प्राप्त, प्राचीन-अर्वाचीन, मुद्रित-प्रकाशित या हस्तलिखित ग्रन्थ या पत्र-पत्रिकायें, लेख-शोधकार्य, शिलालेख और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताम्रपत्रादिका संस्कृत-प्राकृत-गुजराती-हिंदी-उर्दू-प्राचीन संस्कृत-ब्राह्मी लिपि आदिमें प्राप्त यथा संभव सर्व साहित्यका संपूर्ण अवलोकन-अध्ययन-मनन किया एवं एक स्थितप्रज्ञकी अदासे समाजको ऐतिहासिक, भौगलिक, खगोलिक, वैज्ञानिक, राजकीय, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, तात्त्विकादि विभिन्न प्रकारके अध्ययनके लिए तुलनात्मक विचार शैलीका दृष्टि बिंदु प्रदान किया। उस ओर योग्य पथ प्रदर्शन किया-"वे अपनी प्रखर विद्वत्ता, प्रतिभा और भारतीय हिन्दू संप्रदायोंके सूक्ष्म अध्ययनके कारण बहुत प्रसिद्ध थे। प्राचीन भारतके इतिहासके संबंधमें उनका ज्ञान इतना विशाल था कि गुजरातके इतिहासकी संस्कृतमें लिखी पुस्तकका संदर्भ देकर जैन लायब्रेरी - अहमदाबाद - से प्राप्तभी करवायी.....कई ऐतिहासिक और साहित्यिक विषयों पर मेरा उनसे पत्र व्यवहार होता रहा। अभी भी मेरे हृदयमें उनके प्राचीन भारतीय इतिहासके सूक्ष्म अध्ययनके प्रति पूर्णश्रद्धा है।"[१२१]

ऋग्देवका बृहत्काय ग्रंथ डो. होर्नलके परामर्शसे विदेशसे प्राप्त करके उसका अध्ययन किया था, तो विदेशी डो. हंटरकृत 'भारतीय इतिहास'को भी पढ़ लिया था। इतना ही नहीं लंदनकी नवम ओरिएंटल कॉन्फ्रेंसकी संपूर्ण कार्यवाहीका परिचय भी प्राप्त किया था। अंग्रेजीमें प्रकाशित पाश्चात्य साहित्य-जैसे वेदकी उत्पत्ति विषयक मैक्समूलरके विचार, जैन और बौद्ध धर्मके बारेमें प्रो.वेबर, प्रो.जेकोबी, डो.बूलर, डो.होर्नल, जन.कनिंघम आदिके अभिप्राय प्रदर्शित करनेवाले धर्म-दर्शन-इतिहास-साहित्यादिका भी अभ्यास करके पूर्वकालीन आचार्योंकी अविच्छिन्न परम्पराको सिद्ध करनेका सफल प्रयत्न किया।

केवल शास्त्रीयाधार ही नहीं लेकिन नूतन, भौगोलिक, पुरातत्त्व एवं वैज्ञानिक अनुसंधानोंसे भी ज्ञात होकर आधुनिक शिक्षितोंके मनकी शंकाओंका युक्ति युक्त समाधान देते है। *'जैन तत्त्वादर्श'* ग्रंथके सप्तम परिच्छेदके कुछ प्रारम्भिक पृष्ठ दृष्टव्य है जो उनकी समन्वयात्मक कुशाग्र बुद्धिका परिचय देते हैं। जैन शास्त्रोमें वर्णित तथ्योंकी प्रमाणिकता आधुनिक पद्धतिसे तर्कबद्ध और शोध प्रमाणोंके आधार पर सिद्ध की है जो उन्हें तत्कालीन विभिन्न पत्र-पत्रिकायें एवं ग्रंथोंसे प्राप्त थीं। जो उनके विशाल अध्ययन और मौलिक विद्वत्तापूर्ण पांडित्यका प्रमाण पेश करती है।

भारतीय दर्शनोंके और धर्मोंके आधुनिक श्रेष्ठ मर्मज्ञ विद्वान पं. श्री सुखलालजीने आपको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखा है कि-"उनका प्रधान पुरुषार्थ उसीमें था कि जितना हो सके उतना अधिक ज्ञान प्राप्त करना। उनहोंने शास्त्र व्यायामकी कसौटी पर अपनी बुद्धिको आजीवन कसा था.....यदि जैन श्रुत वारिधिका ही पान किया होता और उसे संभाला होता तो भी आप बहुश्रुतके रूपमें मान्यता पा जाते, लेकिन आपने वर्तमान देशकालकी विद्या-समृद्धि देखी, नये साधन निरखे और भावि जिम्मेदारी भी सोच ली। आपकी अंतरात्मा बेचैन बनी। स्वयंसे जितना हो सके उतना कर लेनेका निश्चय किया और विशाल समीक्षात्मक अध्ययानन्तर जो स्वतंत्र रूपसे देनाथा वह अपने ग्रंथोमें उंडेल दिया.....बहुश्रुतपनेकी भागीरथीमेंसे छलकती संशोधक वृत्ति और ऐतिहासिक वृत्ति भावि संशोधक और इतिहासविदोंको नूतन प्रासाद बांधनेमें नींवका कार्य देगी ।"[१२२]

"वेदों, ब्राह्मणों उपनिषदों, स्मृतियों, बौद्ध ग्रंथो एवं ईसाई धर्मादि संबंधित पुस्तकोंका शायद ही किसी जैनाचार्यने इतना विशाल अध्ययन किया होगा या अपनी रचनामें उसके उद्धरण दिए होंगे।"[१२३]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने जो कुछ लिखा है उसकी अपेक्षा उनका अध्ययन अत्यंत व्यापक था। क्योंकि प्रतिपाद्य विषयका संक्षिप्त वर्णन करके वे पाठकोंको स्वयं बता देते हैं कि विस्तृत जानकारी कहाँसे प्राप्त होगी। उदा.-"यथार्थ आत्म स्वरूपका कथन आचारांग, तत्त्वगीता, अध्यात्मसार, अध्यात्म कल्पद्रुम आदि प्रमुख जैन शास्त्रोंमें; और योगाभ्यासका स्वरूप योगशास्त्र, योग विंशिका, योगदृष्टि समुच्चय, योगविंदु, धर्मविंदु-प्रमुख शास्त्रोंसे; तथा पदार्थोंका खंडन मंडन सन्मति तर्क, अनेकान्त जयपताका, धर्म संग्रहणी, रत्नाकरावतारिका, स्याद्वाद रत्नाकर, विशेषावश्यक भाष्यादि प्रमुख ग्रंथोमें; साधुकी पदविभाग समाचारी छेदग्रंथोमें; प्रायश्चित्तकी विधि जीतकल्प प्रमुखमें; और गृहस्थ धर्मकी विधि श्रावक प्रज्ञप्ति, श्राद्ध दिनकर, आचार दिनकर, आचार प्रदीप, विधि कौमुदी, धर्मरत्न आदि प्रमुख ग्रंथोंमें है। ऐसा कोई पारलौकिक ज्ञान नहीं जो जैन मतके शास्त्रोमें न हो।"[१२४]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि सत्य दृष्टिकोणसे तत्त्व परीक्षक और समीक्षककी अदासे किया अध्ययन, आपकी जैन वाङ्मय परकी अखंड़ श्रद्धा-जैनधर्ममें दृढीभूत स्थिरताका परिचायक है। *विश्वविभूति*----"इनकी भव्य समाधि गुजरांवालामें स्थित है। भारत आज उस अमूल्य निधिसे वंचित है। परंतु यह सत्य है कि महापुरुष काल और क्षेत्रकी सीमामें बंधे नहीं रहते हैं। वे विश्वविभूति होते हैं जो सद्भाव और सत्कर्मके रूपमें सर्वत्र निवास करते हैं।[१२५]

चाचा लक्खूमल और देवीदित्तामल द्वारा प्रदत्त नाम 'दित्ता' को सार्थक करनेके लिए अनुपम धार्मिक साहित्यके भेंट दाता, नवयुग निर्माताके रूपमें मानो प्रकृतिकी ओरसे सहसा दिया गया-यथानाम तथा गुणधारी-हिमाद्रि-से विराट व्यक्तित्वधारी *'आत्मारामजी महाराज'* आत्म स्वरूप ज्ञाता और आत्म तत्त्वमें रमणता करनेवाले विश्वकी धार्मिक आत्माओंके विश्रामधाम और *श्री विजयानंदाभिधान* अनुरूप आत्मिक आनंद पर विजयवान-ये असाधारण आद्याचार्य परमात्मा श्री महावीर स्वामीजीकी पट्ट परंपरा रूपी बहुमूल्य हारके हीरे थे, जिनकी यशोगाथा अंकित है निम्न शब्दपूंजमें-"देहधारी मानव, साधु, गुरु, सुधारक, खंडन-मंडनके कर्णधारादि रूपोमें श्री आत्मारामजीकी झाँकि - उनका अपूर्ण दर्शन है - और वह भी प्रत्यक्ष नहीं, परोक्ष ही करनेका हमारा तकदीर है ..... उस दर्शनमें प्रतिभा, प्रताप और शक्ति-तेजस्विता, तर्क और युक्ति झलकती है; उस झाँकिमें शासन सेवा, कार्य तत्परता, अभ्यासकी गहनता, तलस्पर्शी विचारश्रेणी और कथनी-करणीकी एकरूपता प्रकाशित होती हैं; अतः उनका व्यक्तित्व असामान्य सुधारकता, नीड़र वक्तृत्व, दृढ़ निश्चय बल, सादगी युक्त संयम, श्री महावीर देवके प्रति सच्ची श्रद्धा से एवं उदारता, व्यवहार कुशलता और व्यवहार शुद्धिकी अक्षय अभिलाषासे पल्लवित होता हुआ दृष्टि पथमें आता है।.....वर्तमान अराजकताके बीज उसी समय बोये जा चूके थे। आत्मारामजी के समर्थ व्यक्तित्वने उसे सिर्फ थोडी देरके लिए रोक रक्खा था । और इस तरह वे किसी भावि आत्मारामके राहबर बन गये ।"[१२६]

बूझते दीपककी प्रज्वलित ज्योत---(जीवनके अंतिम पल)---आजीवन सच्ची साधनाके परम साधक श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराज इस लोकमें विजयी होकर मानो परलोक-विजयी बननेको उद्यत हुए। आपके अंतिम दर्शक भक्त के उद्गार थे-"आप कहा करते थे कि, 'तुम लोग चिंता क्यों करते हो ? आखिरमें तो हमने बाबाजीके प्रिय क्षेत्र गुजरांवालामें ही बैठना है।'.....आपने अपना कथन सत्य कर दिखाया मगर हम लोगोंका.....।"[१२७]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मानो आपको अंतिम क्षणोंका आसार हो आया हों अथवा "महापुरुषोंकी वाणी को कालभी अनुसरण करता है"--- उक्ति चरितार्थ हुई हों। गुजरांवालांमें आप 'सरस्वती मंदिर'की ख्वाहिश लेकर आये थे और अंतिम समयमें भी अपने लाडले प्रशिष्य 'वल्लभ'को उसी बातका परामर्श देकर-आदेश देकर, 'ॐ अर्हन्' के पुनरुच्चारणपूर्वक सबके साथ क्षमापना करते हुए, इस लोकमें भक्तजनोंको अनाथ छोड़कर स्वर्गको सनाथ बनानेके लिए चल पड़े।

बहुत अच्छी तरह सजायी हुई--विमान सदृश पालकी में गुरुदेवको बिराजित करके, चंदन चिता पर अग्निके सपुर्द कर दिया गया। अग्नि संस्कारके स्थान पर एक भव्य और विशाल समाधि मंदिरका निर्माण किया गया जो आपकी अमर कीर्तिका संदेश दे रहा है।

"आमोदकारी आपकी छवि हो गई जो लुप्त है,
परंतु हृदयके बीच वो रहती हमारे गुप्त है ।
संसारकी निस्सारता का सार जिनको था मिला,
परलोकके आलोकसे था हृत्कमल जिनका खिला ।।
संसृति रही दासा, उदासी किन्तु उससे वे रहे,
निःस्वार्थ हो परमार्थ-रत मिलते न वे किससे रहे ?"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर्व तृतीय

---- श्री आत्मानंदजी म.के व्यक्तित्वका मूल्यांकन- ज्योतिष्चक्रके परिवेशमें ----

"विश्वके कोने कोनेमें छा रहा जो कीर्तिमान;
नभतल भूतल मुग्ध बने हैं तेरा ओजस् तेरी शान;
अंबर अवनिमें अंकित अक्षर कर रहे हैं यशोगान;
जिससे प्रस्फुटित जीवनधारा बह रही जमीं आसमान।"

साम्प्रतकालमें प्रतिदिन ज्योतिष शास्त्रके प्रति आस्था वृद्धिगत होती नज़र आ रही हैं। प्रत्येक कार्य व प्रसंगके लिए भविष्य-कथन पृच्छा होती है। प्रत्युत्तर कथन पर आधारित कार्यक्रम निश्चित करके व्यक्ति अपने जीवनसे अधिकतम लाभ प्राप्त कर सकता है अथवा हानिसे बच सकता है।

राशि-ग्रह-नक्षत्र आदि नभमंडल स्थित ज्योतिष्-चक्र मानवजीवन पर कब-कैसा, प्रभाव कैसे छोड़ता है?; उसका चार-क्षेत्र, परस्पर-सम्बन्ध आदिका जन--जीवन, समाज--जीवन, राष्ट्र-जीवन, विश्व--जीवन पर किस प्रकार असर होता है-इन सारी बातोंका विश्लेषण हमें इस ज्योतिष-शास्त्रसे प्राप्त होता है।

इन बातों से अवगत होनेके पश्चात् एकदा आचार्य प्रवर श्रीमदात्मानंदजी महाराजजीके साहित्यका अभ्यास करते हुए पूज्य गुरुदेवकी जन्म कुंडली (लग्न कुंडली) के दर्शन हुए। तत्क्षण दिलमें एक भावतरंग उद्भवित हुई कि, पूज्यपादजी की जीवन घटनाओंका इस शास्त्रावलम्बनसे, जन्म कुंडली पर आधारित मूल्यांकन क्यों न किया जाय ? जिससे यह निश्चित कर सकेंकि, *उनके जीवनमें घटित घटनायें उनके जन्मसे ही निश्चित बन चुकी थी, जो उनके पूर्व जन्म-कृत कर्मके फल स्वरूप थीं।*

उनके जीवन प्रसंगों के मूल्यांकन पूर्व ज्योतिष-शास्त्रका संक्षिप्त परिचय ज्ञात करना आवश्यक है। अतएव ज्योतिष-शास्त्रका परिचय अत्र प्रस्तुत करना उचित होगा।

अनादिकालीन संसार व्यवस्थाको नियंत्रित करनेवाले पाँच कारण गीतार्थ जैनाचार्योंने माने हैं *(१) काल (२) स्वभाव (३) नियति (४) पुरुषार्थ (५) कर्म।*[1]

किसीभी कार्यका या प्रसंगका घटित या अघटित होना-इन पाँचके ही अन्वय-व्यतिरेक अथवा सम्मिलन-विघटन पर निर्भर होता है। यथा-जो कार्य जिस कालमें घटित या अघटित होनेवाला होता है, तब उस कार्यके कारणोंका स्वभाव वैसे ही अनुरूप या प्रतिरूप होता है; और उस कार्यके घटित-अघटित होनेका निश्चय होता है। तत्पश्चात् उस कार्यके लिए पुरुषार्थ करनेमें उद्यत होनेसे, पूर्वोपार्जित कर्म संचरित होता है; अन्ततोगत्वा कार्य सम्पन्न होता है। उदा.-किसीभी पदार्थका निर्माण करना है, तो वहाँ *कर्ता, कार्यशक्ति, उपादानकारण (रो. मटिरियल), उपकरण (साधन) और स्थान*-ये पांच चीजें आवश्यक हैं। जैसे मकान बनानेके लिए-कर्ता (मकान बनानेवाला मालिक), *कार्यशक्ति*, (मकान निर्माण करनेवाले बढ़ई, मिस्त्री, मज़दूर आदि) *उपादान कारण* (ईंट, चूना, सिमेन्ट, लकड़ी लोहा आदि) *उपकरण* (फावड़ा, कुल्हाड़ी आदि), *स्थान* (जहाँ मकान निर्माण होगा वह जमीन) आवश्यक होता है। इन पाँचोके सहयोग एवं समन्वयसे ही मकान निर्माण शक्य है, अन्यथा नहीं। इनमेंसे एकभी कम हों या यथास्थित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हों तब कार्यकी निष्पत्ति असंभव-सी है; वैसे ही उपरोक्त कालादि पाँच कारणके बिना या उनके सम्यक् सहयोगके अतिरिक्त कार्यसिद्धि भी अशक्य-प्रायः होती है।

नियति और ज्योतिषशास्त्रका स्वरूप *(परिभाषाके संदर्भमें)*:-

व्यक्तिके जीवनचक्रके किसीभी प्रसंगको घटित करनेवाले उपरोक्त कालादि पाँच कारणोंमेंसे *'नियति'* (भाग्य) अदृष्ट होता है। कोईभी सांसारिक याने छद्मस्थ-अपूर्णज्ञानी व्यक्ति इससे अनभिज्ञ होती है। चूँकि एक क्षणान्तर कौनसी घटना घटित होगी उसका ज्ञान उन छाद्मस्थिकोंको नहीं होता है। इसलिए प्रत्येक पलकी प्रत्येक घटनायें या प्रसंग व्यक्तियोंको व्यामोहित करता रहता है। फलतः प्रत्येक प्रसंगसे वह सुख-दुःखादिका विलक्षण अनुभव करता रहता है। भावी जीवन-स्वरूपसे ज्ञात होनेकी जिज्ञासा, नैसर्गिक रूपसे प्रायः सर्वमें समान रूपसे दृष्टिगोचर होती हैं। *इस अदृष्ट भविष्यको प्रत्यक्षकी भाँति दृश्यमान करानेवाली चक्षु सदृश जो सैद्धान्तिक, गाणितिक और तार्किक साहित्य होता है वही 'ज्योतिष-शास्त्र'की संज्ञा प्राप्त करता है।* अन्यथा इसे ऐसे भी प्रस्तावित कर सकते हैं-

पूर्व कर्माधीन व्यक्तिके लिए जीवनमें मिलनेवाले जो शुभाशुभ फल निर्देश और बाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्वका निर्देश, स्थान, राशि, ग्रहादि पर अवलम्बित कथन करनेमें सहयोगी सिद्धान्तों एवं तदनुकूल परिणामोंका आकलन जिसमें किया गया है ऐसे ग्रन्थको 'ज्योतिष-शास्त्र' कहा जाता है।

उपरोक्त अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थानादि तीनों अंगो द्वारा किए जानेवाले स्पष्ट फलादेशके लिए ज्योतिष-शास्त्रको पंचांग अर्थात्-*तिथि-वार-नक्षत्र-योग और करण* इन पाँच अंगोंकी सहायता आवश्यक है। इनके बिना ज्योतिष-शास्त्र पंगु हो जाता है। अतएव ज्योतिष-शास्त्रमें पंचांगका भी महत्वपूर्ण स्थान होता है।

ज्योतिष-शास्त्रके इस सामान्य परिचय पश्चात् उसके विभिन्न अंगोंका विशिष्ट परिचय, संक्षिप्त रूपरेखा स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है।

स्थान :- किसीभी व्यक्तिके जन्म समयमें ब्रह्मांडमें ग्रहोंकी स्थितिको प्रदर्शित करनेवाले चार्ट (मानचित्र) को जन्म कुंडली कहा जाता है। उस कुंडलीको बारह विभागोमें विभक्त किया जाता है। प्रत्येक विभागको *भाव-भुवन या स्थान* की संज्ञा दी जाती है जिसके आधार पर निश्चित स्थानसे निश्चित घटनाओंका ज्ञान हो सकता है। व्यक्तिके जीवनके विभिन्न प्रसंगोंका निर्देशन इन स्थानोंके विशिष्ट प्रभावको लक्ष्यमें रखकर प्रस्फूटित किया जा सकता है।- यथा-

प्रथम स्थानसे - व्यक्तिका चारित्र, आरोग्य, तिल-मसा-रूप-रंगादि (बाह्य व्यक्तित्व) जीवनमें सुख-दुःखादिका अनुभव आदिका निर्देश मिलता है। शारीरिक अंग-मस्तक (अर्थात् स्वभाव) आदिका निर्देश मिलता है।

द्वितीय स्थानसे - व्यक्तिकी वाणी, धन, पारिवारिक सुख एवं गला-आंखका निर्देश मिलता है।

तृतीय स्थानसे- व्यक्ति के साहस, पराक्रम, बंधु-सुख, प्रवास-पर्यटन (एकाध दिनका छोटा प्रवास), नौकरी संबंधित सुख, -स्कंध, हाथादिका निर्देश होता है।

चतुर्थ स्थानसे - मकान, जमीन, वाहन, सुख-शांति, अभ्यास, विभिन्न डिग्री रूप उच्चपद-प्राप्ति, माता, मित्र, श्वसुरादिका सुख-हृदय, वक्षःस्थलादिका निर्देश होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।

पंचम स्थानसे - पूर्व जन्म संबंधी निर्देश, बुद्धि, अभ्यास, मंत्र-विद्या, मौलिक सर्जन, संतान सुख, विवेक, व्यावसायिक प्रेक्टिस, विशेष रूपसे शेर-सट्टा-लौटरी आदि, लागणीशीलता एवं पेट सम्बन्धी निर्देश किया जा सकता है।

षष्ठम स्थानसे - रोग, शत्रु, बिमारी, चिंता, शंका, नौकरीका सुख, मातुल पक्षीय सुख, कमिशनादि व्यवसाय, कमर-आंते आदिके निर्देश मिल सकते हैं।

सप्तम स्थानसे - दाम्पत्य जीवन, रणसंग्राम, कानूनी प्रसंग, व्यापार, जाहेर-जीवन शारीरिक अंग-कटि प्रदेश सम्बन्धित निर्देश किये जाते हैं।

अष्टम स्थानसे - आयुष्य, लम्बी या गंभीर बिमारी, ससुरालका सुख, गूढ़ विद्या, गुप्त धन (अर्थात् बिना मेहनतसे मिलनेवाला या जमीनमें गाड़ा हुआ अथवा किसीसे वारिसदारीके रूपमें मिलनेवाला धन)-गुप्तांगके निर्देश होते हैं।

नवम स्थानसे - भाग्य, धर्म, सदाचार, तीर्थयात्रा, विदेशयात्रा, नीति, प्रमाणिकता, भावि जन्मोका एवं शारीरिक अंग-उरु प्रदेशका निर्देश किया जा सकता है।

दसम स्थानसे - व्यापार, कोर्ट संबंधी, कानूनी, सरकारी कार्य, पिताका और सास का सुख, यश, मान, पद, प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि-घूंटनोंका संकेत प्राप्त किया जा सकता है।

ग्यारहवाँ स्थान - विविध प्रकारके लाभ, मित्र, बड़ेभाईका सुख-पैरोंका निर्देश होता है।

बारहवें स्थानसे - मोक्ष-फल प्राप्ति, रोग, हानि, खर्च, दंड़ जेलके बंधन, विदेश-यात्रा, दान; चाचाका सुख-पैरोंके तलवे संबंधी संकेत प्राप्त हो सकते हैं।[२]

राशि :-[३]

नाम	मेष	वृषभ	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धन	मकर	कुंभ	मीन
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	शुद्र	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शुद्ध	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य	शुद्र	ब्राह्मण
रंग	लाल	श्वेत	हरा	बदामी	धुँएजैसा	-	काला	सुवर्ण	श्वेत-पीला	काबरा (मिश्र)		
अंग	मस्तिष्क	मुख	हाथ	हृदय	पेट	कटि	उरु	गुप्तांग	साथल	घूंटने	जंघा	पैर
दिशा-बल	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर	पूर्व	दक्षिण	पश्चिम	उत्तर
स्वभाव	पाप	शुभ	पाप	शुभ	पाप	शुभ	पाप	शुभ	पाप	शुभ	पाप	शुभ
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
सम-विषम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम	विषम	सम
जाति	चतुष्पद	चतुष्पद	मनुष्य	कीट	चतुष्पद	मनुष्य	मनुष्य	कीट	मनुष्य जलचर	चतुष्पद जलचर	मनुष्य	जलचर
लंबाई	छोटी	छोटी	मध्यम	मध्यम	लम्बी	लम्बी	लम्बी	लम्बी	मध्यम	मध्यम	छोटी	छोटी
स्वभाव	चर	स्थिर	उभय	चर	स्थिर	उभय	चर	स्थिर	उभय	चर	स्थिर	उभय
संज्ञा	धातु	मूल	जीव	धातु	मूल	जीव	धातु	मूल	जीव	धातु	मूल	जीव
तत्त्व	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल	अग्नि	पृथ्वी	वायु	जल
स्वामी	मंगल	शुक्र	बुध	चंद्र	सूर्य	बुध	शुक्र	मंगल	गुरु	शनि	शनि	गुरु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राशियोंका सामान्य स्वरूप-परिचय उपरोक्त तालिका से ज्ञात हुआ।

संपूर्ण आकाशको चक्र स्वरूप असत् कल्पना करके, ३६° का मानकर उसके बारह विभाग किये जाते हैं। अतएव प्रत्येक विभागको तीस अंश प्राप्त होते हैं। उन विभागोंको ही राशि संज्ञा दी जाती है।[४] मेषादि बारह राशियाँ मानी गयी हैं।

राशि--यह ग्रहोंका फलक अथवा विहार स्थान है। जैसे श्वेत परदे पर रंगीनचित्र उभार पाता है वैसे ही किसीभी ग्रहकी निजी सत्ता और शक्तिके निखारका सम्पूर्ण आधार राशि पर निर्भर है । अतएव राशि विषयक ज्ञान आवश्यक बनता है ।

इसतरह प्रत्येक स्थान व राशिके स्वरूपका सामान्य परिचय प्राप्त कर लेनेके पश्चात् अब कौनसी राशि, कौनसे स्थानमें विशिष्ट रूपसे कौनसा फल प्रदान करती है यह निम्न तालिकासे स्पष्ट करते हैं --[५]

	मेष राशि	वृषभ राशि	मिथुन राशि
प्रथम (लग्न)	कफ प्रकृति, क्रोधी, मंदबुद्धि, कृतघ्नी, स्त्री-नौकरादिसे पराजित, लालवर्णी, स्थिरता धारक	हृदयरोगी, दुःखी स्वजनों से अपमानित, मित्रका वियोग, शस्त्रसे घात पाये, कजियाखोर, धनका नाश पानेवाला	स्त्रीमें प्रीति, राजासे पीड़ा चाकर, गौरवर्णी, मीठी जबानवाला, आनंदी, योगी, गायक,
द्वितीय (धन)	पुत्रवान, नीतिवान, अच्छा पंड़ित, सुखी, अच्छे कार्यसे धन पानेवाला	खेती करनेवाला, सुखी, जौहरी के व्यवसायसे सुखी बलवान	स्त्रीके धनका भोगी, अच्छे मित्रोवाला, सुखी, अलंकारादि पहननेका शोकीन
तृतीय (पराक्रम)	धार्मिक, अनेक विद्यावान, राजादिसे पूजनीय, परोपकारी	इज्जतवान, पंडित, प्रतापी, राजा के साथ मैत्री, धनवान, यशस्वी, कवि	सत्यवादी, उदार, कुलवान, राजाका पूजनीय, स्त्रीका वल्लभ, श्रेष्ठ सवारीवाला
चतुर्थ (सुख)	पशु और स्त्रीसे सुखी आप कमाई भोगनेवाला	व्रत-नियमादि से सुखी, राजा का सेवक, पराक्रमी पूजनीय	वन्यपदार्थ, फूल, वस्त्रादिके व्यापारसे सुखी, अच्छा तैराक, स्त्री धनका भोगी
पंचम (तनय)	प्रिय पुत्रयुक्त चित्तवाला, देवादि अन्योंसे सुखी, पापी एवं व्याकुल चित्तवाले के परिचय करनेवाला	सुंदर, संतान रहित, पति धर्ममें तत्पर, शोभायुक्त, लडकियोंवाला होता है।	मन वांछित सुख प्रापक, गुणवान, बलवान, स्नेहल स्वभाववाला, पुत्र सुख पानेवाला
षष्टम (रिपु)	अनेक शुत्रवाला होता है।	बंधुवर्गमें एवं पुत्रवधुओंसे वैर होता है।	स्त्री, पापी, वैश्य, नीच, मनुष्योंके संगसे-उनके कारण वैर बांधता है।
सप्तम (जाया)	क्रूर, दुष्टा, पापी, कठोर हृदया, घातकी धनलोभी, इच्छित कार्य सिद्ध करनेवाली -स्त्रीका पति होता है	रूपवती, नम्र, पतिव्रता, सद्गुणी अनेक संतानवाली, देव-गुरु भक्तिकारी स्त्रीका पति होता हैं।	धनवान, गुणवान, रूपवान, विनयवान, धार्मिक वृत्तिवान होता है। उसे गुणरहित पत्नी मिलती है।
अष्टम (आयु)	परदेशमें दुःखदायी बात श्रवणसे मूर्च्छा या रोगसे मृत्यु होता है। धनवान होने परभी दुःखी-	कफ विकार, भोजन-विकार, पशु या दुष्टजनोंके संगमें स्वदेशमें रात्रीमें मृत्यु पाता है।	दुष्ट संगत, लाभोत्पन्न, रसोत्पत्ति, गुप्तरोग, हरस, डायाबिटिस (प्रमेह) आदि रोगोंके कारण मृत्यु पाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नवम् (भाग्य (धर्म)	दयावान, विवेकी, गाय-भैंसादि जानवरोंका दाता अथवा उनका पोषक होता है।	धार्मिक, अधिक धनवान, विचित्र प्रकारके दान-दाता, गौ दान, भोजन, वस्त्रादि दान-दाता	धर्मी, शांत प्रकृतिवाला, याचकोंको दान-दाता, ब्रह्मभोज कर्ता, और गरीब पर दयावान होता है
दसम (कर्म)	अधर्मी, दुष्ट, प्रपंची, अच्छे व्यक्तियोंका भी निंदक अभिमानी होता है।	व्यय युक्त, कार्यवान, साधुजनों पर दयावान, अभ्यागत्-देव-गुरु आदिको दान-दाता, ज्ञानवान, सतपुरुषोंसे प्रीतिकर्ता	गुरु दृष्ट-उत्तम कर्म कर्ता, कीर्तिवान्, प्रेमपूर्ण, खेतीका व्यवसाय करनेवाला होता है।
ग्यारह (लाभ)	जानवर, राजसेवा और परदेशगमनसे लाभान्वित होता है।	श्रेष्ठ मनुष्य, और स्त्रीसे एवं अच्छे मनुष्योंको दान प्रदान करनेसे लाभ प्राप्त करता है।	लाभवान, सदा स्त्री वल्लभ, वस्तु, पैसादिसे सुखी, और लोक प्रसिद्ध होता है।
बारह (व्यय)	सुख, कपड़े, भोजन, पशुलाभ, अनेक पराक्रम आदिमें व्यय करता है।	विचित्र वस्त्र, स्त्री, राज्य-लाभ, पराक्रम, विवादादि मे धन व्यय करता है।	व्यभिचार, पापकार्य, हाथी आदिके व्यापारमें धन व्यय करता है।
	कर्क राशि	सिंह राशि	कन्या राशि
प्रथम (लग्न)	गौरवर्णी, दानवीर, शुरवीर, धार्मिक, दयावान्, बुद्धिवान्, पित्त प्रकृतिवान्, प्रगल्भ, अच्छे मनुष्योंसे सेव्य	पांडुरोगी, घमंडी, मांसाहारी, रसिक, शुरवीर, ज्यादातर पैदल चलनेवाला पित्ताग्नी से दुःखी	कफ-पित्त प्रकृति, डरपोक, स्त्रीसे जीता हुआ, नालायक, मायावी, सुंदर कांतिवान
द्वितीय (धन)	पाणीसे डरनेवाला, बच्चों से प्रीति कर्ता, नीतिवान, सुखी, वानस्पत्य पदार्थसे धन प्राप्त करनेवाला	परोपकारी, चतुर, स्वकमाई से जीवन बीतानेवाला बनवासीसे धन-मान प्राप्त कर्ता-	राजासे जेवरात आदि प्रापक धन प्राप्त करनेवाला, और समृद्धिवान होता है।
तृतीय (पराक्रम)	वैश्योंसे मैत्री करनेवाला, धार्मिक, वृत्तिवान, अच्छा स्वभाव, खेती के व्यवसाय वाला, आनंदी होता है।	बूरे मित्रोंकी संगत, प्रपंची, धनका लोभी, पापी, शुरवीर घमंडी, लेकिन तुच्छ स्वभाववाला नहीं	शस्त्रप्रिय- क्रोधी, अधिक मित्रोंवाला, देवगुरु भक्तिकारक अच्छे स्वभाववाला
चतुर्थ (सुख)	रूपवान, गुणवान, विद्यावान्, नम्र स्वभावी, स्त्रीका वल्लभ सर्वको प्रिय	क्रोधी, निर्धन, बूरे स्वभाववाला संतानमें लड़कियाँ होती हैं।	चुगलीखोर, कपटी, चोर, प्रपंची, मूर्ख, दुःखी, धन के लिए दुष्टोका संगी
पंचम (तनय)	यशस्वी, अनुभवी, प्रसिद्ध होनेवाला, विनयवान पुत्रवाला, और धनवान पुत्र वाला होता है।	क्रूर, क्रोधी, मांसप्रिय, परदेशमें रहनेवाला, अधिक खानेवाला, पुत्रवान्, अच्छी आंख वाला	पुत्र रहित, पति को प्रिय, चतुर, पुण्यवान, पापरहित- ऐसी पुत्रीओवाला होता है।
षष्ठम् (रीपु)	अकस्मातसे भयभीत, ब्राह्मण-, राजा-महाजनादिकी मित्रतासे समभावमें रहे।	स्त्री से शत्रुता, भाईके उपार्जित धन जमीनादिके निमित्त वैर बांधे।	स्वजनोंके संगसे, या दुष्टाचारी, नीच, आश्रयरहित, वेश्याओंसे वैर
सप्तम (जाया)	मनोहर, सौभाग्यवान, गुणवान होता है। कलंक रहित अच्छी स्त्रीवाला होता है।	तीव्र स्वभावी, शठ, दुष्टा, परगृहकी गमक, द्रव्यलोभी, दुर्बल स्त्री प्राप्त करता है।	रूपवान, सौभाग्यवान, मिष्टभाषी, चतुर, सुंदर, भोग-धन-नीतियुक्त स्त्री प्राप्त करता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टम (आयु)	पाणी, जहरी ले जंतु, सर्पादिसे या अन्यके हाथोंसे परदेशमें मृत्यु पाता है।	जहरीली चिंटियाँ, सर्पादि, जानवरसे, जंगलमें या चोरसे मृत्यु प्राप्त करता है ।	अत्यन्त विलासी, अपने चित्तसे या स्त्रीओंको मारनेसे अथवा पत्नी के जहर देनेसे मृत्यु होती है।
नवम (भाग्य-धर्म)	व्रत-उपवासादि विविध धर्माचरण कर्ता, पवित्र तीर्थस्थान या बनमें बसनेवाला होता है।	स्वधर्म क्रिया रहित और पर धर्मपालक, विनय रहित होता है।	स्त्री-धर्मकी सेवा करनेवाला, अनेक जन्मोंसे भक्ति-रहित, पाखंडी अन्य दर्शनीयोंका सहायक होता है।
दसम (कर्म)	मनोहर कुएँ, वाव, तालाब, आदि पानीके स्थान बनानेवाला दयावान, सत्पुरुष होता है।	क्रूर, पापी, दुष्ट, पराक्रमी, हिंसक, नित्य निंदक होता है।	दुष्ट, भक्ति न माननेवाला, तुच्छ वीर्यवान, निर्धन होता है। घरमें उसकी पत्नीका हुक्म चलता है।
ग्यारह (लाभ)	सेवा-खेती-शास्त्र-साधु पुरुषोंसे लाभ प्राप्त करता है।	निंदासे अनेक मनुष्योंके बंधन वध-परिश्रमसे और विदेशगमन से लाभ प्राप्त करता है।	अनेक आराधना, शास्त्रादिसे विनय-अद्‌भूत विवेकसे, लाभ प्राप्त करता है।
बारह (व्यय)	देव-गुरु-पूजा, धर्मक्रिया, सत्पुरुष प्रशंसामें धन व्यय करता है।	संदेह रहित, रूपवान, अत्यंत क्रोधी, कुकर्मी, और चोरी करनेसे जातक निंदनीय बनता है।	स्त्रियोंमें उत्साहसे, विवाह आदि एवं उत्तम कार्योंसे, सूत्र प्रभाव या साधु संगतसे धन व्यय करता है।
	तुला राशि	वृश्चिक राशि	धन राशि
प्रथम (लग्न)	कफ रोगी, सत्यवादी, स्त्रीसे प्रीति रखनेवाला, राजातुल्य, देवादि पूजनमें तत्पर	क्रोधी, आयुष्यवान, धर्मप्रेमी, राजाका पूज्य, गुणवान, शत्रुसे सदा विजयी होनेवाला होता है।	राजा तुल्य सुखी, कार्यदक्ष, देवगुरु प्रीतिकारक, सुखी मित्रोवाला, घोड़े जैसी जंघावाला
द्वितीय (धन)	पुण्यसे प्राप्त धनवान, पत्थर मिट्टीके बर्तन, खेती आदि से धन प्राप्ति, आपकर्मी धन भोगी होता है।	स्वधर्म पालक, स्त्रीका भोगी देवगुरु भक्तिकारक, विचित्र वाणी बोलनेवाला होता है।	धैर्यसे धन प्राप्ति, यशस्वी, तेल-घी आदि द्रव पदार्थों और धर्मविधि से द्रव्य-लाभ प्राप्त करनेवाला।
तृतीय (पराक्रम)	दुष्टोंके साथ मित्राचारी, अत्यंत विषयी, कम संतति वाला होता है।	दुष्ट और दरिद्र मित्रोंसे मैत्री, पापी, कजियाखोर, जो काममें बेदरकार हों उनसे विरोध रखनेवाला	शूरवीरोंसे मित्राचारी, राजाका सेवक, स्व धर्मसे प्रसन्न चित्त, दयावान, रण संग्राममें चतुर
चतुर्थ (सुख)	सरल स्वभावी, शुभकार्यमें चतुर, विद्यासे नम्र, सर्व मनुष्योंका प्रिय	चंचल, इरपोक, सेवा परायण, गर्व रहित, पराक्रमी, छिद्रान्वेषी, कम अक्कल-	लश्करी कार्य, घोड़ोंके व्यापार, स्व प्रताप निबंधसे, सेवासे सुख प्राप्त करता है।
पंचम (तनय)	सुंदर स्वभाववाले, मनोहर, स्वरूपवान, क्रिया युक्त-योग्य पुत्रवाला होता है।	मनोहर, अच्छे स्वभाववाला, अनजानेमें दोष करनेवाला, स्वधर्ममें नम्र और पुत्र रहित होता है।	विचित्र ईच्छावान्, शत्रुरहित, धनुर्धारी, सेवाप्रिय, राजासे मान प्रापक, पुत्रवान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठम् (रिपु)	घरमें रहे हुए धनके कारण, धर्मके कार्य-हेतु रूप, बंधुवर्गसे, निज स्थान से वैर प्राप्त होता है।	द्वि-जिह्विय सर्प, सिंह, मृग, चोर से, अनाज द्वारा विलासिनी स्त्रीओंसे वैर प्राप्त होता है।	अच्छे मनुष्योंसे, हाथी-घोडादि अच्छे पदार्थोंसे, अन्य को ठग लेनेसे वैर प्राप्त करता है।
सप्तम (जाया)	गुणों से अभिमानी, धर्म परायण, पुण्यप्रेमी, अच्छे पुत्र जन्मदात्री, जमींदार अनेक प्रकारकी स्त्रीवाला	विकल स्वभाव, कृपण, दुर्भागी, अभिमानी अनेक दोषवाली स्त्रीको प्राप्त करता हैं।	दुष्ट स्वभाव वाली, निर्लज्ज, पर दोष संग्रही, कजियाखोर और अभिमानी स्त्री प्राप्त करता है।
अष्टम् (आयु)	मनुष्योंसे, व्रतसे, मल कोपसे अधिक बुखारसे मृत्यु पाता है।	खून-विकार, रोग, कीड़े या विषसे अपने स्थानमें मृत्यु पाता है।	बाण से, गुप्तांगोके रोगसे, पशु-जलचरोंसे अपने ही स्थानमें मृत्यु पाता है।
नवम् (भाग्य-धन)	धर्मी, देव-गुरु भक्तिकारक, मनुष्य प्रति प्रेम धारी, अद्‌भूत	पाखंड धर्ममें तत्पर, औरोंको दुःखदाता, भक्ति रहित, अन्यका पोषण न करनेवाला होता है।	धर्मी, पितृदेवोंका पूजक, मन घडंत शास्त्र रचयिता, ज्यादा संतोषी, त्रिलोक प्रसिद्ध
दसम (कर्म)	व्यापारी, धर्मात्मा, नीतिवान, इष्ट पदार्थ-संपत्तियुक्त होता है।	अच्छे कार्यकर्ता, माननीय, देव-गुरु न माननेवाला निर्दयी और नीति हीन होता है।	पूर्ण ज्ञानवान्, परोपकारी, राजातुल्य, यशवान, चोरी की आदतवाला होता है।
ग्यारह (लाभ)	विचित्र व्यापार, साधुसेवा, विनयसे लाभ, स्वमत-स्तुति करनेसे सुखी होता है।	कष्ट, पापकार्य, सुंदर भाषण, अन्यसे प्रपंच द्वारा श्रेष्ठ लाभ प्राप्तकर्ता है।	राजा प्रत्ये विलास, सत्पुरुष सेवा, स्व पराक्रम, आराधना से लाभ प्राप्त करता है।
बारह (व्यय)	देव-गुरु-श्रुति-स्मृति-बंधु निमित्त, यम-नियम द्वारा लड़कों के लिए, सेवाके लिए प्रसिद्ध धन खर्च करता है।	दान-दुःख-दुष्ट मित्रकी सेवा, निंदित कार्य, दृष्ट बुद्धि, चोरीका अधिकार ग्रहण करने से-धन खर्च करता है।	दुष्ट-जन-संग, ठगविद्या, जाति और अधिकारी पुरुषोंकी सेवा और खेती कार्यमें धन व्यय करता है।
	मकर राशि	कुंभ राशि	मीन राशि
प्रथम (लग्न)	संतोषी, चंचल, इरपोक, पापी, कफ-वायुसे पीड़ित, लम्बे अवयवोंवाला, ठग होता है।	स्थिर स्थितिवाला, ज्यादावायु वाला, जलसेवी, उत्तम शरीर, रूपवान, स्त्रीवाला, अच्छी संगतवाला	पाणीसे प्रीत, नम्र, अच्छा पंड़ित, अच्छी याददास्त, पतला शरीर, क्रोधी, पित्तरोगी, कीर्तिवान्
द्वितीय (धन)	खेती, परदेशगमनादि अनेक प्रकारसे, प्रपंचसे धनोपार्जक, राजाकी सेवामें तत्पर होता है।	फल-फूलादिसे धन प्राप्ति, बड़े पुरुषादिसे प्राप्त, सज्जनोंके भोगयोग्य धनवाला, परोपकारी।	नियम व्रतसे धनलाभ, विद्या प्रभावसे धन लाभ या माँ-बापके धनसे धनवान होता है।
तृतीय (पराक्रम)	संतानयुक्त, अच्छा, स्वभाव, मित्र और देव-गुरु भक्ति तत्पर, धनवान पंड़ित होता है।	नियमोका ज्ञाता, अत्यंत कीर्तिवान, क्षमावान, सत्यभाषी, मित्रता एवं अच्छे स्वभावी, गायक, अधिकारी, दुष्टोंका संगी होता है।	अधिक धनवान, पुत्रवान, पवित्र धनका संग्राहक, अतिथि प्रेमी, सर्व मनुष्यों का प्रियपात्र होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ (सुख)	जलसेवी, उद्यानादिमें घुमनेसे, वावादिमें स्नानसे, मित्रोंकी सेवा, उत्तमजनोंके संगसे अधिक सुखी।	स्त्रियोंके गुणवान, मनो वांछित, मिष्ट-स्वादिष्ट फलादि पदार्थ और उत्साह वर्धक बातोंसे सुखी होता है।	जलाश्रयी सुख एवं शनिसे उत्पन्न सुंदर वस्त्रादि पदार्थ, काली वस्तु और धनादि सुखका भोगी होता है।
पंचम (तनय)	पाप, बुद्धि, कुरूप, कायर, प्रताप और तेजहीन, निर्दयी, प्रेमविहीन, ऐसे पुत्रोंवाला होता है।	स्थिरता युक्त, गंभीर चेष्टावाले, सत्यभाषी, प्रसिद्ध पुण्यवान, यशस्वी, कष्ट सहनेवाले पुत्रोंवाला	स्त्री-प्रसंगसे सुखी, लालवर्णी, रोगी, कुरूप, मजाकीय स्वभावी, स्त्रीयुक्त पुत्रवाला होता है।
षष्ठम् (रीपु)	धन-घर संबंधी, कारण और बार बार साधु पुरुषोंके संगसे मित्रोंसे वैर प्राप्त करता है।	बलवान राजा, क्षेत्रपाल और बड़े पुरुषोंसे, वाव-तालाबादि से, पानीसे भय प्राप्त होता है।	बच्चे, स्त्री, वस्त्रके कारण से अन्यकी संपत्ति निमित्त शत्रुता प्राप्त होती है।
सप्तम् (जाया)	कपटी-नीच-निर्लज्ज, लालची, क्रूर, दुष्ट स्वभावी, क्लेश करनेवाली पत्नी प्राप्त करता हैं।	दुष्ट स्वभावी, देव-गुरुको खुश करनेवाली, धर्मध्वजा रूप, क्षमावान स्त्रीको प्राप्त करें।	विचारयुक्त, बुद्धिवान, स्वधर्म, कुशल, अविनयी, कजियाखोर, खराब पुत्रवाली स्त्री पाता है।
अष्टम् (आयु)	विद्यावान, गुणवान, मान चाहक, कामी, शूरवीर, विशाल वक्षःस्थल, शास्त्रार्थ ज्ञाता, कलामें चतुर होता है।	घरकी आगसे, अनेक व्रण और विकारोंसे, वायु विकारसे, मेहनतसे परदेशमें मृत्यु पाता है।	संग्रहणी रोग, पित्तकाज्वर, दुःख, खून विकृतिसे, पानी से, या शस्त्र से मृत्यु पाता है।
नवम (भाग्य-धर्म)	पापी आत्मा, प्रतापी, अधर्म करें लेकिन बादमें दुःखी होनेसे खानदानोंका आश्रय कर पक्षका सहायक	अच्छा, धर्मी, वाव-उद्यानादिमें प्रीतिवान, देव-गुरुभक्त होता है।	विविध धर्म कर्ता, सत्पुरुष सेवा और तीर्थाटन से धनवान और सुखी होता है।
दसम् (कर्म)	बड़ा प्रतापी, श्रेष्ठ कार्यकर्ता, दुष्टजनोंकी संपत्ति अनुसार चलनेवाला निर्दयी, अधर्मी होता है।	पाखंडी, लोभी, अविश्वासी, लोक विरुद्ध चलनेवाला, और ठग होता है।	निज कुलमें गुरुदृष्ट धर्मकर्ता, कीर्तिवान, स्थिर बुद्धि, आदर सत्कारमें तत्पर होता है।
ग्यारह (लाभ)	यात्रा, परदेशगमन, राजसेवा, व्ययानुसार अधिक लाभ प्राप्त करता है।	कुकर्म, पराक्रम, धर्म, विद्याके प्रभावसे लाभ, सज्जनोंका संग प्राप्त करता है	मित्रोंसे, राजाके सन्मानसे, विचित्र (मश्करे) वाक्य बोलने से या नम्रतासे अनेक प्रकारसे लाभ-
बारह (व्यय)	पाप नाशके लिए धन का व्यय, स्वजाति प्रीतको रखनेवाला खेती करनेवाला, निंदित होता है।	सिद्ध, देव, गुरु, तपस्वी आदि और दुष्ट पुत्र एवं खानपानादिमें तथा विवादमें व्यय करता है।	

ग्रह :- राशिकी भाँति आकाशमें पृथ्वीकी तरह बड़े आकारके पिंड़को ही ग्रह कहा जाता है। वे राशिचक्रके मार्गमें भ्रमण करनेवाले होते हैं। राशि एक ही जगह रहनेसे स्थिर और ग्रह भ्रमणशील होनेसे अस्थिर माने जाते हैं। ज्योतिष शास्त्रानुसार सूर्य-चंद्रादि बारह ग्रह माने गये हैं, जो जातकके जीवनमें निज कर्मानुसार घटित होनेवाली घटनाओंकी ओर अपने गुणधर्म और गगन परिभ्रमणानुसार अंगूलि-निर्देश करते हैं।[६]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनका सामान्य स्वरूप-परिचय निम्न तालिकासे ज्ञातव्य है -[७]

	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
जाति	क्षत्रिय	वैश्य	क्षत्रिय	शुद्र	ब्राह्मण	ब्राह्मण	वर्णशंकर	चांडाल	वर्णशंकर
वर्ण	त्रांबावर्णी	श्वेत	रक्त	हरा	पीला	चित्र-विचित्र	काला	काला	धुँआ जैसा
विकार	खून-पित्त	कफ	पित्त-कफ-खून	वात-पित्त-कफ	वात-कफ	वात-कफ	वायु	वायु	वायु
अंग	मस्तक-मुख पीडे	छाती-कंठ	पीठ-पेट	हाथ-पैर	कटि-जंघा	गुदा-वृषण	घूटने-साथल	हड्डियाँ	-
गुण	सत्त्व	सत्त्व	तमस्	रजस्	सत्त्व	रजस्	तमस्	तमस्	तमस्
दिशा-स्वामी	पूर्व	वायव्य	दक्षिण	उत्तर	ईशान	अग्नि	पश्चिम	नैऋत्य	नैऋत्य
लिंग	पुरुष	स्त्री	पुरुष	नपुंसक	पुरुष	स्त्री	नपुंसक	पुरुष	पुरुष
मूल त्रिकोण	सिंह ०°से२०°	वृषभ ३°से३०°	मेष ०°से१२°	कन्या १५°से२०°	धन ०°से१०°	तुला ०°से१५°	कुंभ ०°से२०°	कुंभ	सिंह
धातु	त्रांबा	मणि	सोना	कांस्य	रूपा	मोती	सीसा-लोहा	लोहा	नीलमणि
तत्त्व	अग्नि	जल	अग्नि	वायु	पृथ्वी	पृथ्वी	जल	-	-
कारक	आत्मा पिता-पति	माता	भ्रातृ	व्यवसाय मित्र	पुत्र	पत्नी	आयुष्य	-	-
भावका कारक	१,९,१०	४	३,६	४,१०	२,५,९, १०,११	७	६,८,१०, १२	-	-
अधिष्ठायक	अग्नि देव	जल देव	अग्नि देव	विष्णु	इन्द्र	इन्द्राणी	ब्रह्मा	-	-
शुभाशुभ	अशुभ	शुभाशुभ	अशुभ	स्थितप्रज्ञ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ	अशुभ
पूर्ण दृष्टि	सातवें	सातवें	४-८-७	सातवें	५-९-७	सातवें	३-१०-७	-	-
अपूर्ण दृष्टि	प्रत्येक ग्रह अपने स्थान से तृतीय और दशम स्थानमें पाव($^1/_4$) पंचम-नवममें अर्ध; और चतुर्थ- अष्टममें ३/४ दृष्टि से देखता है।								
योगकारक लग्न	प्रथम	अष्टम	चतुर्थ-पंचम	तृतीय-षष्ठ	नवम-बारह	दसम ग्यारह	द्वितीय सप्तम	-	-
स्वगृही	सिंह	कर्क	मेष-वृश्चिक	मिथुन-कन्या	धन-मीन	वृषभ-तुला	मकर-कुंभ	मिथुन-कन्या	धन-मीन
उच्च	मेष-१०	वृषभ-३°	मकर-२८°	कन्या-१५°	कर्क-५°	मीन-२७°	तुला-२०°	मिथुन-१°	धन-१°
नीच	तुला-१०°	वृश्चिक-३°	कर्क-२८°	मीन-१५°	मकर-५°	कन्या-२७°	मेष-२०°	धन-१°	मिथुन-१°
संज्ञा	मूल	धातु	धातु	जीव	जीव	मूल	धातु	धातु	-
स्वभाव	स्थिर	चर	क्रूर	मिश्र	कोमल	लघु	तीक्ष्ण	-	-
मित्र	चं.मं.गु.	सू.बु.	सू.चं.गु.	सू.चं.राहु	सू.चं.मं.रा.	बु.श.रा.	शु.बु.रा.	बु.शु.श.	-
सम-विषम	बुध	मं.गु.शु.श.	शुक्र-शनि	मं.गु.श.	शनि.	बु.श.रा.	शु.बु.रा.	बु.शु.श.	-
शत्रु	शु.श.रा.	राहु	बुध-राहु	चंद्र	बुध-शुक्र	सूर्य-चंद्र	सू.चं.मं.	सू.चं.मं.	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्षत्र	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिर	आश्लेषा	पुनर्वसु	भरणी	पुष्य	आर्द्रा	अश्वनी
	उ.फाल्गुनी	हस्त	चित्रा	ज्येष्ठा	विशाखा	पू.फाल्गुनी	अनुराधा	स्वाति	मघा, मूल
	उत्तराषाढ़ा	श्रवण	घनिष्ठा	रेवती	पू.भाद्रपदा	पूर्वाषाढ़ा	उ.भाद्रपदा	शततारका	

卐 चंद्रकी क्षीण कलामें वह अशुभ बनता है और वृद्धि कलामें चंद्र शुभ बनता है।

• अकेला या शुभ ग्रह के साथ शुभ और अशुभ या शुभाशुभ दोनोंके साथ रहने पर अशुभ होता है।

'सिद्धान्त-सारानुसार' ग्रह नव होते हैं; यथा-सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु।[८] नये शोधानुसार (पाश्चिमात्य मतानुसार) युरेनस, नेप्च्युन और प्लुटो-तीन ग्रहभी अपना प्रभाव छोड़ते हैं। अतएव बारह ग्रह होते हैं।

जो ग्रह रात्रिमें नहीं दिखता-अर्थात् दिनमें उदित होता है वह अस्तका ग्रह और जो ग्रह रात्रिमें आकाशमें उदित होता है, वह उदयका ग्रह कहा जाता है।[९]

जातकके जन्म समयमें जन्मकुंडलीमें जो ग्रह बलवान होता है, जातक उसके स्वरूपवाला (जो 'लघुजातक'में वर्णित है तदनुसार स्वरूपवाला) होता है। अगर एकसे ज्यादा ग्रह बलवान हों तब सभी बलवान ग्रहके मिश्र स्वरूपवाला होता है।

बलाबल --- सूर्य--गुरु--शुक्र दिनमें, चंद्र-मंगल-शनि रात्रिमें और बुध दिन और रात्रिमें बलवान होता है। प्रत्येक ग्रह अपने दिन, मास, वर्ष, काल, और होरामें बलवान होता है। पापग्रह कृष्णपक्षमें और शुभग्रह शुक्लपक्षमें बलवान होता है। शुक्र, मंगल, सूर्य और गुरु उत्तरायनमें, चंद्र-शनि दक्षिणायनमें और बुध दोनों अयनोंमें एवं यदि नवमांशमें स्वग्रही हों तब बलवान होता है।[१०]

कोईभी ग्रह जब शुभ ग्रहकी दृष्टियुक्त अथवा शुभग्रहकी युतिवाला न हों, लेकिन, नीचका-शत्रुके गृहका, पाप ग्रहसे युति अथवा दृष्टियुक्त, पापग्रहके वर्गमें, संधिमें, अल्पांशमें या अस्तका हों तब शुभ फल देनेमें असमर्थ होता है।

स्वर्गलोकका स्वामी गुरु; नरक का शनि; मनुष्य लोकका चंद्र और शुक्र; तिर्यक् लोकका बुध और पितृओंका स्वामी सूर्य एवं मंगल होता है।

इसके अतिरिक्त फलादेशके समय ग्रहोंकी दृष्टि और उनके पारस्परिक संबंधको भी दृष्ट्यान्तर्गत किया जाता है। इतना ही नहीं इनको अधिक महत्वपूर्णभी माना जाता है क्योंकि कई बार इनके ही कारण फलादेशमें पूर्व-पश्चिमका अंतर नज़र आता है।

ग्रहकी दृष्टि---शुभ स्थानमें अशुभ ग्रहकी अशुभ दृष्टि होनेसे उस शुभ स्थानसे मिलनेवाले शुभ फलमें हानि प्राप्त होती है; अथवा अशुभ स्थानमें शुभ ग्रहकी शुभ दृष्टि अशुभ फलमें हानि कर्ता है अर्थात् जातकको शुभ ग्रहकी शुभ दृष्टिसे अशुभ स्थानका फल हानिमें नहीं प्रत्युत लाभरूप प्राप्त होता है।

जो ग्रह जिस स्थानको पूर्ण दृष्टिसे देखें तब उन स्थानोंमें उनका अपना विशिष्ट प्रभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छोड़ते है। कोईभी ग्रह अपने स्थानसे द्वितीय-षष्ठम्, एकादश और द्वादशवें स्थान पर दृष्टि नहीं करता है। सूर्य-मंगल की उर्ध्व, शक्र-बुधकी तिर्यक्, चंद्र और गुरुकी सम (सामने), और राहु-शनिकी दृष्टि निम्न मानी गई है।

ग्रहका पारस्परिक संबंध--- ये संबंध पाँच प्रकारके माने गये हैं-[११]

(i) युति - एक स्थानमें एकसे अधिक ग्रहोंका बिराजमान होना।

(ii) प्रतियुति- एक ग्रह अपने स्थानसे बराबर आमने सामने याने सप्तम् स्थानमें रहे हुए ग्रहकी और जो संबंध रखता है।

(iii) दृष्टि - प्रत्येक ग्रह अपने स्थानसे जिस स्थानको और जिस ग्रहको देखता है उस स्थान या ग्रहके साथ उसका दृष्टि संबंध होता है ।

परिवर्तन--- स्थानाश्रयी परिवर्तन-जैसे गुरु ग्रह मंगल ग्रहके गृहमें और मंगल ग्रह, गुरुके गृहमें बिराजमान हों; इन दोनोंका परस्पर असरकर्ता जो संबंध होता है वह परिवर्तन संबंध कहलाता है।

एकतर --- इस संबंधमें **One Sided Relation** की भाँति एक ओर से ही संबंध स्थापित होता है। दूसरा, सामनेवाला संबंध नहीं रखता है। इसके भी दो प्रभेद है -एकतर दृष्टि सम्बन्ध और एकतर स्थान सम्बन्ध।

एक ग्रह जिस स्थान पर दृष्टि करता है, उसी स्थान पर रहा हुआ ग्रह प्रथम ग्रह पर दृष्टि नहीं करता है-जैसे-मंगल चौथी दृष्टिसे जिस ग्रहको देखता है, उस चौथे स्थान पर रहा वह ग्रह मंगलकी ओर दृष्टि नहीं करता है। इस तरह यह एक ओरका होनेसे एकतर दृष्टि सम्बन्ध बनता है।

एक ग्रह जिस ग्रहके गृहमें बैठा हों, वह ग्रह उसीके गृहमें न रहकर अन्यके गृहमें बैठा हों-जैसे-गुरु प्रथम स्थानमें अर्थात् मंगलके गृहमें रहा हुआ है, लेकिन मंगल, गुरुका नवम् या द्वादशम् स्थानमें न रहकर पंचम स्थानमें बिराजमान हुआ हों तब यह एकतर स्थान सम्बन्ध होता है।

जिस स्थानमें जो राशि रही हुई है उस राशिका स्वामी बारह स्थानमें से जिस स्थानमें बिराजित हों वहाँ यह क्या फल प्रदान करता है तत्संबंधी तलिका दृष्टव्य है।[१२]

	प्रथमभाव	द्वितीय भाव	तृतीय भाव
लग्नेश	नीरोगी, आयुष्यवान, बलवान, राजा अथवा जमींदार होता है।	धनवान, आयुष्यवान, बलवान राजा वा जमींदार, धार्मिक-	अच्छेभाई-मित्र, दानवीर, शूरवीर, बलवान, धार्मिक होता है।
धनेष	कृपण, व्यवसायी, धनवान, अच्छा कार्यकर्ता, प्रसिद्ध, सुखी	व्यवसायी, लाभवान, अपराधी, नीच, अनर्थकारी, उद्वेगी, अधिक भूखा होनेवाला होता हैं।	क्रूरसे-भाईसे क्लेश नहीं, शुभसे-राजासे विरोध मंगलके कारण चोर होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पराक्रमेश	वाणीसे विवादी, लंपट, झघडालु, सेवादार, निंदक होता है।	क्रूर से भिखारी, निर्धन, अल्पजीवी, भाईका विरोधी, शुभसे-लक्ष्मीवान्	मध्यम पराक्रमी, श्रेष्ठ-मित्र-बंधु, देव-गुरु-पूजक, राजा से लाभ।
सुखेश	पिता-पुत्र परस्पर प्रीति, पितासे प्रसिद्धि, पिताके संबंधीओमें वैर	क्रूरसे-पिताका विरोधी, शुभ से पितृ-आज्ञापालक प्रसिद्ध धन-पिता भोगे,	पिता को दुःखदायी, उनसे झगडे, चाचाओंको मारनेवाला-
तनयेश	प्रसिद्ध, शास्त्रज्ञ, अच्छे कार्य प्रिय, बालक-पुत्रवान	क्रूरसे-निर्धन, शुभसे-हाथ-दर्द, कलावान, प्रसिद्ध गायक	मिष्टभाषी, प्रसिद्ध, उसके पुत्र उसके भाईके पालक होते है।
षष्ठमेश	नीरोगी, बलवान, परिवारको दुःखदायी, कठिन परिश्रमी, शत्रुनाशक, आपकमाईसे धनवान, मनस्वी	दुष्ट, चतुर, संग्रही, रोगी शरीर, प्रसिद्ध मित्रो का धन हरनेवाला	सज्जनोंको दुःखदायी, स्वजनोंका नाशक और संग्राममें दुःखी
जायेश	परस्त्रीगामी, स्वस्त्री भोगी, दिलगीर, रूपवान, स्त्रीके आधीन	पुत्रैच्छुक, स्त्रीसे धन प्राप्ति, दुष्ट स्त्री, स्त्री का त्यागी	रूपवान स्त्री, देवरकी प्रेमी होने से दुःखी, भातृप्रेमी, क्रूरसे निज स्त्री मित्रगामी बने।
अष्टमेश	संकट, लम्बी बिमारी, चोर, दुष्ट कार्यशील, नृपसे धनलाभ	क्रूरसे-अल्पजीवी, शत्रुवाला, चोर, शुभसे-शुभफल, राजा से मृत्यु	भाई-मित्रोंका विरोधी, दुष्टभाषी, शारीरिक नुक्स भाई-हीन
भाग्येश	देव-गुरुको माननेवाला, शुरवीर, कृपण, अल्पभोजी, बुद्धिमान, राजाका कार्य करनेवाला	स्त्री व्यभिचारी, सुकृत कर्ता, अच्छा स्वभाव, मुखमें पीड़ा, पशु से दुःखी	रूपवान, परिवारका प्रिय और रक्षक, अंत समय तक भाईका सुख रहे।
कर्मेश	माँ से वैर, पितृसेवी, पिताकी मृत्यु के बाद माता व्यभिचारीणी बने	माता पाले, माताका विरोधी, लोभी, अल्पभोजी, प्रसिद्ध	माँ और संबंधीओंका विरोधी, चाकर कार्य शक्ति हीन, मामा पाले
लाभेश	अल्पायुषी, बलवान, दातार, तृष्णा-दोषसे मृत्यु, शुरवीर, श्रेष्ठ भाग्यवान्	आप कमाई, अल्पायुषी, अल्पभोजी, आठ मनुष्योंका पालक, क्रूरसे-रोगी; शुभसे-धनवान	अच्छे भाईयोंका प्रिय, भातृ धन रक्षक, भाग्यवान क्रुरसे बंधु एवं शत्रु कुल नाशक
व्ययेश	विदेशगामी, सुंदर, रूपवान, श्रेष्ठवाणी, वादी, गुप्तदोषी, दुष्ट संगत, नपुंसक	कृपण, कटुभाषी, खराब फल पानेवाला, शुभसे-निर्धन, राजा और चोरसे डरे	क्रूरसे-भाई रहित, शुभसे-धनवान, थोड़े भाई, भाईसे दूर बसनेवाला कृपण होता है।
	चतुर्थ भाव	**पंचम भाव**	**षष्टम भाव**
लग्नेश	राजाका प्रिय, अच्छी कमाई पितासे लाभ, माँ-बापका सेवादार, अल्पभोजी होता है।	अच्छे पुत्रवाला, धनवान, त्यागी, प्रसिद्ध, अच्छी आय, कर्ममें प्रीति-	नीरोगी, जमींदार, लोभी, बलवान, धनवान, शत्रुनाशक, अच्छे कार्य करनेवाला अच्छे मित्र
धनेश	पितासे लाभ, सत्यवादी, दयावान, आयुष्यवान, क्रूर ग्रहसे माताकी मृत्यु होती है।	धनवान, पुत्रवान, श्रेष्ठ कार्योमें प्रसिद्ध, कृपण और दुःखी होता है।	धन संग्रही, शत्रुनाशक, शुभ ग्रहसे-जमीन लाभ दाता और क्रूर ग्रहसे- निर्धन होता है।
पराक्रमेश	पिता, भाई, सहोदरसे सुखी, माता का वैरी, पिताका धन खा जानेवाला होता है।	बंधु, पुत्र, भाईसे सुखी, आयुष्यवान, परोपकारी होता है।	भाई से विरोध, आँखका रोगी, जमीन से लाभ, रागी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुखेश	राजा से मान, पिताको लाभदायी, प्रसिद्ध, धार्मिक, धनवान और सुखी होता है।	पिताको लाभदायी, आयुष्यवान, प्रसिद्ध, पुत्रोंका पालक, अच्छे पुत्रोवाला होता है।	क्रूरसे-माता के धनका नाश, पिताको दोष देनेवाला, शुभसे धन-संचय करनेवाला होता है ।
तनयेश	पितृ-कार्य प्रिय, पिताका पाला हुआ, मातृ-भक्त, क्रूरसे माँ-बापका वैरी	बुद्धिमान, शुभवचनी, प्रसिद्ध पुत्रवान, सज्जनोंमें प्रसिद्ध	शत्रुवाला, मानहीन, क्रूरसे रोगी और निर्धन होता है।
षष्ठमेश	पिता-पुत्र परस्पर वैरी, उसका पिता या पुत्र रोगी, चीर स्थायी हों ऐसी लक्ष्मी प्राप्त करनेवाला	पिता-पुत्र परस्पर वैरी, क्रूर से पुत्रसे पिताकी मृत्यु, शुभसे-धन रहित, दुष्ट, पदवीधारी कपटी होता है।	नीरोगी, शत्रुसे सुखी, कृपण, जन्मसे खेदरहित, दुष्ट स्थानवासी होता है ।
जायेश	चंचल, पितृ-वैरी, स्नेहल, उसका पिता- मृदुभाषी, उसकी स्त्रीको उसका पिता (श्वसुर) पाले	सौभागी, पुत्रवान, हठी, उसकी स्त्रीको पुत्र पाले।	स्त्रीका वैरी, स्त्री रोगी होती है, क्रूर ग्रहसे-स्त्री संग से मृत्यु
अष्टमेश	पिताका शत्रु, पिता का धन ले लेनेवाला, पिता रोगी, पितासे झगड़े	क्रूरसे-पुत्ररहित, शुभसे-शुभ फल, पुत्र जीवित नहीं रहते हैं। (यदि जीये तो धूर्त होते है।)	सूर्य-राजा का विरोधी, गुरु-खेद, शुक्र-नेत्रदोष, चंद्र-रोगी, मंगल-क्रोधी बुध-साप से इर शनि-मुखमें पीड़ाकार होता है।
भाग्येश	पितृसेवी, प्रसिद्ध, सुकृत्य कर्ता, पितृकर्म प्रेमी	धार्मिक, देव-गुरु पूजक, रूपवान, धार्मिक, पुत्रवान	शत्रुके सामने नम्र, पापी, कला रहित, निंदा प्रिय
कर्मेश	सुखी, सच्चारित्री, माँ-बाप का सेवक, राजासे मान प्राप्त करनेवाला।	सुकृत कर्ता, मश्करा स्वभाव, राजासे लाभ, गायक-वादक, माता का पाला हुआ।	शत्रुसे इरपोक, लोभी, निर्दयी, निरोगी, कजियाखोर
लाभेश	लम्बी आयु, पितृभक्त, चतुर, धर्मप्रेमी, धर्मसे लाभान्वित	पिता-पुत्र परस्पर प्रीति समानगुण-अल्पायुषी	लंबी बिमारी, ज्यादा शत्रु, क्रूरसे-विदेशमें चोरके हाथसे मृत्यु होती है।
व्ययेश	कृपण, रोगसे भय, सुकृत कर्ता, पुत्र से मृत्यु, निरन्तर दुःखी	क्रूरसे-पुत्रविहिन, शुभसे-पुत्रवान, पितृधनसे सुख, भोगी, सामर्थ्य रहित	क्रूरसे-कृपण, नेत्रदोष, अल्पायुषी, शुक्रसे-अंध होता है।
	सप्तमभाव	अष्टम भाव	नवम भाव
लग्नेश	तेजस्वी, अच्छा स्वभाव, रूपवान, अच्छे स्वभावकी पत्नीवाला	लोभी, धनवान, आयुष्यवान क्रूरसे-एक आँख से काना, शुभसे अच्छा आदमी होता है	ज्यादाभाई, अच्छे मित्र, पुण्यवान, अच्छा स्वभाव, धर्ममें प्रसिद्ध, तेजस्वी
धनेश	श्रेष्ठ, विलासी, लोभी स्त्री वाला, पाप ग्रहसे-बाँझ स्त्रीवाला होता है।	पाखंडी, आत्मघाती, भाग्यभोगी, पराये धनके लिए हिंसक होता है।	शुभसे-दानी, प्रसिद्ध वक्ता क्रूरसे-दरिद्र, भिखारी, आडंबरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पराक्रमेश	सुंदर स्वभाव, सौभाग्यवान स्त्री, क्रूर ग्रहसे-देवरके घरमें रहनेवाली स्त्री-	भाई की मृत्यु, क्रूरसे-अल्पायु, हाथमें नुक्स, शुभसे-ज्यादा दोष नहीं होते हैं।	क्रूरसे-भाई त्यागते हैं। शुभसे अच्छे भाई, धनवान, भाईकी सेवा करें।
सुखेश	क्रूरसे-पत्नी, श्वसुरको दुःखदायी; शुभसे-पत्नी, श्वसुरकी सेवादार; मंगल से-पत्नी व्यभिचारिणी होती है।	क्रूरसे-रोगी, दरिद्र, दुष्टकार्य करनेवाला, अल्पायुषी	पितासे अलग रहनेवाला, उनसे सुखेच्छा नरखनेवाला पिताके धर्ममें धार्मिक, विद्यावान होता है।
तनयेश	भाग्यवान, देव-गुरु भक्ति-कारक, पुत्रवान, मिष्ट-भाषी, अच्छे स्वभावकी स्त्री	कटु वचनी, स्त्री रहित, वक्रभाषी, भाई और पुत्रवाला होता है।	सुज्ञानी, विद्यावान, कवि, गायक, राजाका पूज्य, रूपवान, नाट्यरसज्ञ
षष्ठमेश	क्रूरसे-विरोधी, क्रोधी, संतापकारी स्त्री होती है। शुभसे-बाँझ स्त्री होती है।	संग्रहणी रोगी, मंगल-सांपसे, बुध-विषसे, चंद्र-जलसे, सूर्य-सिंहसे मृत्यु; गुरु-दुष्ट बुद्धि, शुक्र-नेत्रदोष	क्रूरसे-अपाहिज़, भाईका विरोधी, शास्त्र न माननेवाला, भिखारी
जायेश	आयुष्यवान, प्रेमल, निर्मल स्वभाव, तेजस्वी	वेश्याप्रेमी, अविवाहित, दुःखी चिंतायुक्त होता है।	तेजस्वी, अच्छी प्रकृति, अच्छी स्त्री, क्रूरसे नंपुसक; लग्नेशकी दृष्टिसे नीतिवान
अष्टमेश	क्रूरसे-पेटका रोगी, दुष्ट स्वभाव दुष्ट स्त्रीका द्वेष, स्त्रीके दोषसे मृत्यु प्राप्त होती है।	उद्यमी, उपद्रवरहित, नीरोगी, धूर्त-कला प्रवीण, धूर्तोमें प्रसिद्ध	हिंसक कठोर, वक्रमुखी, पापी, भाई रहित, देव-गुरु न माने
भाग्येश	सुंदर, रूपवान, सुलक्षणी, धनवान, धार्मिक सुकृत करनेवाली और पतिव्रता स्त्री होती है।	दुष्ट, हिंसक, बेघर, अधर्मी, भाई रहित होता है। क्रूर ग्रहसे नंपुसक होता है।	भ्रातृप्रेमी, श्रेष्ठ, दानवीर, देव-गुरु-सगे-स्त्री आदिमें आसक्त
कर्मेश	पुत्रवती, रूपवती, पतिव्रता भक्ति,-प्रीतिवान पत्नी	क्रूर, शुरवीर, दुष्ट माँ को दुःखदायी, अल्पजीवी, धूर्त, मृषावादी	श्रेष्ठ स्वभाव, अच्छे मित्र-भाई, माता-धार्मिक, सत्यवादी और अच्छे स्वभाववाली होती है।
लाभेश	तेजस्वी, अच्छा स्वभाववाला, संपत्तिवान, आयुष्यवान, एक पत्नीव्रती होता है।	क्रूरसे-अल्पायुषी, लंबी बिमारी, शुभसे-जीवितभी मृत सदृश, दुःखी होता है।	बहुश्रुत, शास्त्रज्ञ, धर्म प्रसिद्ध, देव-गुरु भक्त; क्रूरसे-भाई, व्रत रहित होता है।
व्ययेश	क्रूरसे-दुष्ट, दुष्चरित्री, चतुर, स्वस्त्रीसे मृत्यु, शुभसे-वेश्या से मृत्यु होती है।	आठ जनोंका पालक, कार्य-साधन न करें, द्रोही, शुभ ग्रहसे-धन संग्रही होता है।	तीर्थयात्रामें चंचल स्वभाव क्रूरसे-पापी, निरर्थक धन व्यय करे।
	दसम भाव	एकादश भाव	द्वादश भाव
लग्नेश	राजा से लाभ, अच्छा स्वभाव, विद्वान-गुरुजन-माता का पूजक राजाके पास प्रसिद्धि	सुखी, पुत्रवान, प्रसिद्ध, तेजस्वी, बलवान, वाहनवाला होता है।	कठोर काम करनेवाला दुष्ट, नीच, परदेशगामी, अभिमानी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धनेश	राजा को मान्य, उससे धन प्राप्ति, शुभसे- माता पिताका पालक होता है ।	व्यवहार से धनवान, लोक सेवा से प्रसिद्ध	क्रूरसे-कठोर, कृपण, निर्धन; शुभसे-लाभालाभ से प्रसिद्ध होता है।
पराक्रमेश	राजा से मान, माता-पिता भाईकी आज्ञा पालक, सर्व भाईयोंमें श्रेष्ठ	राज्यसे शोभा प्राप्त, भाई संबंधीकी सेवा करें, भोग प्रिय होता है।	मित्रोंसे विरोध, भाई को दुःखदायी, भाई से दूर- विदेशमें बसनेवाला होता है।
सुखेश	क्रूरसे-माताको त्याग पिता दूसरी शादी करें; शुभसे-माता का त्याग किये बिना पिता अन्य स्त्री सेवी बने	धर्मवान, पितृपालक, सत्कार्यकारी, आयुष्यवान, नीरोगी, पितृसेवी होता है।	पिता की मृत्यु या परदेशगमन क्रूरसे-पुत्र- माता के व्यभिचारसे मरता है।
तनयेश	राजसेवक, राजाका प्रिय, सुकृत प्रेमी, माताको सुखदायी	पुत्रवान, सत्संगी, गायनप्रेमी, राज्य सम्मानका सुख भोगी।	क्रूरसे-पुत्रविहिन; शुभसे- श्रेष्ठ पुत्रवान, पुत्रसे संतप्त, विदेश भ्रमणकारी
षष्ठमेश	क्रूरसे-माताका शत्रु, दुष्ट, पुत्रपालक, माँका छिद्रान्वेषी, धार्मिक वृत्ति	क्रूरसे-शत्रु से मृत्यु, शत्रु और चोर से दुःखी, पशुसे लाभ प्राप्त करता है।	जानवरसे हानि, प्रवासमें धन खर्च करें, देव-गुरु पूजक होता है।
जायेश	गुन्हगार, लंपट, क्रूरसे- दुःखी पीड़ित, श्वसुरवश	रूपवान, प्रीतिवाली, प्रसन्न, अच्छे स्वभाववाली पत्नी होती है।	घर और भाई विहिन, दुष्ट संग भागेडु स्त्रीके कारण पत्नीविहिन
अष्टमेश	राजाका चाकर, आलसी, दुष्टकार्य, करनेवाला, क्रूर से माता की मृत्यु	बचपन दुःखी, बूढ़ापा, सुखी क्रूरसे-अल्पायुषी और शुभसे-आयुष्यवान	दुष्टवाणी, लुच्चाई, निर्दय, चोर, स्वेच्छाचारी, वक्र, शरीरी होता है।
भाग्येश	राजाके कार्य करें, शूरवीर, माता-पिता पूजक, प्रसिद्ध, अच्छा स्वभाववाला होता है।	आयुष्यवान, धर्मवान, धनवान, प्रेमल, धर्मसे प्रसिद्ध, श्रेष्ठ पुत्रवान, राजासे लाभ होता है ।	विदेशमें मान, रूपवान, विद्यावान; क्रूरसे-धूर्त होता है।
कर्मेश	माता और माता के कुलको सुखी करनेवाला, चतुर	माननीय, धनवान, आयुष्यवान, सुखी, माता से रक्षित, माताको सुखदायी होता है ।	मातासे त्यक्त, बलवान, सुकृत कर्ता, राजकार्यमें प्रेम; क्रूरसे-विदेशमें प्रीति-
लाभेश	मातृसेवी, मातृपालक, धनवान, धर्मी पिताका वैरी, और आयुष्यवान होता है।	आयुष्यवान, रूपवान, मनकी बात जाने, सुकृत कर्ता, अच्छा स्वभाव, प्रसिद्ध होता है।	आप-कमाई भोगी, स्थिर, रोगी, कलेश प्रिय, अभिमानी, दानवीर, सुखी होता है।
व्ययेश	परस्त्रीसे असंग, पवित्र देह, पुत्रप्रेमी, धन संग्रही, माता कटुभाषी होती है।	आयुष्यवान, धनपति, दानवीर, जग प्रसिद्ध, सत्यवादी, अपने घरमें प्रधान होता है।	ऐश्वर्यवान, बुद्धिवान, पशुसंग्रही, गाँव बसानेवाला कृपण, डरपोक, छोटे गाँवका मालिक होता है।

ग्रहकी दशा :- दशा अर्थात् काल अथवा समय। व्यक्तिके जन्मसे मृत्यु प्रर्यत त्रिकालिक-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतीत, अनागत, वर्तमानकाल,-का शुभाशुभ समय एवं तत्कालीन घटमान घटनाओंके संकेत-कथन, विविध ग्रहोंकी दशा पर आधारित होता है।

ये दशायें प्रमुख रूपसे तीन प्रकारकी मानी गई हैं-अष्टोत्तरी, बीसोत्तरी, योगीनी। महादशाओंके इतिहास पर दृष्टिपात करनेसे ज्ञात होता है कि, प्राचीन कालमें 'योगीनी महदशा' फलादेश कथन किया जाता था, जो केवल नक्षत्राधारित होता था। आर्द्रासे प्रारम्भ करके, (तीनों-पूर्वा, उत्तरा नक्षत्रोंको भिन्न नहीं-एक मानकर)कुल चौबीस नक्षत्रोंमें और छत्तीस वर्षमें आठ दशाओंको विभाजित की जाती थी।

कालक्रमसे आठ दशा, सत्ताईश नक्षत्र और आठ ग्रहोंकी गिनती करके कुल एक सौ आठ वर्षोंमें इनको विभाजीत किया जाने लगा।

इन आठ ग्रहोंका निश्चित क्रम और प्राभाविक समय *सूर्य-६ वर्ष, चंद्र-१५ वर्ष, मंगल-८ वर्ष, बुध-१७ वर्ष, शनि-१० वर्ष, गुरु १९ वर्ष, राहु-१२ वर्ष और शुक्र २१ वर्षका* निश्चित किया गया है। जिसे 'अष्टोत्तरी महदशान्तर्गत' माना जाता है। 'बीसोत्तरी महादशा'के कुल एक-सौ बीस साल होते हैं। नव ग्रहोंके प्राभाविक समयके मध्य इन एकसौबीस वर्षोंको विभक्त किया जाता है। इन नव ग्रहोंका निश्चित क्रम और प्राभाविक समय *केतु-७, शुक्र-२०, सूर्य-६, चंद्र-१०, मंगल-७, राहु-१८, गुरु-१६, शनि-१९ और बुध-१७ वर्षका* निश्चित किया गया है।[१३]

वर्तमानमें योगीनी महादशाधारित फलादेश कथन नहिंवत् अर्थात् बहुत ही कम-क्वचित् ही किया जाता है।

जातकके आयुष्यके जिस वर्षमें जिस ग्रहकी दशा चल रही होती है, उस समयमें वह ग्रह उस व्यक्तिके जीवन प्रसंगोंको प्रभावित करता है याने शुभाशुभ फल-प्रदान करता है। जैसे पचीस वर्षकी आयुके समय सूर्यकी महादशा प्रारंभ होती है, तब उस व्यक्तिके पचीससे इकत्तीस वर्ष तकके आयु समयमें उसका जीवन सूर्यसे और उससे संबंधित ग्रहों द्वारा प्राप्त शुभाशुभ फलसे प्रभावित होता रहता है।

सूक्ष्मसे सूक्ष्म, निश्चित फलादेश-कथन इन दशाओंके अवान्तर भेद-महादशा, अन्तर्दशा, प्रत्यन्तर्दशा, प्राणदशा, सूक्ष्मदशादिके गाणितिक एवं तार्किक परिणामों पर आधारित होता है।

गोचर :- विभिन्न राशियोंमेंसे भिन्न भिन्न ग्रहोंके दैनिक भ्रमणकों 'गोचर' नामसे पहचाना जाता है, जिससे वर्तमानकी शुभाशुभ घटनाओंका कथन किया जाता है।

अब ज्योतिष शास्त्रके मुख्य सहयोगी 'पंचाग' का परिचय दिया जाता है।

पंचाग :- पंचांग अर्थात् पाँच अंगोका समूह-यथा-*तिथि, वार (दिन) नक्षत्र, योग, करण।* इन पाँचों अंगोका आधार सूर्य और चंद्रकी गति और स्थिति पर होता है।

तिथि - सूर्य और चंद्रके मध्य अंतर दर्शित करानेवाली संज्ञा। सूर्य-चंद्रके गति भेदके कारण प्रत्येक तिथिको पूर्ण होनेमें कमसे कम बीस और ज्यादा से ज्यादा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्ताईस घंटेका समय लगता है। तिथि-एकमादि से अमावास्या तक तीस होती है।

वार (दिन)- एक सुबहके सूर्योदयसे दूसरे दिनके सूर्योदय तकके समयको 'वार' (दिन) कहते हैं। उसका समय चौबीस घंटे प्रायः होता है। हिन्दु एक सूर्योदयसे दूसरे सूर्योदयको, ईसाई मध्यरात्रिसे और मुस्लिम सूर्यास्तसे वारका प्रारम्भ मानते हैं। वार सात होते हैं। रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि।

नक्षत्र - क्रांतिवृत्तके आरंभ स्थानसे प्रत्येक १३ अंश, २० कला विभागको नक्षत्र कहा जाता है। क्रांतिवृत्तके ऐसे २७ विभाग होते हैं, तदनुसार नक्षत्र सत्ताईस होते हैं। एक नक्षत्रको पूर्ण करनेमें चंद्रको कमसे कम २१ घंटे और अधिकतम २७ घंटे और २७ नक्षत्रको पूर्ण करने के लिए २७ दिन-७ घंटेसे कुछ अधिक समय लगता है, और ऐसे बारह चक्र जब वह पूर्ण करता है तब एक चांद्र नक्षत्रवर्ष होता है जिसका कालमान ३२७ दिन, २० घंटे, ३८ मिनट, १८.१२४८ सैंकंड होता है।

योग :- सूर्य-चंद्रके राशि, अंश, कला, विकलाको जोडने से जो राश्यादि आये उनका प्रत्येक १३ अंश, २० कलाके विभागको योग कहा जाता है। वे भी सत्ताईस है। उनका समय जधन्यसे बीस से उत्कृ. पचीस घंटेका होता है।

करण - करण अर्धतिथि है, क्योंकि एक दिनमें दो आते हैं। वे ग्यारह होते है। जिसमेंसे पाँच अशुभ और छ शुभ है । ये संक्रान्तिके शुभाशुभ फल कथनमें उपयोगी हैं।[१४]

साधारण भावविचार अर्थात् फलादेशके मूल्यवान सिद्धान्त :-[१५]

१. जिस भावमें बुध-गुरु-शुक्र विराजमान हों अथवा जो भाव बुधादि ग्रहसे दृष्ट हों और उस भाव (स्थान) में अन्य किसी पापग्रहका रहना या दृष्टि न हों तब उस भावसे संबंधित सभी फल अच्छे प्राप्त होते हैं। (जिस भावमें अपना स्वामी- अर्थात् भावस्थित राशिका-स्वामी-बिराजित हों, या उनकी दष्टि हों तब उस भावका शुभ फल प्रदान करता है ।)

२. जिस भावमें शुभ ग्रहकी राशि हों और उस स्थानमें ही उसका स्वामी बिराजित हों वा उसकी दष्टि हों तब उस भावमें दृष्टव्य प्रत्येक बाबतोंका अच्छा सुख देता है। यदि पापग्रहका बिराजना या दष्टि हों तब उस भावका अच्छा फल नहीं मिलता है।

३. जिस भावमें नीच ग्रह वा शत्रुकी राशिका ग्रह बिराजित हों उस भावका सुख नहीं मिलता है। जबकि जिस भावमें मूलत्रिकोण, उच्च एवं मित्रके गृहमें शुभ या अशुभ (पाप) कोई भी ग्रह हों तब वह उस भावका अच्छा ही फल-सुख-प्रदान करता है।

४. जिस भावका स्वामी ६-८-१२ वें स्थान पर हों तब उस भावका, और जिस भावमें ६-८-१२ वें स्थानका स्वामी बिराजित हों उस भावका अच्छा फल नहीं होता है; लेकिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस भाव पर शुभ ग्रहकी दृष्टि हों तब उसका अच्छा फल (सुख) मिलता हैं। (जिस भावका स्वामी अपने स्थानसें ६-८-१२ वें स्थान पर यदि पापग्रह होकर रहा है तव उस स्थानका अशुभ फल देता है, और, यदि शुभ ग्रह हों तब अच्छा या बुरा-कोई भी फल नहीं मिलता है।)

५. जिस भावका स्वामी लग्नसे केन्द्र त्रिकोण (९/५) में हों और वह शुभ ग्रहसे दृष्ट हों, उस स्थानका अथवा जिस भावका स्वामी उच्चका, मुल त्रिकोणका, स्वगृही या मित्रके गृहका, बलवान हों तब उस स्थानका अच्छा-शुभ फल प्रदान करता है।

६. जिस भावका स्वामी अपने स्थानसे ९-५-४-७-१० वें स्थानमें हों, उस भावका स्वामी, शुभ ग्रहोंके साथमें-पाप ग्रह एवं पापग्रहकी दृष्टिरहित बिराजमान हों उस स्थानका अच्छा फल मिलता है (ऐसे न होने पर उस भावका अच्छा फल देनेमें वह असमर्थ हैं) अथवा वह ग्रह, शुभ ग्रह और पापग्रह-दोनोंके साथ बिराजित हों अथवा शुभ या पापग्रहसे दृष्ट हों, तब उसका अच्छा फल कम हो जाता है।

७. जिस भावका स्वामी आठवें या अस्तका, नीचका या शत्रुकी राशिका हों और वह शुभ ग्रहसे दृष्ट न हों वा साथमें न हों तब उस भावका सुख नष्ट हो जाता है। (इसी तरह जिस भावमें ग्रह होता है उससे लग्नादि प्रत्येकका फल मिलता है।)

८. जिस भावका स्वामी ६-८-१२ वें स्थानमें हों या शत्रुकी राशिका, अस्तका, या निर्बल हों, तब उस स्थानका अच्छा फल नहीं मिलता है।

९. जो ग्रह ६-८-१२ वें स्थानमें हों या नवमांशमें नीच, शत्रु या पापग्रहकी राशिका हों, लेकिन वह नवमाशमें उच्चका मित्रके गृहका या शुभ ग्रहसे दृष्ट हों तब वह शुभ फल प्रदाता बनता है।

१०. जिस भावका स्वामी जिस राशिमें हों, उस राशिका स्वामी ६-८-१२ वें स्थानमें हों, तब उस भावका अशुभ फल प्राप्त होता है, लेकिन उस राशिका स्वामी उच्चका, मित्र या स्वगृही हों तब उस भावका शुभ फल प्राप्त होता है।

११. जिस भावमें २-३-११ वे भावके स्वामीकी राशि हों, उस भावका अच्छा फल प्राप्त होता है। जिस भावका स्वामी मित्रकी वा उच्च राशिमें बिराजमान हों और उस राशिका स्वामी अस्तका, शत्रु वा नीच राशिका न हों तब उस स्थानका अच्छा फल प्राप्त होता है। (भाव संबंधी <u>शुभ फल</u> अर्थात् उस स्थानसे प्राप्त अशुभ फलका नाश और शुभ फल-वृद्धि; <u>अशुभ फल</u> अर्थात् उस स्थानसे प्राप्त अशुभ फलकी वृद्धि और शुभ फलकी हानि वा नाश। उदा-षष्ठम भावका शुभ फल अर्थात् रोग, शत्रु आदिका नाश; श्वसुर एवं मातुल पक्षसे लाभ और षष्ठम भावका अशुभफल अर्थात् शत्रु-रोगादिमें वृद्धि; श्वसुर पक्षसे दुःख, मातुलादिसे हानि)

श्रीमद् आत्मानंदजी महाराजजीकी जन्म कुंडली और जीवन घटनाओंका मूल्यांकन

श्री आत्मानंदजी महाराजजीका जन्म चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत १८९४-तदनुसार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ई.स. १८३६ में हुआ था। आपका जन्म समय निश्चित रूपसे ज्ञात न होनेके कारण, प्राप्त जन्मकुंडली पर आधारित अंदाजित समय प्रायः प्रातःकाल ४ से ६ बजे तकका मान सकते हैं । *'श्री आत्मानंदजी जन्म शताब्दि स्मारक ग्रंथ' श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म. सा. द्वारा लिखित लेखाधारित-प्राप्त जन्म कुंडली*[१६]

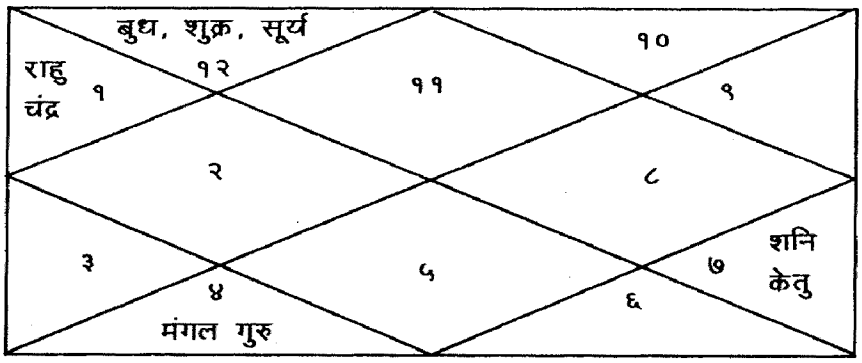

आपकी जन्मकुंडलीका विहंगावलोकन :-

आपकी जन्मकुंडलीका निरीक्षण करते हुए ज्योतिषशास्त्रके सिद्धान्तानुसार विश्लेषण करनेसे आपका बाह्याभ्यन्तर व्यक्तित्व, जीवन प्रसंग, गुण-दोषादिका विशिष्ट मूल्यांकन करके आपके प्रकटाप्रकट गुणावगुणका निरावरण किया जाता है।

आपकी जन्म कुंडलीके स्थान-राशि-ग्रहादि की परिस्थिति विशेष पर प्रथम दृष्टिपात करनेसे निम्नांकित चित्र दृष्टिपथ पर उभर आता है।

इस जन्मकुंडलीमें *कुंभलग्न* है। चारों-केन्द्र स्थानमें कोई भी ग्रह बिराजमान नहीं है। नवम स्थानको छोड़कर त्रिकोणके स्थान भी बिना ग्रहोंका-रिक्त है। अतएव प्रथम नजरमें निर्बल दिखाई देनेवाली यह कुंडली अत्यन्त बलवत्तर है; क्योंकि- प्रथम स्थानका अधिपति-लग्नेश (शनि) उच्चका (तुलाका) बनकर भाग्य स्थानमें रहा है।

द्वितीय स्थानमें जल तत्त्ववाली मीन राशिमें सूर्य, प्रबल योगकारक उच्चका शुक्र और नीच भंग बुध-युति सम्बन्धसे स्थित हैं एवं उच्चके स्वगृह दृष्टा गुरुकी नवम-पूर्ण दृष्टिसे दृष्ट है। तीनोंके युति सम्बन्धसे संन्यास योग बनता है।

तृतीय स्थानमें मेष राशिमें बलवान राहु और चंद्र यति संबंधसे बिराजित हैं। तृतीयेश-कर्कका मंगल नीचका होने पर भी उपचय स्थानमें उच्चके गुरुके साथ युति संबंधसे 'नीचभंग' राजयोग प्राप्त करता है। तृतीयेश मंगल और षष्ठेश चंद्रका परिवर्तन योग होता है। तृतीय स्थान स्थित चंद्र और बलवान राहु उच्चके शनिके साथ प्रतियुति दृष्टि संबंध रखते हैं।

चतुर्थ (केन्द्र) स्थानमें एक भी ग्रह नहीं है। शुभ एवं स्थिर राशि वृषभ, जिसका स्वामी, स्वगृह दृष्टा गुरुसे दृष्ट प्रबल योगकारक उच्चका शुक्र है।

पंचम (त्रिकोण) स्थानमें भी एक भी ग्रह नहीं है। मिथुन राशि है जिसका स्वामी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नीच भंग' प्राप्त-बलवान सूर्यसे युति संबंधसे युक्त-उच्चके गुरुसे दृष्ट और गुरु से नव-पंचम योग करनेवाला बुध है।

<u>षष्ठम स्थानमें</u> कर्क राशिमें गुरु उच्चका और मंगल नीचका स्थित है। लेकिन उच्चके गुरुसे युति संबंधके कारण नीचभंग-राजयोग होता है। नीचभंग मंगल पर पूर्ण बलवान लग्नेश (शनि) की भाग्य स्थानसे दसम-पूर्ण-दृष्टि, चंद्र-मंगलका परिवर्तन योग बलवान उपचय योग होता है।

<u>सप्तम (केंद्र) स्थानमें</u> कोई भी ग्रह नहीं है। सिंह राशि स्थित है। सप्तमेश सूर्य, शुक्र-बुधसे युति संबंधसे और उच्चके गुरुसे दृष्ट है।

<u>अष्टम स्थानमें</u> कन्या राशि स्थित है। अष्टमेश बुधकी उपरोक्त परिस्थितिके अतिरिक्त स्वगृह दृष्टा है। सूर्य-शुक्रकी भी सातवीं पूर्ण दृष्टि है। इस स्थानमें ग्रह एक भी नही है।

<u>नवम-भाग्य (त्रिकोण) स्थानमें</u> बिराजित केतु लग्नाधिप शनिसे युति संबंध से युक्त है। शनि-चंद्रकी प्रतियुति है। शनि तृतीय पूर्ण दृष्टिसे लाभ स्थानको देखता है।

<u>दसम-कर्म (केंद्र) स्थानमें</u> ग्रह नहीं है। नीचभंग प्राप्त कर्मेश त्रिकोण स्थानके शनि और केतुको चतुर्थ-पूर्णदृष्टिसे देखता है।

<u>एकादश (लाभ) स्थानमें</u> कोई ग्रह नहीं है। धनराशि स्थित है, जिसका स्वामी गुरु है। उच्चका शनि तृतीय पूर्ण दृष्टिसे लाभ स्थानको देखता है।

<u>द्वादश स्थानमें</u> कोई ग्रह नहीं है। मकर राशि स्थित है जिसका स्वामी-शनि-लाभ स्थानको देखता है, तो मंगल और गुरुकी भी पूर्ण दृष्टि है।

प्रथम भावसे प्राप्त फलस्वरूप बाह्याभ्यंतर व्यक्तित्व-चारित्र-आरोग्य-स्वभावादिका विश्लेषणः-

A. कुंभलग्न-होनेसे-लग्नेश (शनि) और स्थिर एवं वायु तत्त्वकी राशिका लग्न होनेसे-पूज्य गुरुदेव श्री आत्मानंदजी महाराज अत्यन्त विचारशील फिरभी दृढ मनोबली थे। जैसे - 'स्थानकवासी पंथ सत्यसे दूर है'- इसका एहसास होने पर भी उस पर पाँच-सात वर्ष तक बार-बार चिंतन-मनन-अध्ययनादि करते रहें; अंतमें श्री रत्नचंद्रजी महाराजजीसे भी अच्छी तरह परामर्श कर लेनेके पश्चात् इस निर्णयको स्वीकार किया। इतना ही नहीं जीवनकी अंतिम सांस तक, अनेकविध कष्ट-कठिनाइयोंके आंधी-तूफानके बीचभी, अंगीकृत निर्णयको यथाशक्ति परिपालित किया-प्रचारित किया -प्रसारित किया। सर्वस्व समर्पित कर दिया था।[17]

B. लग्नेश (शनि), उच्चका (तुला राशिका), बलवान बनकर, धर्मभुवन (भाग्यस्थान) में बिराजित होनेसे पूज्य गुरुदेवको सुवर्णकी भाँति अग्नि परिक्षामें कसकर आत्मिक-शुद्धि प्रदान करता है-सुगंधित सुवर्णका स्थान प्रदान करता है। फल स्वरूप पूज्य गुरुदेव चमत्कारिक, एवं चूंबकीय अध्यात्म शक्तिके सम्राट, अभूतपूर्व आत्म विश्वासी, उत्कृष्ट चारित्रवान, प्रखर वैराग्यवान, धर्मके अत्यधिक अनुरागी, सत्त्वगुणी, कुशाग्र बुद्धि, तत्त्ववेत्ता,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णन्यायी, सत्यान्वेषक, सत्य प्ररूपक, सत्य स्वीकार कर तदनुसार आचरण करनेवाले, सहनशील, उदारदिल, परोपकारी, शान्त प्रकृति, कुनेहबाज, चतुर, साधन-संपत्तिका उत्तमोत्तम उपयोगकारी, कार्यदक्ष, शीघ्रनिर्णायक तार्किक शिरोमणि, दीर्घदृष्टा, आकर्षक-सौजन्यशाली-कुशाग्र व्यक्तित्ववाले, अनुशासन प्रिय आदि अनेकानेक गुण के मूर्तिमंत-जीवंत स्वरूप प्राप्त कर सके जैसे-

बचपन से ही उदारता गुण प्रबल होनेसे खुदके खेलनेके लिए बनाये-हस्त चित्रित-ताशके पत्तोंको क्षण का भी विलंब किए बिना अंग्रेज अफसरकी मांग पर दे दिया। बचपन से ही परोपकारादि गुण भी दृष्टि गोचर होते हैं-नदीके उल्टे प्रवाहमें तैरकरके, जानकी बाज़ी लगाकर भी डूबती स्त्रीको उसके बच्चे के साथ बचा लिया था। जीवनमें कदम-कदम पर वैसे ही परोपकारके अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। सत्यके कारण उपाधियोंकी आँधी आने पर भी-मरणांत कष्ट सहन करते हुए संघर्षमय जीवन व्यतीत किया। दीर्घदृष्टा बनकर भावी पिढ़ीके सुधारके लिए, कुरूढ़ियोंके विरुद्ध जेहाद जगाकर सबको जागृत किया। संघको शिक्षा और धार्मिक मोड़ देनेके लिए आजीवन-अथक प्रयत्न करते रहें। इत्यादि अनेक गुण उनके जीवनमें शृंगार बनकर शोभायमान हुए हैं।[१८]

C. लग्नस्थान पर,-- जिसका 'नीचभंग' हुआ है और जो 'उपचय' स्थानमें उच्चके गुरुके साथ युति संबंधसे बिराजित है ऐसे,--मंगलकी आठवीं-पूर्णदृष्टि होनेसे और वही मंगल ग्रहकी चौथी दृष्टि लग्नेश पर होनेसे पूज्य गुरुदेव अत्यंत साहसिक, नीड़र, बलवान, प्रामाणिक, सत्यके आग्रही, स्पष्ट वक्ता, कर्मठ, उद्यमी, हृष्ट-पुष्ट-सौष्ठवयुक्त-दमामदार व्यक्तित्व के स्वामी, रक्तवर्ण शरीर सम्पन्न थे। जैसे-साहसिक ऐसे कि पाँच सात वर्षकी आयुमें पिताके अनुकरण रूप, आधीरातमें अकेला छोटा दित्ता डाकुओंसे गृहकी रक्षाके लिए नंगी तलबार लेकर द्वार पर खड़ा हो गया था। ऐसे ही साहस और पराक्रम आपके जीवनके हर मोड़ पर-पगपग पर प्राप्त होते हैं। बलवान ऐसे, कि, भावनगरमें गधेको बचानेके लिए, जो लकड़ीका बड़ा भारी लठ्ठा दो-चार मुनिराजोंके संयुक्त प्रयत्नसे हील भी न सका था, उसे अकेलेने एक झटके के साथ दूर हटा दिया। उद्यमशीलताके कारण ही तो अल्प समयमें ही बहुमुखी प्रतिभाको कार्यान्वित करके अध्ययन और अध्यापन, प्रवचन व लेखन, प्रतिष्ठायें-अंजनशलाकायें, समाजोत्थानमें मार्गदर्शन और स्व-परके निरतिचार चारित्रपालन आदिको एक साथ न्याय देनेमें सफल रहें ।[१९]

D. इसके अतिरिक्त प्रथम स्थान फल स्वरूप बाह्य व्यक्तित्व, आरोग्य, स्वभावादि पर असरकर्ता गुरु ग्रहकी नवम दृष्टि, सूर्य-बुध-शुक्र पर होनेसे उससे प्रभावित क्या फल प्राप्ति होती है यह दृष्टव्य है-शनि और बुध-दोनोंके प्रभावसे लम्बी, एवं मंगलकी दृष्टिसे हृष्ट-पुष्ट कायावान; सूर्यके कारण अत्यंत तेजस्वी, प्रतिभा संपन्न, आकर्षक मुखकमलवाले, स्वमानी, विरोध-आक्रोशपूर्ण लेकिन, तर्कबद्ध एवं दृढ़तासे करनेके स्वभाववाले, रोग प्रतिकारक शक्तिके कारण संपूर्ण स्वस्थ एवं नीरोगी काया फिरभी कभी कफ और पित्त प्रकृतिके प्रकोपसे पीड़ित; उच्च योगकारक शुक्रके कारण, सुंदर, प्रभावशाली नेत्र-धारी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीरमें नाडियाँ अधिक और अनवरत रक्ताभिसरण होनेसे अत्यन्त शक्तिशाली, वीर्यवान, शौर्यवान थे-तो कला रसिकता अर्थात् नैसर्गिक रूपसे ही चित्र-संगीतादि कलाओमें अभिरुचि युक्त प्राविण्यके मालिक थे; 'नीचभंग' योग प्राप्त बुधके कारण वाक्पटुता, बुद्धिचातुर्य, कार्यदक्षता भी आपको प्राप्त थी। जैसे- खेलनेके लिए ताशके पत्ते एक बार देख लेने पर हूबहू स्व-हस्त चित्रित बना लिए, तो खेल खेलमें जोधाशाहजीके मकानको चित्रित कर उसमें जोधाशाहजीकी तसवीरको उभारने वाले देवीदासने चित्रकारिता किसीसे सिखी नहीं थी। बिना अभ्यासके ही उनके स्वर-लय-ध्वन्यादि परका आधिपत्य बडे बडे उस्ताद-संगीतज्ञोंने भी महती प्रसंशा के साथ स्वीकार किया था। उनके प्रवचन भी मेघ-ध्वनिसे गंभीर-एक सूर-लय प्रवाहमें बहते थे।

पूज्य अमरसिंहजीके मेजरनामा पर हस्ताक्षर करानेके लिए आये हुए पन्नालालादिको ठंडे आक्रोशपूर्ण एक ही वाक्यसे शांत कर दिया। वाक्पटुताके कारण ही उनके साथ जो वाद या विवादके लिए उपस्थित होते थे, जो जीतनेके लिए आते थे वे हारकर जाते थे।[२०]

द्वितीय स्थानसे किया जानेवाला वाणी-धन-परिवारादि संबंधित फलादेश :-

धन भावमें सूर्य, नीचभंग प्राप्त बुध और प्रबल योगकारक उच्चका शुक्र बिराजमान हैं। ये तीनों ग्रह एवं द्वितीय स्थानमें स्वगृह अर्थात् मीनराशि, उच्चके गुरुकी (नवम)-पूर्ण दृष्टिसे दृष्ट हैं। अतएव जातकको कलाप्रिय एवं कलाभिज्ञ बनाती हैं। साथमें धन-वाणी-परिवारका पारावार सुख मिलता है। वाणीमें मानो साक्षात् सरस्वतीका वास भासन होता है। मीन राशि, जल तत्त्वकी होनेके कारण अंतःकरणको धक्का लगानेवाली पारिवारिक जनोंकी समस्याओंके कारण उनसे मनःदुःख होता हैं, लेकिन स्वगृह दृष्टा गुरु आत्मविश्वाससे झंकृत, गंभीर-मधुर वाणीसे समाधान देकर परिस्थितिका सुधार कर लेता है। बुध पर गुरुकी दृष्टि एवं नव-पंचम योग, जातकको व्यावहारिक, तुलनात्मक, निर्णय शक्ति और न्याय-प्रियता, प्रभाविकता, दृढ़ता, ओजस्विता, गहनता, धैर्य, ज्ञानयुक्त-गरिमामयी साहित्यिकता और कवित्व शक्ति बक्षती है; तो बुधकी प्रबल योगकारक उच्चके शुक्रसे युतिके कारण वाणीमें रसिकता, और शत्रुको वश करनेवाली चूंबकीय-मोहक प्रभावकता आती है। अतएव उनको जीतनेके लिए आनेवाला स्वयंजीता जाता है। प्रबल योगकारक उच्चका शुक्रा धन भावमें शुभफल प्रदाता होनेसे धार्मिक, सामाजिक या साधर्मिकादि के कार्य हेतु अथवा अन्य आवश्यकता हेतु धनप्राप्ति अत्यन्त सरलतासे हो जाती है-जैसे-

(१) संवत १९४० में गणिवर्य श्री मूलचंदजी महाराज (आपके बड़े गुरु भाई) के साथ (आपके शिष्य) मुनिश्री हंसविजयजीकी छेदोपस्थापनीय-बड़ी दीक्षाके कारण थोडा-सा मन मुटाव हुआथा, लेकिन संवत १९४१ में आपने अहमदाबादमें गणीवर्यश्री को आमंत्रित करके अनन्य स्वागत एवं क्षमा प्रार्थनाके साथ अन्य शिष्योंके योगोद्वहनकी किया और बड़ी दीक्षादि उनसे ही करवाकर परिस्थितिको सुधार लिया।[२१]

(२) आपकी ज्ञान-गरिमा युक्त गंभीर-ओजस्वी-चूंबकीय चमत्कारके प्रभावसे प्रभुत्व-प्राप्त वाणी भावनगरके राजा, लिम्बड़ी नरेश, बिकानेर नरेश, जोधपुरके नवाब और उनके भाई आदि अनेक राजा-महाराजा;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामदित्तामलजी आदि क्षत्रिय, कृष्णचंद्रादि ब्राहमण, लाला गोंदामलजी, पंड़ित श्रद्धारामजी, पंडित लेखारामजी, आर्यसमाजी लाला मुन्शीरामजी, लाला देवराजजी आदि, मुन्शी अब्दुल रहमानादि मुस्लिम-आदि अनेक जैन-जैनेतरोंको आकर्षित कर गई थीं और आपके पक्के भक्त के रूपमें आजीवन आपकी सेवा-आज्ञा शिरोधार्य करते रहे थे । अनेक स्थानवासी साधु-श्रावकादि आपको जीतनेके लिए आये लेकिन आपसे जीते गए और आपके विचारोंसे सहमत हुए। [२२]

(३) आपकी शुभ प्रेरणा से ही गुजरातसे अनेक जिनबिम्ब एवं श्री मंदिरादिके निर्माण हेतु धन प्राप्ति पंजाब के लिए -बिनबादल बरसात की भाँति-हुई थी ।

(४) प्रबल योगकारक उच्चके शुक्र पर गुरुकी शुभ दृष्टिके कारण- 'विश्व धर्म परिषद'-चिकागो-की ओरसे आमंत्रित होने पर भी मुनि जीवनकी मर्यादाके कारण वहाँ जानेमें असमर्थ लेकिन श्री वीरचंदजी गांधी द्वारा अक्षर देह से (चिकागो प्रश्नोत्तर-ग्रंथ द्वारा) वहाँ पहुँच कर विश्व विख्यात हुए। [२३]

तृतीय स्थानसे भ्रातृ सुख-पराक्रम-साहस-प्रवासादिका निर्देशन दृष्टव्य है-

तृतीय स्थानमें मेष राशिमें राहु और चंद्र युति संबंधसे बिराजित है। तृतीयेश-मंगल, षष्ठम्-उपचय स्थानमें उच्चके गुरुके साथ युति संबंधसे, नीचका होने पर भी, 'नीचभंग' योग प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त तृतीयेश मंगल और षष्ठेश-चंद्रका परिवर्तन-योग भी शुभ फलदाता है। नवम स्थानमें शनिसे प्रतियुति संबंध भी महत्त्वपूर्ण फल प्रदान करता है। तृतीय उपचय स्थान स्थित बलवान राहुके कारण पुज्य गुरुदेव साहसिकता, अनुपमेय पराक्रम, शेर जैसी शूरवीरता, निर्भीकता, सतत प्रवृत्तिशीलता, ओजस्वीता, अन्यको वश करनेवाली प्रभावकता, त्वरित निर्णयशक्ति, गूढ़विद्या प्रति प्रेम, स्वतंत्र-मौलिक विचार और चिन्तन शक्ति प्राप्त करते हैं। राहु और चंद्रकी युतिके कारण अद्भूत कल्पना-शक्ति और एवोर्ड प्राप्त विजयशीलता के स्वामी बनते हैं।[२४]

मेष राशिमें राहु स्थित होनेसे वक्तृत्व कलाकी अनोखी अदा प्राप्त होती है और आप शत्रुजयी बनते हैं। धार्मिक क्षेत्रमें ईच्छित कार्य संपन्नतामें सहधर्मी-उत्तम साधुओंका सहयोग प्राप्त होता है। नवम स्थानमें शनिसे प्रतियुतिके कारण आध्यात्मिक उन्नति के शिखर पर बिराजमान होते हैं। अपरिमित आत्मिक-आनंददायी आराधना कर सकते हैं।

अशुभ स्थानका स्वामी षष्ठेश-चंद्र तृतीय स्थानमें बिराजमान होनेके कारण तृतीय स्थानका सुख नष्ट करें लेकिन बलवान राहु केवल भ्रातृसुखके अतिरिक्त सर्व सुखोंकी रक्षा करता है-नष्ट नहीं होने देता। इसलिए उपरोक्त सर्वगुण हमें श्री विजयानंदजी म. सा. के जीवनोद्यानमें सुवासित पुष्पकी भाँति आकर्षक लगते हैं।

शनि और राहु की प्रतियुति संघर्षमय जीवनमें भी एक अनूठा कीर्तिमान स्थापित करनेके लिए सौभाग्यशाली बनाती है। राजस्थान के रेगिस्तान और मालवाके विहार समय- आदिवासी भील से भेंट होने पर, परेशान करनेवाले उस भीलकी तलवार उठायी हुई कलाई पकड़कर,उसी स्थितिमें गांवमें ले जाकर साहसिकता, शूरवीरता और पराक्रमका परिचय दिया, तो उसे बिना किसी प्रकारकी शिक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किये छोड़ देनेमें हमें उनकी उदारता आश्चर्यचकित करती है। आपकी ओजस्विता, प्रभावकता, अद्‌भूत कल्पना शक्ति आदि का परिचय विविध व्यक्ति और सभाओमें हुए वाद या व्याख्यानादि में दृष्टि गोचर होते हैं। स्थानकवासी सम्प्रदायमें से संवेगी मार्ग प्रति प्रस्थानके लिए सहयोगी-साथियोंकी प्राप्ति मेषराशिके राहुको ही आभारी है। जीवन पर्यत आध्यात्मिक आराधनाकी मस्ती-निजानंदका स्वानुभव नवम स्थानमें शनिसे प्रतियुतिका प्रभाव है।

चतुर्थ (सुख) स्थानसे व्यक्तिके सर्वांगीण सुख और विशेष रूपसे मकान-माता-मित्रादि का सुख, उच्चपद प्राप्ति आदिके बलाबलका विचार किया जाता है।

शुभ और स्थिर-वृषभ राशियुक्त चतुर्थ स्थानमें कोईभी अशुभ ग्रह या अशुभ ग्रहकी पूर्ण दृष्टि नहीं है। इसके अतिरिक्त चतुर्थ स्थानका स्वामी, स्वगृह दृष्टा, उच्चके गुरु-ग्रहसे दृष्ट, उच्चका प्रबल योगकारक शुक्र है अतएव इस स्थानका उत्तमोत्तम-संपूर्ण शुभफल प्रदान करता है। यही कारण है कि आपके सभी साथी आपके प्रत्येक-कार्य,प्रत्येक आदेशपालनके लिए सदैव तत्पर रहते थे। आपकी माताका आपके प्रति अप्रतीम वात्सल्य था, तो माता समान सभी गुरुदेवोंके (स्थानकवासी एवं संवेगी साधु जीवनके) दिलमें आपके प्रति अत्यंत स्नेह सभर कृपा दृष्टि थी।

(२) तपागच्छगगनांचलमें प्रायः दो सदियोंसे शून्य सूरिपदारूढ़ उदीयमान तेजस्वी नक्षत्र रूप चमकनेका सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ, जो जीवनकी सर्वोत्कृष्ट सिद्धि (सर्वोच्च पद प्राप्ति) का सुचक है। [२५]

पंचम स्थानसे बुद्धि, विद्याभ्यास, मंत्र-विद्या संतान सुख, लागणीशीलतादिका निर्देश होता है। (विद्या स्थान या तनय स्थान)-इस स्थानमें कोई भी ग्रह बिराजमान नहीं है। और न किसी ग्रहकी पूर्ण दृष्टि है। पंचमेश बुध मीन राशिमें होनेसे नीचका बनता है, लेकिन बुध ग्रह तटस्थ (मिश्र) ग्रह होनेसे निम्नांकित तीन कारणोंसे शुभ बनकर शुभफल प्रदान करता है।

(१) प्रबल योगकारक उच्चके शुक्रसे युति संबंधके कारण 'नीचभंग' योग होता है।
(२) मित्र ग्रह गुरुके गृहमें स्थित-बलवान सूर्यके साथ युति संबंध रखता है। और
(३) उच्चके गुरुसे दृष्ट एवं नव-पंचम योग करता है जिससे शुभ बना बुध तीव्र-सूक्ष्म बुद्धि चातुर्यको प्रदान करता है। पंचम स्थानसे विद्याभ्यासका निर्देशन मिलता है। विद्याभ्यासके फलकथनके लिए बुध और गुरुका समन्वय आवश्यक बन जाता है।

उपरोक्त तीन कारणोंसे आप अनेक विद्याओंके स्वामी थे-पारंगत थे। षटदर्शन, न्याय ज्योतिष, आगम, इतिहास, साहित्य, काव्य, मंत्र-विद्यादि विभिन्न विषयक विद्याके गहन-गंभीर अध्ययन सम्राट थे। तर्कबद्ध वाद शक्तिसे प्रतिवादीको जकड़कर, उसे उलझित करके, हराकर चूप कर देते थे। गुरुसे नव-पंचम योगके कारण शांतिप्रिय, विनयवान, देव-गुरु भक्तिकारक और अत्यंत आस्थावान भी थे। हूबहू वर्णन शक्तिसे पत्र व्यवहारमें भी अद्वितीय थे डॉ. होर्नले जैसे विदेशी विद्वानको अपने ज्ञान प्रकाशसे-पत्रों द्वारा ही प्रभावित किया था।[२६] मीन राशि स्थित अष्टमेश-बुध, स्वगृहको प्रतियुति दृष्टिसे देखता है, परिणमतः जातक गूढ़ विद्याका ज्ञाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। पूज्य गुरुदेवको भी मेड़ताके एक वयोवृद्ध यतिजीने योग्य एवं समर्थ जानकर कुछ सिद्ध-मंत्र विद्यायें प्रदान की थी, जिसका आपने अपने जीवनमें शासन प्रभावना और समाज एवं संघ की हितरक्षा-उन्नति आदिके लिए उपयोग किया था। [२७]

षष्ठम स्थानसे रोग-बिमारी-शत्रु-साथी-मददनीशोंका सुख अंदाजित-निर्धार-किया जा सकता है- षष्ठम दुःस्थान स्थित कर्क राशिका मंगल नीचका बनता है, जिससे जातकमें अयोग्य गुरुकी अधीनता और आलस्य दृष्टिगोचर होता है, लेकिन ऐसे मंगल पर पूर्ण बलशाली-उच्चके शनि (लग्नेश) की पूर्णदृष्टि होनेसे; चंद्र-मंगलका (तृतीय-षष्ठम स्थानका) परिवर्तन योग होनेसे और बलवान उपचय योग होनेसे; उच्चके गुरुके साथ युति संबंधसे 'नीचभंग' राजयोग होनेसे दुःस्थान स्थित नीचका मंगल, अशुभ फल-प्रदान दोषसे मुक्ति पाकर यथोचित मार्ग पर आता है। शुभ फलदायी बनता है। "परिणामतः पूज्य गुरुदेव शिस्तबद्ध संयमी, नीड़र, प्रामाणिक, कर्तव्यनिष्ठ विचक्षण बुद्धिवान् सिद्धान्तवादी शास्त्र पारंगत स्वमानी, स्पष्ट वक्ता और कार्यरत बनते हैं। आपको अपने कार्योंमें अचानक सफलता प्राप्त होती है।" [२८] स्थानकवासी गुरु जीवनरामजीकी अधीनतासे मुक्त बनकर संवेगी गुरु श्री बुद्धि विजयजी महाराजजीके पास दीक्षा ग्रहण कर आत्मकल्याणकारी पथ पर अग्रसर होते हैं और निरंतर कार्यदक्षता से कार्यक्षम बनते हैं। अन्य गुणोंकी सुवास भी उनके जीवनोद्यानको कदम कदम पर महका रही है । सत्य सिद्धान्तके पक्षपाती गुरदेवने अपने प्रिय-परोपकारी गुरु जीवनरामजीका साथ भी छोड़ा, साथसाथमें सुख-शांति-आरामको भी त्यागकर उपाधियोंकी झंझावाती आंधीमें जीवनको समर्पित कर दिया।

षष्ठम स्थान स्थित कर्कका-उच्चका-गुरु बहुमुखी प्रतिभा प्रदान करता है। शत्रुओंको नष्ट करता है, मानसिक झुकाव धर्म और ज्ञानकी ओर होता हैं। शरीर रोग रहित बनाता हैं। यही कारण है कि प्रायः आपका स्वास्थ्य एकाध प्रसंगको छोड़कर जीवन पर्यंत ठीक ही रहा। आपके जीवन-दर्शनसे ज्ञात होता है कि अनेक बार जीवनमें कई प्रतिस्पर्धी और प्रतिवादी, वैरी और विरोधी आये लेकिन आप सर्वत्र-सर्वदा शत्रुजयताका सौभाग्य प्राप्त करते रहे। वैरी भी वश हुए, शत्रु भी साथी बने और प्रतिस्पर्धी एवं प्रतिवादी शांत हो गए। इस षष्ठम स्थान स्थित कर्कका-उच्चका-गुरु-उच्चके शनि (लग्नेश)-जो बलवान बना है, उसकी भाग्य स्थानसे दसम-पूर्णदृष्टि-से दृष्ट है जिससे जिद्दी स्वभावकी निर्बलता दूर करके जातकको दढ़ मनोबली और उत्कृष्ट अध्यात्मवादी बनाता है। मानो मानव से देव, नरसे नारायण बनना बायेंहाथका खेल हों। जातकको स्वधर्मका त्याग करवाता है जैसे आप ब्रह्म क्षत्रिय कुलोत्पन्न होने पर भी गुण ग्राहीता एवं सत्य स्वीकार करके गुणावलंबित जैन धर्मी बने और अत्यन्त परिश्रम पूर्वक अन्ततोगत्वा शुद्ध मार्गके पथिक बनकर आत्मोत्थानमें कार्यरत रहें।[२९] अनेक तीर्थ यात्राओंमें विशेष रूपसे सिद्धाचलकी यात्रामें आप परमात्ममय बनकर झुम उठे और फूट पड़े वह कोकिल स्वर "अबतो पार भये हम साधो.....जिससे आपके परमात्मदर्शनके भाव झलकते हैं।

सप्तम स्थानसे जातकके जाहेरजीवन, दाम्पत्यजीवन, साथियोंका सहयोग और आध्यात्मिकताके-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संन्यस्त जीवन प्राप्तिके योगादिका निर्देश मिलता है।

सप्तमेश सूर्य द्वितीय स्थानमें प्रबल योगकारक शुक्रके साथ और त्रिकोणाधिपति पंचमेश-बुधके साथ युति सम्बन्धसे स्थित है। और गुरुकी नवम-पूर्ण -दृष्टि से दृष्ट है, जिससे विश्वविख्यात प्रसिद्धि प्राप्त होती है। जैसे- पू. श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी महाराज 'विश्व धर्म परिषद' में आमंत्रित किये जाते हैं। आपसे शिक्षाप्राप्त श्री वीरचंदजी गांधी चिकागोमें आपके नामको चार चांद लगानेवाली प्रतिभासे विश्वके विद्वान सज्जनोंमें भी आपसे प्राप्त ज्ञान-ज्योतिको प्रकाशित एवं प्रसारित करके आपका सम्माननीय स्थान प्रस्थापित करके प्रसिद्धि दिलाते हैं।

इस स्थानमें एक भी ग्रह बिराजमान नहीं हैं, न तो किसी पापग्रहकी दृष्टि हैं। आध्यात्मिक राहके राहीको दाम्पत्य सुखका प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है। उनके लिए तो संन्यस्तकारी योग-जो साधु जीवनकी स्वीकृति और स्व-पर कल्याणकारी संकेत देता है-महत्त्वपूर्ण है। आपकी कुंडलीमें भी शनि-चंद्रकी प्रतियुति; उच्चके तीन ग्रह, सूर्य-गुरुके-दृष्टि संबंध, भाग्येश (प्रबल योगकारक शुक्र) से शनिका मित्रसंबंध, भाग्य भुवनमें शनि केतुकी युति, उच्चका लग्नेश नवम (त्रिकोण) स्थानमें, 'अनफा'योग, बारहवें स्थान पर गुरुकी दृष्टि आदि ऐसे ही संन्यस्तकारी योग प्राप्त होते हैं (साथियोंके सहयोगका विवरण चतुर्थस्थानान्तर्गत विश्लेषणानुसार ज्ञातव्य)

अष्टम स्थान आयुष्य, गूढ़ विद्या प्राप्ति, लम्बी बिमारी आदिकी ओर संकेत करता है।

अष्टमेश बुध 'नीचभंग' योगसे और उच्चके प्रबल योगकारक शुक्रके साथ एवं सूर्यके साथ युति संबंधसे युक्त धर्मस्थानमें स्थित है, जिस पर उच्चके गुरुकी नवम-पूर्ण-दृष्टि है। इसके अतिरिक्त अष्टम स्थान पर सूर्य-बुध शुक्रकी पूर्ण दृष्टि है। स्वगृह दृष्टा बुधकी दृष्टिसे जातक आयुष्यवान और गूढ़ विद्याधारी होता है-जैसे- अंबाला शहरमें श्री सुपार्श्वनाथजी के मंदीरजीकी प्रतिष्ठा प्रसंग पर गूढ़ विद्याशक्ति के ही प्रभावसे घनघोर बादलोंके बिखेर कर महोत्सवकी रौनक एवं श्री संघका उत्साह वर्धन किया। [३०]

नवम-भाग्य-भुवन त्रिकोणमें अत्यधिक महत्त्वपूर्ण-बलवान माना जाता है। यह स्थान धर्म एवं भाग्य संबंधित फल प्रदाता माना गया है।

इस स्थानमें, उत्कृष्टताकी पराकाष्टा पर पहुँचानेवाला केतु, केन्द्राधिपति (लग्नेश)- तुलाके उच्चके शनिके साथ युति संबंध रखता है; फल स्वरूप भाग्य भुवनका उत्तमोत्तम फल प्रदान करता है। "शनि-चंद्रका दृष्टि संबंध जातकको संयमी, ब्रह्मचारी, दूरंदेशी, अनुशासन प्रिय, नीडर लोहपुरुष, कलाकार, बनाता है।[३१] शनि की राहुसे प्रतियुति आध्यात्मिक उन्नतिमें बल देती है। जातकको गूढ़ विद्या एवं साधुताके लिए आकर्षण होता है। प्रायः दो सदियोंसे तपागच्छगगनांगन सर्वोच्च पद-आचार्य पद धारी से विरहित था। भारतवर्षके समस्त श्री संघोंकी, इस पदके लिए आपको ही यथासुयोग्य समझकर, अत्यन्त सम्मान एवं आग्रहपूर्ण विनंति से इस उत्कृष्ट-महत्तम पद पर अलंकृत होनेका सौभाग्य पालीतानामें, सकल संघ समक्ष, प्राप्त हुआ।[३२] इसके अतिरिक्त नवम स्थान स्थित उच्चके शनिके कारण, आप निरभिमानी, मिलनसार, मधुरभाषी, परोपकारी, दीर्घदृष्टा, व्यवहारदक्ष,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहनशील, संयमशील, मेहनती, करकसर स्वभावयुक्त, दृढ़निश्चयी, स्पष्ट, गंभीर, विवेकी, मृदुभाषी निष्पक्षपाती-न्यायी, शास्त्रोंके गूढ़ अभ्यासके कारण उच्च अध्यात्म-ज्ञानी, विद्वानलेखक, प्रकाशक, गूढ़ तत्त्वज्ञान चिंतक-प्रचारक-प्रसारक, अनेक गुणोपेता वाणीके प्रभावसे उच्च स्थान प्राप्यकारी साधु बन सके थे। आपके लिए विदेश यात्राका भी योग था। [३३] साधुजीवनकी मर्यादाओंके कारण आपने उस लोभको त्याग कर श्री वीरचंदजी गांधीको भेजकर और अक्षर देहसे- 'चिकागो प्रश्नोत्तर' -ग्रंथ द्वारा वहाँ पहुँचकर जिनशासनका विजय ध्वज फहराया। इससे आपकी शान-शौकतको चार चाँद लगे।

इसके साथसाथ नवमका शनि धर्म-वृद्धि, लोककल्याणकारी सामाजिक क्रान्तिके लिए प्रयत्नशीलता, विश्व बंधुत्व स्थापित करनेके भाव, स्वार्थ एवं निजी सुख प्राप्तिके लिए बेफिकर, उपभोगमें भी त्यागकी भावना आदि प्राप्त करवाता है।

उपरोक्त सर्वगुणपुष्पोंकी हारमाला श्री आत्मानंदजी महाराजजीकी आत्मशोभामें अभिवृद्धि करती थी। इनके जीवन प्रसंगोंको अवगाहते समय इन सद्‌गुण सुमनोंको हम पग-पग पर सुरभि बिखेरते हुए-जीवनोद्यानको महकाते हुए अनुभूत करते हैं। "नवम स्थानका केतु जातकको इतिहास और पुराण शास्त्रोंका रसिक और प्रखर वक्ता बनाता है। ध्येयलक्षी और विरोधीओंका प्रबलतासे सामना करके सदा विजयी बनता हैं।" [३४]

दसम स्थान-चार केन्द्र स्थानोमें लग्नस्थानके पश्चात् द्वितीय क्रमसे दसम (कर्म) स्थान महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस स्थानसे व्यापारादि एवं राजद्वारी कार्य, राजकीय-सम्मान, पितृसुख, यश-मान-प्रसिद्धि आदि निर्देशित किया जाता है।

इस स्थानमें एक भी ग्रह स्थित नहीं है। वृश्चिक राशि होनेसे कर्मेश मंगल है जो नीचका होने पर भी मित्रग्रह-उच्चके गुरुसे युति संबंधके कारण नीचभंग-राजयोग प्राप्त करता है। उच्चके गुरुकी कर्मस्थानमें पंचम-पूर्णदृष्टि होनेसे यश-मान-प्रतिष्ठा और वाद-विवादमें सदा विजयशीलताकी बक्षिस करता है। जैसे-

रतलाममें सूर्यमलजी कोठारी के साथ ग्यारह या बत्तीस मूलागम ? प्रश्न पर वादमें; अहमदाबादके चातुर्मासमें श्री शान्तिसागरजीसे 'शास्त्रानुसार धर्मपालन करनेवाले साधु या श्रावक के अस्तित्व' विषयक प्रश्न पर शास्त्रीय चर्चामें; भावनगरके चातुर्मासमें वहाँके राजासाहब और उनके वेदान्ती गुरु-स्वामी आत्मानंदजी से "सर्वं खल्विदं ब्रह्म," "अहं ब्रह्मास्मि", एवं "ब्रह्म सत्य-जगन्मिथ्या"- विषयों पर सैद्धान्तिक समन्वयवाले वार्तालापमें; बिकानेरके चातुर्मासमें वहाँके राजा और उनके संन्यासी गुरुके साथ "उत्पाद व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्" को जैन दर्शनके स्याद्वाद सापेक्षवाद, अनेकान्तवादसे-सन्मति तर्क, स्याद्वादमंजरी आदि और जैनेतर-कुमारिल भट्ट, वाचस्पति मिश्र आदिके ग्रंथोंके उद्धरण देकर जैन दर्शनका दार्शनिक समन्वय दर्शाकरके उन्हें संतुष्ट एवं प्रसन्न किया; जोधपूरमें जोधपूर नवाब और उनके भाई की 'अनीश्वरवाद और नास्तिकता' विषयक भ्रमजालका पर्दाफास करके; लिंबड़ी नरेश की 'ईश्वर जगत्कर्तृत्व' विषयक शंकाओंका नीरसन करके; अंबालामें आर्यसमाजी कार्यकर्ता पंडित लेखारामजी से भी 'अनीश्वरवादऔर नास्तिकता' विषयक अनेक जैन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनेतर शास्त्रोंके संदर्भ देकर स्पष्टीकरण किया। "ईश्वर जगत्कर्तृत्व" -विषयमें आर्य समाजी ला. देवराज और मुन्शीरामजी से शास्त्राधारित वार्तालापसे संतुष्टी की।- इस प्रकार अनेक जैन-जैनेतरोंसे सम्मान-प्रतिष्ठादि प्राप्त किया।[३५]

एकादश-लाभ स्थान है। सत्पुरुषोंकी सेवा, स्व पराक्रमसे लाभ, मित्रोंसे लाभ, आराधना-साधनासे लाभका योग इस स्थानके अभ्याससे ज्ञात होता है।

आपकी जन्म कुंडलीमें एकादश स्थानका अधिपति लाभेश-गुरु उच्चका बना हुआ होनेके कारण उपरोक्त सर्वांगीण लाभ आपके जीवन-दर्पणमें स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। कईंबार शिष्यादि प्राप्ति लाभ, कभी धार्मिक स्थानादिके लिए विपुल धनराशि एवं अन्य आवश्यक सामग्रीका आकस्मिक लाभ प्राप्त होता रहता है।

लाभेश-गुरुकी नवम-पूर्ण-दृष्टि धन स्थानमें शुक्र-सूर्यकी युति भी आपके लिए शुभ फलदायी हुई, जिससे कलाप्रियता प्राप्त हुई, और आपका व्यक्तित्व-जीवनपथ-उदारता, सदाचार, दयालुता, पवित्रता, उत्तम निर्णायक शक्ति, अगाध धैर्यादि अनेकानेक गुण कुसुमोंके परिमलसे सुवासित है।

द्वादश स्थान-इसे मोक्ष स्थान अथवा व्यय स्थान कहते हैं। इस स्थानसे रोग-हानि-व्यय-विदेशयात्रा आदिका निर्णय किया जा सकता है।

आपकी जन्मकुंडलीमें इस स्थानमें कोई ग्रह बिराजमान नहीं है। लेकिन मकर राशि है। इसका स्वामी (व्ययेश) शनि है, जो भाग्य स्थानमें उच्चका बनकर बिराजित है। इसके अतिरिक्त व्यय स्थान पर मंगल और गुरुकी प्रतियुति होनेसे अनेक विघ्न-संघर्षादिके बाद भी अंततोगत्वा-चाहे विलंब भी क्यों न हों-विजयशील निश्चित रूप से आप ही बनते रहते थे।

सतत कार्यशीलता-कर्मठता-पुरुषार्थ, कठोर परिश्रम, लगन, भगीरथ प्रयत्न, यम-नियम--संयमसे प्राप्त अतुल आत्मिक एवं बौद्धिक शक्ति, निर्मल भक्ति---इन सर्वका एक नाम अर्थात् शनि-चंद्रकी प्रतियुति। व्ययेश शनिकी भाग्य स्थानसे पराक्रम स्थान स्थित चंद्रके साथ प्रतियुति-आपको, आपके पीछे विश्वको पागल बनानेवाली शक्ति प्रदान करती है। शनिसे प्राप्त भाग्यलाभ स्थिर होता है। शनि-समयका प्रतीक है, शनि-विवेक है, शनि-भाग्यविधाता है; शनि-शिव याने कल्याणमय है; बिना शनिका जीवन, बिना एक-आदि-अंकके शून्य समान है। शनिके बिना अकेला चंद्र केवल वैचारिक तरंगें उत्पन्न करता है। ठोस कार्य शक्तिके लिए शनिका साथ अति आवश्यक है।- ऐसी प्रतियुति आपके जन्म कुंडलीके ग्रहोंमें होनेसे ही आपका जीवन 'लाखों में एक'- सदृश प्रशस्त, प्रशंसनीय, अनुमोदनीय बन गया है।

इस प्रकार जन्मकुंडलीमें उपचय योग, परिवर्तन योग, नीचभंग राजयोग, नव-पंचमयोग, बलवान लग्नेश (शनि), योगकारक उच्चका शुक्र, उच्चका गुरु, शुक्र-सूर्य एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगल-गुरु और राहु-चंद्रकी युति, शनि-चंद्रकी प्रतियुति, उच्चके ग्रहोंकी दृष्टि आदि अनेक कारणोंसे कुंड़लीके ग्रह जातकके जीवनको सर्वोत्कृष्टता बक्षते हैं। भाग्य भुवनका स्वामी योगकारक शुक्र उच्चका बनकर सूर्य-बुधसे युति संबंधसे युक्त धनभुवनमें बिराजित है। अतएव भाग्यदेवी विजयमालारोपणके लिए मानो सदैव तत्पर रहती थी।

ग्रहोंके गोचर परिभ्रमणसे असरग्रस्त आपके जीवनके :-महत्वपूर्ण प्रसंगोंका विश्लेषण :-

अद्यावधि पूज्य गुरुदेवके प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं जीवन प्रसंगोंका आपकी जन्म कुंड़लीके स्थान-राशि-ग्रहके परस्पर संबंधाधीन फलादेशके स्वरूपमें अध्ययन किया गया। अधुना ऐसे उत्कृष्ट व्यक्तित्वधारी विरल विभूतिके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण-यादगार जीवन प्रसंगोंको तत्कालीन उन ग्रहोंके गोचर परिभ्रमणके आधार पर यथास्थित समय-संयोग द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है।

यह विशलेषण केवल आपकी ही जन्मकुंड़लीको लक्ष्य करके किया जा रहा है। (१) षष्टम अशुभ स्थान स्थित तृतीय एवं दसम स्थानका स्वामी मंगल और द्वितीय एवं एकादश स्थानका स्वामी गुरु परसे, जब राहुका परिभ्रमण होता है तब उन स्थानोंका अशुभ फल प्राप्त होता है-तदनुसार आपकी बारह-तेरह, इकतीस-बत्तीस,उनचास-पचास वर्षकी आयुमें अशुभकारी घटनायें घटित होनेकी संभावना होती है - यथा - पारिवारिक जनोंका वियोग या हानि, यश-मान-प्रतिष्ठामें विक्षेप या हानि, साहस-पराक्रम आदिमें निष्फलता प्राप्त होती है। जैसे **A.** तेरह सालकी आयुमें आपको माता-पिता-परिवार-मित्रवर्गसे वियोग प्राप्त हुआ, और जीरामें जोधेशाहजीके घर जाकर जीवन बसर करनेका प्रसंग प्राप्त हुआ। **B.** जब आपकी बत्तीस सालकी उम्रथी, आपका अंतर्मन मूर्तिपूजाके प्रति आस्थासे रंग चूका था। अतएव आप स्थानकवासी साधुवेशमें मूर्तिपूजादि सद्धर्मका उपदेश सुनाते थे। यही कारण बन पड़ा कि पूज्य अमरसिंहजीने आपके विरुद्ध एक मेजरनामा तैयार करके सभीके हस्ताक्षर लेकर आपको समुदायसे बाहर करनेका कारनामा रचा (वैसे तो आपके प्रबल पुण्य योगसे ही आपको इस कारनामेका कोई असर नहीं हुआ, लेकिन, मनमें उद्वेग अवश्य रहा) **C.** उनचास वर्षकी आपकी उम्रथी तब बड़ौदामें होनेवाली लहरुभाई-नामक युवककी दीक्षा, उनकी माताके विरोधके कारण तत्काल स्थगित कर देनी पड़ी। **D.** पचास वर्षकी आयु थी तब आपने पालीताणामें चातुर्मास किया। उन दिनोंमें वहाँ यतियोंका-विशेष रूपसे 'वीरका' रिखका-जोरदार वर्चस्व था। उन्होंने आपके चातुर्मास प्रवेश-महोत्सव जुलूसमें एवं चातुर्मासमें-पर्युषण में कल्पसूत्र के जुलूस में विघ्न ड़ालनेका भरसक प्रयत्न किया-हाँलाकि वह निष्फल हुआ।

२. षष्ठम अशुभ स्थान स्थित तृतीय एवं दसम स्थानका स्वामी मंगल और द्वितीय एवं एकादश स्थानका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी गुरु ग्रह परसे जब केतुका परिभ्रमण होता है तब उन स्थानोंका आकस्मिक अशुभ परिणाम प्राप्त होता हैं, अर्थात् मिलनेवाले कुछ काल्पनिक लाभके स्थान पर, ऐसा लगता है जैसे कोई ऐसी आकस्मिक घटना घटित हुई और मिलनेवाला लाभ न मिल सका या हानी उठानी पड़ी। तदन्तर्गत परिवार हानि या परिवारके मुख्य व्यक्तिका निधन वा यदि स्वयं मुख्य सदस्य हों तब खुद की मृत्यु होनेकी संभावना होती है।

आपकी आयुके तेईसवें, एकतालीस-बयालीस और साठवें वर्षमें केतुका ऐसा परिभ्रमण हुआ, परिणामतः **A.** तेईसवें वर्षमें आपको ऐसे ही किसीभी प्रकारका प्रसंग या अचानक बिमारीका प्रसंग प्राप्त हुआ होगा (विभिन्न विद्वज्जनों द्वारा रचित आपके अनेक जीवनचरित्रोंमेंसे किसीमें इसका कोईभी उल्लेख प्राप्त नहीं होता है, लेकिन इस ग्रह भ्रमणसे व्युत्पन्न असर अवश्य ही हुआ होना चाहिए) **B.** एकतालीसवें वर्षमें आर्य समाजके स्थापक श्री दयानंदजी सरस्वतीके साथमें आपका शास्त्रार्थ आयोजित हुआ था। संभवतः इस शास्त्रार्थ से आपको कीर्तिलाभ या सत्य प्रस्थापित करनेका अवसर प्राप्त होता-लेकिन, अचानक ही श्री दयानंदजी सरस्वतीके विष प्रयोगसे निधनने आपको इस लाभसे वंचित कर दिया। **C.** बयालीसवें वर्षमें लुधियानामें फैली जीवलेवा ज्वरकी बिमारीने आपको गंभीर असर किया, जिससे आपको बेहोशीमें तत्काल ईलाजके लिए लुधियाना से अंबाला लेजाना पड़ा। इसी बिमारी से ग्रस्त आपके शिष्य श्री रत्नविजयजीका कालधर्म हुआ। **D.** साठवें वर्षमें केतुके इस परिभ्रमणने, अचानक ही आयुष्यकी समाप्ति प्रदान करनेवाली सांसकी जीवलेवा बिमारीसे आपको परलोकका पथिक बना दिया।

३. षष्ठम अशुभ स्थान स्थित मंगल और गुरु परसे जब शनिदेवका परिभ्रमण होता है तब अशुभ फल प्रदान करता है। यह परिभ्रमण तेईस से पच्चीस और त्रेपन-पचपनके बीचके वर्षोंमें हुआ। **A.** तेईसवें वर्षमें इस अशुभ स्थान परसे केतु और शनिदेव-दोनों पापग्रहका पसार होना, निश्चित रूपसे अनहोनीका संकेत करता है। आश्चर्य है कि विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित एवं प्रकाशित आपके जीवनचरित्रों एवं प्रसंग परिमलों में इसका कहींभी कोई चित्रण या आलेखन प्राप्त नहीं होता है।

B. आपके शिष्य परिवारमें गहरी चोट प्रदाता---त्रेपनवें वर्षका यह भ्रमण आपके प्रिय प्रशिष्य श्री हर्षविजयजी म.का. इसी वर्षमें कालधर्म प्राप्त कराता है, जिससे आपके अपने निजी एवं शासन प्रभावनाके कार्योंमें अनेक कठिनाइयाँ महसूस हुईं।

शनिदेवका मंगल ग्रह परसे परिभ्रमण आकस्मिक साहस और पराक्रमके लिए प्रवृत्त करता है। अथवा व्यक्तिकी सुषुप्त शक्तियोंको जागृत करता है, जिससे भविष्यमें लाभकारी परिणाम प्राप्त होते हैं। आपके जीवनमें भी जब यह समय आया तब, रतलामके चातुर्मासोपरान्त विवेकचक्षुके उद्घाटन फलस्वरूप आपने चिंतन-मनन-मथनान्तर, व्याकरण पढ़नेका निश्चय किया। तदनुसार पचीसवें वर्षकी आयुमें आपने रोपड़में-गुरुजनोंके निषेधके विरुद्ध-सदानंदजीसे व्याकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढ़ा। जिससे नवीन ज्ञान ज्योतिके उदयसे सत्यमार्गके दर्शन होनेसे भविष्यके जीवनराह पर जबरदस्त परिवर्तनकारी प्रसंगोकी परम्पराका प्रारम्भ हुआ।

४. द्वितीय स्थान स्थित प्रबल योगकारक उच्चके शुक्र परसे गुरुका भ्रमण होता है तब जीवनमें महत्त्वपूर्ण यादगार प्रसंग उपस्थित होते हैं। यह भ्रमण योग आपके जीवनमें नव, इक्कीस, तैंतीस, पैंतालीस, सत्तावन सालकी उम्रमें हुआ था, परिणामतः

A. जब आप नव वर्षके थे, तब गणेशचंद्रका अंगज़ स्व-गृहकी रक्षाके लिए हाथमे नंगी तलवार लेकर खड़े हो गए-जो आपके निर्भीक-पराक्रमी व्यक्तित्वका परिचायक था। B. इक्कीस वर्षकी आयुमें आपको बार बार व्याकरणाध्ययनके लिए विभिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रेरणा दी गई, लेकिन आपने ध्यान ही न दिया, जिसका अफसोस आपको जीवन-पर्यंत रहा। C. तैंतीसवें सालमें आपने पूज्य श्री अमरसिंहजीके मेज़रनामा और समुदाय बाहर करनेके गुप्त कारनामोंको ललकारा और पंजाबमें जाकर अनेक स्थानों पर विचरण करके और उपदेश देकर श्रावक समुदायकी श्रद्धाको सम्यक् एवं स्थिर किया। पश्चात् मालेरकोटला का चातुर्मास यादगार और यशस्वी हुआ, जिसमें आपको आशातीत सफलता प्राप्त हुई। पंजाबका प्रत्येक स्थान-क्षेत्र-आपके आगमन और स्वागतके लिए लालायित बना हुआ था। D. पैंतालीस सालकी उम्रमें होशियारपुरके चातुर्मासमें आपकी ग्रंथरचनाओंमें से जो सर्वोत्कृष्ट रचना 'जैन तत्त्वादर्श' की रचना की; जिसे जैन धर्मकी 'गीता' कहा जा सकता है। E. उम्रकी सत्तावनवीं साल आपकी जीवन-किताबका स्वर्णिम पृष्ठ है। इसी वर्ष आपको आंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। इसी वर्ष चिकागोंमें आयोजित विश्व धर्म परिषदमें पहुँचनेका सादर आमंत्रण प्राप्त हुआ। जैन साधु मर्यादाको जानकर आपके प्रतिनिध एवं अक्षर देह को आमंत्रित किया गया। अतः श्री वीरचंदजी गांधी आपके अक्षर देह और ज्ञान प्रकाश को लेकर वहाँ पहुँचे और विश्व स्तरीय अनन्य प्रख्याति प्राप्त करवायी।

५. द्वितीय स्थान स्थित प्रबल योगकारक उच्चके शुक्र पर गुरुकी दृष्टि होने से जीवनमें सफलता प्राप्त-यादगार महत्त्वपूर्ण प्रसंग घटित होते हैं। यह परिभ्रमण आपके जीवन के सोलह-तेईस-सत्ताईस-उनचालीस-इक्यावनवें वर्षमें हुआ थ। जिसके कारण -

A. सोलहवें वर्षमें स्थानकवासी गुरु गंगाराम और जीवनरामजीका सत्संग प्राप्त हुआ। आपको संसारकी असारताका भान हुआ और साधु जीवन जीनेका आपने निश्चय किया। B. तेईसवें वर्षमें आपने बत्तीस आगमोंका अभ्यास संपूर्ण करके विद्वज्जगतमें शास्त्रोंके सर्वेसर्वा-पारंगतके रूपमें ख्याति प्राप्त की। इसी वर्ष रतलाममें सूर्यमलजी कोठारीजीको 'आगमों की संख्या' विषयक वादमें अकाट्य तर्क एवं युक्तियोंसे निरुत्तर करके जीवनमें प्रथमबार 'वाद विजयी' बननेका सौभाग्य प्राप्त किया।

C. सत्ताईस वर्षकी आयुमें आपके आग्राके चातुर्मासमें सन्त श्री रत्नचंद्रजीसे समागमका लाभ हुआ। आपने अपने मनकी अनेक आशंकाओंका दिल खोलकर आगमोक्त पाठोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भमें चर्चा करके शास्त्रोक्त समाधान पाया। फल स्वरूप मूर्तिपूजा पर आपकी श्रद्धा स्थिर हो गई। विवेक चक्षुके उद्‌घाटनसे जीवनके सच्चे राहका निर्णय हो पाया। सत्यका निश्चय एवं स्वीकार करके उसके प्रचार और प्रसार करनेके लिए कटिबद्ध बने। दिल्ही पहुँचकर विश्नचंदजी-चंपालालजी आदि साधुओंको अध्यापन करवाके आत्म विशुद्धि एवं सत्य और सनातन जैन धर्मकी प्ररूपणा की। उसीमें प्रवृत्त कराके विश्वासमें लिए। अतः उन सबका अमूल्य सहयोग आपको आजीवन मिलता रहा ।

D. उनचालीसवें वर्षमें फिर वही संयोग प्राप्त हुआ, अतएव आप सभीने ढूंढक-मिथ्या-पंथ छोड़कर शुद्ध श्रद्धान् युक्त शाश्वत धर्मकी संविज्ञ दीक्षाको अंगीकृत करके श्री बुद्धिविजयजी महाराजका शिष्यत्व स्वीकार करके आत्मारामजी से मुनिश्री आनन्द विजयजी म. बने और आत्मिक कल्याणके सच्चे मार्गके स्वीकारका परितोष पाया।

E. आपकी इक्यावन सालकी आयुमें इसी शुभ योगमें जीवनमें सर्वोच्च कीर्तिकलशकी प्राप्ति हुई। इस साल पालीताना चातुर्मासकी पूर्णाहूति पर हिन्दुस्तानके सकल जैनसंघ के अग्रणी एकत्र हुए। सर्वने सर्व-सम्मतिसे आपको तपागच्छान्तर्गत संविज्ञ शाखाके आद्याचार्यपदका ताज़ पहनकर इस पदको अलंकृत करनेके लिए विनती की। आपकी संपूर्ण अनीच्छा होते हुए भी श्री संघकी अत्यन्त आग्रहपूर्ण आज्ञारूप विनति को सम्मानित करते हुए आद्याचार्य पदका स्वीकार करके अत्युत्तम पंचपरमेष्ठि स्थित तृतीय स्थानारूढ हुए जो जीवनका उत्तमोत्तम लाभ था।

६. द्वितीय स्थान स्थित सूर्यकी प्रतियुतिमें गुरुका भ्रमण होनेसे भी जीवनमें महत्त्वपूर्ण सफलतायुक्त परिवर्तन करानेवाले प्रसंग उपस्थित होते हैं। तदनुसार आपकी आयुके तेरह-पचवीस-सड़तीस-उनचासवें वर्ष लाभदायी हुए हैं। यथा-

A. तेरह सालकी आयुमें आप जीरा निवासी जोधेशाहजीके घर आये। यहाँ पर ही आपको जैन धर्मका परिचय हुआ जिससे आपके जीवनका आमूल परिवर्तन हुआ। आप हिंसक वीरताको त्यागकर अंतरंग शत्रुनाशक अहिंसक वीर-सावज़ बनकरके स्व-पर कल्याणकारी जीवन-यापन करनेको सौभाग्शाली बने। B. पचवीस सालकी उम्रके प्रसंग आगे वर्णित किया जा चूका है। C. सड़तीस सालकी उम्रमें आपकी अद्‌भूत कवित्व शक्तिका निखार आपकी रचना 'चतुर्विंशति जिन स्तवन'में दृष्टव्य है, जिसमें भक्तिरसमें ओतप्रोत आपकी विशिष्ट संगीतज्ञताका भी परिचय प्राप्त होता है। D. उनचासवें वर्षकी उम्रमें आपने सुरतमें चातुर्मास किया और हुक्म मुनि नामक साधुके 'अध्यात्म सार'नामक ग्रंथकी शास्त्रीय सत्यताको ललकारा और प्रश्नोत्तरके रूपमें भारतवर्षके सभी जैन-जैनेतर विद्वानोंके परामर्श द्वारा इसे 'मिथ्या' ठहराया। इससे आपकी अगम्य कीर्ति प्रकाशमें आयी। इस चातुर्मासमें अनेक प्रभावात्मक कार्य-अनुष्ठानादि हुए। इसके अतिरिक्त ढूंढक साधु रायचंदजी→श्री राजवियजी म., सुरतके कस्तुरलाल→श्री कुंवरविजयजी म., पाटनके लहरुभाई→श्री सम्पत विजयजी-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की शिष्य रूपमें प्राप्ति हुई। इस प्रकार यश-कीर्ति, मान-प्रतिष्ठा एवं परिवारादिमें सर्वांगीण वृद्धिका योग प्राप्त हुआ।

७. गुरुका लाभ स्थानमेंसे भ्रमण सुख-सम्पत्ति-प्रतिष्ठादिकी प्राप्ति करवाता है। यह भ्रमण आपकी आयुके सत्रह, उनतीस, बयालीस और चौपन-पचपन वर्षमें हुआ।

A. सत्रह वर्षकी आयुमें आपने संसार त्यागकर संन्यस्त जीवनका लाभ पाया। **B.** उनतीस वर्षकी आयुमें आपको देशु गाँवमेंसे शीलांकाचार्यजी की 'आचारांग सूत्र'की टीकाकी हस्तलिखित प्रतकी प्राप्ति हुई। इसके अध्ययनसे आपकी श्रद्धा संविज्ञमार्ग पर मज़बूत हुई। सच्चे साधु जीवनके आचारोंका ज्ञान हुआ। इसी वर्षमें श्री रामसुखजीसे ज्योतिषशास्त्र का अध्ययन किया। अमृतसरमें श्री अमरसिंहजी से आदर्श जैन धर्म प्रचारसे सम्बन्धित स्पष्ट चर्चा हुई। आपने अपना निर्णय स्पष्टरूपसे प्रथम ही जाहिरमें प्रगट किया। **C.** बयालीसवें वर्षमें श्री विनय-विजयजी, श्री कल्याण विजयजी, श्री सुमतिविजयजी और श्री मोतिविजयजी-चार शिष्योंकी प्राप्ति हुई। **D.** चौपन-पचपनवें वर्षमें पट्टीमें धर्म प्रचारमें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। अनेक जैन-जैनेतरोंको प्रतिबोधित किये। इस चातुर्मासमें 'चतुर्थ स्तुति निर्णय' भा-२की रचना की। जीरामें परमात्माके श्रीमंदिरजीके अंजनशालाका-प्रतिष्ठा महोत्सव और अमृतसर एवं होशियारपुरमें मंदिरजीके प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न करवाये।

८. राहुका लाभ स्थान परसे भ्रमण भी सुख-संपत्ति-प्रतिष्ठादिमें लाभ-वृद्धि सूचक है । जिससे आपकी आयुके पचवीस और तैंतालीसवें वर्षमें हुआ-परिणामतः **A.** पचीसवें वर्षका वृत्तान्त-वर्णन पूर्वानुसार ज्ञातव्य है। **B.** तैंतालीसवें वर्षमें जीवलेवा ज्वरकी बिमारीके तत्काल उपचारसे स्वास्थ्य लाभ हुआ। अंबालामें श्री वीरविजयजी, श्री कान्तिविजयजी और श्री हंसविजयजी जैसे अत्यन्त सुयोग्य-प्रतिभावान-आपके नामको रोशन करनेवाले तीन शिष्योंकी प्राप्ति हुई।

९. केतुका लाभ स्थानसे भ्रमण अचानक उत्कृष्ट लाभकारी बनता है।

यह भ्रमण आपकी आयुके पंद्रह-तैंतीस-इक्यावन वें वर्षमें हुआ। परिणामतः **A.** पंद्रहवें वर्षमें आपकी कला-कुशलता-चित्रकारिता आकस्मिक ही प्रस्फुटित हुई। खेल खेलमें, बिना किसीसे सिखे, ही हूबबू चित्र बनानेका प्रारम्भ करके आपने अनेक चित्र बनाये जो पूर्व वर्णित है। लेकिन, अफसोस, इस अमूल्य निधिका उस समय किसीने गौर न किया। **B.** तैंतीसवें वर्षमें धर्म प्रचार-प्रसारमें अभूतपूर्व-आशातीत सफलता यकायक ही प्राप्त हुई। पंजाबका प्रत्येक क्षेत्र आपके आगमन-दर्शन-स्वागतका इच्छुक बना। **C.** इक्यावनवें वर्षमें पूर्वोल्लिखित आचार्य पदकी प्राप्ति भी जीवनका सुखद अकस्मात ही था।

१०. शनिका लाभ स्थानसे भ्रमण, ध्येय प्राप्ति, सफलता, विकास, सुखादिका अति उत्कृष्ट लाभ प्रदान करता है जो आपके जीवनमें पैंतीस वर्षकी आयुमें हुआ; अतः जब आप शुद्ध धर्मके प्रचारके लिए कटिबद्ध हुए थे और ढूंढक वेशमें ही गुप्तरूपसे यह कार्य चल रहा था, जिसमें आपके गुप्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहयोगी श्री विश्नचंदजी, श्री चंपालालजी आदि बीस साधु श्री अमरसिंहजीसे नाता तोड़कर प्रकट रूपसे आपसे आ मिले। परिणामतः आपके आदर्श जैन धर्मके प्रचार-प्रसारमें प्रकट रूपसे कार्यान्वित होनेसे आपके कार्यमें ज्वारकी सदृश जोश आया और शीघ्रतासे लक्ष्यकी ओर बढ़ने लगा।

संन्यासके योगः--- सामान्यतः किसीभी सन्यासीकी जन्म कुंड़लीमें किस प्रकारसे ग्रहोंकी स्थिति होती है इसका अभ्यासपूर्ण विवरण श्री चंद्रकान्त पाठक कृत---वि.सं. २०५१ 'जन्मभूमि पंचांग'में "संन्यासके योग" शीर्षकान्तर्गत लेखमें किया गया है जो अवलोकन-योग्य होनेसे यहाँ हिन्दी अनुवाद रूपमें उद्धृत किया जा रहा है। [३६]

सन्यासीकी कुंड़लीमें क्या देखेंगे ?- जन्मकुंडलीमें लग्न त्यागकी भावना, संस्कृतिकी रक्षा, धार्मिक वृत्ति, मोहक व्यक्तित्व, मानवतावादी स्वभाव, आदि देखना चाहिए। चंद्र-गुरु या शुभ ग्रहोंसे संबंधित होना चहिए। तीव्र बुद्धिके लिए बुध और ज्ञानके लिए गुरु-अच्छा होना चाहिए। धनभुवनसे आकर्षक वक्तृत्व शक्ति-वाणीका प्रभुत्व होना चाहिए। विशाल जनसमुदाय वा शिष्यगणको वाणीसे प्रभावित करनेकी शक्ति अनिवार्य है। सरस्वती-कृपाके लिए गुरु-बुध एवं धनेश बलवान होना चहिए। चतुर्थ-सुखस्थानसे अंतःकरण दृष्टव्य है। अंतःकरणमें ही कल्पनायें-सुख-वृत्ति आदिका जन्म होता है। और पंचम स्थान विद्या भुवनमेंसे पूर्व-जन्म,पूर्वजन्मके संस्कारादि ज्ञात होते हैं। स्त्रीभुवन सप्तम स्थान दूषित हों जिससे दुःखपूर्ण संसार असार भासित होता है और व्यक्ति वैराग्यमय बनता हैं। भाग्य-धर्म-भुवनसे धार्मिक आस्था, धार्मिक कार्य, धर्मस्थान-मंदिरादिका नूतन निर्माण एवं जीर्णोद्धारादि करनेकी कार्यशक्ति एवं पूर्व जन्म सूचित होता है। धर्म भुवनमें धर्मेश स्वगृही हों तो अच्छा। द्वादश मोक्ष स्थान, मृत्यके बादकी जीवकी स्थिति स्पष्ट करता है। मंगल ग्रह ईच्छा-पूर्तिकी आशा कराता है, जबकि गुरु आशा-तृप्ति कराता है। बारहवें चंद्र अथवा शनिकी दृष्टि हों-ऐसे योग जैन साधुओंकी कुंडलीमें देखनेमें आता है। गुरु शनिकी युति, प्रतियुति, स्वगृही या उच्चका-प्रबल हों तब आध्यात्मिक शक्ति प्रबल होती है।

लग्नेश भाग्य स्थानमें, भाग्येश पर लग्नेशकी दृष्टि-दीक्षा अंगीकरणका सूचन करता है। लग्नेश या भाग्येश स्वगृही अथवा भाग्येश-लग्नेशका परिवर्तन योग भी हो सकता है। भाग्य-भुवनमें तुलाका उच्चका शनि, स्वगृही शुक्र और गुरु हो तो संन्यास लेकर सर्वत्र आदर पाता है। शुभ ग्रहके नवमांशमें चंद्र उच्चका हैं, शनि स्वगृही या उच्चका केन्द्र त्रिकोणमें हों, गुरु स्वगृही या उच्चका हों तब व्यक्ति चारित्रवान, प्रथम कक्षाका संत-जगत्गुरु बनता है जन्मकुंडलीमें उच्च ग्रह पर कर्कके गुरु, मीन-तुला-वृषभके शुक्र और कर्कका-वृषभका चंद्र-जैसे ग्रहकी दृष्टि हों तब सर्वत्र आदरपात्र, उपदेशदाता बनता है। धर्मश्रद्धा प्रकट करने, दुःखीके दुःख दूर करने, मनोवांछित कामना पूर्ण करने, प्रवचन एवं प्रेरणा द्वारा धार्मिक कार्योंके लिए सबको प्रेरित करनेवाला होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मकुंडलीमें नवम स्थान धर्माराधना-साधनाके लिए, पंचम स्थान पूर्व जन्मकी साधना एवं बारहवाँ आध्यात्मिक आराधनाके लिए दृष्टव्य है। पाँच-नव-बारहवें स्थान पर कौनसा ग्रह है और पंचमेश-भाग्येश-व्येश कौनसे ग्रह है-इसके बलाबल पर आध्यात्मिक आराधनाका कथन किया जाता है।

चंद्र-मन, सूर्य-आत्मा, गुरु-धर्मनिर्देशक, शनि-वैराग्यसूचक और लग्न-देह, दर्शाते हैं। बलवान लग्नेश-बलवान व्ययेशका परिवर्तन योग भी त्याग भाव अर्पित करता है। शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक-बंधन, जेलयोग, कर्जदारी, समाजसे तिरस्कृति, और मोक्षादि विचार बारहवें स्थान पर से किया जाता है।

सुख भुवन दूषित हों, तब दुःखसे त्रस्त व्यक्ति वैराग्य की ओर झूकता है। व्यय स्थानके निर्देशक अच्छे, बलवान और शुभ हों तब उत्कृष्ट वैराग्य उद्‌भावित होनेसे संन्यास लेता है या चाहे संसार त्याग न भी करें लेकिन मानसिक वैराग्यभावना प्रबल होती है।

प्रव्रज्या योगवाली व्यक्तिमें गूढ शास्त्रोंकी ओर झुकाव, तत्त्वज्ञान, आत्मज्ञान, व्यवहार्य, नीतिवादी, सिद्धांतवादीता, समाजोपयोगी होनेकी तत्परता, संशोधनात्मक वृत्ति, सच्चे राहबर, शास्त्रज्ञ-आदि महत्वपूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

कर्क, कन्या या मीनका गुरु एक, छ आठ, दस, ग्यारह या बारहवें स्थानमें हों तब ब्रह्मज्ञान प्राप्तिका सूचक है। सूर्यसे आगे बुध द्वितीय भुवनमें हों तो व्यक्तिमें आध्यात्मिक शक्ति होती है। गुरु-चंद्र या गुरु-मंगल वाली व्यक्तिको तीर्थयात्राका अच्छायोग प्राप्त होता है। मिथुन, कन्या या मीनका राहु-तृतीय, पंचम या दसम स्थानमें हों तब व्यक्तिकी अटूट श्रद्धा ईश्वरके प्रति होती है। वह भक्तिमार्ग द्वारा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करता है।

दसम स्थानमें चंद्र-शनिकी युति, मोह-मायाका नाश करके वैराग्य प्राप्त कराती है। चंद्र-शनि, सप्तम-चतुर्थ-लग्न स्थानमें होनेसे उस स्थानाधारित फल कम हो जाता है। मोहजालका पाश दूर होनेसे स्नेहल-दयावान, एकाग्रचित्त, कृतनिश्चयी, समाधान वृत्तिवाला होता है। मातृकारक चंद्रके साथमें शनिकी युति-प्रतियुति मातृसुख कम करती है। बचपनमें ही माताकी मृत्यु या मातृप्रेम में उणिमता आती है। माताकी उपस्थितिमें भाग्योदय नहीं होता है।

सूर्य-शनि केन्द्रमें या त्रिकोणमें या द्वितीय स्थानमें हों तब लम्बी आयु, शरीरसुख, निर्भयता, तेजस्विता, ब्रह्मचारी एवं ज्ञानयोगसे साक्षात्कार पानेके लिए समर्थ होता है। पिताकी मृत्यु पश्चात् भाग्योदय होता है या पितृसुखमें हानिका सूचक है।.....गुरु-शुक्रकी युति अलौकिक बुद्धि प्रतिभा, अध्यात्म-ज्ञान, वाद-विवादमें कुशलता, दया-प्रेम-समाज कल्याणके भावयुक्त, महत्वाकांक्षी, प्रवृत्तिशील, गुण ग्राह्य वृत्ति, प्रभावशाली व्यक्तित्व प्रदान करती है। अनेक साधु-संतोंकी कुंडलीमें गुरु-शुक्रकी युति देखनेको मिलती है। संक्षेपसे यह कह सकते हैं कि--जन्मकुंडलीमें लग्नस्थानसे-स्वभाव, मनोबल, कीर्ति; धन स्थानसे-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिवार, वाणी; पराक्रम भुवनसे अभ्यास प्राप्त बुद्धि; सुख स्थानसे वृद्धावस्थाकी परिस्थिति, हार्दिक विचार; पुत्रस्थानसे भविष्यका ज्ञान, आराध्य देव, तांत्रिक विद्या, गत जन्मकृत पुण्य, विद्या, याददास्त; सप्तमसे दाम्पत्य जीवन-जाहेर जीवन, कीर्ति; मृत्यु स्थानसे योगाभ्यास, गूढज्ञान, अकस्मात, ओपरेशनादि; भाग्य स्थानसे प्रवास, भाग्योदय, आध्यात्मिक ज्ञान, पूजा, धार्मिक क्रिया, पूर्व जन्मकृत कर्म, तीर्थयात्रा, गुरु; कर्मभुवनसे जाहेर-जीवन, संन्यास, ईज्जत, कीर्ति; व्यय भुवनसे गति, मोक्ष, लम्बी बिमारी, कठिनाईयाँ, कर्ज, शय्या-सुख, बंधन, गुप्त दुश्मन आदिका संकेत मिलता है।

'सारावली बृहज्जातक'में संन्यासी के योग दर्शित किये हैं, जिसमेंसे कुछ महत्वपूर्ण योग संक्षिप्तमें दियेजाते हैं। जिस कुंडलीमें जितने ज्यादा योग हों उतनी अधिक मात्रामें सफलता या शक्यता प्राप्त होती है।

प्रव्रज्या संन्यास योगः- (१) शनि अथवा लग्न पर चंद्रकी दृष्टि (२) तीन ग्रह उच्चके, (३) गुरु ग्रह केन्द्र या त्रिकोण स्थानमें बलवान (४) सूर्य और चंद्रके, गुरु और बुधके साथ सम्बन्ध (५) गजकेसरीयोग, (६) पंचमहापुरुष योगमेंसे एक से ज्यादा योग (७) एक राशिमें चार या उससे अधिक ग्रह, (८) भाग्य और व्यय भुवनके साथ शनि और केतुका संबंध (९) लग्नेश एवं कर्मेश चर राशिमें, भाग्येश बलवान-स्वगृही (१०) पंचम-पुत्रस्थान और सप्तम-स्त्रीस्थान पापग्रहसे दूषित हों (११) भाग्येश-कर्मेश, भाग्येश-व्ययेश, कर्मेश-व्ययेश का संबध-परिवर्तन योग (१२) भाग्य भुवन बलवान, भाग्येश बलवान, भाग्येश स्वगृही (१३) लग्नेश उच्चका, केन्द्र या त्रिकोणमें गुरु से दृष्ट अथवा दो शुभ ग्रह-सप्तम या दसम स्थानमें (१४) अनफा योग-चंद्रसे बारहवें स्थानमें ग्रह हों (१५) अष्टम स्थानमें पाँच ग्रह हों; अष्टम या द्वादशवें गुरुकी दृष्टि हों (१६) चर राशिके लग्नमें, केन्द्रमें, गुरु, शुक्र केंन्द्रमें हों; तुलाका उच्चका शनि हों तो अंशावतार योग होता है। राजा तुल्य लक्ष्मीवान, तीर्थाटन कर्ता, शास्त्र और आध्यात्मिक क्षेत्रका ज्ञाता होता है। (१७) केन्द्र या त्रिकोणमें चार-पाँच ग्रह स्वगृही, बलवान, उच्चके बनते हों तब अधिक बलवान ग्रहानुसार प्रव्रज्यायोगका फल प्राप्त होता है (१८) भाग्य भुवनमें गुरु हों और लग्न एवं चंद्र पर शनिकी दृष्टि हों तब वैराग्यकी शक्यता होती है। (१९) लग्न और भाग्यभुवन पर लग्नेशकी दृष्टि हों, लग्नेश-भाग्येशका परिवर्तन योग हों, लग्नेश-भाग्येशकी युति लग्न या भाग्यभुवनमें हों; लग्नेश-लग्न स्थान में और भाग्येश भाग्यस्थानमें स्वगृही-बलवान हों। (२०) कर्मभुवनमें सूर्य-चंद्र-गुरु निर्बल हों, नीच राशिके या पापग्रहके साथ हों और उस पर शनिकी दृष्टि हों (२१) लग्नेश पर चंद्रकी दृष्टि हों या लग्नेश चंद्रके साथ हों, कर्मेश निर्बल होकर स्त्री भुवनमें हों, धनेश और सप्तमेश संन्यस्त योग करें तब व्यक्ति आसक्तियुक्त संन्यासी बनता है। (२२) शुक्र, सूर्य, मंगल और शनिः या चंद्र, मंगल, गुरु, शनिः वा गुरु, मंगल, सूर्य, शनि--वृषभ, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हों तो साधु तपस्वी होता है। (२३) जन्म कुंडलीमें एक भावमें चंद्र, बुध, मंगल, गुरु या चंद्र, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल हों तो विद्वान मुनि-संन्यासी होता है और उनका प्रवचन मननीय होता है। (२४) सूर्य, चंद्र, शुक्र, बुध: या मंगल, बुध, शुक्र, शनि: वा शनि, चंद्र, गुरु, शुक्र किसीभी एक भावमें एक साथमें हों तो व्यक्ति संन्यासी बनता है। (२५) जन्मकुंडलीमें चार--पाँच ग्रह एक ही राशिमें, एक ही भावमें हों और राजयोग के सर्जक हों तब प्रव्रज्या योग प्रबल होता है। अनुयायी-शिष्यवर्ग विशाल होता है। छ-सात ग्रह बलवान होकर एक ही भावमें हों तब साधु होता है। (२६) मीन राशिमें आत्मकारक ग्रह मोक्षका सूचक है। आत्मकारक ग्रहसे बारहवें स्थान पर शुभ ग्रह-चंद्र, शुक्र, गुरू उच्चके हों तब संन्यासी होता है। (२७) सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र उच्चके या स्वगृही हों तब अनुक्रमसे ५१ वर्ष पश्चात् संसार त्याग, विद्वत्ता, ख्याति-सुख-समृद्धि प्राप्ति, जैन साधुत्व, ज्यादा भूख-भिक्षावृत्ति, धर्म स्थानमें तीर्थाटन, वैदक प्रचारी साधु बननेका योग प्राप्त होता है।

उपरोक्त लेखके विवरण एवं पूज्य गुरुदेवकी जन्मकुंडलीके विश्लेषणका सम्मिलित अध्ययन करनेसे ज्ञात होता है कि, एक आध्यात्मिक शक्तिके स्रोत, विद्वान, बहुमुखी प्रतिभाके स्वामी, जगत्पूज्य साधुके योग्य ग्रहादि की स्थिति-संबंध, पूज्य गुरुदेवकी जन्मकुंडलीमें भी प्राप्त होता है। अतः गुरुदेवका उज्जवल-यशस्वी-ख्यातनाम जीवन, जैसे किसी फिल्ममें पूर्वांकित एक एक दृश्य अनुक्रमसे पर्दे पर चित्रित होते हैं वैसे पूर्वकृत् पुण्याधारित जीवन प्रसंग मानो जन्मसे ही निश्चित ही था।

अन्तमें महापुरुषोंकी कुछ जन्म कुंडलियाँ उद्धरण स्वरूप प्रस्तुत करके समापन करेंगे।

महापुरुषोंकी जन्मकुंडलियाँ

नाम	लग्न	सूर्य	चंद्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु
१) गुरु गोविंदसिंहजी	१	९	१२	१०	१०	१२	११	१०	३
२) डोंगरे महाराजश्री	२	१२	१	९	११	१०	१०	८	४
३) जैनाचार्य विजय सूरिजी	२	११	७	१०	१०	४	१०	७	११
४) आचार्य रजनीशजी	२	८	९	९	९	४	९	९	१२
५) स्वामी रामदासजी	३	१२	३	८	१२	१२	११	९	११
६) अरविंद घोष	४	५	९	४	५	४	५	९	२
७) आद्य शंकराचार्यजी	४	१	३	१०	२	४	४	७	७
८) स्वामी करपात्रीजी	४	४	५	९	४	४	४	१२	३
९) जैन साध्वी (कलाश्रीजी)	४	६	१	६	६	५	७	३	३
१०) महात्मा गौतम बुद्ध	४	१	७	१	२	१	१	१	३
११) रामानुजाचार्य	४	१	३	५	१	३	१	१	२
१२) गुरु नानकजी	५	८	२	८	८	६	७	२	९
१३) जय गुरुदेव	५	६	६	२	६	१	६	८	२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४) चैतन्य महाप्रभुजी	७	११	५	१०	१२	९	१	८	११
१५) रमण महर्षि	७	९	३	१	८	११	८	१२	९
१६) सत्य सांईबाबा	७	८	३	१	८	१०	८	८	३
१७) श्री वल्लभाचार्यजी	८	१	११	४	१२	४	११	२	५
१८) जैनाचार्य विजय वल्लभ सूरिजी	८	७	८	५	६	३	७	९	३
१९) स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि	९	६	१	४	५	५	४	१०	१२
२०) स्वामी मुक्तजीवनदासजी	१०	६	६	१०	७	४	६	१२	३
२१) मुहम्मद पयगम्बर	११	५	४	१	६	२	३	१	६
२२) रामकृष्ण परमहंस	११	११	४	१०	११	३	१२	७	८
२३) मा आनंदमयी	१२	११	१२	११	१०	४	१	७	११
२४) जैनाचार्य विजय रामचंद्र सूरिजी	७	११	७	१०	१०	४½	१०	७	११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं अर्हम् नमः

पर्व चतुर्थ

-: श्री आत्मानन्दजी महाराजजीकी अक्षरदेहका परिचय :-

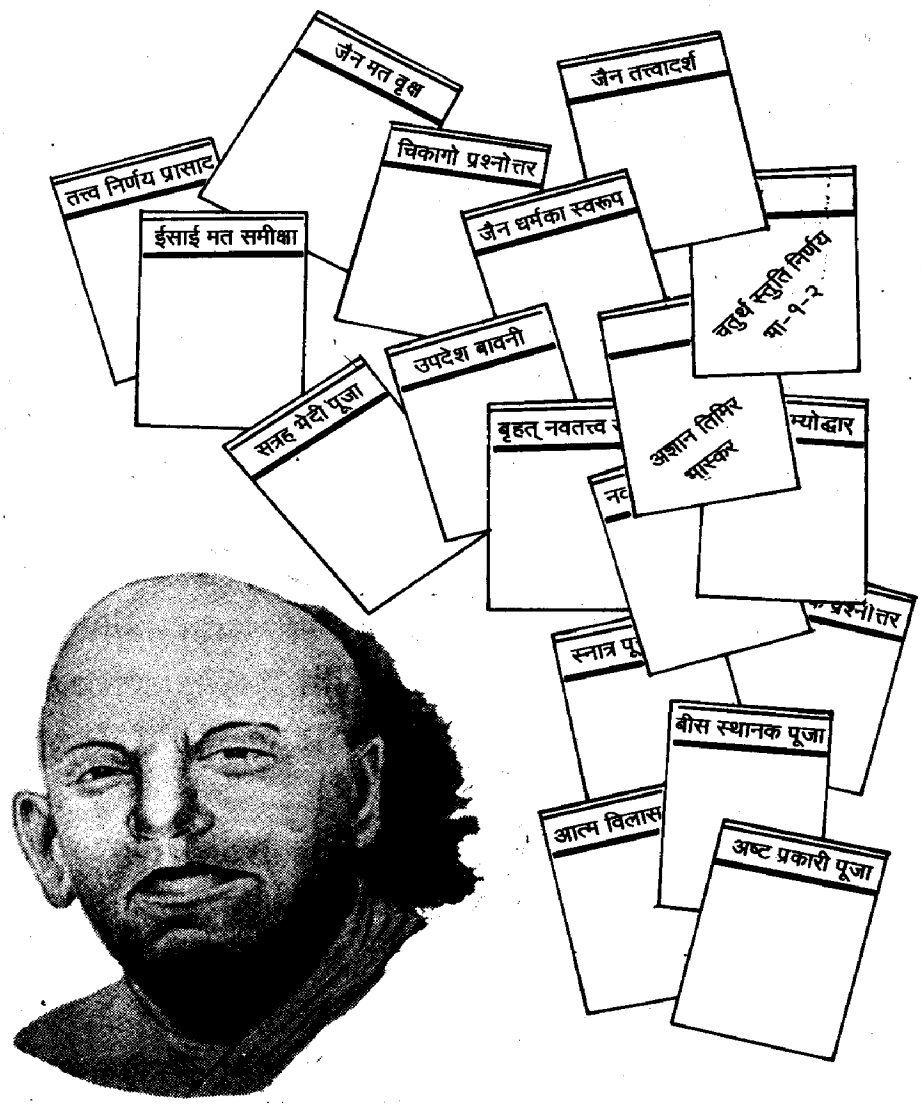

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं अर्हम् नमः

पर्व चतुर्थ

-: श्री आत्मानन्दजी महाराजजीकी अक्षरदेहका परिचय :-

"योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनि शारदारक्तिरक्तो,
दिग्जेताजेतृजेतामतिनुतिगतिभिः पूजितोजिष्णुजिस्वैः।
जीयाद्दायादयात्री खलबलदलनो लोललीलस्वलज्जः,
केदारौदास्यदारी विमलमधुमदो दामधामप्रमत्तः।।" [1]

साहित्य परिचय--

विद्वानोंके विचारोंसे दार्शनिक सिद्धान्त और धार्मिक आचार मध्य पार्थक्य माना गया है, जबकि कई विद्वान इन दोनोंकी दिखाई देनेवाली भिन्नताको, जीवन व्यवहारमें व्यवस्थित रूपसे, परस्पर अंतर्भूत करके क्षीर-नीरवत् अभिन्न स्वरूपको प्रदर्शित करते हैं। जैनधर्म और दर्शनका ऐसा ही क्षीर-नीरवत् स्वरूप हमें जैन संस्कृति-समाज-साहित्यका निदर्शन करने पर दृष्टिगोचर होता हैं।

संविज्ञ शाखीय आद्याचार्य पू. श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.सा. जैन साधु थे। यही कारण हैकि आपके साहित्योद्यानमें वैविध्य सभर, आत्मिक तुष्टि-पुष्टिकारक, जीवनप्रदायी, आह्लादक, सुरभि कुसुमोंसे अलंकृत प्रत्येक कृति बेलोमें जैनत्वकी ही सुवास महकती है। इस साहित्योद्यानकी एक-एक कृतिबेलिका परिचय, वैविध्यता और वैचित्र्यताके वैभविक रसथाल स्वरूप आत्म संतुष्टिकारक पीयूषपान करवाता है। कहीं पर समाज रूपी ठोस मिट्टीमें श्रांत बनकर तबाह होनेपर तुले हुए दार्शनिक सिद्धान्तरूपी मूलोंको अमृतमय सिंचनसे पुनःदृढ़ीभूत बनानेके प्रयास हैं, तो कहीं जैन संस्कृतिके आचारोंकी दुरुस्ती-जीर्णोद्धार और नव्यरूप प्रदानका प्रयास दृष्टिगोचर होता है। *"जैन तत्त्वादर्श"* जैसी भव्य कृतिमें इन दोनोंके सामंजस्यके दर्शन होते हैं।

"आवश्यकता ही आविष्कारकी जननी है"- इस लोकोक्तिको चरितार्थ करनेवाली इन कृतिबेलोंसे शाश्वत जैन धर्मके दार्शनिक, सैद्धान्तिक और आध्यात्मिक एवं तत्कालीन धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, नैतिक आदि पुष्प परिमल महक रहा है।

गद्य साहित्य सारिणी---

आपके पट्ट विभूषक और चरणानुगामी-अंतेवासी प.पू.श्रीमद्विजयवल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. द्वारा विरचित जीवनवृत्त-*'नवयुग निर्माता'*-के परिशिष्ट-२में इन कृतियोंकी सारिणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुत की गई है। इसके अतिरिक्त *'श्री न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्रीमद्विजयानंद सूरि'*- ले.श्रीपृथ्वीराज जैन, एवं मुनिश्री नविनचंद्रवि.म. कृत *"श्रीमद्विजयानंद सूरिः जीवन और कार्य-"*आदिमें भी प्रायः इसी सारिणी पर आधारित कृति सारिणी पेश की है-जो निम्नलिखित रूपमें प्राप्त होती है---

नं.	गद्यकृति	आरम्भ		सम्पन्न	
		समय	स्थान	समय	स्थान
१	बृहत् नवतत्त्व संग्रह	ई.स.१८६७	बिनौली	ई.स.१८६८	बड़ौत
२	जैन तत्त्वादर्श	ई.स.१८८०	गुजरांवाला	ई.स.१८८१	होशियारपुर
३	अज्ञान तिमिर भास्कर	ई.स.१८८२	अंबाला	ई.स.१८८५	खंभात
४	सम्यक्त्व शल्योद्धार	ई.स.१८८४	अहमदाबाद	ई.स.१८८४	अहमदाबाद
५	जैन मत वृक्ष	ई.स.१८८५	सूरत	ई.स.१८८५	सूरत
६	चतुर्थ स्तुति निर्णय-भा-१	ई.स.१८८७	राधनपुर	ई.स.१८८७	राधनपुर
७	चतुर्थ स्तुति निर्णय-भा-२	ई.स.१८९१	पट्टी	ई.स.१८९१	पट्टी
८	श्री जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर	ई.स.१८८८	पालनपुर	ई.स१८८८	पालनपुर
९	चिकागो प्रश्नोत्तर	ई.स.१८९२	अमृतसर	ई.स.१८९२	अमृतसर
१०	तत्त्व निर्णय प्रासाद	ई.स.१८९४	जीरा	ई.स.१८९६	गुजरांवाला
११	ईसाई-मत-समीक्षा				
१२	जैन धर्मका स्वरूप				

१३ आत्म-वीर-ग्रन्थमाला अन्तर्गत ग्रन्थांक-३ "प्रश्नोत्तर संग्रह" (डॉ.होर्नलके प्रश्नोंके उत्तर) संकलन-पू.श्री भक्तिविजयजीम.सा.; प्रका.श्री जैन आत्म-वीर सभा-भावनगर ई.स.१९१५।

१४ नवतत्त्व (संक्षिप्त)

	पद्यकृतियाँ	समय	रचना स्थान
१	श्री आत्मबावनी (उपदेशबावनी)	ई.स. १८७०	बिनौली
२	श्री आत्मानंद जिन चौबीसी	ई.स. १८७३	अंबाला
३	सत्रहभेदी पूजा	ई.स. १८८२	अंबाला
४	बीस स्थानक पूजा	ई.स. १८८३	बिकानेर
५	अष्ट प्रकारी पूजा	ई.स. १८८६	पालीताना
६	नवपदजी पूजा	ई.स. १८९१	पट्टी
७	स्नात्र पूजा	ई.स. १८९३	जंड़ियाला गुरु

८ आत्म विलास स्तवनाली ई.स. १९१३ प्रका. सुमेरमलजी सुराणा-श्री आत्मानंद सभा-भावनगर (२४ तीर्थंकर एवं विविध तीर्थस्तवन, बारह भावना, फूटकल पदादि संग्रह)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

---बृहत् नवतत्त्व संग्रह---

ज्ञानार्जनके एकमात्र लक्ष्यको लक्षितकर्ता पू. आत्मानंदजी म.सा.की संयमपालनाके सत्रहसाल पर्यंत ज्ञानाराधना पश्चात् चिन्तन-मनन रूप रवैयासे बिलोडनानन्तर प्रथम कृति-जैनधर्मके प्रमुख नवतत्त्वोंकी सैद्धान्तिक संकलना "नवतत्त्व संग्रह"-जैसे नवनीत रूपमें प्राप्त होती हैं।

"शुद्ध ज्ञान प्रकाशाय, लोकालोकैक भानवे;
नमः श्री वर्धमानाय, वर्तमान जिनेशिने।" [२]

ग्रन्थ विषयक प्ररूपणा---लोकालोकके एकमात्र सूर्यसमान, शुद्ध ज्ञानके प्रकाशकर्ता, वर्तमान जिनेश्वर श्री वर्धमान स्वामीको नमस्कार करते हुए, मंगलाचरणसे ग्रन्थका शुभारंभ होता है। जैसे ग्रन्थ शीर्षक-'*नवतत्त्व संग्रह*'-से ही फलित होता हैकि इस ग्रन्थमें कर्ताने जीव, अजीव पुण्य,-पाप, आश्रव,-संवर, निर्जरा,-बंध और मोक्ष-इन नवतत्त्वोंका आगमाधारित एवं पूर्वाचार्योंके संकलनोंसे निर्णीत तात्त्विक तथ्योंकी विस्तृत प्ररूपणा करनेका प्रयत्न किया है। आपहीने ग्रन्थकी समाप्तिके अंतिम मंगलाचरण करते हुए उल्लिखित किया है कि,

"आदि अरिहंत वीर पंचम गणेश धीर भद्रबाहु गुर फिर सुद्ध ग्यान दायके,
जिनभद्र हरिभद्र हेमचंद्र देव इंद अभय आनंद चंद चंदरिसी गायके,
मलयगिरि श्री साम विमला विज्ञान धाम ओर ही अनेक साम रिदे वीच धायके,
जीवन आनंद करो सुखके भंडार भरो आतम आनंद लिखी चित्त हुलसायके।".....
"जैसे जिनराज गुरु कथन करत धुरु तैसे ग्रन्थ सुद्ध कुरु मोपे मत धींजीयो" .....
".....गुरुजन केरे मुख थकी, लहि सो तत्त्व तरंग"। [३]

इससे स्पष्ट है कि आपकी यह रचना-प्ररूपणा-पूर्वाचार्योंके लगाये बेल-बूटोंके सुंदर सुफल हैं, साथ ही ग्रंथरचनाके काल-कारण और स्थानको इंगितकर्ता यह श्लोक भी दृष्टव्य है-
"ग्राम तो बिनोली नाम लाला चिरंजीव श्याम भगत सुभाव चित्त धरम सुहायो है।.....
संवत तो मुनि कर अंक इन्दु संख धर कार्तिक सुमास वर तीज बुध आयो है।" -[४]

संदर्भ ग्रन्थ-- इस कृति विन्यासमें आपने श्रीभगवती सूत्र, श्रीनंदीसूत्र (श्री मलयगिरि म.-कृत) नंदीसूत्रवृत्ति, श्रीअनुयोगद्वार, श्रीअनुयोगद्वारवृत्ति, श्रीप्रज्ञापना, श्रीउत्तराध्ययन, श्रीआचारांग, श्रीसमवायांग, श्रीस्थानांग, श्रीआवश्यक, श्रीआवश्यक निर्युक्ति, श्री आवश्यक भाष्य, श्रीसिद्धप्राभृत टीका, ओघनिर्युक्ति, पिंडनिर्युक्ति आदि आगम सूत्रों एवं गोम्मट सार, पंचसंग्रह, सप्ततिसूत्र, शतक कर्मग्रन्थ, पिंड़विशुद्धि, लोकनालिका बत्तीसी, ध्यानशतक, कर्मग्रन्थ, प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रन्थ रत्नोंके आलोकमें परीक्षित सत्य सिद्धान्तोंकी प्ररूपणा की गई हैं।

जीवतत्त्व--- सैद्धान्तिक एवं तात्त्विक संकलनोंके इस बृहत् ग्रन्थमें प्रमुख रूपसे जीव-अजीवादि नवतत्त्वोंके विस्तृत विवरणमें 'जीव' तत्त्वको प्रधानता दी गई है; अतः प्रथम 'जीवतत्त्व' प्रकरण द्वारा ११७ पृष्ठोंमे ७९ यंत्र एवं तालिकायें देकर (आगमिक एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शास्त्रीय उद्धरणोंको लेकर) जीवाश्रयी भेद, आयुष्य, अवगाहना, गुण स्थानक, आदि अनेक द्वारोंसे अनेक संलग्न विषयोंका उद्‌घाटन किया गया है। जीवही सर्व तत्त्वोंका आवरक है। जीवतत्त्वके कारण ही, अजीवादि आठों तत्त्वोंके परिचय प्राप्तिका अवसर उपलब्ध होता है। इस प्रकरणमें जीवके भेदादिका निरूपण किया है उसे संक्षिप्त रूपमें निवेदित करते हैं।

जीवके भेद---चार गति आश्रयी जीवके ५६३ भेद बताये हैं- नारकीके-१४ (पर्याप्ता-७+ अपर्याप्ता-७); तिर्यंच-४८ (एकेन्द्रिय---२२+विकलेन्द्रिय-६+तिर्यंच पंचेन्द्रिय-२०); मनुष्य-३०३ (ढ़ाईद्वीपके सर्वक्षेत्रोंके-१०१ प्रकारके १०१ गर्भज पर्या.+१०१ गर्भज अपर्या.-+१०१ सम्मूर्च्छिम); देव-१९८ (भुवनपति-व्यंतर-ज्योतिष्क-वैमानिक-कुल-९९ पर्या.-+९९ अपर्या.)

संख्या---प्रत्येक दंड़कके कितने जीव? (वनस्पतिकाय-अनंत, मनुष्यके असंख्यात अथवा संख्यात और अन्य जीव असंख्यात) इसका निरूपण किया है।

जीवोंकी गति-आगति, वृद्धि-हानि-अवस्थिति, अवगाहना, स्थिति (आयुकाल), चार कषाय स्वरूप; योग-१५---(मनयोग-४, वचनयोग-४, काययोग-७); *क्रिया*-सावद्य क्रियासे कर्मबंधका स्वरूप, *लेश्या*-(जीवके परिणाम)-लेश्याओंके वर्ण-गंधादि द्वारोंसे छ लेश्याओंका निरूपण; *स्थान*-जीवके स्वस्थान, उपपात-समुद्‌घात आदिके स्थान-समुद्‌घातके सात प्रकार, अधिकारी जीवोंकी जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति; *संज्ञा*--आचारांगाधारित सोलह संज्ञा एवं आहारादि चार संज्ञा; *सांतर-निरंतर*-एक समयमें किस गतिमें कितने जीवोंकी एक साथ उत्पत्ति; *शरीर*-पांच प्रकारके-उसके स्वामी, संस्थान, अवगाहना, पुद्‌गल चयन, परस्पर संयोगादि; *योनि*-८४लक्ष जीव-योनिमेंसे किस गतिमें किन जीवोंकी कितनी योनियाँ हैं-इसकी विवेचना एवं संवृत्त-विवृत्त आदि योनियोंके बारह भेद; *संघयण*-छ प्रकारके संघयणका स्वरूपोल्लेख-स्वामी और संघयण रहित जीवोंका वर्णन; *संस्थान*-छ प्रकारके संस्थानोंका स्वरूप-रचना-स्वामी; *उत्पत्ति*---विभिन्न करणीके कर्ता जीवकी उत्पत्ति; *आहार-अनाहार*--जीव कहाँ-कब आहारी या अनाहारी होते हैं। *जीवका सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, मिश्र या औघिक पना*, आदिका परिचय देते हुए ज्ञानका वर्णन किया हैं। *ज्ञानद्वार*--जीवमें ज्ञानाज्ञानकी स्थितिकी संभावना, पांचज्ञानके भेदोपभेद (मतिज्ञानके कुल-२८ अथवा ३३६ उपभेद और नव द्वारसे विवरण; श्रुतज्ञानके चौदहभेद, अवधारणके आठ और शास्त्र श्रवण विधिके सात प्रकार; अवधिज्ञानके सामान्यतः छभेद और असंख्य या अनंत भेद भी होते हैं उसका पंद्रह द्वारोंसे विवरणान्तर्गत नामादि सात प्रकार, जघन्य-उत्कृष्टक्षेत्र, संस्थान, अनुगामी-अवस्थित-चल अवधि, तीव्र-मंदता, प्रतिपाति-अप्रतिपाति अवधिके लक्षण, ज्ञान-दर्शन-विभंग द्वारा विभिन्न जीवोंके अवधि ज्ञानमें सादृश्य-वैशिष्ट्य, सर्व या स्वल्पता, संबद्ध-असंबद्ध अवधिज्ञानीका क्षेत्र, गत्याश्रयी जीवोंके अवधिकी लब्धि और कुल अट्‌ठाईस लब्धियोंका स्वरूप; मनःपर्यवज्ञानके दोभेद-ऋजुमति, विपुलमति-उसके अधिकारी; और केवलज्ञानका वर्णन), 'अनुयोग द्वार' और 'गोम्मटसार' आधारित पल्योपम-सागरोपमका स्वरूप, वर्गशलाका, संख्यात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

-असंख्यात-अनंतका स्वरूप निरूपण किया गया हैं। *इन्द्रिय द्वार*---पांच इन्द्रियके बाह्याभ्यन्तर भेदोंके संस्थानादि द्वारोंसे विवेचन और द्रव्येन्द्रिय या भावेन्द्रियोंकी लब्धि-उपयोगादिकी स्पष्टता *श्वासोच्छ्वास, द्रव्यप्राण-भावप्राणके भेद, आठ प्रकारकी आत्मा, पांच प्रकारके देवोंकी गति-आगति*-विकुर्वणा-लब्धि-कायस्थिति-अवगाहनादिका वर्गीकरण, *पर्याप्ति*-(आत्मिक शक्ति) पर्याप्त-अपर्याप्तके भेदोंका वर्गीकरण, पर्याप्ति प्राप्तिकी योग्यता, *आहार*---सचित्त-अचित्त-मिश्र और ओज-रोम-कवल एवं आभोग-अनाभोग तथा मनोज्ञ-अमनोज्ञ आदि आहारके भेद, गति---स्थानाधारित आहार स्वरूप और अंतमे मिथ्यात्व-सास्वादन-मिश्र-अविरत सम्यक्दृष्टि-देश विरति-प्रमत्त संयत-अप्रमत्तसंयत-निर्वृत्ति बादर (अपूर्वकरण)-अनिर्वृत्ति बादर (अनिर्वृत्तिकरण)-सूक्ष्मसंपराय, -उपशांत मोह,-क्षीण मोह-सयोगी केवली-अयोगी केवली-इन चौदह गुणस्थानक (अनादि अनंतकालीन निगोदके अव्यवहार राशिमें जीवके अत्यधिकतम निकृष्ट स्वरूपसे संपूर्ण शुद्ध निर्मलतम स्वरूप पर्यंत क्रमसे विशुद्धतर गुणप्राप्ति) पश्चात् जीवकी स्थिति-स्थानके विशिष्ट वर्णन, भेदोपभेद, स्वरूप, स्वामी-स्वामीके लक्षण या गुणादिका वर्णन करते हुए उन गुणस्थानकाश्रयी जीव, योग, उपयोग, ज्ञान, लेश्या, हेतु, भाव, कर्म, प्रकृति, उसके बंध-हेतु-उदयादि नानाविध जीवके आनुषंगिक विषयोंका १६२ द्वारोंसे, ७९ यंत्रोंसे एवं पंचसंग्रह, कर्मग्रन्थादि अनेक शास्त्रोंकी शास्त्रीय साक्षियोंके अवलम्बनसे सूक्ष्म निरूपण करके इस प्रकरणको पूर्ण किया है।

अजीवतत्त्व---विभिन्न अंग-पुद्गल परमाणुके भंगादिको स्पष्ट करनेवाले इकतीस चित्रोंसे सुशोभित द्वितीय अजीवतत्त्व प्रकरणका प्रारम्भ अजीवके मुख्य भेदोंके यंत्र-वितरणसे किया गया है। जिसके अंतर्गत धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल-इन पाँच अजीव तत्त्वोंका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और गुण-इन पाँच द्वारोंसे सामान्य परिचय करवाया गया है। तत्पश्चात् प्रथम तीन अजीव द्रव्योंको छोड़कर शेष दोका विशिष्ट विवरण दिया है। जिसमें पुद्गलास्तिकायके स्वरूप निरूपणमें स्कंध-देश-प्रदेश-परमाणुके संबंधमें सत्पद, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अंतर, भाग, भाव, अल्पबहुत्वादि द्वारोंसे प्रथम (आदि-मध्यम-अंतवाले) आनुपूर्वी, (आदि-मध्य-अंत रहित) अनानुपूर्वी एवं (केवल आदि-अंतवाले-मध्य रहित)अवक्तव्य स्कंध स्वरूपको स्पष्ट किया है। व्यवहार नयसे लोकस्वरूपका (चौदह राजलोकके प्रतर-प्रदेशाश्रयी संपूर्ण स्वरूपाकृति लोक और अलोकमें श्रेणियाँ; दश दिशायें-उनका उद्भव-संस्थान-आयाम-द्रव्य-प्रदेशादि द्वारोंसे स्पष्टीकरण; लोक-अलोक-लोकालोकके चरम-अचरम-चरमाचरम खंडोंका स्वरूप निरूपण) परमाणु पुद्गलके एक-दो-तीन आदि प्रदेश आश्रयी छव्वीस भंगोंका (प्रकार) भिन्न भिन्न चित्राकृतिसे आलेखन; क्षुल्लक प्रतर, रुचक प्रदेशादिको समझाते हुए जीव-कर्म सहित संसारी, कर्म रहित सिद्ध---और अजीवकी स्थिति; दशों दिशा और लोकमें अजीवके चरमांतोंका स्पर्श-इन सबको यंत्र-तालिका-चित्राकृतियोंसे स्पष्ट किया है। पुद्गलके सद्भाव-असद्भावके भंग, द्रव्य-द्रव्यदेशके भंग, परमाणु पुद्गलकी प्रदेश स्पर्शना पुद्गलके संस्थान स्वरूपके चित्र एवं यंत्रसे आलेखन, जीवके मरणोपरान्त अन्य स्थानमें उत्पन्न होनेके लिए अपांतराल गतियोंके ऋजु-वक्रादि प्रकारोंको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती सूत्राधारित विवरित किया है।

तत्पश्चात् पांचो अस्तिकायके परस्पर स्पर्शनादिकी प्ररूपणा हुई है। परमाणु एवं पुद्गल स्कंधोंके अल्प-बहुत्व, चल-अचल स्थिति, अंतर, कालमान, संख्यात-असंख्यात-अनंतादिका स्वरूप यंत्रोंसे स्पष्ट करते हुए अंतमें कालकी अपेक्षा अल्प-बहुत्व; षट्-द्रव्यके नित्यानित्य, पर्याय, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संस्थान एवं पुद्गलके तीन प्रकारके बंधोका स्वरूप दर्शाया है।

पुण्यतत्त्व---यंत्र एवं समवसरणके चित्र सहितपुण्य कर्मबंधके नव एवं कर्मविपाक याने पुण्य भोगनेके बयालीस प्रकार नाम-निक्षेपसे प्रस्तुत करके उत्कृष्ट पुण्य प्रकृति-तीर्थंकर नामकर्म-की स्थितिका स्वरूप (यहाँ समवसरणका परिचय)और उनसे कम पुण्यवान बारह चक्रवर्ती, नव-नव प्रतिवासुदेव, वासुदेव, बलदेवादिका परिचय देतेहुए इस प्रकरणको पूर्ण किया है।

पापतत्त्व---की प्ररूपणा करके केवल १८ प्रकारसे बंध और ८२ प्रकारसे विपाकका उल्लेख किया है।

आश्रव तत्त्व---अर्थात् पाप-पुण्य कर्मका आत्माके प्रति आगमन-क्षीर नीरवत् एक होना, उनका क्रियमाण होना-कर्मोंको आकृष्ट करके आश्रव करवानेवाली क्रियायें-व्यवहारमें 'काईया' आदि २५ क्रियाओंका स्वरूप, कर्मग्रन्थाधारित आश्रवके ५७ कारण, श्रीस्थानांग सूत्राधारित दस असंवरके स्थान, नवतत्त्वाधारित बयालीस, प्रकारोंके निरूपणके साथ आश्रव तत्त्व सम्पूर्ण किया गया है। *संवरतत्त्व*---संवर अर्थात् रोकना। आत्म परिणतिसे आकृष्ट कर्माश्रवको जिस विधि-आचारसे प्रतिरोधित किया जाता है, उस क्रिया-विधिको 'संवर' अभिधान दिया है। इसके विविध प्रकारान्तर्गत षट्निर्गन्थ, पांच चारित्र, पाँच समिति तीन गुप्ति, बारह भावना; कर्मसंवरके प्रधान कारणभूत प्रत्याख्यानके दसभेद--स्वरूप-आगार-छशुद्धि--आहार-अनाहार,--विगय-महाविगय, अभक्ष्य द्रव्य-अनंतकाय,--श्रावकके बारह व्रत एवं प्रत्येकके आनुषंगिक भंगादिको विवरण सहित पूर्ण किया है।

निर्जरातत्त्व---'जृ' अर्थात् झर जाना-हानि होना-अतः व्युत्पत्त्यार्थ होगा-अतिशय हानि होना- अर्थात् आत्मासे बद्ध कर्म पुद्गलोंका अतिशय क्षीण होना वह 'निर्जरा' कहलाता है। विशेषतः कर्म निर्जराका प्रमुख सहयोगी तप होनेसे इसके बारह भेद कियेगये हैं-जो बारह भेद तपके किये गये हैं। यथा-छ भेद बाह्य--अनशन, उनोदरिका, भिक्षाचरी (वृत्तिसंक्षेप), रस परित्याग, कायक्लेश, संलीनता; छ भेद अभ्यंतर--विनय, वैयावृत्य, ध्यान, स्वाध्याय, प्रायश्चित्त और व्युत्सर्ग(कायोत्सर्ग)--निश्चित किये गये हैं। इनमें अति महत्त्वपूर्ण-विशिष्ट भेद 'ध्यान'की प्ररूपणा श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण विरचित 'ध्यान शतक' ग्रन्थाधारित आर्त-रौद्र-धर्म-शुक्ल-चारों प्रकारके ध्यानके भेदोपभेदका स्वरूप, ध्यानके स्वामी, लक्षण, लिंग, लेश्या, फल आदिका सवैया ईकतीसा एवं दोहा छंदमें विवेचन किया गया है।

बन्धतत्त्व---सर्वबंध-देशबंधकी स्थिति, पांच शरीरके सर्वबंध-देशबंध-अबंधक स्थिति, दो बंध बीच अंतर और अल्प-बहुत्त्व, बंधके चारभंगोका आठकर्म एवं सर्व प्रकारके जीवाश्रयी, त्रिकालाश्रयी-भवाश्रयी स्वरूप (२८ यंत्रो द्वारा); निरुपक्रम और सोपक्रम आयुष्य, आयुष्य समाप्त होनेके भयादि अध्यवसायादि सात प्रकार (कारण); वेद-संयम-दृष्टि-दर्शन-ज्ञान-भव्याभव्य-पर्याप्तापर्याप्ता-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगोपयोग-आहारानाहार-सूक्ष्म बादर चरमाचरमादि पचास द्वारोंसे अष्टकर्मबंधका निश्चय अथवा भजना (होयानहीं) का स्वरूप; गुणस्थानकाश्रयी कर्मबंध-गुणस्थानक और जीवभेदाश्रयी कर्मप्रकृतिके उदय-सर्वगुण स्थानक वर्ती सर्व जीवोंकी कर्मसत्ता-जघन्य और उत्कृष्ट प्रकृति, स्थिति, रस और प्रदेशबंध-चारोंके अर्थ, दृष्टान्त, कारण, भेदसंख्या, प्रमाण, बंधस्थान; भूयस्कार-अल्पतर-अवस्थित-अवक्तव्य बंधका आठ कर्मोंका स्वरूप (यंत्र द्वारा), कर्म बंध हेतुओंका वर्णन करके अंतमें पृथक् पृथक् गुणस्थान आश्रयी, मिथ्यात्वादि पाँच कारणसे सांयोगिक आदि भंगोका विवरण करते हुए 'पंचसंग्रह' आधारित युगपत् बंध हेतुको स्पष्ट किया गया है। सर्व गुण स्थानकके विशेष बंध हेतु संख्या ४६,८२,७७० का विवरण करके बंध तत्त्व प्रकरणकी इतिश्री की गई है।

मोक्षतत्त्व-इसके अंतर्गत चौदह गुणस्थानक श्रेणिको लेकर निर्जरा एवं काल द्वारसे अल्प-बहुत्व उपशम श्रेणिका स्वरूप और क्षपक श्रेणिका स्वरूप; क्षेत्र-काल-गति-तीर्थ-लिंग-चारित्र-बुद्ध-ज्ञान-अवगाहनादि द्वारोंसे द्रव्य परिमाण (जीव) और निरंतर सिद्ध होनेके यंत्रको और सांतर सिद्ध होनेके स्वरूपको-अतः अनंतर और परंपर सिद्ध स्वरूप लिखते हुए अल्प बहुत्वकी प्ररूपणा- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तीर्थादि द्वारोंसे की है। अंतमें अधोमुख, उर्ध्वमुख (कायोत्सर्ग), वीरासन, ऊकडूआसन, न्यूनासन, पासे स्थित, उत्तानस्थित, सन्निकर्षादि द्वारोंसे अल्प-बहुत्वकी प्ररूपणा करते हुए अंतिम 'मोक्षतत्त्व' प्रकरणका समापन किया है।

निष्कर्ष---इस प्रकार सम्यक्त्वको दृढ़ीभूत कर्ता, समस्त जैन सिद्धान्तके साररूप जीवाजीवादि नवतत्त्वके संपूर्ण स्वरूपको-आगम एवं पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थाधारित विविध यंत्र, तालिकायें, चित्र आदि द्वारा विश्लेषित करके, आगमादिके अनधिकारी, शास्त्र-सैद्धान्तिक ज्ञानसे अपरिचित-बालजीवके उपकारार्थ, -इस ग्रन्थमें सरल भाषामें विवरित किया गया है। अतः जैन दर्शनके सिद्धान्त---ज्ञानस्वरूप जिज्ञासुओंके लिए अत्युपयोगी यह ग्रन्थ रचना करनेका ग्रन्थकारका पुरुषार्थ सफल हुआ है।

---जैन तत्त्वादर्श---

"स्यात्कार मुद्रितानेक सदसद्भाववेदिनम् । प्रमाणरूपमव्यक्तं भगवंतमुपास्महे" ।

ग्रन्थ-परिचय-

संविज्ञ साधु-जीवन अंगीकृत श्री आत्मानंदजी म.सा.ने चिरकाल प्रेरणादायी उपदेश स्वरूपको ग्रथित करके जैन समाज पर महदुपकार किया है। भगवंतकी उपासना रूप मंगलाचरण करते हुए *'जैन तत्त्वादर्श'* ग्रन्थमें देव-गुरु-धर्म-तत्वत्रयीका स्वरूपालेखन करते हैं।

छसौ पृष्ठ एवं बारह परिच्छेदमें समाहित अनेक जैन-जैनेतर ग्रन्थोंके अध्येता दिग्गज विद्वद्वर्य सूरिदेव इस प्रसिद्ध ग्रन्थालेखनका आशय स्वयं स्पष्ट करते है- "संस्कृत-प्राकृतके अभ्यास के लुप्त प्रायः होने से, उन भाषाओंमें रचित अद्भूत एवं उत्तम ग्रन्थ विषयक ज्ञान भी अदृश्य होता जा रहा है। अतः उस महान ज्ञानालोकसे वर्तमानमें भव्य जीवोंको अवबोधित करने हेतु; अंग्रेजी-फारसी आदि नूतन विद्यार्जनके कारण अनेक शंका-कुशंकायें प्रचलित हुई हैं - उनके नीरसन हेतु; स्वकर्म निर्जरा हेतु इस ग्रन्थालेखनका प्रयास किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।" इस ग्रन्थराजको प्रायः हम *'जैन धर्मकी गीता'* कह सकते हैं, जिनमें तत्वत्रयीके प्रायः संपूर्ण सारको सबल एवं सफल रूपमें समाविष्ट किया है।

प्रथम परिच्छेद :- सर्व प्रथम देवतत्त्वकी प्ररूपणा की गई है। जैन धर्मानुसार, नामोल्लेख एवं विशिष्ट गुणाधारित सुदेवके स्वरूपकी प्ररूपणा करते हुए उन अरिहंत-वीतराग-परमेश्वरकी बारह गुणयुक्तता, अठारह दोषसे मुक्तता, चौतीस अतिशय, पैंतीस वाणीसे अंलकृतता दर्शायी है। श्री हेमचंद्राचार्यजी म. कृत 'अभिधान चिंतामणी' ग्रन्थाधारित उनके प्रमुख गुणाश्रित चौबीस नाम वर्णन करके गत उत्सर्पिणीकी अतीत चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरों के नाम और वर्तमान चौबीसीके तीर्थंकरोंके सामान्य एवं विशेषार्थ युक्त नामांकन करके अपनी औत्पातिकी बुद्धिका चमकार दिखाया है। तदनंतर अरिहंतोंके मातापिताके नाम (सार्थ) कुल-वर्ण-लांछन आदि बावन द्वार युक्त तालिकासे वर्तमान चौबीसीके चौबीस तीर्थंकरोंका परिचय दिया गया है।

अंतमें वर्तमान चौबीसीके नव से पंद्रह तीर्थंकरोंके पश्चात् द्वादशांगी और चतुर्विध संघ रूप जिनशासनका व्यवच्छेद, उन विरहकालमें उद्‌भवित अनेक मत-मतांतर और उनके कपोलकल्पित शास्त्र (नूतन-वेद), मूल आर्यवेदोंका व्यवच्छेद-आदि अनेक तथ्योंके विवरणके साथ ही प्रथम परिच्छेदका समापन किया गया है।

द्वितीय परिच्छेदः- इस परिच्छेदमें बालजीवों द्वारा अज्ञान जन्य बुद्धिसे, स्वर्गलोकाके देवोंकी भगवान न होने परभी परमेश्वरके गुणोंका आरोपण करके उन्हें देवरूप मान्य 'कुदेव'के स्वरूपका वर्णन किया है। इनका स्वरूप 'सुदेव'से विपरित-अठारह दोष सहित एवं बारह गुण रहित-देव, कुदेव माने जाते हैं। *कुदेवका बाह्य स्वरूप*---इन रागी-द्वेषी-असर्वज्ञ देवोंका विशिष्ट बाह्य लक्षण स्वरूप इस प्रकार है। अपने पार्श्वमें रागका प्रतीक स्त्री, वैर-विरोधादिसे भयनिवारक शस्त्र, इष्ट प्राप्त्यार्थ जपमाला, असर्वज्ञता सूचक अक्षसूत्र, कमंडल, भस्म लगाना, धूणी तापना, नर्तनादि कुचेष्टा करना भांग-अफिम, मदिरा, मांसादिका सेवन, पशुसवारी रूप परपीडन करना, नाच-गान हास्य-रुदनादिमें आसक्त, रिझनेपर आशीर्वाद और खीझने पर अभिशाप देना आदि युक्त (स्वयं दुष्टभावके बंधनमें फंसे होनेके कारण) ये कुदेव, अन्योंको उपरोक्त दुष्ट भावसे मुक्त, कर्मरहित, मोक्षपद-प्रापक बनाकर निर्वाण-पद प्राप्ति, कैसे करा सकते है?

ईश्वरकी ईश्वरताकी सिद्धि--तत्पश्चात् "सर्वज्ञ, वीतराग, अशरीरी, ईश्वर---जगत्कर्ता, विश्व रचयिता या विश्व नियंता, कर्म फल प्रदाता, एक अद्वैत ब्रह्म स्वरूप, विश्व व्यापक, सर्व शक्तिमान, वेदरचयिता नहीं हो सकता और उनके वैसे स्वरूप माननेसे ईश्वरको अनेक कलंक प्राप्त होते हैं"-इस विषयको अनेकानेक प्रमाणिक-ठोस-युक्तियुक्त तर्कों द्वारा विश्लेषित करके सिद्ध किया कि, निर्विकार, निरंजन, कर्म निवृत्त, कृतकृत्य, ईश्वरने न कभी सृष्टि रचना की थी-न कभी करेगा -न सांप्रत सृष्टि भी ईश्वरकी रचना है। सृष्टिके जीव अनादिकालसे स्वकर्मानुसार लब्धि-शक्ति-बुद्धि प्राप्त करते हैं, और प्रवाहित संसारके प्रवाह पर डोलते-खेलते-भ्रमण करते रहते हैं एवं सर्वथा कर्मक्षय पर्यंत अनंतकालमें ऐसे ही जीवनक्रम---जन्म मरण-करते रहेगें जैसे वर्तमानमें हैं। अतएव ईश्वरको जगत्कर्ता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अगर मान भी लें, तो निश्चित उनका ईश्वरत्व नष्ट हो जायेगा---न वह निर्विकार रह सकेगा न निरंजन, न कर्म निवृत्ति प्राप्त होगी न कृतकृत्यता, न वीतरागता रहेगी न सर्वज्ञता।

आत्मा और कर्म--अतएव "न ईश्वर जगत्कर्ता है, न एक अद्वैत परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रुप"। जीव कर्म करनेमें और भोगनेमें स्वतंत्र है। कर्म भुक्तानेके लिए उसे किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं होती, लेकिन निमित्त प्राप्त होनेपर स्वयं भोक्ता बन बैठता है। जीवकी शरीर रचना, वर्णादि रूप और स्वरूप, वेदना, लाभालाभ, ज्ञानाज्ञान, मोहादि सर्व अष्टकर्मवश ही है। सृष्टिके प्रत्येक कार्यके घटित होनेमें काल, स्वभाव, नियति (भवितव्यता) कर्म और जीवका पुरुषार्थ-इन पांच कारणोंकी एक साथ एक समयमें संयोग प्राप्ति आवश्यक है; एककी भी न्यूनता कार्यको फलीभूत होने नहीं देती।

निष्कर्ष---अंततः कुदेवको मानना मिथ्यात्व है-पत्थरकी नावारूढ समुद्र पार होने सदृश है। अतएव कुदेवोंको परमेश्वर-परमात्मा-वीतराग-अर्हंतरूप मानकर पूजा-आराधना-उपासना- न करनी चाहिए।

तृतीय परिच्छेदः- *गुरुतत्त्व स्वरूप निर्णय*---इस परिच्छेदमें सुगुरुका स्वरूप निरूपण किया है। "महाव्रतधरा धीरा, भैक्ष्यमात्रोपजीविनः सामायिकस्थ धर्मोपदेशका गुरवो मतः"

अर्थात् निष्कलंक, निरतिचार, अहिंसादि पंचमहाव्रतधारी; कष्ट-आपत्ति आदिमें भी व्रतको कलंकित न करके धैर्यधारी; चारित्रधर्म और शरीर निर्वाहके लिए बयालीस दोष रहित माधुकरी-भिक्षावृत्तिधारी (बिना धर्मोपगरणके किसी प्रकारका परिग्रह न रखें); राग-द्वेष रहित, मध्यस्थ परिणामी, और आत्मोद्धारक रत्नत्रय रूप, एवं स्याद्वाद-अनेकांत रूप सर्वज्ञ अरिहंतादिकी प्ररूपणानुसार भव्य जीवोंके उपदेशक ऐसे लक्षणधारी गुरुओंके गुण लक्षण वर्णित करके उनके पालने योग्य पाँच महाव्रत (प्राणातिपात विरमण, मृषावाद विरमण, अदत्तादान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण)का तथा उनकी प्रत्येककी पाँच याने पचीस भावनाका स्वरूप विशद रूपमें वर्णित किया है। तदनन्तर सर्वविरति चारित्रधारी साधुयोग्य, चारित्रके सहयोगी एवं चारित्र निर्वाहके दृढ़ संबल रूप प्रयोजन या प्रसंगानुसार आराध्य 'करणसित्तरी' और निरंतर आराध्य 'चरणसित्तरी' दोनोंके ७०+७०=१४० भेदोंका विस्तृत रूपमें विवरण करते हुए दोनोंका परस्पर अंतर स्पष्ट किया है।

निर्ग्रन्थके भेद---'जीवानुशासन' सूत्रकी वृत्ति, 'निशीथ' सूत्रकी चूर्णि, 'भगवती सूत्र'की संग्रहणी आदि आगम ग्रन्थानुसार उत्सर्ग-अपवाद मार्गानुरूप वर्तमानकालमें दो प्रकारके-बकुश निर्ग्रंथपना (इसके दोभेद-दस उपभेद) और कुशील निर्ग्रंथपना (इसके भी दो भेद, दस उपभेद) ही पालन करना संभाव्य है। अतः अन्य तीन प्रकारका निर्ग्रंथपना व्यवच्छेद हो गया है। साधु जीवनमें लगनेवाले अतिचारोंकी शुद्धिके लिए प्रायश्चित हो सकता है, लेकिन, उन प्रायश्चित्तोंकी चरमसीमा-उल्लंघनकर्ता चारित्रभ्रष्ट माना जाता है। इस प्रकार सुगुरुके स्वरूप विश्लेषण करते हुए तृतीय परिच्छेद सम्पन्न होता है।

चतुर्थ परिच्छेदः---*कुगुरु स्वरूप निर्णय* - "सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशागुरवो मतः ।।"

धन-कण-कंचन-कामिनि, खेत-हाट-हवेली-चतुष्पदादि पशु-आदि अनेक प्रकारकी ऋद्धि-समृद्धिके अभिलाषी, प्राप्तिके पुरुषार्थी और रक्षामें आसक्त-सर्वाभिलाषी; भक्ष्याभक्ष्य या उचितानुचित सर्व प्रकारके आहार-पानादिका सेवनकर्ता-सर्वभोजी; कुगुरुत्वके असाधारण कारणरूप अब्रह्मसेवी-स्त्रीरूप परिग्रहधारी एवं अन्य ऋद्धि समृद्धिके परिग्रहधारी-सपरिग्रहा; सर्वज्ञ-केवली भाषित धर्मसे विपरित, अन्यथा-वितथ धर्मोपदेशका-मिथ्यामति लक्षणोंवाला कुगरु होता है ।

पाखंडीके ३६३ मत--कुगुरुके सामान्य स्वरूपालेखन पश्चात् मिथ्या उपदेशकके तीनसौ त्रेसठ भेदोंका (क्रियावादी के १८०+आक्रियावादीके ८४+अज्ञानवादीके ६७+विनयवादीके-३२ = ३६३) सविस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हुए और इन सभीको मिथ्यात्वी माननेके कारणमें उनके एकांतवादी होनेका दर्शाते हुए इन सभीकी एकान्तिकताको न्यायादि-नय प्रमाणकी अनेक तर्कसंगत युक्तियोंसे खंड़ित करके रोचक एवं ज्ञानप्रद विश्लेषण किया है।

एकान्त दर्शनोंका स्वरूप और अनेकान्तकी स्थापना---तदनन्तर बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, प्राचीन-निरीश्वर सांख्य और अर्वाचीन-सेश्वर सांख्य, पूर्व और उत्तर मीमांसक-ये पांच एकान्तिक, और अनेकान्तिक जैनदर्शन---ये षट् आस्तिक दर्शन; एवं कापालिक, वाममार्गी, कौलिक, चार्वाक आदि धर्माधर्म-आत्मा-कर्म-मोक्षादि न माननेवाले तथा चारभूतोंसे ही चैतन्योत्पत्ति-उसमें ही विलीन होना माननेवाले- नास्तिक दर्शनोंके स्वरूप अनेकशः रूपमें प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् उपरोक्त पाँच आस्तिक दर्शनोंके पारस्परिक आंतरिक विरोधोंका निर्देशन और एकान्तवादी दर्शनोंके विकलांग सिद्धांतोका पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष स्थापित करके नय-प्रमाणके न्यायिक तर्ककी तुला पर युक्तियुक्तासे विश्लेषित करके इनसे व्युत्पन्न अनर्थोंको व्यक्त किया है-यथा-बौद्धोंका क्षणिकवाद; नैयायिकोंका ईश्वर जगत्कर्तृत्व-जगत् नियंता और सोलह पदार्थ; वैशेषिकोंके छतत्त्व और नवद्रव्य-दोनोंका मोक्ष स्वरूप; सांख्योंका जगदुत्पत्ति-आत्मा व प्रकृति आदिका स्वरूप; मीमांसकका अद्वैतवाद एवं जैमिनियोंकी वेद विहित याज्ञिकी हिंसाको हिंसा न मानना इन सभीकी मान्यताओंका नीरसन करके अंतमें सदाबहार-विजयी अनेकान्तको स्थापित करनेका सफल प्रयत्न किया है। इस प्रभावोत्पादक विश्लेषणके पठन-पाठन और अध्ययन-चिंतन-मननसे कईं विद्वद्वर्य श्रेष्ठ पंडितोंको भी अपने निर्णित निश्चयोंमें पुनः परामर्श करनेके लिए बाध्य होना पडा है। प्रत्यक्ष प्रमाण है परिव्राजक श्रीयोगजीवानंद स्वामी परमहंसजीका पत्र, जो 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' -पृ-५२६ पर उद्धृत है। तदनन्तर नास्तिक चार्वाकादि दर्शनोंकी प्ररूपणा करके उनके अयुक्त सिद्धान्तोंका भी निरसन करते हुए, 'चैतन्य--भूतोंके कार्य या धर्मसे नही; आत्मा से संलग्न है"--- इसकी पुष्टि की है।

निष्कर्ष-इस तरह इस परिच्छेदमें कुगुरुके लक्षण, मिथ्या उपदेशक स्वरूप, भेदोपभेद सैद्धान्तिक-मिथ्या उपदेशोंकी एकान्तिकतादिकी विवक्षा करते हुए षट्दर्शनका विस्तृत स्वरूप प्रस्तुत करके उन एकान्तिक दर्शनोंका खंडन और शुद्ध अनेकान्तिक दर्शनके प्ररूपक एवं उपकारी, आत्मिक हितेच्छुं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षमार्गाराधकादि गुणधारीकों शुद्धो-पदेशक रूपमें सिद्ध करनेका सफल प्रयत्न किया गया है तथा उन सुगुरुओंकी सेवना-उपासना करनेकी ओर इंगित किया है।

पंचम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (नवतत्त्व) स्वरूप निर्णय---*

जो दुर्गतिमें जाते हुए जीवोंको धारें याने दुर्गतिमें जानेसे बचायें वह होता है धर्म। ऐसे पारलौकिक धर्मका स्वरूप तीन प्रकारका-स.ज्ञान, स.दर्शन, स.चारित्र-जिनको ग्रन्थकारने पांचसे दस-छ परिच्छेदोमें अति विशद विश्लेषण और विवरणके साथ निरूपित किया है। *सम्यक् ज्ञान*---इसके अंतर्गत नय प्रमाण द्वारा जो यथावस्थित प्रतिष्ठित है-ऐसे जीवाजीवादि नवतत्त्व, चौदह गुणस्थानक आदिका यथार्थ अवबोध कराया गया है। इस परिच्छेदमें अति संक्षिप्त रूपमें ('बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थके अतिरिक्त स्वरूप युक्त) 'नवतत्त्व' स्वरूप प्रस्तुत किया है। जीव---आत्माके लक्षण, स्वरूप; आत्माका कर्मबंधक-भोक्ता-निर्जरासे मोक्ष प्रपाक स्वरूप; स्वशरीर व्यापी, नित्यानित्य रूपी आत्माके जघन्य चौदह, मध्यम पांचसौ त्रेसठ, उत्कृष्ठ अनंतभेद दर्शाकर, आधुनिक शिक्षितोंके एकेन्द्रियमें चैतन्य विषयक तार्किक प्रश्नोंके उत्तररूपमें पृथ्वीकाय, अप्काय (वैज्ञानिक अन्वीक्षण अनुसार दृश्यमान ३६५२७ जीव-दोइन्द्रिय है-दृश्यमान जलही अप्कायिक जीवोंके शरीर-कलेवरके समूह रूप होता है), तेउकाय (जिनके कलेवर समूहसे अग्नि दृश्यमान होता है), वायुकाय---चारोंमें चैतन्य-जीवत्वकी अनुभूतिकी सिद्धिको तार्किक-युक्तियुक्त-प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे प्रस्तुत करके विशिष्ट कसौटी-छेद्य-भेद्य-उत्क्षेप्य-भोग्य-ध्रेय-रसनीय-स्पृश्यादि-सेभी इनमें सजीवत्वको प्रमाणित किया है। जीवोंके शेष भेदोंके वर्णनके लिए 'बृहत् नवतत्त्व संग्रह'-ग्रन्थकी और इंगित किया है। अजीव-धर्मास्तिकायादि पांच प्रकारके अजीवका स्वरूप संक्षेपमें प्रस्तुत किया है। पुण्य---पुण्य प्राप्ति करवानेवाले नव अनुष्ठान और विपाकोदयके बयालीस प्रकार दर्शाये हैं। पाप--आत्मीय आनंदशोषक पापकर्मबंधके १८ प्रकार और विपाकोदयके बयासी प्रकार पेश किये हैं। आश्रव-पुण्य और पाप-दोनों प्रकारके कर्मोंका पाँच द्वारोंसे आत्माकी ओर आकृष्ट होना आश्रव कहलाता है जो बयालीस प्रकारके होते हैं। संवर--इन आश्रवोंका निरोधक, वह है संवर, जो सत्तावन भेद युक्त होता है निर्जरा--आठ कर्मोंकी आत्मासे निर्जरणा करानेवाली निर्जरा-तपसदृश-बारह प्रकारसे मानी गयी है। बंध--कर्मोंका बंध चार प्रकारसे-प्रकृति, स्थिति, अनुभाग (रस) और प्रदेश; तथा स्पृष्ट-बद्ध-निधत्त-निकाचित चार प्रमाण रूप आत्मासे संलग्नता; आत्मा और कर्म-दोनोंकी अनादि अपश्चानुपूर्वीता; एवं कर्मबंधके सत्तावन उत्तरभेदोंका स्वरूप वर्णित किया है। मोक्ष--सर्व कर्मक्षय हो जानेसे जीवका संपूर्ण निर्मल स्वरूप ही मोक्ष कहलाता है मोक्ष ही जीवका धर्म है, और मुक्त सिद्धात्मा धर्मी है। यहाँ सत्पद प्ररूपणादि बारह एवं द्रव्यादि नव द्वारोंसे सिद्धोंका स्वरूप विवरित किया गया है।

निष्कर्ष-इस तरह नवतत्त्वोंकी विवेचना करके इस परिच्छेदकी पूर्णाहुति की गई है।

षष्ठम् परिच्छेदः--*धर्मतत्त्व (स. ज्ञानांतर्गत गुणस्थानक) निर्णय----*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'बृहत् नवतत्त्व संग्रह' ग्रन्थमें प्रत्येक गुणस्थानकके अधिकारी जीवोंके गुण-लक्षणादिका वर्णन प्राप्त होता है, जबकि, यहाँ प्रत्येक गुणस्थानकका स्वरूप-लक्षणादिका विवेचन किया गया है। इस परिच्छेदमें सिद्धिसौधके शिखरारूढ होनेके लिए गुणोंकी चौदह श्रेणियाँ हैं-उन श्रेणियों पर पगधरण रूप गुणोंसे गुणांतरकी प्राप्तिरूप स्थानको-भूमिकाको गुणस्थानक कहते हैं। गुणस्थानकका स्वरूप, प्राप्तिक्रम, गुणस्थानक धारककी योग्यायोग्यताका स्वरूपादि संक्षिप्त फिरभी स्पष्ट-सुरेख-सरल एवं सुंदर निरूपण किया है। इन गुणस्थानककी प्राप्ति साधक जीवनकी कसौटीके फलरूप मान सकते है।

(१) मिथ्यात्व--अर्थात् विपरीत आत्मीक परिणाम। इसके दो प्रकार (i) अनादि अनाभोगिक (अव्यवहार राशिवर्ती जीवोंका अव्यक्त) मिथ्यात्व और (ii) (व्यवहार राशिके संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवोंका व्यक्त मिथ्यात्व) आभिग्राहिक आदि चार मिथ्यात्व। द्वितीय प्रकारके चार मिथ्यात्व-अवगुण होने पर भी-बुद्धिजन्य होनेसे उनमें ज्ञानांशके अस्तित्वके कारण उनको 'गुणस्थानक' संज्ञा प्राप्त होती है। अभव्यापेक्षया अनादिअनंत और भव्योंकी अपेक्षा सादि सांत अथवा अनादिसांत स्थितिवाले मिथ्यात्व गुणस्थानकवर्ती जीवको ११७ कर्म प्रकृतिका बंध, ११७ प्रकृतिका उदय और १४८ की सत्ता होती है।

(२) सास्वादन--इस गुणस्थानक प्रापक-जीव-केवल उपशम सम्यक्त्वी-इसे पतीतावस्थामें कैसे प्राप्त करता हैं, उसे निरूपित करते हुए, यहाँकी स्थिति-(छ आवलिका)-और इस गुणस्थानकवर्ती जीव योग्य १०१ कर्म प्रकृतिका बंध, १११ का उदय और १४७की सत्ताकी प्ररूपणा की है।

(३) मिश्र--दर्शन मोहनीय कर्मके सम्यक्त्व और मिथ्यात्व-दोनों भाव समकाल-समरूप उदयमें आते हैं। इस स्थानवर्ती जीवको सर्वधर्म समान भासित होते हैं। इस स्थानवर्ती जीव न आयुबंधक होता है, न मरता है। यहाँ जीव ७४ कर्म प्रकृतिका बंध, १०० का उदय और १४७ की सत्ता प्राप्त करता है।

(४) अविरति सम्यक् दृष्टि---भव्य संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवकी, निःसर्गसे या अभ्यासवश उपदेश श्रवण आदि निमित्तसे सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोमें यथावत् निर्मल भावना प्रगट होना, यही सम्यक्त्व है। यहाँ जीवको अविरतिके कर्मोदयसे विरतिकी (पच्चक्खाण या नियम) अभिलाषा होने पर भी ग्रहण नहीं कर सकता है, लेकिन शासन प्रभावक और आत्मोन्नति कारक होते है। आत्माके साथ यह सम्यक्त्व उत्कृ.साधिक ६६ सागरोपम वर्षतक रहता है। जीवका अर्धपुद्गल परावर्त-काल परिभ्रमण शेष रहने पर यह गुणस्थानक प्राप्त होता है। इस गुणस्थानकवर्ती जीवमें प्रशमता, मोक्षाभिलाष रूप संवेग, परम वैराग्यरूप संसारसे निर्वेद, आस्तिक्य और दीन-दुःखी पर अनुकंपाके दर्शन होते हैं। इस गुणस्थानक प्राप्तिकी प्रक्रिया-जीव यथाप्रवृत्तिकरणसे ग्रन्थि प्रदेश प्राप्ति, अपूर्वकरण से ग्रन्थिभेद का प्रारम्भ और अनिर्वृत्तिकरणसे ग्रन्थिभेदकी समाप्ति करके सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है। अबद्धआयु क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तद्भव मोक्ष, और सम्यक्त्व-प्राप्ति पूर्वबद्धआयु जीव तीनसे पांच भवमें मोक्ष प्राप्ति करता है। यहाँ जीवको ७७ कर्म प्रकृतिका बंध, १०४का उदय और क्षायिक सम्यक्त्वीको १३८की एवं उपशम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वीको १४८ की सत्ता होती है।

(५) देश विरति गुणस्थानक---सम्यग् दृष्टि जीव जब चारित्र मोहनीयके प्रथम तीन चतुष्कके अनुदयमें जधन्य-मध्यम-या उत्कृष्ट देशविरति श्रावक धर्म अंगीकार करता है और शनैः शनैः विरति परिणामके वृद्धिगत होनेसे कषाय मंदताकी भी वृद्धि होते होते मध्यम प्रकारका धर्मध्यान भी कर सकता है। यहाँ जीवको ६७ कर्म प्रकृतिका बंध, ८७का उदय, एवं १३८की सत्ता होती है। यह गुणस्थानक तद्भवआयु पर्यंत सिमित रहता है।

(६) प्रमत्त संयत---इस गुणस्थानकवर्ती पंचमहाव्रतधारी सर्वविरतिधर साधु होते हैं, जो कारणवश प्रमत्त बननेके कारण सावद्य-पापमय प्रवृत्तिके सम्भवसे आर्त-रौद्रध्यानी और आज्ञा-अपायादि सालंबन ध्यानकी गौणतायुक्त होते हैं। वेकभी परम संवेगारूढ मनोजनित समाधिरूप-निर्विकल्प ध्यानांशका परमानंद रूप अप्रमत्तता प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन निरालंबन ध्यान नहीं। वे षट् कर्म-षडावश्यकादि व्यवहार क्रिया करके आत्मिक परिणाम शुद्धि-दिनरात्रीगत दूषण शुद्धि करते हुए अप्रमत्त गुणस्थानक प्राप्ति योग्य सामर्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। इस गुणस्थानक स्थित जीवको ६३ का बंध, ८१ का उदय और १३८ की सत्ता होती है।

(७) अप्रमत्त गुणस्थानक---पंचमहाव्रतधारी, पंचप्रमाद युक्त १८००० शीलांगयुक्त, ज्ञानी-ध्यानी-मौनी, दर्शन सप्तकके क्षपी और शेषके क्षपण या उपशमन करनेमें उद्यत, निरालंबन ध्यानके प्रवेशकर्ता, मैत्र्यादि चार या पिंडस्थादि चार ध्यान लीन, क्वचित् रूपातीत ध्यानकी उत्कृष्टतामें शुक्लध्यानके अंश प्राप्त करतें हैं। इस स्थानकवर्ती जीवको व्यवहार क्रिया रूप षडावश्यकके अभावमें भी आत्मिक गुणरूप निश्चय सामायिक होती ही है। अतः अष्टकर्मरज अपहृत कर्ता तपसंयमसे निग्रह और उपशमसे परम शुद्धि प्राप्त स्वभावरूप आत्मा, संकल्प-विकल्पको विलीन करके मोहनीयके अंधकारका नाशक-त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान-दीप प्रगट करती है। यहाँ जीवको (देवायु बिना ५८)-५९ कर्मप्रकृतिका बंध, ७६ का उदय और १३८ की सत्ता होती है। इसकी स्थिति एक अंतर्मुहूर्त है, तदनन्तर जीव छठे या आठवें गुणस्थानक पर चला जाता है। (आठसे बारह--पांच गुणस्थानकस्थ जीवकी स्थिरता -स्थिति एक अंतर्मुहूर्त प्रमाण होती है, तदनन्तर गुणस्थानक परिवर्तीत हो जाता है)।

(८) अपूर्वकरण--चार संज्वलन कषाय और छ नोकषायोंके मंद होनेसे परमाह्लाद रूप अपूर्व पारिणामिक आत्मगुण प्राप्त होता है। क्षपक या उपशम श्रेणिके प्रारम्भक इस गुणस्थानकवर्ती जीव २६ कर्म प्रकृतिका बंध, ७२ का उदय और १३८ की सत्ता प्राप्त करता है।

(९) अनिर्वृत्ति बादर--संकल्प-विकल्परहित निश्चल-परमात्माके साथ एकत्वरूप प्रधान परिणित रूप भावोंकी निवृत्ति न होनेसे और बादर अप्रत्याख्यानीय आदि बारह कषाय-नवनोकषाय का क्षपक या उपशमक होनेसे इसका नाम अनिर्वृत्ति-बादर-कषाय गुणस्थानक माना जाता है। यहाँ जीवको २२ कर्म प्रकृतिका बंध, ६६का उदय और १०३की सत्ता होती है।

(१०) सूक्ष्म संपराय और (११) उपशांत मोह---दसवें गुणस्थानक पर सूक्ष्म परमात्म तत्त्वके भावना बलसे मोहनीय कर्मकी २७ प्रकृतियोंका क्षय या उपशम, और एकमात्र सूक्ष्म लोभका अस्तित्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। अतः इस गुणस्थानकको 'सूक्ष्म संपराय' कहते है। यहाँ जीवको १७ का बंध; ६० का उदय और १०२ की सत्ता प्राप्त होती है। और जो जीव मूर्तिरूप सहज स्वभावसे सकल मोहका उपशमन करता है वह जीव 'उपशांत मोह' गुणस्थानक प्राप्त करता है।

(१२) क्षीण मोह---निष्कषाय-शुद्धात्मभावसे सकल मोहके क्षय करनेवाले जीव 'क्षीणमोह' को प्राप्त करते हैं। इस गुणस्थानकके अंतमें जीवको केवल एक शातावेदनीय का बंध, ५७ का उदय और १०१की सत्ता होती है। (जीव आठवें गुणस्थानकसे ही क्षपक या उपशमकके यथायोग्य श्रेणिका आरोहण करता है। यहाँ उपशमककी योग्यता, उनके करण, स्थिति, फलप्राप्ति, भवोंकी संख्या, उनकी पतीतावस्था या मोक्ष प्राप्तिका स्वरूप वर्णित करते हुए उपशम श्रेणिका और क्षपककी योग्यता-आसन-स्थिति-ध्यानादिका स्वरूप-भाव प्रधानता, ८-९-१० गुणस्थानक पर शुक्लध्यानका प्रथम चरण, बारहवेंमें द्वितीय चरण प्रवेश आदिके विवेचनके साथ ही धर्मध्यान-शुल्कध्यान का स्वरूप सरल शैलीमें प्रस्तुत किया है।

(१३) सयोगी केवली---बारहवेंके अंतमें ध्याता केवली बनता है और तीनों योगकी विद्यमानताके कारण इन्हें सयोगी केवली कहा जाता है। इनको क्षायिक-शुद्धभाव-परम प्रकृष्ट सम्यक्त्व एवं यथाख्यात चारित्र प्राप्त होता है। उनके केवल ज्ञानमें चराचर त्रिलोकके त्रिकालिक, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त द्रव्य-गुण-पर्यायके संपूर्ण-अनंतज्ञान हस्तामलकवत् भास्वर होता है। तीर्थंकर केवलीको आतिशायी पुण्य प्रभावसे अद्‌भूत एवं अद्वितीय अतिशय युक्त रिद्धि-समृद्धि प्राप्त होती है। वे चतुर्विध संघरूप तीर्थकी स्थापना करके शाश्वत जैनधर्मका प्रवर्तन करते हैं। अन्तमें आयुष्य पूर्ण होनेके अंतर्मुहूर्त पूर्व केवली समुद्‌घातकी प्रक्रिया, अंतिम दो चरण युक्त शुक्ल ध्यानकी प्रक्रिया, तीनों बादर एवं सूक्ष्म योगोंके निरोधकी प्रक्रिया आदिका अद्‌भूत वर्णन करते हुए शाता वेदनीयका बंध, ४२ का उदय तथा ८५ की सत्ताकी परूपणा की है। इसके साथही आयुष्यके पांच ह्रस्वाक्षर-अ इ उ ऋ लृ-का उच्चारण काल समय शेष रहने पर साधक शैलेषीकरण करता है। *(१४) अयोगी केवली* गुणस्थानक प्राप्त कर्ता साधककी स्थिति, उपान्त्य समयमें कर्मकी अबंधकता, और ७२ प्रकृतिकी सत्ता एवं अंतिम समय १३ प्रकृतिका क्षय करते हुए कर्मरहित होकर सिद्धोंकी गति, स्थिति, सुख, अवगाहना, गुण, मोक्षपद प्राप्ति और सिद्धशिलाका स्वरूप, स्थान---मुक्तिका स्वरूप, उपादेयता आदिका विवेचन करते हुए परिच्छेद की समाप्ति की है।

सप्तम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (सम्यक् दर्शन) स्वरूप निर्णय -*

<u>सुदेव, सुगुरु, सुधर्म पर दृढ श्रद्धायुक्त सम्यक्त्व</u>---सुदेव श्रद्धाके दो भेद-(i) सुदेव-अरिहंतके चारों निक्षेपा प्रति द्‌ढश्रद्धा रूप व्यवहार श्रद्धा और (ii) अनन्त गुणधारी सच्चिदानंद स्वरूपा स्वयंकी आत्माका निश्चय होने रूप निश्चय श्रद्धाका वर्णन; सुगुरु श्रद्धाके दो भेद (i) सुपात्र रूप सुगुरुकी समर्पित भावसे भक्ति-वैयावृत्य-आज्ञापालन रूप व्यवहार श्रद्धा और (ii) शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक, हेयोपादेयके उपयोगयुक्त परिहारवृत्तिवाला गुरुत्व स्वयं पाना, यह निश्चय श्रद्धाका वर्णन; धर्म श्रद्धाके दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेद (i) दया (अहिंसा)के विविध स्वरूपोंका पालनरूप व्यवहार धर्म और (ii) सर्व कर्मरहित, भौतिकभाव रहित सर्वगुण संपन्न आत्म स्वरूपकी प्राप्तिका वर्णन करके सम्यक्त्व प्राप्ति, सद्‌गति प्राप्ति, परंपरासे मोक्षलाभका वर्णन किया है।

सम्यक्त्वीकी करणी और सैद्धान्तिक प्ररूपणा-श्री जिनमंदिरकी आशातना स्वरूप, विविध पूजा स्वरूप, साधर्मिक वात्सल्य, सम्यक्त्वके पांच अतिचार, अतीत और वर्तमानकालीन आयु और द्वीपादि भौगोलिक एवं सूर्यमंडलादि खगोलिकादि अनेक विषयोंकी जैन-सिद्धान्तानुसार और वर्तमानकालीन प्ररूपणाओंकी विपर्यताका तार्किक युक्तियुक्त विश्लेषण करते हुए वर्तमानकालीन जैन ग्रन्थोंकी स्थिति, इन्द्रजालिककी रचनाके सत्ताईस पीठ, 'रायाभियोगेणं' आदि छ विशिष्ट आगार और 'अन्नत्थणाभोगेणं' आदि चार सामान्य आगारोंका वर्णन करते हुए इस परिच्छेदको पूर्ण किया है।

अष्टम परिच्छेदः--*धर्मतत्त्व (सम्यक् चारित्र) स्वरूप निर्णय*-

मोक्षमार्गमें उपकारी एवं उपादेय सम्यक् चारित्रके दो भेद होते हैं-(i) सर्व सावद्य कार्योंका संवररूप सर्वविरति चारित्र (तृतीय परिच्छेदमें सुगुरु वर्णनमें इसका स्वरूप निर्देशन किया गया है।) और (ii) गृहस्थ धर्मरूप (देशविरति चारित्र)। यहाँ श्रावक धर्मान्तर्गत बारह व्रतके स्वरूपका आलेखन किया गया है।

बारह व्रत स्वरूप-(१) जैनधर्म परम एवं चरम स्वरूपी उत्कृष्ट अहिंसामय होनेसे सर्व प्रथम व्रत रूप *प्राणातिपात विरमण व्रत* रखा है, जिसके अंतर्गत व्यवहार दया रूप द्रव्य प्राणातिपात और भावदयारूप भाव प्राणातिपातका आलेखन करते हुए आकुट्टी आदि चार प्रकारके प्राणातिपात, साधु योग्य बीस विश्वा प्रमाण और श्रावक योग्य सवा विश्वा प्रमाण दया, निकाचित-रस बंधके संवरके लिए निर्ध्वंसपनेका त्याग करके यत्नपूर्वक, कोमल-करुणामय हृदयसे श्रावक योग्य करणी करनेका निर्देशन करते हुए प्रथम व्रतमें कलंकरूप पांच अतिचारोंका वर्णन किया गया है। *(२) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत*--इस व्रतकी स्वरूप व्याख्या, इसके उपभेद, पांच अतिचार और योग्य अधिकारीके लक्षणरूप---षट्‌द्रव्यके गुण-पर्यायादिका निपुण ज्ञाता-की चर्चा की है। *(३) स्थूल अदत्तादान विरमण*--इस व्रतकी व्याख्या, स्वरूपभेद---द्रव्य और भाव अथवा स्थूल और सूक्ष्म-का आलेखन, उन दोनों स्वरूपोंके चार-चार भेद, और पांच अतिचारका विवरण दिया गया है। *(४) स्थूल मैथुन विरमण (स्वदारा संतोष) व्रत*--इसके दोभेद-द्रव्यसे विजातीयसे अब्रह्म सेवन त्याग एवं भावसे, शुद्ध चैतन्य संगी---परपरिणतिका त्यागका वर्णन और पांच अतिचार दर्शाये गये हैं। *(५) स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत*--द्रव्यकी मूर्च्छा ही परिग्रह मानते हुए नव प्रकारके परिग्रहका स्वरूप, दो भेद---बाह्य (द्रव्य), आभ्यंतर (भाव)-और द्रव्य परिमाणके नियममें वृद्धिरूप उल्लंघन-अतिचारका वर्णन किया है। *(६) दिशि परिमाण व्रत*--दश दिशाओंमे गमनागमनकी मर्यादा करना-यह द्रव्यसे; और स्वआत्माके अगति स्वभाव जानकर सर्व क्षेत्रमें गमनागमनमें औदासिन्य-यह निश्चयसे-इसतरह इस व्रतके व्यवहार और निश्चय-दो भेद और पांच अतिचारोंका वर्णन किया गया है। *(७) भोगोपभोग परिमाण*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्रत--दो भेद व्यवहार और निश्चय। सचित्तादिका त्याग या परिमाण; बाईस अभक्ष्य और बत्तीस अनंतकाय एवं मांस-मधु-मक्खनादिके अभक्ष्य होनेके कारणादिकी जैन एवं जैनेतर दर्शन-ग्रन्थाधारित विस्तृत चर्चा; मदिरापानके ५१ दूषण और मांस भक्षणके अनेक दूषण, प्रतिदिन श्रावक योग्य करणीय चौदह नियम, पंद्रह कर्मादान और पांच अतिचारोंका निरूपण किया गया है। *(८) अनर्थदंड विरमण व्रत*--धनवृद्धि-धनरक्षा-परिवारादिकी पालना-स्वइन्द्रिय भोगोपभोग करते हुए पापके कारण जीव जो दंड भोगे वह अर्थ दंड और इसके अतिरिक्त अपध्यान-आर्तध्यान, रौद्रध्यान, पापोपदेश, हिंस्र शस्त्रादि प्रदान, प्रमादाचरणादि चार प्रकारके अनर्थ दंडके त्यागकी प्रेरणा एवं पांच अतिचार स्पष्ट किये हैं। *(९) सामायिक व्रत*---आत्मानुभव एवं सहजानंद-प्रकटीकरण अभ्यासरूप शिक्षाव्रत-सामायिककी विधि, उससे लाभ, उसमें लगनेवाले बत्तीस दोष और पांच अतिचारोंका कथन किया गया है। *(१०) देशावकाशिक व्रत*--दिग्परिमाणादि व्रतोंका मर्यादित समयके लिए संक्षेप-यह देशावकाशिक व्रत कहा जाता है। इसके आणवण प्रयोगादि पांच अतिचार दर्शाये हैं। *(११) पौषधोपवास व्रत*--आहारादि चार प्रकारके त्यागसे आत्मिक गुणोंका पोषक-पौषध; कर्मरूप भवरोगकी भावौषधि रूप-पर्व दिनोंमें आराध्य-हैं, जिसमें लगनेवाले पांच अतिचार और अठारह दूषण त्याज्य हैं। *(१२) अतिथि संविभाग व्रत*--अकस्मात् आये हुए, पात्रतायुक्त, माधुकरीसे उदरपूर्ति कर्ता, अतिथिको पांच गुण युक्त उत्तमदाता निर्दोष शुद्धाहार भक्तिपूर्वक प्रदान करें। इसके भी पांच अतिचार वर्ज्य कहे हैं।

निष्कर्ष-इस प्रकार पांच अणुव्रत, उनको गुण(वृद्धि)कर्ता तीन गुणव्रत एवं उन व्रतोंमें स्थिर करनेवाले शिक्षाप्रदाता चारव्रत-एवंकार बारह व्रतोंकी योगशास्त्रादिके अवलंबनसे प्ररूपणा हुई है।

नवम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (स. चरित्र) स्वरूप निर्णय* -

धर्म स्वरूपान्तर्गत मोक्षमार्गोपकारी एवं उपादेय स.चारित्रके स्वरूप निर्देशान्तर्गत श्रावकके पांच कर्तव्य-दिन-रात्रीकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिक कृत्य, सांवत्सरिक कृत्य और जन्मकृत्यका विवरण किया जा रहा है। इनमेंसे इस परिच्छेदमें दिनकृत्यका वर्णन किया है-यथा-

दिनकृत्य-प्रतिदिन अल्प निंद्रा लेकर ब्रह्म मुहूर्तमें जागना-आत्म चिंतवन-श्रीनमस्कार महामंत्रका हृदय कमलबंद जाप-प्रतिक्रमण-आयुवृद्ध एवं गुणादि वृद्धोंकी भक्ति-वैयावृत्त्य-ज्ञान, ध्यान, और स्वाध्याय-व्रत-(चौदह) नियम धारणा-सम्यक्त्व युक्त द्वादश व्रतादिका पुनः स्मरण-द्रव्य एवं भावसे जिनपूजा-गुरुवंदन-जिनवाणी श्रवण-अनुकूल प्रत्याख्यानादि धर्मकरणी-आत्मव्यापार-पश्चात् आजिविकाके लिए अर्थोपार्जन रूप व्यापार-सुपात्रदान-साधर्मिक भक्ति-पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक रसवतीकी साम्यता सहित-गृद्धि आसक्ति रहित भोजन;भोजन पश्चात् करने योग्य कार्य सायंकाल श्री नमस्कार महामंत्र स्मरण-देव-गुरुवंदन-प्रत्याख्यान-षट् आवश्यक-पठन पाठन-गुरुवैयावृत्त्य, परिवारके साथ धर्मचर्चा-चारों आहार त्याग रूप प्रत्याख्यान करके दिनगत कृत्य समाचरणके विवरणको सम्पन्न किया है। इनके साथही श्रावक योग्य कईं सैद्धान्ति विषयोंकी प्ररूपणा भी की है। *सैद्धान्तिक प्ररूपणा*--पृथ्वी आदि पांच तत्व-सूर्य-चंद्र नाड़िका स्वरूप और लाभालाभ, शुभाशुभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फल, जापके प्रकार-विधि और फलोपलब्धि-रात्री स्वप्नोंके कारण और दिवा स्वप्न-रात्री स्वप्नके शुभाशुभ फल प्राप्ति -सचित्ताचित्त स्वरूप-काल मर्यादा-द्विदल स्वरूप-द्वादश व्रत भंगका स्वरूप और विपाक-अभक्ष्यका स्वरूप-निरवद्य आहार स्वरूप-प्रत्याख्यान स्वरूप, विधि एवं फलनिर्देश,-आहार्य-अनाहारी द्रव्य स्वरूप-सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीवोत्पत्तिके चौदह स्थान-जिनपूजाकी सात प्रकारसे शुद्धि-द्रव्य और भावपूजाकी विधि-दोनोंके दोभेद-स्वरूप, दिनगत सात बार चैत्यचंदनका स्वरूप-गृहचैत्य एवं श्रीसंघ चैत्यकी निर्माण विधि-शुद्धता, पवित्रता, जीर्णोद्धारादिकी आवश्यकता-जिनपूजा अविधिसे अथवा न करनेसे प्रायश्चित्त विधि-उत्कृष्ट द्रव्य और भावपूजाका फल पांच प्रकारसे जिनभक्ति स्वरूप-जिनभुवनकी और गुरुके प्रति आशातनाका स्वरूप-चार प्रकारके द्रव्य(धन) की वृद्धि-रक्षा-एवं व्यवस्था स्वरूप-गुरुवंदन विधि और प्रकार-गुरू भक्ति-वैयावृत्यका स्वरूप-व्यापार शुद्धि-द्रव्योपार्जनके प्रकार-पाप पुण्यके अनुबंधके प्रकार और विपाक-औचित्यपूर्ण व्यवहारका स्वरूप-दानके प्रकार पंचदूषण और पंचभूषण एवं फल-सुपात्रके प्रकार-भोजन विधि-आरोग्य चिंता आदिका 'श्राद्धविधि' तथा 'श्रावककौमुदी'के आधार पर विवरण करके बारहव्रतके समापनके साथ इस परिच्छेदकी भी परिसमाप्ति की गई है।

दसम परिच्छेदः- *धर्मतत्त्व (स. चारित्रान्तर्गत) गृहस्थधर्म निरूपण---*

दिन कृत्य वर्णन पश्चात् श्रावक योग्य शेष कर्तव्योंका इस परिच्छेदमें विवेचन किया गया है।

रात्रीकृत्य--संध्या समय पौषधशालामें प्रतिक्रमण-स्वाध्याय-गुर्वादिकी भक्ति वैयावृत्त्य-बारह व्रतोंका प्रयत्नपूर्वक पालन-चिंतवन-सात क्षेत्रोमें दान-पारिवारिकजनोंके साथ धर्मचर्चानन्तर प्रथम प्रहर व्यतीत होने पर हितकारी शय्या पर अल्प निंद्रा लेनेकी प्रेरणा दी है। (यहाँ शयनविधि-शयन एवं शैय्या स्वरूप, ब्रह्मचर्य पालनके लाभ, कामवासना आदि अनेक अशुभ भाव जीतनेके उपाय, भवस्थिति तथा धर्ममनोरथ भावना, भवांतरमें धर्मप्राप्ति और परंपरासे मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषा आदिकी चिंतवनाका स्वरूप वर्णन किया है।)

पर्वकृत्य-एक मासमें पाँच अथवा बारह पर्व तिथि और वर्षमें छ अट्ठाइयाँ, तीर्थंकरोंकी पाँचो कल्याणक तिथियाँ, ज्ञानपंचमी, मौन एकादशी, अक्षय तृतीया आदि पर्व दिनों में पौषध-प्रतिक्रमण-सामायिक या देशावकाशिक आदि व्रत अंगीकार; ब्रह्मचर्य पालन-आरंभ समारंभ वर्जन-विशिष्ट तप-सुपात्र दानः देव-गुरुकी विशिष्ट प्रकारसे (अष्ट प्रकारी) पूजा-भक्ति-वैयावच्चादि आराधना करनेसे पर्व प्रभावके कारण अधर्म-अशुभ भावका धर्मादि शुभ भावोमें परिणमन होता है, जिससे उन तिथियोंमें मनके शुभ परिणामोंके कारण परभवायुष्य-बंध भी शुभगतिका होता है-आत्मा की सद्गति होती है। अजैनोंके पर्व परभाव रमणताके कारण अशुभ बंधका कारण होता है, जबकि जैन पर्वाराधना-साधना कर्मनिर्जरा करवाती है।

चतुर्मासिक कृत्य-वर्षाकालीन चातुर्मासिक समयमें भी देशविरति या अविरति श्रावकोंको विशिष्ट आराधनासे आत्मिक गुण पुष्टि और विराधना निवारणसे आत्म कल्याण करनेकी प्रेरणा दी है-यथा-बारह व्रत पालन-स्नात्र महोत्सव, अपूर्व (नूतन) ज्ञान प्राप्ति; रत्नत्रयीकी विशिष्ट आराधना;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचाचारका पालन-ग्रामांतर गमन त्याग, सावध योगोंका परिहारादिके साथ पर्व कृत्यमें दर्शित आराधना करणीय है।

सांवत्सरिक (वार्षिक) कृत्य--संघपूजा, साधर्मिक वात्सल्य, तीन प्रकारसे तीर्थयात्रा, स्नात्र महोत्सव; देवद्रव्यवृद्धि, महापूजा, रात्री जागरिका, श्रुतज्ञानकी नूतन रचना और पूजा, तपकी अनुमोदना रूप उद्यापन, तीर्थ प्रभावना गीतार्थ गुरुके योग प्राप्त होनेपर आलोचना और प्रायश्चित्तसे आत्मिक शुद्धि और मोक्षगामीपनेकी योग्यता आदि कर्तव्य करने योग्य है। यहाँ प्रायश्चित्त-दाता अधिकारी गुरुओंकी योग्यताकी विशद विवेचना की गई है।

जन्मकृत्य-- गृहस्थको अपनी संपूर्ण जिंदगीमें करने योग्य अठारह कर्तव्योंका वर्णन किया है। उचितवास, विद्या-प्राप्ति, विवाह-विचार, योग्य मित्रकी मित्रता, श्री जिनमंदिर निर्माण-जीर्णोद्धारादि, जिनप्रतिमा निर्माण-इन दोनोंकी प्रतिष्ठा, दीक्षाके लिए प्रेरणा और उसकी अनुमोदनार्थ महोत्सव कार्य, योग्य साधु-साध्वीको पदवी प्रदानादिके महोत्सव, ज्ञानभक्ति, पौषधशाला निर्माण, आजीवन सम्यक्त्व-बारहव्रतका पालन, सदैव दीक्षा ग्रहणके भाव और औदासीन्यतासे जलकमलवत् गृहवास सेवन, आरम्भ-समारंभका त्याग, आजीवन ब्रह्मचर्य, ग्यारह प्रकारसे श्रावक प्रतिमावहन, अंतिम समयमें दस प्रकारकी आराधना-संलेषणा-अनशन- या भाववृद्धि होने पर संयम अंगीकार करके भवस्थिति अल्पतर करनेके प्रयत्न करने चाहिए।

निष्कर्ष--इस प्रकार पांच प्रकारके कृत्योंका यथाशक्ति-यथायोग्य पालन करनेसे इहलौकिक और पारलौकिक-भौतिक एवं आत्मिक सुख भोगते हुए मोक्षसुख प्राप्तिकी शुभेच्छा व्यक्त की है।

एकादश परिच्छेदः- *त्रेसठ शलाका पुरुष वृत्त-निरूपण* ---

तत्कालीन नूतन शिक्षा प्राप्त जिज्ञासुओंकी तसल्लीके लिए जैनधर्मकी शाश्वतता, वर्तमानकालीन जैनधर्मका प्रचलन, भ.श्रीऋषभदेवसे भ.श्रीमहावीर स्वामी पर्यंतके त्रेसठ शलाकापुरुषोंके ऐतिहासिक वृत्तांतोंको धार्मिक परिवेशमें प्ररूपित किया गया है। जैनधर्म न किसी अन्य धर्मकी शाखा है-न अन्य धर्मसे निष्पन्न-न किसीका आविर्भूत किया हुआ है; लेकिन द्रव्यार्थिक नयसे प्रवाहित रूपमें अनादिकालसे निरंतर चला आ रहा है-जिसका समय समय पर तीर्थंकरों द्वारा परिमार्जन और प्रसारण किया जाता है। यहाँ उत्सर्पिणी--अवसर्पिणीकालका वर्णन, कल्पवृक्ष-युगलिक धर्म-सात कुलकर और उनकी दंड़नीति आदिका वर्णन, ऋषभदेवके प्रति जगत्कर्ता और विश्वरक्षक रूपमें जैनेतरोंकी मान्यता, नमि-विनमि से इन्द्र द्वारा विद्याधर वंशकी स्थापना, भरत चक्रवर्ती द्वारा चार आर्य वेदोंकी रचना, माहण अथवा ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति-ब्राह्मणोंके व्रतधारी श्रावक और साधु होनेके उल्लेख- (भरतके घर नित्यभोजी ब्राह्मण श्रावकोंकी पहचानके लिए काकिणि रत्नसे तीन रेखाको चिह्नित् करना (वही तीन रेखा ही काकिणी रत्नके अभावमें सुवर्ण-रजत-रेशम या सूतके धागोंकी यज्ञोपवितका रूप धारण कर गई)- इस प्रकार यज्ञोपवितका प्रारम्भ हुआ। श्री सुविधिनाथ भगवंत तक यह परंपरा चली और बादमें बारबार जैनधर्मके विच्छेद होने पर याज्ञवल्क्यादि द्वारा स्वकपोल कल्पित नूतन वेद और हिंसक यज्ञ प्रारम्भ हुआ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा पिप्लादसे तो मातृमेध एवं पितृमेध जैसे भयंकर हिंसक यज्ञ प्रारम्भ होते हैं। सांख्यादि अन्य मतोत्पत्ति और प्रचलन-सूर्यवंश, चंद्रवंश, वानरवंश, राक्षसवंशादिकी उत्पत्तिके ऐतिहासिक प्रमाण-जमदग्नि, परशुराम और सुभूम चक्रवर्तीके संबंध-विष्णुकुमार और नमुचिका अधिकार-राम, लक्ष्मण, रावणके संबंध और रावणको प्राप्त दशानन उपनामका कारण, कृष्ण वासुदेव, जरासंघ प्रतिवासुदेव और तीर्थपति श्रीनेमिनाथके संबंधोका वृत्तान्त, कृष्णजीकी 'पूर्णब्रह्म-परमात्मा-ईश्वर'- स्वरूपसे पूजा प्रारम्भका वाकया 'बद्रीपार्श्वनाथ' तीर्थोत्पत्तिका स्वरूप आदि अनेक ऐतिहासिक वृत्तांतोंकी प्ररूपणा की गई है।

निष्कर्ष-इस प्रकार चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव वासुदेव, नव प्रतिवासुदेव, नव बलदेवका अति संक्षिप्त फिरभी रोचक चरित्र वर्णन करके इस परिच्छेदकी पूर्णाहुति की गई है।

द्वादश परिच्छेदः- *श्री महावीर स्वामीके शासनकी गुर्वावलि* -

इस परिच्छेदमें भ.महावीरके पट्टके सुशोभित रत्न श्री सुधर्मा स्वामीजीसे ग्रन्थकार श्रीमद् विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पर्यंत सभी पट्ट परम्परकोंके गुणानुवाद रूप चरित्रचित्रण किया गया है, जिसे इस शोध प्रबन्धके 'पर्व प्रथममें' विस्तृत रूपमें प्रस्तुत किया है।

तत्पश्चात् तत्कालीन कईं नूतन पंथ---गुजरातमें स्वामी नारायण, बंगालमें ब्रह्म समाज, पंजाबमें कूकापंथ-कोईलसे मौलवी अहमदशाहका नवीन फिरका, दयानंदजीका आर्य समाज, थियोसोफिस्टादिके नामोल्लेखके साथ द्वादश परिच्छेद और 'जैन तत्त्वादर्श' ग्रन्थकी परिसमाप्ति की गई है।

निष्कर्ष-- जैन दार्शनिक सिद्धान्तोंकी प्रायः अधिकांश प्ररूपणा इस ग्रन्थमें की गई है, अतः इसे जैनधर्मकी 'गीता' कह सकते हैं।

अज्ञान तिमिर भास्कर

प्रारम्भ--प्रकाश सर्वदा निर्भयता, निःशंकता और विशालताका प्रतीक है, जबकि अंधकार, भय, शंका और संकोचका; अतः प्रकाश वहाँ अंधकार नहीं और अंधकार वहाँ प्रकाश नहीं। अज्ञानांधकारसे भव्योंके उद्धार हेतु इस ग्रन्थमें श्री आत्मानंदजी म.सा.ने सार्थक प्रयत्न करके अपने गुरुत्वको सिद्ध किया है। "आर्हत् धर्मना तत्वोनी जे भावना तेमना मगजमां जन्म पामेली, ते लेखरूपे बहार आवतां ज आखी दुनियाना पंडितो, ज्ञानीओ, शोधको, धर्मगुरुओ, शास्त्रज्ञो, लेखको अने सामान्य लोको ऊपर जे असर करे छे ते ज तेनी ससारता अने उपयोगिता दर्शाववाने पूर्ण छे" –प्रस्तावना - अज्ञान तिमिर भास्कर - पृष्ठ ४-५.

प्रवेशिका-१ प्रथम खंड़की पूर्व भूमिकाके प्रारम्भमें विशाल जन समुदाय पर ब्राह्मणोंके प्रभावके कारण ही नूतन प्रस्फुटित अन्य मतोंका विलीन होना-इंगित करते हुए ग्रन्थाकारश्रीने स्वयं ग्रन्थ रचनाका प्रयोजन प्रस्तुत किया है-"वर्तमानकालमें परमतद्वारा मान्य-सत्य श्रद्धेयवेद-हिंसक यज्ञ प्रवृत्तिको लक्ष्यकर्ता अनेक विश्वमित्रादि क्षत्रिय तो कवष एलूषादि शुद्र दासीपुत्रों और ब्राह्मण ऋषियों द्वारा रचित मंत्र और ऋचाओंका व्यासजी द्वारा किया गया संकलन है। अतएव वेद अपौरुषेय नहीं हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतः जैनधर्मी सांप्रतकालीन चार वेदोंको मानते नहीं हैं और तत्कालीन लालची -स्वार्थी-पांखडी-हिंसक धर्म प्ररूपकोंको झूठे देव-गुरु-धर्म-शास्त्र आदिको छोड़कर सत्य-शील-संतोषपूर्ण जीवन व्यतीत करनेका उपदेश देनेका हेतु है।"

यहाँ वेदोंके मंत्र-तंत्र-यज्ञादि हिंसक अनुष्ठानोंसे त्रस्त और जैन बौद्धोंकी अहिंसक प्ररूपणाओंके प्रचलनसे, दयानंदजी आदि अनेक वैदिकों द्वारा अनुचित-स्वच्छंद-कल्पित परिवर्तीत अर्थोंकी प्ररूपणा---मांसाहार परिहारकी स्वीकृति और दयानंदजीकी कल्पित मुक्तिकी मान्यताका उपहास एवं जैनधर्मके धर्म सिद्धांत विज्ञान-भूगोल-खगोलादिकी प्ररूपणाके उनके द्वारा किये गए खंडनका भी खंडन करके प्रतिवाद किया गया है, तो भक्ष्याभक्ष्य या गम्यागम्यके विवेक शून्य-भोग विलास और कुकर्ममें मस्त वाममार्गका प्रचलन-उनमें गोमांस भक्षणके निषेधसे अनुमानतः परवर्तीकालमें माना जा सकता है।

अंतमें जैनधर्मकी उदारता प्रदर्शित करते हुए, जैनधर्मीओंने अपनी जाज्वल्यमान-प्रचंड शक्तिके होते हुए भी किसीके सिर धर्म थोपनेकी जबरदस्ती नहीं की है। इसके समर्थनमें अनेक राजाओंके राज्यकालमें किये गये फरमान पेश करके, ब्राह्मणोंके पाखंड़ न स्वीकारने पर जैनोंकी 'नास्तिक' रूपमें बदनामी और वेदादि शास्त्र-श्रुतियोंके उद्धरण देकर नास्तिक-आस्तिक निष्कर्ष रूपमें उनकी ही नास्तिकता सिद्धिका प्रयास किया है।

प्रथम खंड--वेद स्वरूप--इसमें वेदरचना, वेद स्वरूप, वेदोंका इतिहासादिकी विस्तृत प्ररूपणा की गई है। डो. हेगके संशोधित 'ऐतरेय ब्राह्मण' अनुसार यज्ञ-सामग्री और क्रियाका उल्लेख करते हुए यज्ञ करनेका कारण, यज्ञविधि, पशुबलिकी विधि, होम और यज्ञसे फल प्राप्तिका वर्णन करके हिंसक यज्ञोंके स्वरूपका अनेक संदर्भ सहित उल्लेख किया गया है- यथा-सायनाचार्य कृत भाष्य, तैतरेय शाखाके छ अध्याय, कृष्ण यजुर्वेदके तैतरेय ब्राह्मण, शतपथ ब्राह्मण की संहिता, ऋग्वेदका ऐतरेय ब्राह्मण, कात्यायन सूत्र, पुराण, सामवेद, उसकी संहिता और उसके आठ ब्राह्मण, अथर्ववेदके गोपथ ब्राह्मण, आश्वलायनके गृह्यसूत्रकी नारायण वृत्ति, आपस्तंबीय शाखाके ब्राह्मणोंके 'धर्मसूत्र'की 'हरदत्त' टीका, माध्यंदिनी शाखाके कात्यायन, लाट्यायनादिके सूत्र, मत्स्य पुराणका श्राद्धकल्प, महाभारतमें शिकारकी अनुमोदना, श्राद्ध विवेक, उत्तर रामचरित, पद्म-पुराणादिमें अश्वमेधादि यज्ञ और व्यासजी, वैशंपायन, शंकराचार्य, आनंद-गिरि आदि द्वारा हिंसा एवं मांसाहारका समर्थन किया गया है। इस तरह मनुस्मृति आदि रचनाओंसे पूर्वकी रचनाओंमें तो सम्पूर्ण हिंसक यज्ञोंकी प्ररूपणा की गई है। अतः यह कह सकते हैं कि, हिंसक प्ररूपणाओंसे भरपूर वेदोमेंसे अगर हिंसाको अलग कर दिया जाय तो वेदमें कुछभी न रह पायेगा। स्वतः सिद्ध हो जाता है कि ऐसे हिंसक वेदवचन कृपानिधान-दयावान-परमेश्वर नहीं बोल सकते हैं, अतः वेद अपौरुषेय या ईश्वरकृत नहीं हो सकते। ऐसी ऋचायें और सूक्तोंके उद्धरण;-ऋग्वेद संहिता, शौनक ऋषि कृत 'सर्वानुक्रम परिशिष्ट परिभाषा', तैतरेय आरण्यक आदिमें हैं, जो उन्हें पौरुषेय सिद्ध करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेद रचना--मनुस्मृति आदिके रचनाकालमें जैन एवं बौद्ध धर्मके अति विशाल क्षेत्रमें प्रसारके कारण और "अग्नि, वायु, सूर्यादि देव नहीं केवल पदार्थ होनेसे उनकी पूजा व्यर्थ है" ऐसी सांख्य मतके शास्त्रोंकी प्ररूपणासे प्रजामें वैदिक धर्मके प्रति नफ़रत और अश्रद्धा उत्पन्न हुई। फलतः जनसमूहमें श्रद्धा संपादनके लिए उपनिषदकी रचना की गई लेकिन अंततः यज्ञ विधानोंके स्थान पर पूजाविधान और उपनिषदके अद्वैत ब्रह्मके बदले भक्तिमार्गीय द्वैत मतकी स्थापना हुई। हिंसक याज्ञिकी क्रियाओंका प्रचंड रूपसे खंडन किया गया, परिणामतः वेदधर्म लुप्त प्रायः हो गया। यही कारण है कि प्रजा की आस्था वेदके प्रति मोडनेके लिए ब्राह्मणोंने पुराणोंमें मनमानी तोड़जोड़ की और भ्रमजाल बिछाया गया कि, प्राचीनकालीन ऋषि पशु मारते थे और उन्हें पुनः जीवित करनेका सामर्थ्य रखते थे। इस प्रकार ऋषि प्रणीत आर्षग्रन्थ और निबन्धादि पौरुषेय ग्रन्थ-स्मृति-पुराण-इतिहास-काव्यादिकी रचनायें पौरुषेय सिद्ध हुई।

वैदिक इतिहास--भ. आदिनाथजीने इस अवसर्पिणी कालमें जैनधर्म प्रवर्तीत किया। तत्पश्चात् उनके पौत्र मरिचिके शिष्य कपिलने 'षष्ठी तंत्र' रचकर जो उपदेश दिया वही परवर्ती शंख आचार्यके नामसे सांख्यमतके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। कालांतरसे जैनधर्म और चार आर्यवेदोंका व्यवच्छेद और शांडिल्य ब्राह्मण रूपधारी महाकालासुर और पर्वत द्वारा महाहिंसक यज्ञ और अन्य ब्राह्मणाभासों द्वारा चार अनार्य वेदोंकी रचना हुई। तदनन्तर व्यासजीने ऋषियोंसे श्रुतियोंका संकलन करके चार वेद रचे। याज्ञवल्क्यकी वैशंपायनादिसे लड़ाई होनेसे नया शुक्ल यजुर्वेद रचा गया। जैमिनी, शौनकऋषि, कात्यायनादि अनके ऋषि-आचार्यादिने मीमांसक, ऋग्विधान, सर्वानुक्रम आदि सूत्र रचे; इन्हीं सूत्रोंसे मनु-याज्ञवल्क्यादिने स्मृतियाँ रचीं वेदके छ अंग-मुख-व्याकरण, नेत्र-ज्योतिष, नाक-शिक्षा, हाथ-सूत्र, पैर-छंद और कान-निरुक्त माने जाते हैं।

वैदिक ऋषियोंको सर्वज्ञ और उनके विरोधीको नास्तिक-वेद बाह्य-राक्षस आदि उपनाम देने परभी जैनधर्मकी प्रभाव वृद्धिसे प्रजामें ब्रह्म जिज्ञासा उत्पन्न होनेसे उपनिषद रचे गये। लेकिन उससे भी असंतुष्ट नैयायिक-वैशेषिकादि एक ही ईश्वरको माननेवाले मत चले, जिन्होंने शम-दम-श्रद्धा-समाधि आदि धर्म साधनसे प्रजामें आस्था दृढ़ बनवायी। ज्ञानको ही मोक्षका मुख्य साधन मानकर तीर्थयात्रा-कर्मकांडादिका विरोध किया। तत्पश्चात् जैनधर्म राज्याश्रित बननेसे उसकी प्रभाव वृद्धिके कारण उपरोक्त सभी मत लुप्त हुए। पुनः शंकराचार्यने उसका उद्धार करके अद्वैतपंथ स्थापित किया। उसके खंडनके लिए नूतन उपनिषदोंकी रचना हुई। लेकिन थोड़े ही समयमें पुराण-उपपुराणसे प्रतिपादित भक्तिमार्ग प्रचलित हुआ, जिसके अंतर्गत दो संप्रदाय-शैव और चार प्रकारके वैष्णव; ऐसे ही अन्य अनेक प्रकारकी उपासनाओंके-शिव, विष्णु, गणपति, राधाकृष्ण, राम, हनुमानादि अनेक संप्रदाय चल पडें; जो आपसमें भी अनेक विरोधोंके कारण खंड़न-मंड़न करते रहें; अतः उनके अपने भिन्न भिन्न शास्त्र, पहचान चिह्न-क्रियायें आदि अस्तित्वमें आयें।

इनके झगडोंसे त्रस्त-व्याकुल कबीर, नानक, दादू, उदासी आदि मूर्तिपूजा विरोधी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंथ निकले तो वैदिकोंने ही हिंसक यज्ञोंकी निंदा करनी प्रारम्भ करके यज्ञ रूपी नावको अदृढ़; यज्ञकर्ता-मूर्ख अज्ञानी-नरकगामी-अनंत भवभ्रमण करनेवाले, महादुःखी और हिंसक यज्ञोंको सदा-सर्वदा अनर्थकारी पापवर्धक माना एवं नारदजी, युधिष्ठिर, विचरव्यु आदि द्वारा "वह शास्त्र ही नहीं जो हिंसाका उपदेश दें"- कथन प्रमाणित किया गया।

जैन और बौद्धों द्वारा अहिंसा प्रचलनसे मांसाहार विषयक अनेक द्वंद्व चलें। फलतः कईं लोगों द्वारा-वेद विहित हिंसामें पाप नहीं है, अन्यत्र अहिंसाका पालन करना चाहिए-- "आप्यायन प्रोक्षणादिसे संस्कारित मांस हव्य और कव्य होनेसे भक्ष्य है"-प्ररूपणा की गई। ऐसी प्ररूपणावाले निर्दयी-अज्ञानी-हिंसक शास्त्रोंके, श्री दयानंदजी आदिने स्वकपोल कल्पित-नवीन-झूठे-असमंजस अर्थ करके उन वेद-पुराण-उपनिषद-स्मृति-महाभारत-शंकरविजयादिमें प्ररूपित हिंसाको छिपानेका व्यर्थ प्रयत्न करके पूर्वाचार्योंको भी मृषावादी बना दिया है। इसके अतिरिक्त 'वेद भाष्य भूमिका'में दयानंदजीने पतंजलिके योगशास्त्र, गौतमके न्यायशास्त्र, व्यासजी और बदरजीके वेदान्त-ऋग्वेद-यजुर्वेद, एवं जैमिनि-याज्ञवल्क्य-बादरायणादिके मतानुसार और उपनिषदके विपरित अर्थ करके बारह प्रकारकी मुक्तिका स्वरूप वर्णित करते हुए उसकी प्राप्तिके उपाय सूचित किये हैं।

तदनन्तर दयानंदजीकी स्वयंकी मोक्ष विषयक मान्यताका निरूपण किया है। दयानंदजी द्वारा उध्दृत मोक्ष विषयक--व्यासजी, उनके पिता और शिष्य-तीनोंके असमंजस अभिप्रायको लक्षित करके तीनोंके भिन्न-भिन्न अभिप्रायसे वेदमें मुक्तिकी प्ररूपणा ही असमंजस है-- ऐसा सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त दयानंदजीके मतानुसार "मुक्तजीव लोकालोकमें सर्वत्र विचरण करते हैं।"-इस उक्तिके लिए सात विभिन्न पक्ष बनाकर उसका खंडन करते हुए उसे युक्ति विकल और प्रेक्षावानोंके लिए अमान्य निर्णित किया है। उनके द्वारा प्ररूपित ॐकारके अर्थका खंडन करते हुए चुनौतिके रूपमें विश्वके किसीभी शब्दकोशमें ऐसे 'उपहासजनक' अर्थका निषेध किया है। ऐसे अर्थग्रहण करनेसे परमात्माके सर्व उत्तम गुण असिद्ध हो जाते हैं। प्राचीन वेदमतानुसार ॐकारमें---रजोगुण-विष्णु, सत्त्वगुण-ब्रह्मा, तमोगुण-शंकर---स्थित माननेसे ॐकारका तीन खंडोंमें विभाजन हो जाता है जो अयथार्थ है। अतः इन सभी भ्रमयुक्त अर्थोंकी शुद्धिके लिए जैन मतानुसार ॐकारका यथार्थ अर्थ प्ररूपित किया है-यथा -पंचपरमेष्ठि स्थित ॐकार---अ=अरिहंत, अ=अशरीरी, आ=आचार्य, उ=उपाध्याय, म्=मुनि---इन पांचोंके गुण स्थित, उत्कृष्ट उपास्योंके प्रथमाक्षरसे बननेसे अर्थ समुच्चयसे एकता और यथार्थ-सत्य अर्थकी प्रतीति होती है; और उनके १२+८+३६+२५+२७=१०८ गुणोंके कारण मालाके १०८ मोतीकी परिकल्पना भी यथार्थ सिद्ध होती है।

श्री दयानंदजीने अनेक मतोंको संकलित करके-जीर्ण श्रुति-सूत्रोंके मनघडंत और प्रमाण बाधित अर्थोंको लेकर 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक ग्रंथ रचना की है, जिसमें वेद-उपनिषदादिके अर्थको मिथ्या ठहराकर ईश्वरके केवल व्युत्पत्तिजन्य पचासों नाम लिखे हैं, उसे शब्दशक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहणकी अन्य योग्यताओंकी सान्निध्यतासे खंड़ित करके परमात्माके यथार्थ-सार्थक अनेक नामोंका उल्लेख करते हुए सृष्टिके सर्जनका खंड़न और प्रवाहसे अनादि शाश्वतताका मंडन किया गया है। 'सत्यार्थ प्रकाश'में जैन सिद्धान्तोंकी उटपटांग प्ररूपणाका एवं नये 'सत्यार्थ प्रकाशमें' भी जैन-बौद्ध-चार्वाक आदिके सिद्धान्तोंका बेमेल-भेल-संभेलका प्रत्युत्तर देकर दयानंदजीकी झूठी प्रतारणाका पाखंड और मिथ्याभिमानका पर्दाफास किया है। जैन सिद्धान्त स्याद्वाद-सप्तभंगीका खंडन, काल-संख्या, अंकोकी गणित विधि-भूगोल-खगोलादि विषयक मिथ्या प्ररूपणायें, जीवोंकी आयु-अवगाहना-स्वर्ग या मोक्षप्राप्ति विषयक भ्रम आदि अनेक शंका समस्यायें-कृष्णके नरकगमनकी प्ररूपणाकी आपत्ति आदि का प्रमाणभूत-युक्ति युक्त तर्कों द्वारा प्रत्युत्तर देते हुए दयानंजीके मूर्तिभंजक रूपके आडम्बरकी स्पष्टता करते हुए अनेक उदाहरणों द्वारा उन्हें परोक्ष रूपसे मूर्तिवादी सिद्ध किया है।

निष्कर्ष--- इस तरह ईश्वर विषयक वेदोंकी प्ररूपणा, वैदिक इतिहास, हिंसक यज्ञ, विपरित वेदार्थ करनेवाले श्री दयानंदजी आदिके खंडनोंका खंड़न-मुक्ति विषयक चर्चा, ॐकारका यथार्थ अर्थ आदि अनेक विषयोंके विश्लेषण इस प्रथम खंडमें किये गये हैं।

प्रवेशिका (खंड-२):--*जैन इतिहास परिचय*--- जैनधर्मके माहात्म्य एवं उत्तमता सिद्ध करनेवाले जैनधर्मोत्पत्ति-ऐतिहासिक उपयोग-प्रमाणादिकी प्ररूपणा करते हुए संसार स्वरूप-द्रव्यार्थिक नयसे अनादि-अनंत (शाश्वत रूपमें) प्रवहमान और पर्यायार्थिक नयसे समसमयमें उत्पत्तिवान-नाशवंत भी है--- प्रस्तुत किया है। (यहाँ कालस्वरूप, तीर्थ-तीर्थंकर-तीर्थंकरत्वका स्वरूप, कर्म और निमित्तोंको ही फल प्रदाता ईश्वर रूप मिथ्या-मान्यतादिके तत्त्व जिज्ञासु-माध्यस्थ बुद्धिवानोंको स्वीकार्य रूपमें पेश किया है।

उत्तम जैनधर्मके अधिकतम प्रचार-प्रसारके अभावके प्रमुख कारणभूत वर्तमानमें जैन प्रजामें उद्भावित प्रमादजन्य अज्ञान, राज्याश्रयका अभाव, जैन सिद्धान्तोंकी गहनता और क्रिया-तपादिके अनुष्ठानकी कठिनताकी चर्चा करते हुए उसे दूर करने के लिए-प्रचार, प्रसारके लिए प्राचीन ज्ञानभंडारोंका जीर्णोद्धार, संस्कृत-प्राकृत भाषाका प्रचार-प्रसार, एवं स्वीकारकी प्रवृत्ति करनेकी प्रेरणा दी है।

तत्पश्चात् जैन इतिहासकी प्ररूपणा करते हुए युगलिकयुग, हिंसक यज्ञ आर्य-अनार्यवेद, अन्य अनेक मतोत्पत्ति, बौद्ध धर्मका प्रचलन, जैन ग्रन्थोंकी तवारिख सहित सिलसिलेवार प्ररूपणा, पूर्वाचार्योंका परिचय पंचांगी रूप धर्मशास्त्रोंकी विषयगत विशालता और उसकी महत्त्वपूर्ण उत्तमताका परिचय दिया है। जैन सिद्धान्तानुसार द्रव्यसे भेदाभेद रूप अनादिकालीन द्रव्यशक्तिको ही परमतवादीका अज्ञानतावश सगुण ईश्वर, परमब्रह्म, माया, प्रकृति आदि नामसे पहचानना, अथवा अनंत गुणधारी सिद्ध परमात्माको नहीं लेकिन अठारह दोष युक्त देव मानना; सिवाय अरिहंत-सिद्ध, अन्य देवोमें देवत्व योग्य गुणाभावसे जैनोंका अन्य देवोंको देवरूप न माननेके कारण 'नास्तिक' उपनाम या अवहेलना सहना; यथार्थ आत्म स्वरूपकी प्राप्तिके लिए जैनदर्शनकी सर्वांग संपूर्णता आदि अनेक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयोंकी प्ररूपणायें की हैं। जैन-जैनेतर ऐतिहासिक, धार्मिकादि अनेक शास्त्र प्रमाण, प्राचीन प्रतिमाके लेख, ताम्रपत्रीय लेखादि अन्य सामग्रीसे *प्राचीनता* और जैन परंपरानुसार पूर्वापर तीर्थंकरोंके चरणकरणानुयोग एवं कथानुयोगकी प्ररूपणामें भिन्नता, फिरभी समान सैद्धान्तिक स्वरूपसे नूतन ग्रन्थों द्वारा परंपरासे शाश्वत धर्मके धर्मग्रन्थोंकी *अर्वाचीनता* प्रदर्शित की गई है।

भ. महावीरकी आतिशायी वाणीकी विशिष्टतायें, देशनामें अर्धमागधीका प्रयोग-अन्य कई रचनाओंमें अन्य भाषा प्रयोग-जैन ग्रन्थोंकी भाषा प्राकृतके तीन प्रकार और उन सब पर किये गए दयानंदजीके आक्षेपोंका प्रतिवाद और प्रमाण-युक्तियुक्त प्रमाणसे उसकी स्वतंत्रता और प्रमाणिकता प्रमाणित की है। तदनन्तर वैदिक हिंसा और जैनी अहिंसाके वैधर्म्यके कारण वेदोमें जैनधर्मके उल्लेखका अभाव दर्शाते हुए हिंदुओंकी, क्रोस पर लटकती ईसा मसीहकी, सिया मुस्लिमोंके ताबुत-डुलडुल घोडा-इमामोंकी लाशकी प्रति-कृतियाँ, हाजियोंका पत्थरको बोसा देना, परमेश्वर कृत पुस्तककी पूजा-सम्मान, -आदि द्वारा मूर्तिपूजाके विरोधीके मूर्तिपूजा-रूप भावसे; तथा मूर्तिभंजक ओसवालादि जातियोंकी उत्पत्ति कथासे मूर्तिपूजाका मंडन किया गया है। साथ ही मूर्तिपूजासे प्राप्त आत्मिक भाववृद्धि आदि लाभ और उसका महत्व भी प्रस्तुत किया गया है।

पश्चात् जीवोंकी आयु, अवगाहना, तीर्थंकरोंके बीच कालांतर-प्रमाणादि अनेक तथ्योंको कठोपनिषद तौरेत आदि धर्मग्रन्थोंके संदर्भोंसे, तर्कबद्ध सिद्ध करते हुए, जैनधर्मके आठ निह्नव, ढूंढक मतकी तवारिख, अन्य सभीमत-संप्रदायके प्रवर्तक साधुओंकी ओर इंगित करते हुए, जैनधर्मके ही सैद्धान्तिक प्ररूपणायें-मूर्तिपूजन-आदिमें समान श्रद्धालु जीव, समाचारीमें भिन्नताके कारण पूनमिया, अंचलिया, सार्ध पूनमिया, आगमिया, खरतर, पार्श्वचन्द्रादि अनेक गच्छ-संप्रदाय आदिमें विभक्त होते गए उसे पेश करके अंतमें स्थानकवासीओंका स्वरूप और परंपराका निर्देशन करवाते हुए द्वितीय खंडकी प्रवेशिका पूर्ण की है।

द्वितीय खंडः *आराधकके इक्कीसगुण*--दस प्रकारसे दुर्लभ ऐसे उत्तम मनुष्य जन्म प्राप्त करके, सद्धर्मकी प्राप्ति और उसका आचरण अति दुर्लभ है। इस दुर्लभ एवं अचिंत्य चिंतामणी तुल्य धर्म प्राप्तिके योग्य आत्माका निम्नांकित इक्कीस गुणयुक्त होना आवश्यक है-जिनका विशिष्ट रूपसे लेखकने वर्णन किया है। यथा-कोई भी धर्मात्मा अक्षुद्र, रूपवान, सौम्य-प्रकृति, लोकप्रिय, अक्रूर-चित्त, भीरू, अशठ, सुदाक्षिण्य, लज्जावान् दयालु, माध्यस्थ, सोम-दृष्टि, गुणानुरागी, विकथा-त्यागी, सत्कथाकारी, सुपक्ष युक्त, सुदीर्घदर्शी, विशेषज्ञ, वृद्धानुग, विनीत, कृतज्ञ, परहितकारी, एवं लब्ध-लक्ष्य (नूतन ज्ञानप्राप्ति योग्य)होने पर शीघ्र आत्म कल्याण कर सकता है। यहाँ लोकविरुद्धत्वके अंतर्गत सप्त व्यसनोंकी विस्तृत चर्चा; छ निकायके जीवोंकी रक्षान्तर्गत अहिंसा व्रत द्वारा ही अन्य चार व्रतोंकी रक्षा का विशिष्ट स्वरूप, हिंसाका स्वरूप और अन्नाहार एवं मांसाहारमें भक्ष्याभक्ष्यपना, चार विकथाका स्वरूप, विनयके पांच भेद, दो प्रकारका औपचारिक विनय और उनके उपभेद आदिका विशद रूपमें विश्लेषण किया गया है। ये इक्कीस गुण धर्म प्रासादकी मजबूत नींव या योग्य भूमिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग्य बीज रूप माने जाते हैं। जघन्य दस; मध्यम; या उत्कृष्ट इक्कीस गुण प्राप्तिसे धर्मकरणी शुद्ध-विशुद्धतर-विशुद्धतम बनती जाती है।

उपरोक्त इक्कीस गुण प्राप्त धर्माराधक जीवको कैसा धर्म आचरणीय है इसका निर्देश श्रावक और साधुका स्वरूप, भावश्रावक और भावसाधुके लक्षणादिके वर्णन द्वारा करते हुए तीन प्रकारकी आत्माका स्वरूप वर्णित किया गया है *श्रावकका स्वरूप*--श्रावक दो प्रकारके (i) आस्तिक-विनयवान-धर्मार्थ प्रयत्नवान् अविरित श्रावक और (ii) प्रतिदिन सुगुरु मुखसे धर्मोपदेशमें संप्राप्त दर्शनादि रत्नत्रय समाचारी रूप जिन वचन सम्यक् उपयोग सहित श्रवणकर्ता देशविरतिधर श्रावक। *सर्व विरतिधर साधुका स्वरूप*--आर्यदेश-शुद्ध जाति-कुलोत्पन्न क्षीण पाप कर्मा, निर्मल बुद्धिवान्, मनुष्य भवकी दुर्लभता-लक्ष्मीकी चंचलता-संसारका भयंकर स्वरूप ज्ञात करके उनसे विरक्त बना हुआ, अल्प कषायी, विनीत, सुकृतज्ञ, श्रद्धावान्, प्रशम-उपशम गुणधारी व्यक्ति हों। 'स्थानांग' आगमानुसार श्रावक या साधु---नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव-चार निक्षेपे आराधने योग्य हैं। *भाव श्राव*कके चार भेद-आदर्श (आरिसा) सदृश, पताका सदृश, वृक्षके ठूंठ सदृश और खरंट सदृश-इनके लक्षणोंको लक्षित करते हुए प्रथम और अंतिम भेदवाले श्रावक मिथ्या द्रष्टि होने पर भी जिनपूजादि व्यवहार पालन करनेके कारण उन्हें व्यवहार नयसे श्रावक माना हैं। *भाव श्रावकके क्रियागत छ लक्षण*-(१) चार प्रकारके कृतव्रतकर्मा (२) छ प्रकारसे आयतन सेवी, ऐसे शीलवान, (३) पांच प्रकारसे गुणवान्, (४) गुणभंडार-गुणज्ञ गुरुओंकी, चार प्रकारसे भक्ति-वैयावृत्त्यकर्ता (५) चार प्रकारसे ऋजु व्यवहारी, और (६) छ भेदोंसे प्रवचन कुशल--भाव श्रावकके ये छ लक्षण दर्शाते हुए *भाव श्रावकके भावगत सत्रह लक्षण*-का स्वरूप सुंदर ढंगसे समझाया है।-यथा-स्त्री, इन्द्रिय, अर्थ(धन), संसार, विषय(वासना), आरम्भ-समारंभ और गृहवास-आत्माके अहितकारी-का त्यागी अथवा स्ववशकर्ता, सम्यक्त्वी, धर्म सिद्धान्तको बुद्धि-तुलासे समीक्षित करके स्वीकारनेवाला, चैत्यवंदनादि सर्व क्रिया आगम प्रणीत ही करनेवाला, तीन प्रकारका दान-दो भेदसे शील-बारहविध तप और भावादि चतुर्विध धर्ममें प्रवृत्त, विहित-हित-पथ्य धर्मोपदेश, जिनपूजादि सत्प्रवृत्तिमें लौकिक लज्जा न माननेवाला, सांसारिक पदार्थमें अरक्त-निस्पृह, मध्यस्थ, नश्वर पदार्थोंकी आसक्ति-प्रतिबंधका त्यागी, भोगोपभोगमें भी दाक्षिण्यताके कारण मजबूरीसे प्रवृत्त, निराशंस गृहवास पालक-निर्लेप, संसारी भावश्रावक, संसार त्यागके लिए तो अशक्त लेकिन संसार त्यागकी आसक्ति रखता हुआ, द्रव्य साधु समान होता है-यथा-"मिउ पिंडो दव्व घडो, सुसावओ तह दव्व साहुति।" याने मिट्टीपिंड-द्रव्यघट है, वैसे साधुत्वका इच्छुक-भाव श्रावकके गुणोपार्जित-उनमें स्थित भावश्रावक भी द्रव्य साधु ही है।

भाव साधुका स्वरूप---भाव साधुमें सात लक्षण दृष्टि गोचर होते हैं-सकल मार्गानुसारी क्रियाधारक, अनभिनिवेश (आग्रह रहित), संप्रति श्रद्धाप्रवर (चार प्रकारसे श्रुतचारित्रधर्ममें श्रद्धावान्), प्रज्ञापनीय, संप्रति क्रियामें अप्रमत्त यथाशक्य विविध तपादि अनुष्ठानोंका आचारी, गुणानुरागी एवं गुर्वाज्ञाधारक। यहाँ दो प्रकारके मार्गका स्वरूप, स्थानांगाधारित पांच प्रकारके व्यवहार मैत्र्यादि चार भावना स्वरूप, गीतार्थ गुरुके छत्तीस प्रकारसे छत्तीस गुणोंमेंसे तीन प्रकारके छत्तीस गुणोंका वर्णन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरुकुल-वासके और गुरुकुल-त्यागके लाभालाभ, गुरु-शिष्यके सम्बन्धादिको भी विवरित करते हुए उपरोक्त सात लक्षणधारी भाव साधुको सुदेवत्व, सुमनुष्यत्व, सुजाति स्वरूपादि की प्राप्ति और परम्परासे मुक्तिपद प्राप्तिकी प्ररूपणा की गई है।

जैन मतानुसार आत्माका स्वरूप और प्रकार--जीवात्मा स्वयंभू-अनादि-अनंत-अरूपी-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श रहित एक एक प्रदेश भी अनंत शक्तिमय एवं अनंतज्ञानमय ऐसे असंख्य प्रदेशवाले जीवके प्रत्येक आत्म प्रदेश पर आठ प्रकारके कर्मोंकी प्रत्येककी अनंत अनंत कार्मण वर्गणासे आच्छादित होनेसे शरीर व्यापी, संख्यासे अनंतानंत-चैतन्य स्वरूपसे एक समान (लेकिन एक आत्मा सर्वव्यापक नहीं), कर्मकाकर्ता कर्मविपाक-भोक्ता, कर्मबंधक, कर्मनिर्जरक, निर्वाणपदप्रापक, कर्मसहित-कथंचित् रूपी और कर्मरहित-कथंचित् अरूपी, चौदह राज-लोकमें ५६३ जीव स्वरूपोंसे चौर्यासी लक्ष जीव-योनि और चार गतिमें स्वकर्मानुसार प्राप्त होता हुआ परिभ्रमण करता है तथा आराधना-साधनाके योग प्राप्त होने पर उत्तरोत्तर गुणस्थानक प्राप्त करता हुआ सर्व कर्मक्षय करके मुक्ति प्राप्त करता है।

यहाँ आत्मा-परमात्माका स्वरूप, सृष्टि सर्जन-संचालन, कर्म-व्यवस्था, आत्मिक शक्ति, पुण्य-पाप स्वरूप, आत्मा परमात्माकी व्यापकता एवं स्थितित्व, संसारी जीवके-५६३ भेद आदि अनेक विषयोंकी अतिसंक्षिप्त फिरभी न्याय पुरःसर युक्तियुक्ततासे प्ररूपणा करके श्री हेमचंद्राचार्यजी म. कृत 'महादेव स्तोत्र' के अनुसार बहिरात्मा-अंतरात्मा-परमात्मा-तीन प्रकारके आत्माका विवेचन किया गया है-यथा- "परमात्मा सिद्धि संप्राप्ता, बाह्यात्मा च भवांतरे ।
अंतरात्मा भवेद्देह, इत्येवं त्रिविधः शिवः ।।"

मिथ्यात्वादिके उदयसे इष्टानिष्टमें, राग-द्वेषयुक्त, बुद्धिवान, भवाभिनंदी जीवात्मा *'बहिरात्मा'* है। तत्त्वज्ञानमें श्रद्धाधारी, कर्म स्वरूप-ज्ञाता, ज्ञानमय-सदा अखंडित आत्मद्रव्यका अंतर भावसे चिंतक, परभावसे दूर-स्वरूप रमणमें रममाण (बारहवें गुणस्थानकवर्ती) जीवात्मा *"अंतरात्मा"* मानी गई है। और तेरहवें गुणस्थानकवर्ती केवली-देहधारी शुद्धात्मा एवं पूर्णायुष्य होने पर देहरहित-अशरीरी सिद्धात्मा-(अर्थात् शुद्धात्मा और सिद्धात्मा दो रूपमें) *"परमात्मा"* स्वरूप निरूपित किया गया है।

अंतरात्मा ही तेरह-चौदह गुणस्थानक स्पर्शते हुए शैलेशीकरणसे सर्वकर्ममुक्त होनेसे शुद्धात्मा-सिद्धात्मा-परमात्मा बन जाती है। अतः परमात्मा-परमेश्वर होनेके पश्चात् आत्मा, अपना सच्चिदानंद, अमृतमय, आत्म स्वरूप-सुख छोडकर विषयजन्य शारीरिक-सांसारिक सुखकी, तन-मनके अभावके कारण, कभी वांछना नहीं करता। अतएव ऐसे वीतराग ही देवबुद्धि करके मुक्ति प्राप्त हेतु आराध्य है।

निष्कर्ष---बिना आत्मबोध मनुष्य, देहधारी शृंग-पूंछ रहित-पशु तुल्य होता है क्योंकि आहार-निद्रा-भय मैथुनादि सर्व संज्ञा दोनोंमें तुल्य रूपमें दृश्यमान होती है। जब मनुष्यको आत्मबोध हो जाता है तब उसके लिए सिद्धपद अत्यन्त समीप है। वह प्रयत्न करने पर सच्चिदानंद,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णब्रह्म स्वरूप, अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख-शक्ति प्राप्त होकर मोक्षमहलके अतीन्द्रिय सुखास्वाद करता है।

अंतमें ग्रन्थकार श्री आत्मानंदजी म.सा. अंतिम मंगल रूप शासन पति भगवान महावीर स्वामी, गौतम गणधर, आद्य पट्टाधिप सुधर्मा-स्वामी और परवर्ती अनेक प्रभावक पट्ट परंपरक पूर्वाचार्योंकी गुरु प्रशस्ति एवं ग्रन्थ रचना काल-स्थान-कारण, और ग्रन्थ पठन-श्रवणके लाभादिको प्ररूपित करते हुए 'अनुष्टूप' छंदके सड़तीस श्लोकोंसे ग्रन्थकी परि समाप्ति करते हैं।

--: सम्यक्त्व शल्योद्धार :--

ग्रन्थ रचना हेतु--ग्रन्थारम्भमें मंगलाचरण करते हुए इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचनाका उद्देश्य स्पष्ट किया है-यथा- "दुष्ट ढूंढकने लुप्त की हुई जिनेन्द्र मूर्तिको शास्त्रकी क्रोडों सम्यक् युक्तियों द्वारा भव्यके हृदयरूपी स्थानमें स्थापन करके, और समर्थ स्याद्वादको नमस्कार करके विश्वमें पीडित सम्यक्त्व रूपी गात्रमें व्याप्त शल्यके उद्धार हेतु इस ग्रन्थकी रचना की हैं।"

ढूंढक साधु जेठमलजीकी प्रगाढ मिथ्यात्व युक्त असत्य प्ररूपणासे भरपूर 'समकित सार' पुस्तक वि.स.१९३८ में नेमचंद हीराचंद द्वारा प्रकाशित हुई; जिसके प्रत्युत्तर रूप-बिना किसी राग-द्वेषकी परिणति, केवल भव्यजीवोंको निर्मल सम्यक्त्वके स्वरूपके दर्शन करने और परोपकार हेतु, इस ग्रन्थकी रचना सं.१९४० में की गई और सं.१९४१ में गुजराती भाषामें एवं सं.१९५९ में श्री आत्मानंद जैन सभा-पंजाब; तथा सं.१९६२ में जैन आत्मानंद पुस्तक प्रचार मंडल-दिल्ही, द्वारा हिन्दीमें प्रगट की गई। इस ग्रन्थमें 'समकित सार' निहित कुल छियालीस प्रश्नोत्तरके प्रत्युत्तर दिये गये है।

'समाकित सार' के प्रश्नोत्तरके स्वरूपसे ही किसीभी सत्यवादी मूर्तिपूजक जैनका खून खौल उठना स्वाभाविक था; अतः उन प्रश्नोंत्तरके लिए, सत्यकी प्रतिमूर्ति आचार्य प्रवरश्रीकी कलम कैसे चूप रह सकती थी? मानो, मजबूरन मुखरित हो उठी। उनकी लेखीनीने ढूंढक मतको वेश्या या दासीपुत्र-तुल्य सिद्ध करके सभी विपरित प्ररूपणाओंका आगम या पूर्वाचार्य रचित ग्रन्थाधारित प्रत्युत्तर देनेका भरसक प्रयत्न किया हैं।

प्रथम प्रश्नान्तर्गत-ढूंढक मतोत्पत्ति-परम्परा-साधुवेश-दीक्षाप्रदानादि अनेक आचार; साधु समाचारी और दैनिक व्यवहार; परम्परागत चतुर्विध संघ संलग्न तपाराधना-साधना-विविध क्रियानुष्ठान रूप उपासना-सात क्षेत्र-व्यवस्था आदि अनेक प्रकारके आचार विचारोंकी कपोल-कल्पित प्ररूपणाका मुंहतोड़ प्रत्युत्तर देते हुए, सत्य प्ररूपणाका शास्त्राधारित प्रमाणोंसे करणीय कृत्योंका स्वीकार भी किया गया है। तत्पश्चात् ढूंढक साधु आचरित मनःकल्पित और शास्त्र-विरुद्ध-मिथ्याचार रूप विचित्र करणीको प्रदर्शित करनेवाले १२८ प्रश्नों-आचारोंके लिए ललकारते हुए और उन सभी आचरणोंका शास्त्राधारित प्रत्युत्तर मांगते हुए सर्व संवेगी मुनियोंकी सर्वत्र एक समान समाचारीको आगम प्रमाणित और ढूंढक साधुओंकी मनमानी स्वच्छंदता युक्त भिन्नभिन्न समाचारीको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम विरोधी प्रमाणित किया है। पैंतालीस आगममेंसे ढूंढक मान्य बत्तीस आगमबाहय और-शेष तेरह आगम और पंचांगीमें प्ररूपित अनेक सैद्धान्तिक-आचार विषयक-कथानुयोगाधारित २०४ प्ररूपणा-अधिकारोंको मान्य करनेका कारण; एवं बत्तीस आगममें प्ररूपित साधुके उपकरण, प्रतिलेखन, पच्चक्खाण, पंचांगीकी मान्यता आदि अनेक विषय परत्वे विपरित व्यवहार-वर्तनके लिए प्रत्युत्तर मांगते हुए; जिनेश्वरकी वाणी रूप पंचांगीको अमान्य करना, यह जिनाज्ञा-भंग और जिनेश्वरकी अवहेलना रूप दर्शाकर, आगममें प्रथम दृष्टिसे दृश्यमान प्ररूपणाओंका परस्पर विरोधका कारण पाठान्तर, उत्सर्ग-अपवाद, नयवाद, विधिवाद, चरितानुवाद, आदि वाचनाभेद है, जिसका विशद एवं गहन बुद्धिवान् निर्युकिार तथा टीकाकारादिसे समाधान प्राप्त करनेकी प्रेरणा दी है।

द्वितीय प्रश्नोत्तरमें तारा तंबोलमें जैन मंदिरादिकी प्ररूपणा और बृहत्कल्प सूत्राधारित कौशांबी नगरीके स्थानादिकी चर्चा द्वारा आर्यक्षेत्र मर्यादाकी चर्चाको मिथ्या ठहराया है।

तृतीय प्रश्नोत्तरमें "जिन प्रतिमाकी असंख्यात साल पर्यंत काल स्थिति"की दैवी सहायसे शक्यता सिद्ध करके लौकिक व्यवहारमें भी ऋषभकूट पर असंख्यात सालमें होनेवाले अनेक चक्रवर्तीओंके नामकी स्थिति, भरतादि क्षेत्रोमें अठारह क्रोडाक्रोड सागरोपम काल पर्यंत विद्यमान पूर्वकालकी बावडियाँ, पुष्करणी आदिके उदाहरण दिये हैं। यहाँ पृथ्वीकायादिकी आयु और पुद्गलकी स्थिति आदिकी भी स्पष्टता की है।

चतुर्थ प्रश्नोत्तरमें-स्याद्वाद शैलीसे समझने योग्य एषणीय-अनेषणीय आहार, आधाकर्म-दोषित लेने-देनेके स्वरूप एवं फल प्राप्ति-आदिकी चर्चा 'भगवती सूत्रादि'के संदर्भ-साक्षी देकर की गई है ।

पंचम प्रश्नोत्तरमें-मुंहपत्तिका उपयोग किस तरह (मुख पर निरंतर बांधकर रखनेमें विराधनाका कारण); क्यों (संपातिम-त्रसकायिक जीव रक्षा हेतु); किस विधिसे-(बोलते समय मुंहके सामने हाथसे पकड़कर) करना चाहिए-इसे श्री ओघनिर्युक्ति, आचारांगादिके संदर्भ युक्त समझाकर, "वायुकायिक जीवोंकी रक्षाके लिए निरंतर मुखपर मुंहपत्ति बांधनेकी" प्ररूपणा, सर्वशास्त्रोमें ऐसे कथनके अभावसे, असिद्ध और महामिथ्यात्व स्थापित किया है।

छठे प्रश्नोत्तरमें---तीर्थंकरके कल्याणक भूमि-विहार भूमि आदि स्थानोंकी तीर्थयात्रा, और यात्रासंघ, परिणाम शुद्धिके लिए आगम प्रमाणसे सिद्ध करके जंघाचारण-विद्याचारणादि लब्धिधारी, अन्यमुनि और भक्तजनोंको भी तप-जप-संयम-ध्यान-स्वाध्यायादिकी वृद्धिकारक तीर्थयात्राकी उपकारकता दर्शायी गई है।

सातवें प्रश्नोत्तरमें- "जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति-सूत्रानुसार शत्रुंजय तीर्थकी अशाश्वतता" की प्ररूपणा के प्रत्युत्तरमें आचार्यश्रीने अन्य शाश्वत पदार्थोंकी न्यूनाधिक होने सदृश शंत्रुजयकी न्यूनाधिकता होने पर भी, शाश्वतता सिद्ध की है।

आठवें प्रश्नोत्तरमें-"देवपूजावाची 'कयबलिकम्मा' शब्दकी सिद्धि"के लिए गृहस्थावस्थामें अरिहंत द्वारा सिद्ध-प्रतिमाकी पूजा- चारित्र अंगीकरण समय सिद्धको नमस्कार; राजप्रश्नीय-ज्ञाता सूत्रादिमें तुंगीया नगरीके श्रावक, द्रौपदी, सूर्याभदेवादि द्वारा पूजा और अन्य अनेक ग्रंथोंके संदर्भ दिये है। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार "कौतुक-मंगलके लिए कुरली करना"-अर्थका उपहास करके असिद्ध किया है।

नवमें प्रश्नोत्तरमें-'सिद्धायतन'का अर्थ 'शाश्वत अरिहंतगृह' किया है। इस अर्थकी गुण निष्पन्नता भी सिद्ध करके वैताढ्यके सिद्धायतन कूटके अर्थका विश्लेषण करते हुए इसी अर्थकी पुष्टि की है।

दसवें प्रश्नोत्तरमें- "श्री गौतम स्वामीजीका यात्रा हेतु सूर्य-किरण पकड़कर अष्टापदारोहण और १५०० तापसोंके केवलज्ञान"के अधिकारको असिद्ध करनेकी चेष्टावालोंके, भगवती आदि सूत्रोंके उद्धरण देकर मुंह बंद किया है। तो "भगवंतने श्रेणिकादिको जिन मंदिर निर्माणका उपदेश नहीं दिया"-कथनको भी जिनमंदिर निर्माणके आवश्यकादिके उद्धरणसे सिद्ध किया है।

ग्यारहवें प्रश्नोत्तरमें-"अरिहंतका द्रव्य निक्षेपा भी वंदनीय होता है"-इसे नमुत्थुणं, लोगस्स, नंदीसूत्र (जिनमें ३४ अतीताचार्योंको द्रव्य आचार्य मानकर ही वंदना की है), आवश्यकादि सूत्रोंसे सिद्ध किया है।

बारहवें प्रश्नोत्तरमें-"तीर्थंकरोंके नाम-संज्ञा ही है-निक्षेपा नहीं; भाव निक्षेपा ही वंदनीय है, गृहस्थावस्थामें तीर्थंकर पूजनीय नहीं, द्रव्य निक्षेपा अवंदनीय, प्रत्यक्षकी भाँति प्रतिमा अपेक्षापूर्तिके लिए अक्षम होनेसे जिन प्रतिमा वंदन-पूजन योग्य नहीं, अजीव स्थापनासे लाभ नहीं भ.मल्लिनाथके स्त्रीरूप प्रतिमासे छराजाओंका कामातुर होना, अनार्योंको प्रतिमा दर्शनसे शुभध्यान न होना-आदि कथनोंसे नाम, स्थापना, द्रव्य निक्षेपा अवंदनीय है"-इस प्ररूपणाका खंडन करते हुए महानिशीथादि सूत्रोंके संदर्भ देकरके चारों निक्षेपा पूज्य-वंद्य-आराध्य सिद्ध किये हैं।

तेरहवें प्रश्नोत्तरमें- (१) "जिसका भाव निक्षेपा वंदनीय हों, उन्हींके शेष तीन निक्षेपे वंदनीय होते है"-इसे स्पष्ट करते हुए भरत चक्रीसे अद्यावधि यात्रासंघ, जिनमंदिर और जिनपूजाकी अविच्छिन्न परंपरा सिद्ध की है। (२) जिनेश्वर तुल्य ही जिनप्रतिमा दर्शनसे अशुभ भावोंका उपशमन और शुभ भावोंका संचय होता है। (३) "वीतरागका नमूना साधु है, प्रतिमा नहीं"-इस कथनकी असिद्धि, वीतरागके राग-द्वेष रहित, आतिशायी अनंत पुण्यराशी और साधुका राग-द्वेष सहित (उनसे रहित होनेमें उद्यमवंत) और कमपुण्यवंत होना दर्शाकर जिनेश्वर तुल्य आराध्य जिन प्रतिमा ही हो सकती है, साधु नहीं-सिद्ध किया है।

चौदहवें प्रश्नोत्तरमें-"नमो बंभीए लिवीए"-का अर्थ "ब्राह्मी लिपिको ही नमस्कार होता है, उसके कर्ताको नहीं"-इस प्ररूपणाको "अनुयोग द्वारा"दि सूत्रोंसे सिद्ध करते हुए जैसे जिनवाणी भाषा वर्गणाके पुद्गल रूप होनेसे द्रव्य है वैसे ब्राह्मी लिपि भी अक्षर रूप होनेसे द्रव्य है -ऐसा प्रतिपादित किया है।

पंदहवें प्रश्नोत्तरमें-लब्धिवंत मुनियोंने रुचक द्वीप, मानुषोत्तर पर्वत, नंदीश्वर द्वीपादिके विविध-चैत्योंको जुहारते हुए जिन प्रतिमा वंदन किये है-इसे भगवती, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति आदि सूत्र-संदर्भोंसे सिद्ध करते हुए समवायांगादि सूत्रानुसार 'चैत्य'का अर्थ, 'देवयं चेइयं'का 'देवरूप चैत्य' अर्थ और 'चैत्यवृक्ष'का 'चौतराबंद वृक्ष' अर्थ सिद्ध किया है।

सोलहवें प्रश्नोत्तरमें-भ. महावीरके पास आनंद श्रावकके कल्प्याकल्प्यके नियम ग्रहणका समर्थन;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्यतीर्थीओंकी भी जिन प्रतिमामें देव-तुल्य मान्यता; अन्य तीर्थीओंके स्थानमें जिन प्रतिमा जैनों द्वारा ही अपूजनीय-अवंदनीय क्यों और कैसे;--इन सभीका स्पष्टीकरण करते हुए समवायांगानुसार आनंदादि अनेक श्रावकों द्वारा जिनमंदिर निर्माण-जिनप्रतिमा पूजन-आदि तथ्योंकी सिद्धि की है।

सत्रहवें प्रश्नोत्तरमें-उपरोक्त आनंद श्रावक समान अंबड़ तापसको लक्ष्य करके कईं असत्य प्ररूपणायें की हैं इनका प्रत्युत्तर देते हुए-दोनोंके नियमोंमें अंतर और उस अंतरके कारणोंकी स्पष्टता की गई हैं।

अठारहवें प्रश्नोत्तरमें-सात क्षेत्रान्तर्गत भरतचक्रीसे लेकर अद्यावधि अनेक श्रावकों द्वारा जिनमंदिर और जिनप्रतिमा निर्माणमें द्रव्य-धनके व्ययकी सिद्धि अनेक सूत्रोंके संदर्भ द्वारा करके, अन्य ज्ञानादि पांच क्षेत्रोंके लिए धन व्ययकी विधि-कारणादिकी अनुयोग द्वारादि सूत्र संदर्भसे अनेक युक्त-युक्तियोंसे चर्चा की गई है।

उन्नीसवें प्रश्नोत्तरमें-द्रौपदी द्वारा की गई जिन प्रतिमा पूजाका अनेक कारणोंसे निषेध किया गया है-यथा-द्रौपदीकी पूजामें सूर्याभदेवकी ही भलामण, अन्य किसीने जिनपूजन किया नहीं, द्रौपदीने भी एक बार ही किया, द्रौपदीकी पूजा भद्रा-सार्थवाही जैसी होनेसे वह देवभी अन्य ही होनेकी शक्यता, स्त्रीको अरिहंतके संघट्टाका निषेध, पूर्व जन्ममें सात अयोग्य कार्य करना, पांच पतिका नियाणा करनेसे सम्यक् दृष्टि नहीं, उसके माता-पिताभी मिथ्यात्वी, पद्मोत्तरके घर उसका तप करना-जिनपूजा नहीं, अचेलक अरिहंतको वस्त्र पहनाना आदि अनेक कारणोंके अतिरिक्त अन्य कारण-राजगृहीमें जिन मंदिरका अभाव, द्रौपदीकी पूजा अवधिजिनकी होनेकी संभावना, जिनपूजामें षट्निकाय जीवोंकी विराधना अयोग्य, कोणिकका भी भाव तीर्थंकरको न पूजना, अन्य देवोंकीभी नमुत्थुणंसे वंदना करना-आदि अनेक कुतर्कोंका उत्तर ज्ञातासूत्र, उववाय, भगवती, दशाश्रुतस्कंध, प्रश्नव्याकरण, नंदीसूत्र, अनुयोगद्वार, उपासक दशांग, ओघनिर्युक्ति आदिसे अनेक सयौक्तिक स्पष्टीकरण देकर युक्तियुक्त विवेचनसे द्रौपदीका जिनप्रतिमा पूजनको सिद्ध किया गया है।

बीसवें प्रश्नोत्तरमें- सूर्याभदेव और विजयपोलीएके 'जिन प्रतिमा पूजन' विषय निषेधार्थ बीसों कुयुक्तियाँ प्रस्तुत करते हुए उत्सूत्र प्ररूपणा और मनघडंत मिथ्या सूत्रार्थोंका राजप्रश्नीय, जीवाभिगमादि सूत्रोंके उद्धरण देकर प्रत्युत्तर देते हुए सूर्याभदेव और उनकी शुभ क्रियाके निंदकको दुर्लभबोधि सिद्ध किया है।

इक्कीसवें प्रश्नोत्तरमें-उपरोक्त देवों द्वारा किया गया 'जिनदाढ़ा पूजन'की निरर्थकताके कथनके कारणोंका--'अधम्मिया' देवों द्वारा अथवा मिथ्या दृष्टि अभव्य देवों द्वारा जीत आचार-लौकिक व्यवहार या कुलधर्म रूप की गई जिन दाढ़ा पूजा मोक्ष प्राप्तिका कारण नहीं बन सकती; ऋद्धिवंत नवग्रैवेयकका अभव्यत्वी देव-अभव्य संगम देव-तामली तापसका जीव इशानेन्द्र आदिके उपहासजनक आधारों पर जिनदाढा पूजाका निषेधका--प्रत्युत्तर जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, अभव्य कुलक, भगवतीसूत्र, जीवाभिगमसूत्रादिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भसे अनेक युक्तियुक्त तर्क द्वारा उपरोक्त देवोंका जिनप्रतिमा पूजन और जिनेश्वर दाढा ग्रहण एवं उनका पूजन सत्य सिद्ध किया है।

बाईसवें प्रश्नोत्तरमें-"जैसे स्त्रीका चित्र न देखना चाहिए वैसे ही 'प्रश्न व्याकरण' अनुसार जिनमूर्तिके दर्शनका भी निषेध है-" इस कथनकी पुष्ट्यार्थ अनेक कुतर्क---जिनप्रतिमा दर्शनसे किसीको प्रतिबोध नहीं हुआ-आदिका आर्द्रकुमार-शय्यंभव सूरि म. आदिके सम्यक्त्व प्राप्तिके उदाहरणसे प्रतिषेध करके समवायांग-भगवती-नंदीसूत्र-अनुयोग द्वारादि सूत्रानुसार निर्युक्तिकी मान्यताको सिद्ध करते हुए एवं निर्युक्ति द्वारा जिन प्रतिमा दर्शनसे भव्योंको प्रतिबोध और सम्यक्त्व प्राप्ति सिद्ध किये हैं।

तेईसवें प्रश्नोत्तरमें-जिनमंदिर या जिनप्रतिमा निर्माणकर्ता मंदबुद्धि या दक्षिण दिशाका नारकी होना; और भ.महावीरने श्रेणिकको नरकगति निवारणके लिए जिनमंदिर निर्माणकी प्रेरणा न देकर अन्य चार करणीकी प्रेरणा दी-अतः 'जिनमंदिर नहीं बनवाना चाहिए'-इस प्ररूपणाका मुंहतोड़ प्रत्युत्तर देते हुए उनका 'देवकुल' शब्दका अर्थ 'सिद्धायतन' करनेको भी मिथ्या सिद्ध किया है।

चौबीसवें प्रश्नोत्तरमें-प्रश्न व्याकरणानुसार "साधु जिनप्रतिमाकी वैयावृत्त्य करें"-इस प्ररूपणाको विपरित बनाकर 'चेइयट्ठे'का अर्थ "ज्ञान"करके जो विपरित प्ररूपणा की है, उसका प्रतिषेध ग्रन्थकारने 'उत्तराध्ययन' सूत्रके 'हरिकेशी' अध्ययन और स्थानांग-व्यवहार सूत्रादिके संदर्भ देकर किया गया है।

पचीसवें प्रश्नोत्तरमें---स्थानकवासी मान्य बत्तीस सूत्रके अतिरिक्त सर्व सूत्रोंका व्यवच्छेद; महानिशीथ आदि शेष सूत्रोंकी रचना परवर्तीकालकी है; नंदीसूत्रकी रचना चतुर्थआरेकी; साधु और श्रावकके वंदन-आचार-विधि; मंदिर न जानेके लिए बृहत्कल्पादिमें कोई प्रायश्चित्त नहीं है; भव्याभव्य-सर्व जीवोंका निश्चयसे चौदह राजलोकके सर्व स्थानोंमें उत्पन्न होना; सर्वदा उपयोगवंतके शास्त्र ही प्रमाण; देवर्द्धिगणिके लिखे शास्त्र प्रतीति योग्य नहीं; विशिष्ट ज्ञानियोंकी भी क्षति होनेकी संभावना; पंचांगी सूत्रोंके विविध ८५ विरोधाभास---इन सभीके नंदीसूत्र, बृहत्कल्प-अभव्य कुलकादि शास्त्रानुसार यथोचित प्रत्युत्तर लिखकर ढूंढक मान्य बत्तीस सूत्रोंमें भी अपेक्षायुक्त अनेक विरोधाभासोंको प्रमाणित करनेके लिए उपा. यशोविजयजी म. कृत "वीर स्तुति रूप हूंडी"के श्री पद्मविजयजी म. कृत बालावबोधको उद्धृत किया है।

छब्बीसवें प्रश्नोत्तरमें- "किसी भी श्रावकके प्रतिमा पूजनका उल्लेख शास्त्रमें नहीं है"-इस कथनके प्रत्युत्तरमें आचारांग, सूत्रकृतांग, आदि इकत्तीस शास्त्रोंके अनेक उदाहरण देकर; एवं शंत्रुजय-आबू-राणकपुर-आदि तीर्थ स्थानोंके जिनमंदिर, संप्रति-आदिके बनवाये लाखों जिनमंदिर-क्रोड़ों जिन प्रतिमाके प्रमाण देकर इस कथनको असिद्ध किया है।

सत्ताइसवें प्रश्नोत्तरमें-"जिन कार्योमें हिंसा होती है वे सर्व सावद्य करणीमें जिनाज्ञा नहीं है" -इस कथनके प्रत्युत्तरमें "स्वरूपे हिंसा और अनुबंधे दयामें जिनाज्ञा है"-ऐसे कई उदाहरणोंको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगम सूत्रोंसे उद्धरित करके उपरोक्त एकान्तवादी मतका खंड़न किया गया है। दृश्यमान आश्रवके कारणोंमें भी शुद्ध परिणामसे निर्जरा होती है, और दृश्यमान संवरके कारणोंमें भी अशुद्ध परिणामसे कर्मबंध होता है---इसे जमालि आदिके शुद्ध चारित्र पालनादि अनेक शास्त्रोक्त उदाहरण देकर निरासित किया गया है।

अट्ठाइसवें प्रश्नोत्तरमें-जिनेश्वर भगवंतका द्रव्य निक्षेपा और *उनतीसवें प्रश्नोत्तरमें*-जिनेश्वर भगवंतके स्थापना निक्षेपा अवंदनीय होनेके आक्षेपके प्रत्युत्तरमें लोगस्स सूत्र (चउविसत्था) और दसवैकालिक सूत्राधार देकर दोनों निक्षेपा वंदनीय है-ऐसा सिद्ध किया है।

तीसवें प्रश्नोत्तरमें- "मूर्तिपूजक, जैनधर्मके अपराधीको मारनेमें लाभ मानते है"-इस प्ररूपणाको धर्मदासजी गणि कृत ग्रन्थसे और उत्तराध्ययन सूत्रके 'हरिकेशी' मुनिके उदाहरण द्वारा मिथ्या सिद्ध किया है। "गुरुओंको बाधाकारी जू.-लिखादिका भी निवारण करना चाहिए" इस कथनको भी, उनसे विशेष अशाताका संभव न होनेसे अनावश्यक कहकर निरासित किया। दो साधुको जलानेवाले गोशालाके जिंदा रहनेको भाविभाव कहते हुए स्वयंके उपसर्ग-परिषह सहन करने और शासन पर आयी आपत्तियोंका निवारण करनेकी प्रेरणा दी है।

इकत्तीसवें प्रश्नोत्तरमें-महाविदेह क्षेत्रके बीस विहरमान जिनेश्वरके नामोंमें असमंजसताके कथनको, 'वे बीस नाम उनके मान्य सूत्रोमें लिखे ही नहीं है' ऐसे आक्षेप सह यह कथन ही मिथ्या सिद्ध किया है।

बत्तीसवें प्रश्नोत्तरमें-'चैत्य' शब्दके साधु, तीर्थंकर, या ज्ञान-अर्थ किया गया है, उसे मिथ्या सिद्ध किया है, क्योंकि किसी कोष, व्याकरणादि ग्रन्थ, आगमादि शास्त्रमें कहीं इस शब्दका ऐसा अर्थ लिखा नहीं है। कोषादिमें चैत्यका अर्थ जिनमंदिर, जिनप्रतिमा या चौतरेबंद वृक्ष-सिद्ध किया है। इसके अतिरिक्त 'चैत्य'का अर्थ साधु करें तो इसका स्त्रीलिंगवाची शब्द क्या होगा? अतः यह अर्थ असिद्ध है-ऐसे भगवतीसूत्र, नंदीसूत्रादि अनेक सूत्रोंके उदाहरण देकर प्रमाणित किया है। "आरम्भके (पापके) स्थानोंमें तो 'चैत्य' शब्दका अर्थ प्रतिमा भी होता है"-ऐसे अनेक कथनमें तो उनकी स्पष्ट द्वेषबुद्धि प्रकट होती है।

तैंतीसवें प्रश्नोत्तरमें-"सूत्रोमें तप-संयम-वैयावृत्यादिमें धर्मकरणी और उससे फल प्राप्ति मानी है, लेकिन जिन प्रतिमाके वंदन-पूजनका फल नहीं दर्शाया"-इस कथनको आचारांग, उत्तराध्ययन, ज्ञातासूत्र, राजप्रश्नीय, आवश्यक सूत्रादिके उद्धरण देकर मिथ्या सिद्ध किया है। और जैसे भाव जिनको वंदना-नमस्कार करनेके लिए वे स्वयं नहीं कहते-न उसके वे भोगी है फिरभी भक्त अपनी भक्तिसे करता है, वैसे ही द्रव्य जिनपूजामें भी भक्ति ही कारणभूत माननी योग्य है।

चौंतीसवें प्रश्नोत्तरमें-लोगरस सूत्रका 'कित्तिय, वंदिय, महिया'-इनमें प्रथम दो को भावपूजा माना है लेकिन 'महिया'-जो द्रव्य पूजावाची होने पर भी उसे भावपूजा रूप ठहराया है यह मिथ्या है। यहां पुष्पपूजामें होनेवाली स्वरूप हिंसाका भी प्रत्युत्तर दिया गया है।

पैंतीसवें प्रश्नोत्तरमें-छजीव निकायके आरम्भ (विराधना) होनेके प्रसंगको लेकर 'आचारांग' सूत्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ दिया है, उसे उसके यथार्थ अर्थ स्पष्ट करते हुए उसका प्रतिषेध किया गया है।

छत्तीसवें प्रश्नोत्तरमें-पांच विभिन्न आश्रवसेवी पांच विभिन्न जीवोंको समान फल, सम्यक् दृष्टिको चार प्रकारकी भाषा बोलनेकी भगवंतकी आज्ञा, तीर्थंकरका झूठ बोलना आदि अनेक मिथ्या कथनोंके प्रत्युत्तरमें आचारांग सूत्रकृतांग, भगवतीसूत्र, प्रज्ञापना आदिके संदर्भ प्रस्तुत करके उन वचनोंको असिद्ध किया है।

सडतीसवें प्रश्नोत्तरमें-"दयामें ही धर्म है, भगवंतकी आज्ञा भी दया में ही है-हिंसा में नहीं"-इसके प्रत्युत्तरमें त्रिकरण-त्रियोग शुद्ध दयापालक, फिरभी भगवंतकी आज्ञाका उत्थापक जमालि एवं अन्य अभव्य जीवों आदिकी दुर्गति; विहार करते समय नदी उतरना; डूबते हुऐ जीव को, साधु पानीमें तैरकर बचालें-ऐसी जिनाज्ञा; शिष्योंका लोच-बरसते मेघमेंभी, स्थंडिलादि कार्यमें हिंसा होने पर भी जिनाज्ञाका आधार; धर्मरुचि अनगारका जिनाज्ञा-आराधनासे सर्वार्थसिद्ध विमानमें जाना आदि अनेक संदर्भोंसे जिनाज्ञा पालनका माहात्म्य दर्शाकर जिनाज्ञा पालनमें आलस्य और जिनाज्ञा विरुद्ध कार्यमें-उद्यम-दोनोंमें मिथ्यात्व सिद्ध करके उपरोक्त कथन 'दया में ही धर्म हे.....हिंसामें नहीं' मिथ्या सिद्ध किया है।

अडतीसवें प्रश्नोत्तरमें-अनेक कुयुक्तियोंको मिथ्या सिद्ध करनेके लिए और जिन प्रतिमा पूजनमें अनुबंधे दया ही है; एवं पूजा शब्द दयावाचक ही है-इसे सिद्ध करनेके लिए आवश्यक सूत्रके कूपके दृष्टान्तको उद्धृत करके और प्रश्न व्याकरणके संवर द्वारमें प्ररूपित दयाके पर्यायवाची ६० नामोंमें पूजाका उल्लेख और हिंसाके पर्यायवाची नामोंमें 'पूजा' नामोल्लेखका अनस्तित्व, हरिकेशी मुनि द्वारा वर्णित यज्ञकी स्पष्टता और महानिशीथके सूत्रपाठकी मिथ्या प्ररूपणाको विवेचित किया गया है।

उनचालीसवें प्रश्नोत्तरमें- "प्रवचनके प्रत्यनीकको हणनेमें दोष नहीं"-ऐसी उत्सूत्र प्ररूपणाको अनेक सूत्राधारित अनेक दृष्टान्त देकर असिद्ध किया गया है।

चालीसवें प्रश्नोत्तरमें-'संवेगी गुरुको महाव्रती और देव अव्रती मानते है'-इस कथनसे संवेगीको मिथ्या कलंक चढ़ानेका आक्षेप करते हुए गुरुविरहमें, गुरुकी स्थापना रूप अक्षकी स्थापनाको 'अनुयोग द्वार' आदि सूत्र साक्षीसे सिद्ध करते हुए अक्ष-स्थापनाकी आवश्यकताको, और श्रावक द्वारा अष्टप्रकारी द्रव्यपूजा एवं साधु द्वारा उसकी भावपूजाका अधिकार स्पष्ट किया गया है।

एकतालीसवें प्रश्नोत्तरमें- 'जिन प्रतिमा जिनेश्वर समान नहीं होती' इस मिथ्या कथनका 'देवयं चेइयंपज्जुवासामि', राजप्रश्नीयसूत्रके सूर्याभदेवकी धूप-पूजा-'धूवं दाउणं जिणवराणं' आदि उद्धरणसे दोनोंकी तुल्यता सिद्ध की है। अभोगीको द्रव्यरूप भोग चढ़ाना-आदि एवं भाव-द्रव्य-स्थापना तीर्थंकरोंका स्वरूप और भेदोंको दर्शाकर उससे सम्बन्धित अनेक कुयुक्तियोंका निवारण किया गया है।

बयालीसवें प्रश्नोत्तरमें "संविज्ञ मुनि गोशाला समान हैं"-इस कथनकी सिद्धिके लिए किये गए कुछ प्रलाप सदृश युक्तियोंका अनेक युक्तियुक्त तर्कोंसे प्रत्युत्तर देते हुए ढूंढकोंको ही गोशालामती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्ध किया है। इससे भी एक कदम आगे उनको मुस्लिम समान (भक्ष्याभक्ष्य विवेकहीन-मूर्तिभंजक आदि रूपमें) सिद्ध किया है।

तैंतालीसवें प्रश्नोत्तरमें-'मुंहपत्ति मुंह पर बांधनी या हाथमें रखनी'-इसकी चर्चा करते हुए मृगापुत्रके उदाहरण द्वारा एवं अंगचूलिया, आवश्यक सूत्रादिसे एवं अन्य अनेक युक्तियुक्त तर्कसे मुंहपत्तिको निरंतर मुंह पर बांधनेका निषेध सिद्ध करके मुंहपति मुखके सामने बोलते समय हाथमें रखना सिद्ध किया है।

चौंतालीसवें प्रश्नोत्तरमें-"देव, जिनप्रतिमा पूजन करके संसार वृद्धि करते हैं।" इसके प्रत्युत्तरमें राजप्रश्नीय सूत्र आधारित पूजाफल---हित, सुख, योग्यता और परंपरित मोक्षफल प्रापक दर्शाकर आवश्यक सूत्रानुसार फल प्राप्ति भावानुसार सिद्ध की है।

पैंतालीसवें प्रश्नोत्तरमें-श्रावकके सिद्धान्त पठनके अनधिकारकी चर्चा करते हए भगवती सूत्रमें तुंगीया नगरीके श्रावकका, व्यवहार सूत्रमें सिद्धान्त ग्रहण करनेकी योग्यताका; प्रश्न व्याकरण, दशवैकालिक, आचारांग, निशीथ, स्थानांगादि अनेक सूत्रोंसे श्रावकको सूत्र-सिद्धान्त पठनका अनधिकारी सिद्ध किया है।

छियालिसवें प्रश्नोत्तरमें-"मूर्तिपूजक हिंसा धर्मी है"-इस मान्यताके प्रत्युत्तरमें 'दया' की आलबेल पुकारनेवाले हिंसाधर्मी ढूंढकोंकी हिंसक प्रवृत्तियोंको स्पष्ट किया है-पीनेके उपयोगके लिए उनके माने अचित पानीमें पंचेन्द्रिय-सम्मूर्च्छिम-बेइन्द्रियादि अनेक जीवोत्पत्ति युक्त पानीका उपयोग, बासी-सडा हुआ-द्विदल-शहद-मक्खन-कंदमूलादि भक्ष्याभक्ष्यके विवेक शून्य-भोजी, मुंहपत्ति निरंतर बांधे रखनेके कारण अनेक जीवोत्पत्ति, अशुचिकी शुद्धि भी न करना आदि अनेक आचारोंको स्पष्ट किया है।

निष्कर्ष-इस प्रकार इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने अपने विशद और गहन अध्ययनके बल पर सत्य-शुद्ध-सैद्धान्ति प्ररूपणाओंका मंडन और जिनवाणी-जिनागम एवं गीतार्थ गुर्वादि रचित पंचांगी रूप अनेक शास्त्र विरुद्ध-मनघंडत-कपोल कल्पित-मिथ्या प्ररूपणाओंका खंडन करके भव्यजीवोंको गुमराह होनेसे बचा लेनेका महान उपकार किया है। इस ग्रन्थके वाचन-मनन-मंथनसे अनेक साधु एवं श्रावकोंने मिथ्या राहको छोड़कर शुद्ध सत्यराहको अपनाया है।

--- तत्त्व निर्णय प्रासाद ---

प्रथम स्तम्भः-समवसरणके वर्णन युक्त-राग द्वेषादि अंतरंग शत्रु विजेता सर्व जिनेश्वर देवोंकी; युगादिदेव श्री ऋषभदेकी, बाईस तीर्थंकरोंकी, चरम तीर्थपति श्री महावीर स्वामीजीकी, गणधर गौतम-पूर्वाचार्योंकी, सरस्वती देवी-शासन रक्षक देव-देवी-समकिती देव-देवीकी अनेक श्लोकोंसे मंगलाचरण रूप स्तुति करते हुए ग्रन्थारम्भ किया है।

प्रारम्भमें माध्यस्थतासे सत्यधर्मके निश्चय और निश्चित सत्य धर्मके स्वीकारकी भव्य जीवोंको प्रेरणा देते हुए प्रो. मेक्समूलरके अभिप्रायसे वर्तमानमें मान्य प्राचीनतम वेदमंत्र-जरथोस्ती धर्म आदिसे भी अधिकतम प्राच्य जैनधर्म और धर्म पुस्तकोंको सिद्ध करके जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परंपरानुसार, जैनधर्म शाश्वत होने पर भी, और उसके सिद्धान्तोंकी भी शाश्वत प्रवाहिता होने पर भी वर्तमान जैन ग्रन्थ-चरम तीर्थंकर आश्रयी चरणकरणानुयोग और कथानुयोगकी भिन्नताके कारण अर्वाचीन प्ररूपणा है-वर्तमान वेदादिसे परवर्ती होने का स्वीकार किया है।

तत्पश्चात् अद्यावधि ज्ञानका कब-कैसे-क्यों-कहाँ ह्रास हुआ; कुल ज्ञानके प्रमाणसे वर्तमान ज्ञानका प्रमाण; ज्ञान कंठाग्र रखनेका कारण, मुखाग्र ज्ञानका ग्रन्थस्थ होना; अठारह लिपिका स्वरूप, प्राकृत-संस्कृतकी प्राचीनता और विद्वद्जगत्में मान्यता, संस्कृतकी उत्पत्ति-प्राकृतकी महत्ता, तीन प्रकारकी प्राकृतका स्वरूप, प्राकृतज्ञान विषयक दयानंदजी की अज्ञता, 'अज्ञान तिमिर भास्कर'में वर्णित चारों वेदोंकी हिंसक प्ररूपणा और 'जैन तत्त्वादर्श'में वर्णित वेदोंकी उत्पत्तिकी ओर इंगित करते हुए उन वेदोमें प्रार्थना रूप ऋचाओंका उल्लेख किया गया है। साथ ही ऋग्वेदके सातवें मंड़लमें ईश्वर स्वरूप और स्तुतिकर्ता सूक्त प्रक्षेप रूप सिद्ध किये हैं। विधिवाक्योंको ही वेद माननेवाले अनीश्वरीय मीमांसक मतका प्रतिपादन प्राचीन वेदोमें प्राप्त होनेसे ईश्वर स्वरूप-स्तुति एवं वेदान्तके अद्वितीय ब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुतियाँ प्रक्षेप रूप स्वतः सिद्ध होती है। अंतमें "वेदसर्वज्ञ प्रणीत न होनेसे उनकी प्राचीनता या अर्वाचीनता महत्वपूर्ण नहीं हैं-" ऐसा स्व अभिप्राय पेश करके कुछ वैदिक ऋचाओंके परिचयके साथ प्रथम स्तम्भ समाप्त किया है।

द्वितीय स्तम्भः-इस स्तम्भमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशके जिस स्वरूपको जैन मतावलम्बी मानते हैं - उसे लेखकश्रीने कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचन्द्राचार्यजी म.सा. रचित 'महादेव स्तोत्र'के श्लोकाधारित प्ररूपित किया है। जिनके प्रशान्त, अपायापगम अतिशय आश्रयी निरुपद्रवका हेतु-अभयदाता-मंगल-प्रशस्त रूप होनेसे शिव; शुद्ध ज्ञानादि गुणोंसे बड़े होनेसे-महादेव; स्याद्वादके सहारे सर्व पदार्थों पर समान शासन कर्ता-ईश्वर याने महेश्वर-छाद्मस्थिक अवस्थामें इन्द्रिय दमन-महान दयापालक एवं महाज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त महाज्ञानी और ज्ञानरूपसे सर्व जगत् व्यापी, १८ दूषण रूप महातस्कर विजेता, कामजीत, रागादि दुर्जेय महामल्ल विजेता, निर्भय, २८ भेद युक्त महामोहनीय-कर्म-जालनाशक, महामद-लोभ त्यागी, क्षमादि उत्तम गुणधारी, पंच महाव्रतोपदेशक, महातपस्वरूप, महायोगी, महाधीर, महामौनी, महाकोमल हृदयी-क्षमा प्रदाता, अनंत वीर्यवान्, १८००० शीलांग युक्त अनंत क्षायिक चारित्रवान्, मुद्रा स्वरूपसे ही निरुपद्रवी, अव्यय स्वरूपी, पैंतीस गुणालंकृत वाणीसे सर्व जीवोंके उपदेशक होनेसे 'शं'-सुखकारी, अतिशय आत्मानंदी, द्रव्यार्थिक नयसे अनादि-अनंत शक्तिवान, सापेक्ष रूपसे सादि अनंत और सादि सांत-सदोष और निर्दोष-साकार और निराकर; बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा-त्रयात्मरूप परमपद प्रापक परमात्मा ही ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर है। द्रव्यार्थिक नयसे एक ही मूर्तिमें स्थित और पर्यायार्थिक नयसे ज्ञानमय विष्णु-दर्शन रूप महेश्वर और चारित्र रूप ब्रह्मा-त्रिरूप एक आत्मद्रव्य स्थिति शक्य हो सकती है, लेकिन कार्य-कारण-क्रियारूप, माता-पिता-जन्म समय, स्थान, नक्षत्र-देहवर्ण-शस्त्र, देहके अंगोपांग, स्वारीके लिए वाहनादि अनेक स्वरूपोमें विलक्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतुरूप-विभिन्न गुणाश्रित व्यक्तित्वधारीकी एक प्रतिमा होना सर्वथा असंभवित है। अतएव अर्हन्की त्रयात्मक-त्रिगुणमय स्वरूप--ज्ञानमय विष्णु, दर्शनमय(सम्यक्त्व) शिव और चारित्रमय ब्रह्मा--एक आत्म द्रव्य स्वरूप, कथंचित भेदाभेद रूप है–प्रतिमा संभव भी है और सिद्ध भी। इसी प्रकार क्षिति-क्षमा, जल (निर्मलता), पवन (निःसंगता), अग्नि (कर्मवन दहनसे निर्मल योग प्राप्ति), यजमान (दयादिसे आत्म-यज्ञकर्ता), आकाश (निर्लेपता) चंद्र (सौम्यता), सूर्य (ज्ञानसे प्रकाशवान्) आदि आठ गुण युक्त ईश्वर पुण्य-पाप रहित, राग-द्वेष विवर्जित अर्हन् शिवाभिलाषीको मुक्ति पदेच्छुकको नमस्करणीय हैं।

'अर्हन्' स्थित त्रिमूर्ति वर्णन--'अ' विष्णुवाचक, 'र' ब्रह्मावाचक, 'ह' हर (महादेव) वाचक और अंतिम 'न'कार परम पदवाची हैं। जबकि जैन मतानुसार 'अ'--आदि धर्म, आदि मोक्ष प्रदेशक, आत्म स्वरूप विषयक **परमज्ञान**; 'र'--रूपी-अरूपी द्रव्य दृश्यमान करवानेवाला लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान रूपी नेत्रसे परम दर्शन स्वरूपी; 'ह'- (राग-द्वेष-अज्ञान-मोह-परिषहादि और) अष्टकर्मकी हनन क्रिया रूप *परम चारित्र*; 'न'-नवतत्त्व अतः संतोष द्वारा सर्वांग संपूर्ण-अष्ट प्रातिहार्य युक्त-नवतत्त्वज्ञ अर्थात् परम ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय नवतत्त्वके ज्ञाता और प्ररूपक 'अर्हन्' को पक्षपात रहित नमस्कार किया है। और अंतमें संसार रूप बीजके चारगति रूप अंकुर उत्पन्न होनेके हेतुरूप अठारह दूषण क्षय भावको प्राप्त होनेवाले, नामसे ब्रह्मा-विष्णु-हर या जिन, जो भी हों उन्हें नमस्कार किया है-जैसे श्री मानतुंगाचार्य म.ने 'भक्तामर स्तोत्र-२५'में किये हैं।

तदनन्तर लोक व्यवहारमें ब्रह्मा-विष्णु-महेशके चरित्र स्वरूपको भर्तृहरि, भोजराजाके कवि श्रीधनपाल, अकलंक देवादि द्वारा प्ररूपित उपहासजनक स्वरूपको उद्धृत करते हुए अंततः जनसमूह कल्पित त्रिमूर्ति नहीं लेकिन यथार्थ ज्ञान, दर्शन, चारित्र-मय गुणरूप प्रतिमा जैनोंके लिए उपास्य है। इस प्ररूपणाके साथ स्तम्भको पूर्ण किया गया है।

तृतीय स्तम्भः इस अवसर्पिणीके पंचम-दूषम-कालमें अज्ञानांधकारको दूर करने में सूर्य सदृश, अमृतमय देशनासे प्रतिबोधित कुमारपाल द्वारा अभयदान रूप संजीवनी औषधिको प्रवर्तमान करवाकर असंख्य जीवों के जीवित-प्रदाता, निर्मल यशधारी श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा. द्वारा रचित आचार्य प्रवर श्रीसिद्धसेन दिवाकरजी सदृश श्रीवर्धमान स्वामीकी स्तुति रूप 'अयोग व्यवच्छेद' नामक बत्तीसीकी इस स्तम्भमें प्ररूपणा की गई है।

अध्यात्म वेत्ताओंके लिए भी जिसका पूर्ण स्वरूप-ज्ञान अगम्य है, विशिष्ट ज्ञानीके वचनोंसे अवाच्य है, छाद्मस्थिकोंके नेत्रयुगलोंके लिए प्रत्यक्ष स्वरूप भी परोक्ष बन जाता है -ऐसे अनंतानंत गुणवान्; आत्मरूप ज्ञानादि पर्यायोंको प्राप्त-परमात्माकी स्तुति करनेके लिए स्वयं को बाल-अशिक्षित-अपलापक-बालिश दर्शाते हुए भी संबलभूत-साहस प्रदाता-जिनगुण प्रति दृढ़ानुरागी परमयोगी-सार्थ व समीचीन स्तुतिकार यूथाधिप श्री दिवाकरजी सदृश निश्चल गुणानुरागी बाल कलभ तुल्य निजका मिलान करते हुए साहित्यविद् श्री हेमचंद्राचार्यजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन स्तुतिमें होनेवाली स्खलनाको अनपराध्य, अशोचनीय, क्षम्य कथित करते हैं।

इस प्रकार प्रारम्भिक तीन श्लोकमें मंगलाचरण रूप परमात्माके अवर्णनीय गुण, पूर्वाचार्योंके प्रति हार्दिक बहुमान और स्वयंकी निरभिमान-लघुताको प्रदर्शित करते हुए, यथावस्थित पदार्थ स्वरूप, नवतत्त्व, रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग, कर्मफल प्रदाता रूपमें निमित्तादि कारण, आत्माका देहव्यापीपना, जगतका अनादि-अनंतकालीन प्रवाह रूपादि प्ररूपणा करनेवाले सुमार्गगामी-सुमार्गोपदेशसे निरंतर जीवोंको कृतार्थ करनेवाले परमात्माकी कृपावर्षाकी स्तुति और सत्को असत् या असत्को सत्रूप मिथ्या प्ररूपक जैनोंको निंदक या नास्तिक कहनेवाले परतीर्थियोंको कोसा है। श्री जिनेन्द्रके स्याद्वाद रूप सूर्यमंडलके प्रमाणयुक्त, अविरोधी वचन युक्त, सर्व दोष मुक्त-एक मात्र जैन अनेकान्तिक प्ररूपणा ही ग्राह्य और हितकारी है, जिसे पराजित करनेके लिए एक एक नय या नयाभासरूप खद्योत सर्वथा असमर्थ और अश्रद्धेय सिद्ध किया है। तदनन्तर अरिहन्त भगवंतोंके उत्कृष्टतम ऐश्वर्य और अनुपमेय यथार्थ देशना होने पर भी उन सत्योपदेशकी उपेक्षाका एक मात्र कारण-पंचमकालके प्रभावसे मिथ्यात्व मोहनीय कर्मके विपाकोदयसे सत्यमार्गका आच्छादित होना और सत्यमार्ग दृष्टिगत न होने देना ही-है।

अनादि मुक्त, निरंजन-निराकार सर्व व्यापी एक ही ईश्वर कभी उपदेष्टा नहीं हो सकता, उपदेष्टा हो सकता है, निरुपाधिक ज्ञानज्योति स्वरूप देहधारी उपदेशक और आप्तवचनोंके अर्थघटनमें मिथ्यात्वोदय या मंदबुद्धिसे उपद्रव कर्ताको नसीहत मिलनेसे जिनशासनकी ज्ञानलक्ष्मी अद्यावधि अधृष्या रह सकी है। राग-द्वेषादि दूषणोंने प्रथमसे ही श्री जिनेश्वरके पाससे भागकर, कर्मक्षय-उपशम-क्षयोपशमें अप्रवृत्त परवादीके अन्य देवोंमें सुरक्षित स्थिति प्राप्त की है। शुक्ल ध्यान लीन वीतरागकी मोहनीय कर्मजन्य करुणा न होनेसे उन्हें तीर्थ प्रवर्तनादिके लिए मोक्षगमन पश्चात् बारबार अवतारी नहीं बनना पड़ता। सृष्टिका सर्जन-विसर्जनकर्ता ईश्वर संसारक्षय करवानेवाले सदुपदेश नहीं दे सकते। जहाँ पर्यंकासन-विरामयुक्त-नासाग्र पर मर्यादायुक्त स्थिर दृष्टि रूप योगमुद्रा ही नहीं वहाँ उनमें अन्य गुणोंकी संभावना कैसे हो सकती है?

सम्यक् ज्ञानाधार, परमाप्तोंके परम शुद्ध स्वभावदर्शक, कुवासनापाशभंजक श्री जिनशासनको नमस्कार करते हुए दो अनुपमेय-अप्रतिम बातें-- (१) जिनेश्वर द्वारा पदार्थोंका यथास्थित, यथार्थ स्वरूप वर्णन, (२) परवादियोंके पदार्थ स्वरूप निरूपणकी असमंजसता-इनके लिए आश्चर्य व्यक्त करके जन्मांध (मिथ्यात्वी विशृंखल-स्वच्छंदाचारी-महा अज्ञानी-जिनेश्वरके अमूढ लक्ष्यके खंडन कर्ताओं) के लिए अंजनवैद्य तुल्य निर्मल दृष्टि सम्यकत्वी भी कोई उपचार करनेको असमर्थ है। परवादियोंको अज्ञात और जन्मजात वैरीके भी वैर शमनमें समर्थ जिनेश्वरकी देशना-भूमिके शरण अंगीकरणसे सभीका सर्व जीवोंसे वैर-विरोध खत्म हो जाता है।

निष्कर्ष-आत्माको मलिनकर्ता दूषित शासन, मिथ्या होनेसे त्याज्य और सर्वदेव-सर्वधर्म समान माननेवाले मध्यस्थ भाव धरनेके घमंडयुक्त सत्मार्गकी निंदासे आत्महानि और युक्तियुक्त शास्त्र कथनमें अनुरक्त मनीषी आत्महित करते हैं। अतः श्री हेमचन्द्राचार्यजी म. अवघोषणा करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं-"वीतराग के अतिरिक्त अन्य कोई सत्य धर्मका उपदेष्टा नहीं है, और अनेकान्त-स्याद्वाद बिना पदार्थ स्वरूप कथनकर्ता कोई नय-स्थिति भी नहीं है। "स्यात्"के बिना सहयोग, किसी भी-नित्यानित्यादि-नयके कथन सिद्ध नहीं होते हैं।" हरि-हर-ब्रह्माके प्रति द्वेषके कारण नहीं किन्तु संपूर्ण निष्पक्ष-आप्त(आगम)वचन, चारित्र, मूर्ति-रूप तीन प्रकारकी कसौटीसे आपको शुद्ध जानकर ही, हे वर्धमान, आपके प्रति श्रद्धा दृढ़ करके आपका आश्रित बना हूँ। हे भगवन्, तेरी वाणीके चंद्रकिरण-तुल्य ज्ञान-रूप उज्ज्वल और तर्करूपसे पवित्र स्वरूप प्रकाशक रूपको जो अज्ञानियोंसे अज्ञात है--हम पूजते हैं। अंतमें विशेष बोध रहित-कोमल बुद्धि-इस स्तोत्रको श्रद्धासे और जो स्वभावसे स्वमताग्रही, परनिंदक निंदारूप अवगाहे; किन्तु हे जिनवर, यह स्तुतिमय स्तोत्र-समर्थ बुद्धि, राग-द्वेष रहित, सतसत्के निर्णायक-परीक्षककी धर्मचिंताको धारण करने योग्य-तत्त्व प्रकाशक है।

ऐसी प्ररूपणाके साथ, इस स्तोत्रके बालावबोधको समाप्त करते हुए ग्रन्थकार श्री आत्मानंदजी म.सा.ने इस स्तम्भको भी समाप्त किया है।

चतुर्थस्तम्भः--इस स्तम्भमें श्री जिनेश्वरोंको प्रणाम करके श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा. कृत 'नृतत्त्व निगम' अर्थात् 'लोकतत्त्वनिर्णय'का बालावबोध ग्रन्थकारने प्रस्तुत किया है, जिसके अंतर्गत भव्याभव्य या योग्यायोग्य श्रोताके लक्षण एवं परिचय विविध दृष्टान्तों द्वारा करवाकर उन्हें प्राप्त उपदेशका परिणाम, एक समान उपदेशका भिन्न भिन्न पात्रानुसार विभिन्न रूपमें परिणमन, युक्ति प्रमाणकी कसौटीका स्वरूप वर्णन प्ररूपित करते हुए बाल बुद्धि-स्वमत हठाग्रहीको आत्महित प्राप्तिका अभाव दर्शाया गया है। सुश्राव्य वचनोंको सुनकर तुलनात्मक बुद्धिसे ग्राह्यका ग्रहण करके और कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टिका वर्जन सूचित किया गया है। प्रत्यक्ष देवके अभावमें इनके चारित्रादि, आप्त-आगमादि शास्त्र-प्रतिमादि दर्शन द्वारा, निश्चित करनेमें निंदा नहीं है।

एक दोष पीड़ित, भय पीडित, निर्दयी, अज्ञानी, विविध शस्त्रधारी, हिंसक, लज्जा-त्यागी, रागी, आदि अनेक दूषण युक्त है; और एक इन सबसे मुक्त, सर्व क्लेश रहित, पर हितमें सावधान, सर्व जीवोंके शरण्यभूत, आदि अनेक गुण युक्त होनेपर तुलनात्मक दृष्टिसे बुद्धिमान---किसे आराध्य मानेंगे? सन्मार्गसे स्खलित पुरुष, समर्थ भी हों, दुःखी होता है। भगवान महावीर और अन्य बुद्धादि देव-दोनोमें किसीके प्रति राग-द्वेष, पक्षपात, वैर-विरोध नहीं; न किसीने किसीका लिया-दिया है; लेकिन एकांत रूपसे जगहितकारी, उपकारी, निर्मल, अनेकानेक गुणयुक्त---सर्व दोषमुक्त भ.महावीर होनेसे वे आराध्य, शरण्यभूत, सकल ज्ञेय पदार्थ प्रकाशक, श्रद्धा संयुक्त श्राव्य वाणीके स्वामी-सभीके आराध्य हो सकते हैं। श्री अर्हन् के यथार्थ स्वरूपके अज्ञात, स्वतः प्रवृत्तिरूप, परकी अनुवृत्तिरूप, दाक्षिण्यतासे, फल प्राप्ति के संशय युक्त अथवा बिना भक्तिभावसे भी आपको किया हुआ नमस्कार सुखादि संपत्ति-विभूति दायक होता है; तब आपके यथार्थ शासनके श्रद्धा-भक्तिसे आराधकोंको कैसा उत्तम फल (मोक्ष फल?) मिलेगा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष-अति सुंदर प्रौढ़ आगमवचन प्रवक्ता, जगत्के एकांत हितकारी सूक्ष्म बुद्धि चक्षुसे अन्वेषण करके, बिना पक्षपात-शास्त्रोक्त युक्ति युक्त वचन ग्रहणका अपना निश्चय प्रगट करते हुए निःस्वार्थी, परमोपकारी, समस्त विश्वके पदार्थोंको त्रिपदी रूपमें अनन्य सदृश ज्ञाता और अनन्य सदृश अचिन्त्य-अकलंक चारित्रवान् विशेषण विशिष्ट; सर्व दोषोंका क्षय तथा अनंत ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्यादि अनंतगुण प्रगट किये हों-ऐसे देव नामसे ब्रह्मा, सुखदायी शंकर, विष्णु हों या रत्नत्रयी प्रदाता जिन हों-उन्हें अंतःकरणसे हार्दिक नमस्कार करने योग्य हैं।

इस प्रकार इस स्तोत्रसे 'देवत्व'का निर्णय करते हुए इस स्तम्भको संपूर्ण करके, परवर्ती-पंचम स्तम्भमें स्याद्वादाधारित देवोंके 'क्रियात्मक'निर्णयका विवेचन किया जा रहा है।

पंचम स्तम्भः-इस स्तम्भमें सृष्टि सर्जन विषयक विवेचन किया गया है। स्याद्वादसे निश्चित किये गये तत्त्वज्ञानसे अज्ञात सर्ववादियों द्वारा लोक क्रियात्मक विषयक याने-ईश्वर, सृष्टि रचना, आत्मा, कर्म, द्रव्य-गुण-पर्याय-आदि विषयक अनेक विभिन्न मान्यतायें स्थापित की गई हैं। जिनमें वैशेषिक, नैयायिक, सांख्य, मीमांसक, बौद्ध, आदि आस्तिक एवं चार्वाकादि नास्तिक दर्शनोंके अंतर्गत कालवादी, ईश्वरवादी, ब्रह्मवादी, सांख्यवादी, क्षणिकवादी, पुरुषवादी, आत्मवादी, दैववादी, अक्षरवादी, स्वभाववादी, अंड़वादी, अहेतुवादी, परिणामवादी, नियतिवादी, भूतवादी, आदि अनेक वादियोंके स्वमतानुसार शास्त्रोंके उद्धरण देते हुए उन्हें पूर्वपक्ष रूप स्थापित किये गये हैं।

इस अवसर्पिणीकालमें अनंत नयात्मक, सर्व व्यापक, स्याद्वाद-स्वर्णरस कूपिकाके रस समान-सर्व जीवादि तत्त्वोंकी प्ररूपणा श्री ऋषभदेवजीने की, जिसे भरतचक्री द्वारा आर्यवेद रचनामें समाहित किया गया। उसका ही यत्किंचित् स्वरूप सांख्य; और उन्हींमेंसे अनार्य वेद-वेदांतादि शास्त्र रचे गये, और मत स्थापित हुए।

अब यहाँ श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी द्वारा समुच्चयसे सर्व पक्षोंका किया गया खंडन इस प्रकार प्रस्तुत किया है-यथा (१) सत् और नित्य कारणसे जगत् उत्पत्ति नहीं हो सकती। (२) असत् कारण और कर्ता, कोई कार्य-सृष्टि सर्जनादि-करनेमें, (बिना अस्तित्वके कारण) असमर्थ रहेंगें। अतः प्रवाहापेक्षया यह सृष्टि अनादि स्वभाव सिद्ध है। मूर्त एवं अमूर्त द्रव्य न विनाशी है, न कभी अन्यत्वभाव प्राप्त। जगत् उत्पत्ति-विनाश, पर्यायरूप और ध्रुवता (शाश्वतता)-द्रव्यरूपसे ही है। अतः जैसे ईश्वरको किसीने भी नहीं रचा, वैसे ही जगत-प्रपंच भी किसीका रचा नहीं, लेकिन अनादिकालीन मानना चाहिए। ईश्वर कृतकृत्य हैं, वीतराग-आप्त न्यायशील-निष्पक्ष-दयालु-सर्व सामर्थ्यवान हैं, इसलिए जगत्कर्ता नहीं हो सकते। अगर सृष्टि रचें तो ये गुण असिद्ध हो जायेंगें; ऐसे अगुणी ईश्वरको कोई कल्याणकारी न मानेंगें। अतः सृष्टिकर्ता कोई नहीं हैं। यहाँ मुक्त जीवोंका स्वरूप वर्णित है। इसके साथ ही कर्मजनित प्रभुत्व, मेरु आदि पदार्थोंका नित्यत्व और अकृतकत्व, आदिके वर्णनके साथ, लोक व्यवहारमें प्रवर्तमान कालचक्रकी तरह ज्योतिष्चक्र और जीवचक्र भी नित्य-अनादि-शुभ-अशुभ कर्मोंके अनुभाव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामर्थ्यसे प्रवर्तमान हैं। जगतके पदार्थ स्वरूप या प्रवाहरूपसे अनादि है, अतः लोक शाश्वत है और लोकसे बाहर अलोक-केवल आकाश मात्र ही है। लोकमें संसारी जीवोंका परिभ्रमण आकृति-जाति-योनि- स्वकर्म अनुसार होता हैं। इन विविध रूपोंसे गहन एवं विशद-इस लोकका न पर्यवसान है न प्रारम्भ।

निष्कर्ष-अतएव अनादि-अनंत-कष्टदायी-भयजनक-यह दृढ़ संसारचक्र, जन्म आदि रूप आरें दोषरूप नेमिधारा, रागरूप तुंबघोरनाभिवाला, स्वकर्मरूप पवनसे प्रेरित निरंतर भ्रमण करता है। अतः ईश्वरको सृष्टिकर्ता मानना, केवल अज्ञानियोंकी अर्थहीन लीला मात्र है। अंतमें ग्रन्थकार द्वारा महादेव स्तोत्र, अयोग व्यवच्छेद और लोकतत्त्व निर्णय-ग्रन्थोंके अर्थरूप बालावबोधमें कृतिकार श्री हेमचंद्रचार्यजी और श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.के अभिप्रायसे अथवा जिनाज्ञा विरुद्ध हुई प्ररूपणाके लिए 'मिथ्या दुष्कृत्'-क्षमायाचना करते हुए उन गलतियोंको सुधारनेके लिए सुज्ञजनोंको अपील करते हुए इस स्तम्भकी परिसमाप्ति की गई है।

षष्ठम स्तम्भः-इस स्तम्भमें सृष्टि-रचना-क्रमको, विस्तृत रूपमें वेदाधारित एवं सांख्य मताधारित मनुस्मृति आदिमें विवरित संदर्भोंको उद्धत करते हुए प्ररूपित किया है। कहीं ब्रह्माकी स्वर्ण अंडेमें स्वतः उत्पत्ति और उन्हींके द्वारा सृष्टि रचना वर्णित है, तो कहीं पांचभूत-बुद्धीन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-प्राण-मन-कर्म-अविद्या-वासनादि सूक्ष्म शक्ति भेदाभेद रूपमें ब्रह्माके साथ थी-ऐसे ब्रह्माने ध्यानसे पाणी रचा। अतः सूक्ष्म प्रकृति रूपसे ब्रह्माकी भेदाभेदतासे अद्वैत निर्मूल हो जाता है। और भेदाभेदकी समसमयमें प्ररूपणा बिना स्याद्वादके सहयोगसे अकथनीय है। अतएव कथंचित् भेदाभेद रूप माननेसे द्वैतरूप सिद्ध और अद्वैतरूप असिद्ध हो जाता है।

अन्यथा जड़का उपादान कारण जड़ और चैतन्यका चैतन्य होता है, अतः चैतन्य ब्रह्मसे जड़-चैतन्य-मिश्ररूप सृष्टि होना असिद्ध होता है। इससे "एक ब्रह्मरूप चैतन्यकी अनेक रूप होनेकी ईच्छा"भी प्रमाणबाधित होती है। ऋग्वेद-यजुर्वेद-गोपथ ब्राह्मणमें ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसे और मनुजी द्वारा अंड़ेसे मानना भी विरोधाभास है। अंड़ेमें ३११० अरब वर्ष पर्यंत ब्रह्माका रहना भी ईश्वरके निराबाध-सर्वशक्तिमान गुणको बाधित करता है। कहीं जड़से चैतन्य और कहीं चैतन्यसे जड़की उत्पत्तिकी प्ररूपणा भी प्रमाणबाधित है। इस प्रकार मनुस्मृत्यादि प्ररूपित सृष्टि रचना क्रम एवं प्रक्रियाको असिद्ध प्रमाणित करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया है।

सप्तम स्तम्भः-इस स्तम्भमें ऋग्वेद-यजुर्वेदादिके आधार पर सृष्टि रचना-क्रम-प्रक्रियाका विवेचन किया गया है। अतीत कल्पमें जीवों द्वारा किये गए कर्मके विपाकोदयकालमें भावरूप माया (अज्ञान) और कारणभूत मायाके साथ अभिन्नत्वसे रहे ब्रह्मा-ईश्वरके मनमें सृष्टि रचनेकी ईच्छा हुई; जिससे त्रिकालज्ञ योगीश्वरने बुद्धिसे विचार करके उन कर्मानुसार क्षणमात्रमें सृष्टि रचना-युगपत् विश्वमें व्याप्त सूर्यकिरण सदृश-की जिसके अंतर्गत मानस यज्ञ-प्राकृतिक या नैसर्गिक यज्ञकी कल्पना करके हविष्-इध्म-पुरोड़ाश आदि उसके भोग्याभोग्य सामग्री सर्वऋषियोंके यजनके लिए रची। उसी यज्ञसे वेद-गायत्री-सर्व-पशु आदि उत्पन्न हुए और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रजापतिके विभिन्न अंगोपांगसे विभिन्न जातिके मनुष्य-देव-आकाश-दिशा-पदार्थादि उत्पन्न हुए।

यजुर्वेदके १७ वें अध्यायानुसार पुनः सृष्टि रचनाकी अभिलाषासे "मैं बहुत हो जाउँ"-ऐसा सोचते हुए सृष्टि रचना की। कुंभकार सदृश द्यावा-पृथ्वी-सर्जक विश्वकर्मा एक-अकेला-असहायी, धर्माधर्म निमित्तसे अनित्य पंचभूत रूप उपादानसे सृष्टि रचते हैं। इनके आंख-मुख-बाहु-पैर आदि सर्वतः है, अर्थात् सर्व दृश्यमान प्राणियोंके चक्षु आदि उन्हीं उपाधिरूप परमेश्वरके ही है। अन्य सृष्टि रचनाके लिए भी अन्य कोई उपादान-निमित्त कारण नहीं हैं, लेकिन उर्णनाभि सदृश सृष्टि रचना करते हैं। -इस तरह विश्व रचनाकी प्ररूपणाके साथ यह स्तम्भ पूर्ण किया गया है।

अष्टम् स्तम्भः-सप्तम स्तम्भमें वर्णित सृष्टि क्रमादिकी समीक्षा इस स्तम्भमें की गई है। इसकी समीक्षा करनेके पूर्व ही ग्रन्थकारने स्पष्टतया अपने उदार और माध्यस्थ विचारोंको प्रस्तुत किया है। "किसी भी शास्त्रका प्रथम श्रवण-पठन-मनन-निदिध्यासनादि करके युक्ति प्रमाणसे बाधित प्ररूपणाका त्याग और युक्तियुक्तका स्वीकार करना चाहिए। मतोंका खंडन-मंडन देखकर कभी किन्हीं मतावलम्बियोंकी और द्वेषबुद्धि नहीं करनी चाहिए। क्योंकि सभी स्वयंका माना हुआ मत ही सच्चा मानते हैं।" तत्पश्चात् सर्वमतोंकी जगत्कर्ता विषयक मान्यतामें विलक्षणता दर्शाते हुए ऋग्वेदानुसार जगत्कर्ताका विवेचन करते हैं। तदन्तर्गत मायाकी सत्-असत् अनिर्वाच्यता और ब्रह्मका अद्वैत-द्वैत-निर्मलता-वितरागताका विश्लेषण करते हुए, वेदमें सूचित 'मकडीके जाले'के दृष्टान्तको असिद्ध करके ब्रह्मकी सावयवता, नित्यता, द्वैतता, अज्ञान, अविवेक, निर्दयता, अवीतरागता, जडता, आत्मघातकता और मायाका अनादिपना सिद्ध करके किसीभी दर्शनमें कर्मके सर्वांग-संपूर्ण स्वरूप विवरणके अभावको प्रकाशित किया हैं।

उपनिषदानुसार सृष्टि रचनासे लाभालाभ, प्रलापरूप प्रलय स्वरूप वर्णन, बिना शरीर सृष्टि रचनाकी असंभवित ईच्छा, सशरीरी ब्रह्मकी अद्वैतताकी, असिद्धि, ब्रह्मका नित्यानित्यत्व, रूपारूपित्व, "परमात्माके सामर्थ्यसे सृष्टि रचना"-कथनमें इतरेतराश्रय दूषण, ऋग्वेद अ.८ अ.४की श्रुतिमें वर्णित सृष्टि क्रमकी अनेक युक्तियुक्त प्रमाणसे समीक्षा, बिना परमाणु भूमि सृजन-शरीरादि रचनाकी मिथ्या प्ररूपणा और गर्भजकी उत्पत्ति गर्भसे और निश्चित जीवोंके जन्म निश्चित योनिसे ही होनेकी वैज्ञानिक एवं तार्किक प्रमाणसे सिद्धि, दृश्यमान सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र-तारादि ज्योतिष्क नामक देवोंके निवास स्थान रूप विमान (जो प्रवाहसे अनादि अनंत कालीन है।) की प्ररूपणा, अनेक देवों, दिशा-आकाशादिकी उत्पत्तिकी मिथ्या कल्पनादि अनेक प्ररूपणाओंके आलेखनको समीक्षित करते हुए सत्यकी सिद्धि-मिथ्याकी असिद्धि करते हुए इस स्तम्भ को पूर्ण किया हैं।

नवम स्तम्भः-इस स्तम्भमें तपके प्रभावसे अथवा स्वदेहसे-पगसे पृथ्वी, पेटसे आकाश और मस्तकसे स्वर्गरूप-सृष्टि सर्जन और पालन, ब्रह्माकी उत्पत्ति, दिशा और आकाशकी उत्पत्ति, मानस यज्ञसे देवों द्वारा वेदकी उत्पत्ति, विभिन्न विरोधाभासी स्थानसे इंद्र-चंद्र-सूर्य-अग्नि आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवोंकी उत्पत्ति, परमात्माका शरीर, ईश्वरकी सर्व पदार्थोंमें स्वाधीनता, प्रजापतिकी एकसे बहुत होनेकी ईच्छा, ब्रह्माकी एकही अक्षरसे सर्व कामनाओंका अनुभव करनेका विचार (ॐका दर्शन), सृष्टि रचना पूर्व उपादान कारणोंकी स्थिति, स्वयंभू परमात्माको ऋतुकाल आनेसे गर्भाधान, यज्ञके उच्छिष्ट अन्नभक्षणसे स्त्रीको गर्भाधान, ऋषियोंकी सर्वज्ञता, और उनका वेदज्ञान, ब्रह्माका पर्यालोचन रूप तप-वायु रूप भ्रमण-वराहरूप धारण, अन्य पृथ्वी से मिट्टी लाना, (जिससे अन्य लोक स्वतःसिद्ध), विटम्बना युक्त मैथुन सेवनसे सृष्टि रचनाकी कल्पना आदि अनेक कुयुक्तियोंका, ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-अथर्ववेद; उन वेदोकी वाजसनेयी आदि संहितायें, तैत्तरेय ब्रा.-एतरेय ब्रा.-गोपथ ब्रा.-शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद, बृहदारण्यक आदि आरण्यक, सायणाचार्य-महीधर-कुशलोदासी आदिके भाष्य, दयानंदजी आदि अनेक नूतन समीक्षकोंकी प्ररूपणा (एक ही ईश्वरके व्यतिरिक्त कोई सर्वज्ञ नहीं है- आदि) अनेक प्ररूपणाओंमें परस्पर अत्यन्त उपहासजनक विरोध दृष्टि गोचर होते हैं जिसे अनेको श्रुति-मंत्र-श्लोकादिके उद्धरण देकर स्पष्ट किया हैं। इसके अतिरिक्त परमात्माका ऋतुकाल और गर्भाधान, सृष्टि जितने बड़े कमलपत्र पर मिट्टी बिछाकर सूखाना और उस पर सृष्टि रचना, प्रजापतिकी, पुत्री-शतरूपासे, विषय सेवनकी ईच्छा और उसकी तृप्तिके लिए अनेक रूप धारण करना तथा इसीसे सृष्टि सर्जन होना; प्रजापतिका पर्यालोचन रूप तप करना, जड रूपके तीनों लोकके पदार्थोंको चैतन्यमय ब्रह्म द्वारा उत्पन्न करवाना-उस जड सृष्टिसे तप करवाना, वेदोच्चारके लिए असमर्थ, उनसे यज्ञ करवाना-आदि अनेक उक्तियाँ उपहासजनक हैं।

निष्कर्ष-जो सर्वज्ञ, निर्विकारी, वीतराग, ज्योति स्वरूप, सच्चिदानंद स्वरूप, ईश्वर परमात्मा होते हैं, वे पूर्वोक्त हास्यास्पद कृत्य नहीं करते हैं, और न उनके वचन वेदवचन सदृश परस्पर व्याघाती या प्रमाणसे बाधित होते हैं, अतएव वेदादि शास्त्र सर्वज्ञ प्रणीत नहीं-केवल अज्ञानियोंके प्रलाप मात्र सिद्ध होते हैं।

दसम स्तम्भः-इस स्तम्भमें वेदकी ऋचाओंसे ही वेद ईश्वरोक्त या अपौरुषेय नहीं है यह सिद्ध करते हुए कुछ ऋचाओंके उद्धरण दिये हैं, जिन्हें अनेक ऋषियोंने अपने तपोबलसे प्राप्त करके सर्व प्रथम गायी और जिनका विभिन्न सूक्तोमें संकलन किया गया। ऐसे दश मंडलोके दृष्टा दस विभिन्न ऋषि थे।

ऋग्वेदके तृतीय अध्यायमें विश्वामित्र द्वारा नदी, इंद्रादिकी ब्रह्म रूप मानकर स्वशिष्य रक्षाके लिए, शत्रुको शाप-शत्रुनाश और धन-संपत्ति-पशु-पुत्र-परिवारादिकी वृद्धि हेतु प्रार्थना की गई है; अध्याय चतुर्थमें विषयी-कामांध-कृश-दुःखी सप्तवध्रि ऋषि द्वारा कामेच्छा पूर्तिके लिए लज्जाजनक स्तुति-अश्विनौकुमारकी-की गई है; षष्ठम अध्यायमें लोक व्यवहार उल्लंघित-अत्यन्त बिभत्स-हास्यास्पद-विषय-वासनामय अपाला ब्रह्मवादिनीकी इंद्रको प्रसन्न करनेके लिए याचनामय-स्तुति; सप्तम अध्यायमें यम-यमीके संवादमें "प्रजापति ब्रह्माका अपरिमित सामर्थ्यके कारण अगम्यगमन मान्य" -आदि वासनामय मनोवृत्ति युक्त स्तुति; यजुर्वेदके तेरहवें अध्यायमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विश्वके सर्व जातिके सर्पोंको नमस्कार; उन्नीसवें अध्यायमें सौत्रामणी यज्ञ वर्णनमें इन्द्र-नमुचि, अश्विनीकुमार-सरस्वती-सोमरस आदिकी अत्यन्त घृणास्पद प्ररूपणायें, देव-देवी-पितृओंकी शुद्धि-रक्षा-भौतिक समृद्धि प्राप्ति-दुर्जनादि दुश्मनादिके नाशके लिए प्रार्थना, इन्द्र के शरीरके अंगोपांगके लिए विविध हास्यास्पद सामग्रीका वर्णन-बत्तीसवे अध्यायमें अनेक जड़ पदार्थोंकी बुद्धिके लिए बुद्धिहीन याचनायें; चालीसवें अध्यायमें वेद रचयिता ईश्वर ही कहते हैं-"पूर्वोक्तविध धीर पंडितोंसे संभूत-असंभूत उपासनाका फल जैसा सुना है वैसा कहते हैं।" अर्थात् वेद रचना स्वयं ईश्वरकी नहीं, लेकीन पूर्वोक्त-धीर पंडितोंकी प्ररूपणानुसार शिष्य रूप बनकर ही वेद रचे होगें। *तैत्तरीय* ब्राह्मण में "ब्रह्माने सोम राजाको उत्पन्न करके तीन वेद उत्पन्न किये जिन्हें सोम राजा अपनी मुटठीमें छिपाता है।"-इतने बडे वेद मुट्ठीमें कैसे छिपाये" यही आश्यर्यजनक है। *निष्कर्ष*-ऐसे प्रमाणोंसे वेद ईश्वर प्रणीत नहीं लेकिन अज्ञानी, मूर्ख, लालची, व्यसनी, दुराचारीके मानस साम्राज्यकी कल्पना रूप निष्पत्ति है। ऐसे अधिक प्रमाणोंके लिए सायणाचार्यादिके ग्रन्थावलोकनकी प्रेरणा देते हुए और अंतमें श्री दयानंदजी और उनके मतावलम्बियोंकी अनघड़ गप्पोंको दर्शाकर इस स्तम्भकी पूर्णाहुति की गई हैं।

एकादश स्तम्भ---इस स्तम्भमें जैनाचार्योंके बुद्धि वैभव रूप गायत्री मंत्रके अर्थकी प्ररूपणा की गई है। सर्व प्रथम ऋ.सं.अ-३, अ.४, वर्ग-१०, यजुर्वेद, शंकर भाष्य, तैत्तरेय आरण्यक--अनु-२७ आदि के आधार पर गायत्री मंत्रका मूल रूप प्रस्तुत किया है-<u>गायत्री मंत्र</u>-"ॐ भूर्भुवः स्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात्"

जैन मतानुसार व्याख्यार्थ-ॐ-पंचपरमेष्ठि; भूर्भुवःस्वः=मर्त्य-स्वर्ग-पाताल-त्रिलोकको; तत्=व्यापकर (अरिहंत- सिद्धमें स्पष्ट और आचार्यादिमें उसके प्रति श्रद्धा रूप व्याप माननेसे-केवलज्ञानादि गुण द्वारा व्यापकर); सवितुःवरेण्य=सूर्यसे भी श्रेष्ठ (सूर्यका द्रव्यउद्योत देश व्यापक-पंच परमेष्ठिका भाव उद्योत त्रिलोक व्यापी);भर्गोदे= महेश्वर-ब्रहमा-विष्णु; वसि अधीमहि-स्त्रियोंके वशीभूत; धियोयो नः प्रचोदयात्=हे प्रेक्षावान् पुरुष प्रकृष्टाचार (मार्गानुसारी प्रवृत्तिके उदयसे) आचरण कर। **भावार्थ** यह होगा, "हे बुद्धिवान्, प्रेक्षावान् प्रकृष्टाचार पुरुष! देशव्यापक उद्योतकारी सूर्यसे और स्त्रियोंके वशीभूत ईश्वर-ब्रह्मा, विष्णु, महेश-से श्रेष्ठ पंच परमेष्ठि-जो ज्ञानमय रूपसे पृथ्वी-पाताल-स्वर्ग-त्रिलोकमें व्याप्त हैं-उनकी ही आज्ञा रूप अमृत आस्वाद्य हैं-वे ही आराध्य, उपास्य, शरण्य, हैं। अतः उनकी ही आज्ञाकी आराधना कर।

इसी तरह नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, वैष्णव, सौगत, जैमिनीय, आदि मतानुसार विविध रूपोमें इस गायत्री मंत्रका अर्थ पेश करते हुए अंतमें सर्वदर्शन सम्मत सर्वसाधारण व्याख्याकी प्ररूपणा की गई है। <u>*भावार्थ*</u>-ॐकार स्थित पंच परमेष्ठिको प्रणाम पूर्वक, अथवा बीजमंत्र ॐकारके उच्चारणपूर्वक, हे सर्वत्र व्यापक ईश्वर-परमेश्वर! सूर्यसे भी श्रेष्ठ, देवत्रयके आराध्य! हमारी मनोगत (उपलक्षणसे वचन एवं कायगत) कामनाओंका नाश कर और चौर्यासी लक्ष योनि (संसार भ्रमण) से पार होनेके लिए हे सर्वज्ञ, हमें प्रेरणा कर, अर्थात् इनके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वंसपूर्वक हमें मुक्ति प्राप्त करनेमें प्रेरणा कर।

गायत्री मंत्रसे निष्पन्न बीज मंत्राक्षरः--ॐकार=प्रभाविक; भर्गोदे=शब्द स्थित श्वेत वर्णसे शान्ति-पुष्टि, पीतसे स्तम्भन, रक्तसे वशीकरण और कृष्ण वर्णसे विद्वेष-उच्चाटन-मारणादि प्रयोग; भूर्भुवस्तत्=पृथ्वी आदि पंचतत्त्वरूप अर्हन् आदि पाप प्रनाशक पंचतत्त्व स्मरणसे मनवांछित प्राप्ति; रेण्यं धीमहि=ह्रीं की उत्पत्ति; वरेण्यं= 'ऐं'की उत्पत्ति, अधीमहि= 'श्री'-आदि सयोगिक महामंत्रोंके निबंधन दर्शाये गये हैं। अक्षर मात्र मंत्र रूप होते हैं-यथा-

"अमंत्रमक्षरं नास्ति, मूलमनौषधम् । अ धना पृथिवी नास्ति, संयोगाः खलु दुर्भगाः ।।"

इससे औषधि रूप विधि भी प्राप्त होती है जिसका भावार्थ है-"मेष शृंगी वृक्षके पत्रदल भाग-१+गेहुंके सत्तु भाग-१+राई भाग-रका मिश्रण घृतके साथ भक्षण करनेसे बल-वीर्य प्राप्त होता है और वायु दूर होता है।

निष्कर्ष-गायत्री मंत्रके इन अर्थोंको ग्रन्थकारने उपा.श्री शुभ तिलक विजयजी म. द्वारा 'गायत्री व्याख्यान'में जो क्रीडामात्र लिखे गये थे उनके आंधार पर लिखे हैं जिससे जैनाचार्योंकी सूक्ष्म बुद्धिका परिचय प्राप्त होता है।

द्वादश स्तम्भः-इस स्तम्भमें सायणाचार्यादिके अभिप्रायसे गायत्रीमंत्रके अर्थकी समीक्षा की गई है। सायणाचार्यजी द्वारा ऋग्वेद भाष्यमें गायत्रीमंत्रका तीन प्रकारसे और तैत्तरीय आरण्यकमें उनसे भिन्न प्रकारसे ही गायत्रीका अर्थ किया गया है; तो यजुर्वेद भाष्यमें महीधरजीने गायत्रीका एकदम अलग ढंगका अर्थ प्रकाश किया गया है। शंकर भाष्यमें गायत्रीकी उपासना विधि दर्शाते हुए "सात प्रणवादि व्याहृतियाँ और शिरः संयुक्त सर्व वेदोंके सार रूप गायत्रीको उपास्य माना है। इन सभीसे दयानंदजीने यजुर्वेद भाष्यमें जो अर्थ किया है वह अधिक विचित्र है-यथा-"मनुष्योंको अत्यन्त उचित है कि जगत् उत्पादक, सर्वोत्तम सर्व पापनाशक, अत्यन्त शुद्ध परमेश्वरकी प्रार्थना करें, जिससे प्रार्थित किया वह हमारे दुर्गुणों-दुष्कर्मोंसे मुक्त करें-अच्छे गुण, कर्म और स्वभावमें प्रवृत्त करें।" और उन्होंने ही 'सत्यार्थ प्रकाश'-समुल्लास-१-३ में इससे एकदम भिन्न अर्थ किये हैं। इसी तरह व्यास सूत्रों पर आठ आचार्योंके विभिन्न अर्थोंसे विभिन्न प्रकारके केवलाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, आदि मतोंका प्रचलन हुआ। कुमारिल और दयानंदजी आदिके कल्पित अर्थोंको स्पष्ट करते हुए और नास्तिककी व्याख्या करके "एकमात्र वेदकी निंदा करनेसे ही कोई नास्तिक नहीं बन जाता"- इस कथनकी पुष्टि की है। उपरोक्त सभीकी व्याख्याओंकी समीक्षा करते करते "हिंसक वेदोंकी रचना अर्वाचीन-प्रक्षेपरूप-मनघड़ंत-परवर्ती है, क्योंकि प्राचीन वेदोमें हिंसक यज्ञोंकी प्ररूपणा नही है"--इसे प्रतिपादित करते हैं। "पशुवध करके यज्ञ करनेके"-एक ही कथनमात्रसे वसुराजाकी अधोगतिको उद्धृत करते हुए यज्ञशेष रूप-मांस-भोजी याज्ञिकोंके हालातका चिन्तवन करते हुए पृ.३०६ पर लिखा है-"संप्रतिकालमें अनेक जनोंने वेदोंका सत्यानाश किया है। वेदोंके सच्चे अर्थ कोई प्रगट नही करता है। हमने जो वेद समीक्षा लिखी है वह अपने मतके अनुराग या वेदोंके द्वेष से नहीं लिखी, किन्तु, यथार्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वज्ञके रचे हुए यह वेद पुस्तक है कि नहीं-इस बातके सच्चे निर्णय करनेके लिए हमने इतना परिश्रम उठाया है।" इस कथनसे आचार्य प्रवरश्रीकी सत्यप्रियता और सत्यके प्रति उत्कंठा का उद्‌घाटन स्वयं हो जाता है। "षडंग-वेद आदि सर्व आज्ञा-सिद्ध शास्त्रोंका युक्ति-प्रमाणसे खंडनके निषेध" को "निर्मल सोनेको कसौटीका क्या डर?-" कहते हुए ललकारा है।

तत्पश्चात् मूलागममें गृहस्थके संस्कार वर्णनके अभावसे जैनशास्त्रोंकी अमान्यताको मुंहतोड़ जवाब देते हुए स्पष्ट किया है कि, मूलागममें केवल मोक्षमार्गका ही कथन होता है। फिरभी तीर्थंकरादिके चरितानुवाद रूप गर्भाधानसे प्राणत्याग पर्यंतके कुछ संस्कारोंका व्यवहार कथन भी मिलता है। वैसे तो सर्व संस्कारोंका एक ही वेदमें भी वर्णन कहीं नहीं मिलता है। इन सर्व-सोलह संस्कारोंकी प्ररूपणा परवर्ती स्तम्भोंमें करनेकी भावनाके साथ यह स्तम्भ समाप्त किया गया है।

त्रयोदश स्तम्भः--आगम सूचित, परंपरित जैन मतानुसार सोलह संस्करोंका वर्णन-श्री वर्धमान सुरीश्वरजीम. कृत 'आचार दिनकर' ग्रन्थाधारित--जीइस ग्रन्थमें कुल उन्नीस स्तम्भोंमें समाविष्टि हैं-- किया गया है।

प्रारम्भिक-श्री अरिहंत परमात्माकी देह भी गर्भाधानादि संस्कारोंसे वासित थीं। अतएव लोकोत्तर पुरुषों द्वारा आचीर्ण होनेसे गर्भाधानादि आचार, सम्यक्त्व, देशविरति-सर्वविरति और अंतमें निवार्ण होने पर अंत्येष्टि-आदि आचार प्रमाणभूत हैं। सर्व आचारोंमें मूल समान ज्ञान; शाखा और स्कंध सदृश दर्शन और फल रूप चारित्र है, जिसका रस मोक्षप्राप्ति है। ऐसे सिद्धान्त महोदधिके कल्लोल रूप चारित्रका व्याख्यान दुष्कर होने पर भी श्रुत केवली प्रणीत शास्त्रार्थ अवलम्बनसे किंचित् आचरणीय आचारोंका वक्तव्य प्रस्तुत किया है। तदनुसार आचार दो प्रकारसे-साध्वाचार और गृहस्थाचार; जिसमें साधुधर्म -जितना विषम या दुष्कर उतना ही मोक्षके समीप और गृहस्थ धर्म सरल-सुखशील-उपचीयमान आत्माको परंपरित मोक्षप्राप्तिका हेतु है। यहाँ इन दोनों आचारोंकी तुलना करते हुए साधु धर्मकी महानता और श्रेष्ठता दर्शायी है।

व्यवहारकी प्रमाणिकता आगम और लौकिक प्रमाणसे सिद्ध करते हुए प्रथम सामान्य व्यवहार और बादमें धर्म व्यवहारके पोषक गृहस्थ धर्म, जिसका पालन तीर्थंकरोंने भी किया है-उसका वर्णन किया है।

सोलह संस्कार नाम--गर्भाधान, पुंसवन, जन्म, चंद्र-सूर्यदर्शन, क्षीरासन, षष्ठी, शुचिकर्म, नामकरण, अन्न-प्राशन, कर्णवेध, मुंडन, उपनयन, पाठारम्भ, विवाह, व्रतारोप, और अंतिम (आराधना) कर्म। इनमेंसे व्रतारोपण साधुके पास और शेष संस्कार अर्हन् मंत्रोपनीत-परमार्हत् (परमश्रावक) ब्राह्मण अथवा गुर्वाज्ञा प्राप्त किसी क्षुल्लक श्रावकके पास करवाना चाहिए (यहाँ संस्कार विधिकारक श्रावककी योग्यता और आचरणका वर्णन किया है।)

गर्भाधान संस्कार--गर्भवतीके पतिकी आज्ञा लेकर यथायोग्य समय पति द्वारा स्नात्र-अष्ट प्रकारकी द्रव्यपूजा और भावपूजा करवाके स्नात्रजलसे सधवा माताओं द्वारा गर्भवतीका अभिषेक, शांतीदेवीके मंत्रगर्भित स्तोत्रसे सातवार मंत्रित जलसे स्नान, मंत्रपूर्वक वस्त्रांचलका ग्रन्थि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बंधन, पद्मासनस्थ गुरु द्वारा स्नात्रजल संयुक्त तीर्थ जलसे गर्भवतीको सातबार अभिसिंचन-जिनदर्शन-गुरुवंदन-दान-दंपतिको मंत्रोच्चारपूर्वक आशीर्वाद और ग्रन्थि वियोजनका विधि क्रमसे निरूपित किया है। (यहाँ जैन वेदमंत्रोंका आविर्भाव और अद्यावधि तवारिख पेश की हैं।) सर्व संस्कार वर्णनके पर्यंतमें उन संस्कारोंमें आवश्यक सामग्रीकी सूचि दी है, वैसे ही यहाँ भी गर्भाधानावश्यक सामग्रीकी सूचि दी है।

चतुर्दश स्तम्भः- पुंसवन संस्कार--गर्भावस्थाके आठ मास व्यतीत होने पर और सर्व दोहद पूर्ति बाद यथायोग्य समयमें पुंसवन कर्म किया जाता है। जिसमें सर्व विधि गर्भाधानकी तरह करनेका विधान किया गया है।

पंचदश स्तम्भः-जन्म संस्कार--अनुमानित समय पर कुलगुरु और ज्योतिषीका आना, जन्म होने पर जन्मक्षण जानकर जन्म-लग्न धारण करना, नालोच्छेद पूर्व दान-दक्षिणा, श्रावक- गुरू द्वारा मंत्रोच्चारसे आशीर्वाद, नालोच्छेद, सात बार अभिमंत्रित जलसे बालकका स्नान, पश्चात् रक्षामंत्रसे मंत्रित भस्मादिकी गुटकी, काले सूत्रमें लोहा-वरुणमूल-रक्त चंदनादिके टूकड़े- कौडीके साथ बांधकर, उसे कुलवृद्धा स्त्रियों द्वारा बालकके हाथ पर बंधवानेका विधान किया गया है।

षोड़श स्तम्भः--चंद्र-सूर्य दर्शन--जन्म दिनसे तिसरे दिन कुलगुरु द्वारा अर्हत्पूजन पूर्वक जिन प्रतिमाके सामने स्वर्णादि धातुमय या रक्तचंदनादि काष्टमय सूर्यकी प्रतिमाकी स्थापना और सूर्य सम्मुख ले जाकर सूर्यदर्शन एवं इसी तरह उसी रात्रिको चंद्रकी प्रतिमा स्थापन और दर्शन मंत्रोच्चारपूर्वक करवानेका विधान किया गया है।

सप्तदशस्तम्भः--क्षीरासन--बालक और माताको अभिषेक-मंत्रोच्चारसे आशीर्वाद और बालकको स्तनपान करवानेका विधान किया है।

अष्टादश स्तम्भः--षष्ठी संस्कार--जन्मके छठे दिन संध्या समय षष्ठी पूजन-रात्री जागरिका-प्रातः देवदेवी विसर्जन और कुलगुरु द्वारा पंचपरमेष्ठि मंत्रसे मंत्रित जलसे अभिषेक और मंत्रपूर्वक आशीर्वाद प्रदानका विधान किया है।

एकोन विंशति स्तम्भः--शुचिकर्म संस्कार--निषेधित नक्षत्रोंके अतिरिक्त सूतक दिन पूर्ण होने पर कुलवर्गादि संबंधियोंको बुलाकर शुचिकर्म करना-बालकके मातापिता भी पंचगव्यसे स्नान करके चैत्यजुहार, पूजा, गुरुवंदन, कुलगुरु, कुलवर्गादि सभीका आहारादिसे सत्कार-दानादिका विधि निर्दिष्ट किया गया है।

विंशति स्तम्भः--नामकरण--शुचिकर्म दिन या दो-तीन दिनमें कुल वृद्धोंकी विनतीसे, योग्य मुहूर्तमें, ज्योतिषी, पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक जन्म-पत्रिका बनाकर, द्वादश लग्नका पूजन करवाकर, बालकके नामाक्षर प्रकट करें और कुल वृद्धाओंसे बालकका जाति-गुणोचित नाम प्रकट करें। जिनमंदिरमें जिनपूजा-वंदनादि करके, पूजा-द्रव्य रखकर नाम सुनायें और यति-गुरुके पास भी वंदन करके-वासक्षेप पूर्वक, कुलवृद्धाके अनुवाद रूप यति गुरुसे नाम स्थापन करवायें। अंतमें गुरुको एवं अन्यजनोंको यथोचित दानका विधान किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकविंशति स्तम्भः--*अनुप्राशन*--कुलगुरुके पास श्रीजिनमंदिरमें भगवंतका बृहत्स्नात्रविधिसे पंचामृत-स्नात्र करवाकर अमृताश्रव मंत्रसे श्रीगौतमस्वामी, कुलदेव-देवी आदिको नैवेद्य चढ़ाकर, बालक-बालिकाकी ६ या ५ मासकी उम्र होने पर शुभ मुहूर्तमें, उनके मुखमें आर्यवेद मंत्र तीन बार पढ़कर अन्नप्राशन (अन्नाहार प्रारम्भ) करवायें।

द्वाविंशति स्तम्भः--*कर्णवेध*--शुभ मुहूर्तमें अमृतामंत्र-मंत्रित जलसे माँ-बेटेको सधवाओं द्वारा स्नान-पौष्टिक-मात्राष्टक पूजनादिके पश्चात् कुलदेव-स्थान, पर्वत, नदी तट या घरमें पूर्वाभिमुख बिठाकर आर्यवेद मंत्रपूर्वक कर्णवेध-धर्मगुरुसे वासक्षेप ग्रहण और अंतमें घर जाकर कर्णाभरण पहरायें (यथोचित दान-भक्ति भी करें)

त्रयोविंशति स्तम्भः--*चूडाकरण (मुंड़न)*--शुभ मुहूर्तमें कुलाचार करके, बालकका बृहत् स्नात्रविधिकृत स्नात्रजलसे शांतिदेवी मंत्रपूर्वक सिंचन-कुलगुरु द्वारा सात बार आर्यवेद मंत्र पढ़कर नापित द्वारा मुंडन-पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक स्नान-विलेपन-वस्त्रालंकारसे विभूषित बालकको धर्मगुरुके पास वासक्षेपपूर्वक आशीर्वाद ग्रहण करवानेका विधान किया है।

चतुर्विंशति स्तम्भः--*उपनयन संस्कार*--इसका अर्थ, माहात्म्य, आगमाधारित जिनोपवीत स्वरूप, (एक-दो तीन अग्रवाले) जिनोपवीतका कारण, धारक व्यक्तिकी योग्यता, धारण करनेका कारण, परमतमें यज्ञोपवीतका स्वरूप आदिको स्पष्ट करते हुए ज्योतिष् विषयक ग्रहादिके प्रभावादिकी चर्चा करके शुभमुहूर्तमें व्रत ग्रहणकी प्रेरणा दी है, साथ ही उपनयन संस्कार विधि-वेशपूजन-रात्रि जागरिका, स्नान-मुंड़न-वस्त्र परिवर्तन स्थापित समवसरण स्थित अर्हत् बिम्बोंकी प्रदक्षिणा-नमस्कार पूर्वक-स्तोत्र, सूत्र, मंत्रादि की विधिपूर्वक अनुष्ठान करते हुए गुरु द्वारा मंत्र प्रदान और उसी वक्त मंत्रका माहात्म्य और प्रभावका स्पष्टीकरण होता है। तत्पश्चात् जैन परंपरानुसार व्रतादेशके लिए, व्रतधारी, योग्य वेश धारण करके जिनपूजा-गुरुवंदनादि करते हुए, पंचपरमेष्ठि स्मरणपूर्वक गुरुसे अनुज्ञाकी याचना करने पर गुरु, शिष्यको आदेश-समादेश, आज्ञा-अनुज्ञा प्रदान करते हैं। उस समय उन व्रतोंका स्वरूप, ब्राह्मणादि वर्णानुसार करणीय-अकरणीय आचारादिका स्व-स्व वर्णानुसार उपदेश-आदेश-समाचारीका कथन करते हैं। अंतमें गुरु-शिष्य जिनमंदिरमें चैत्यवंदना करते हैं।

जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यने आठ, दस, बारह वर्षकी उम्रमें व्रत ग्रहण किये हैं, वह सोलह वर्ष पर्यंत पालन करके (अथवा यथाशक्ति पालन करके) व्रतको विधिपूर्वक विसर्जित करते हैं और गृहस्थ वेश धारण करते हैं। उस समय गुरुजी उपनयन विषयक व्याख्यान करके उसके सुष्ठु प्रकारसे ग्रहित जिनोपवीत आजीवन सद्धर्मवासनामय रहनेके आशिष देते हैं। शिष्यकी विनतीसे गृहस्थानुकूल अभयदानादि धर्म स्वरूप दर्शाते हैं। अंतमें शुद्रवर्ण शिष्यके लिए 'उत्तरीय न्यास' विधि और व्रतभ्रष्ट-अज्ञानी-कुलहीनादिके लिए 'बटूकरण विधि' प्ररूपित करके इस स्तंभको पूर्ण किया है।

पंचविंशति स्तम्भः--*अध्ययनारम्भ विधि*--शुभ मुहूर्तमें गुरु भ.केवासक्षेप-मंगल आशीर्वचन रूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबलसे ज्ञानार्जनका शुभारम्भ मंदिर-उपाश्रय या कदम्ब वृक्षकेनीचे बैठकर सारस्वत आदि मंत्र पूर्वक करना चाहिए।

षड्विंशति स्तम्भः--विवाह विधि--इसके अंतर्गत विवाह योग्य वर-कन्या, शुद्धि, गुण, आयु, आदिके साथ विवाहके प्रकारोंकी चर्चा करते हुए वर्तमानमें प्रसिद्ध और स्वीकार्य प्राजापत्य विवाहविधि-आर्यवेद मंत्रोच्चार पूर्वक विस्तारसे दर्शायी है। जिसमें प्रमुख रूपसे मातृ-कुलकरकी स्थापना, बारात चढ़ानेकी विधि, हस्तबंधन, अग्निन्यास, लाजाकर्म (मंगलफेरा), कन्यादान, करमोचन, मदनपूजा, क्षीरान्न भोजन, सुरत प्रचार, मातृ-कुलकरादिका विसर्जन आदि अनेक विधि आर्यवेद-मंत्रपूर्वक प्ररूपित करते हुए अंतमें वासक्षेपपूर्वक गुर्वाशीष प्राप्तिका विधान किया गया है।

सप्तविंशति स्तम्भः--व्रतारोपण संस्कार--इस स्तम्भमें सम्यक्त्व-मिथ्यात्वका स्वरूप, सुदेव-गुरु-धर्म और कुदेव-गुरु-धर्म---स्वरूप; मिथ्यात्वके पांच प्रकार, सम्यक्त्वके--पांच लक्षण, पांच भूषण, पांच दूषण, महत्व--मनुष्य भवकी दुर्लभता, भक्ष्याभक्ष्य विचार, बाईस अभक्ष्य स्वरूपादि, व्रतारोपणकी आवश्यकता और माहात्म्यादिका वर्णन करते हुए मार्गानुसारी अथवा इक्कीस गुणधारी--श्रावक, या आचार संपन्न-छत्तीस गुणधारी आचार्य-गुर्वादिके सम्मुख (उपनयन संस्कार-विधि सदृश समवसरणकी साक्षी युक्त) सम्यक्त्व सामायिक व्रत अंगीकार हेतु जाते हैं, और गुरुभी, योग्य शिष्यको आगमविधि अनुसार विविध मंत्र-सूत्र-स्तोत्रादिसे विभिन्न आदेश-वासक्षेप-आशीर्वाद पूर्वक सम्यक्त्व सामायिक व्रतोच्चारकी विधि करवाते हैं।

अष्टविंशति स्तम्भः--व्रतारोपण संस्कार (देशविरति)--पूर्व व्रतारोपणवत् बारह व्रतोच्चारणमेंभी नंदि, चैत्यवंदन, कायोत्सर्ग, वासक्षेपादिपूर्वक नंदिक्रिया करनेके पश्चात् द्वितीय दंडकोच्चार करके तीन बार नमस्कार महामंत्रपूर्वक, देशविरति, सामायिक दंडक उच्चारपूर्वक बारह व्रत यथाक्रम अथवा अनुकूलतासे न्यूनव्रत-यावज्जीव या मर्यादित समयके लिए अभिलाप सहित उच्चारण पूर्वक धारण करवाये जाते हैं। (यहाँ प्रत्येक व्रतमें करणीय-अकरणीय, आचरणीय-अनाचरणीयकी धारणा विधिकी स्पष्टता भी की गई है।) पश्चात् श्रावक योग्य ग्यारह प्रतिमा (वर्तमानमें चारका वहन शक्य-शेषका व्ययच्छेद) का वर्णन विधिपूर्वक दर्शाया है।

एकोनत्रिंशति स्तम्भः--(उपधान तप) व्रतारोपण संस्कार--जैसे साधुओंको श्रुतग्रहणके लिए योगोद्वहन करना आवश्यक है वैसे गृहस्थको भी पंचपरमेष्ठि मंत्र, इर्यापथिकी, शक्र-चैत्य-चतुर्विंशति-श्रुत-सिद्ध-स्तव आदि सूत्र ग्रहणके लिए उपधानोद्वहन करना होता है-उसीका विधि इस स्तम्भमें निरूपित किया गया है। श्रावकको अवश्य आचरणीय 'उपधान'की व्याख्या करते हुए 'नीशिथ सूत्र'के उपधान प्रकरणाधारित संपूर्ण विधि यहाँ उद्धृत की गई है। श्री गौतमकी पृच्छाके प्रत्युत्तरमें श्री महावीर स्वामीने स्वयं उपधान वहनमें ही जिनाज्ञा पालन और आराधना प्ररूपी है; बिना उपधानके श्रुतग्रहण-जिन, जिनवाणी, श्री संघ एवं गुरुजनोंकी आशातना रूप-भवभ्रमणका हेतु है। श्रुतग्रहणके पश्चात् भी उपधान वहनसे सम्यक्त्व प्राप्ति सुलभ होती है। यहाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुताभ्यासकी प्रविधि, गुण योग्यता, समय, स्थान, भावादि; आक्षेपणि आदि चार धर्मकथा, देव-गुरुकी त्रिकालिक आराधनाका लाभालाभ और माहात्म्यका वर्णन किया गया है।

अंतमें उपधान तपकी पूर्णाहुतिके पश्चात् तत्काल या एकाध दिनांतरमें उपधानके उद्यापन रूप माल्यारोपण करनेकी विधिकी प्ररूपणा करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया है।

त्रिंशति स्तम्भः--व्रतारोपण संस्कार-(श्रावककी दिनचर्या)- यहाँ व्रतधारी श्रावककी दिनचर्याका आलेखन करके उसी प्रकार अप्रमत्तचर्या आचरनेवाले भव्यजीवके आत्म कल्याणकी वांछा की गई है (इसका विस्तृत स्वरूपसे विवेचन ग्रन्थकारके 'जैन तत्त्वादर्श' ग्रंथ, परिच्छेद-९ "धर्म तत्त्व स्वरूप निर्णय" में किया गया है।) यहाँ 'अर्हत्कल्प' पर आधारित स्नात्रपूजा विधि-मंत्रोच्चारपूर्वक दर्शायी है जो वर्तमानमें प्रचलित नहीं है।

एकत्रिंशत् स्तम्भः इस स्तम्भमें अंतिम समय जानकर श्रावकको समाधि-मरण प्राप्ति हेतु अंतिम आराधना करवानेकी विधि दर्शायी है। जिसके अंतर्गत चतुर्विध संघ समक्ष गुरु द्वारा नंदिकी विधि करवाकर बारह व्रत उच्चारण (बारह व्रतधारीको पुनः स्मरण), पूर्वके अनंतभव और वर्तमान-भवमें सकल जीवराशिके किसी भी जीवकी किसी भी प्रकारसे विराधना, अपराध, अठारह पाप स्थानक सेवनके लिए मन-वचन-कायासे निंदा-गर्हा और क्षमायाचना एवं जिसे जयणापूर्वक जिनपूजादि कार्योंमें लगाये हों उनकी अनुमोदना-अभिनंदन; इस भवके त्रिकरण-योगके शुभ व्यापारकी अनुमोदना, अशुभकी निंदा-गर्हा; व्रतधारीको बारह व्रतके १२४ अतिचारोंकी याद करवाकर आलोचना और प्रायश्चित्त; सर्व जीवोंसे क्षमाका आदान-प्रदान, सर्व जीवसे मैत्रीभाव, चार मंगल शरण्योंका शरण अंगीकरण, १८ पापस्थानकोंका व्युत्सर्जन, कभी सागारी या निरागारी अनशन स्वीकार, चतुर्विध संघसे क्षमा याचना पूर्वक दान-संघ सत्कार-पूजादि उत्तम कार्य करना-करवाना-अनुमोदना करनी और अंत समय समाधि के हेतु निरंतर श्री नमस्कार महामंत्र स्मरण-रटणपूर्वक देहत्याग आदिकी प्ररूपणा की गई है। तदनन्तर शबकी अग्नि संस्कार विधि-भस्मका जलप्रवाह-सूतक विचारादिके वर्णनके साथ सोलह संस्कार वर्णन समाप्त होता है।

अंतमें सोलह संस्कार इस ग्रन्थमें ग्रथित करनेका हेतु, लौकिक व्यवहार रूप प्ररूपणा और आगम सम्मतताका उल्लेख करके जिनाज्ञा विरुद्धके लिए नम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया है।

*द्वात्रिंशत् स्तम्भः-जैनधर्मकी प्राचीनताका निर्णय--*इस स्तम्भमें जैनधर्मकी प्राचीनताको प्रतिपादित करनेके लिए ग्रंथकारने अथक परिश्रम करके अनेक प्रमाण पेश किये हैं-यथा-वेदोमें जैन मतोल्लेखके अभावको वेदोंकी अनेक शाखाके नष्ट होनेके कारण असिद्ध; शंकराचार्यादि द्वारा वेदोंके अर्थोमें उलट-पुलट; अनेक जैनाचार्यों द्वारा अपने ग्रन्थोंमें (उद्धृत) प्ररूपित अनेक वेदश्रुतियोंका वेद-आरण्यक-पुराण-उपनिषदादिमें प्राप्त होना; व्यासजी कृत 'ब्रह्म सूत्र'में प्ररूपित सप्तभंगीका खंड़न; महाभारत, मत्स्य पुराण, यजुर्वेद संहिताका महिधर कृत भाष्य, तैत्तरीय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आरण्यक आदिके अनेक प्रसंगोंकी प्ररूपणा; सायणाचार्यजी, मणिलाल नभुभाई आदिके कथनोंका आधार; आरण्यकमें प्ररूपित पारमार्थिक भावयज्ञका आत्मयज्ञ स्वरूपादि अनेक प्रबल युक्तियुक्त उक्तियाँ, कथन, प्रसंग निरूपणादिके आधारों पर जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध की है। इसके अतिरिक्त शाकटायन और न्यासके मंगलाचरण एवं जैनेन्द्र तथा इन्द्र व्याकरण, सकल विश्वकी सर्व विद्यायुक्त विभिन्न शब्दादि प्राभृतों एवं परवर्ती आचार्योंके व्याकरणके अनेक उत्तम ग्रन्थोंसेभी जैन साहित्य 'व्याकरण सहित' सिद्ध करके 'जैन' शब्दका मूलधातु 'जि-जय'की भी प्राचीनता सिद्ध की है।

जैन धर्मशास्त्रोंके सिद्धान्त-कर्म विज्ञान, साधु सामाचारी, नवतत्त्वादिका इंगित मात्रभी वेदमें न होनेसे "जैनमत वेदाधारित है"-इस कथनको भी असिद्ध करते हुए 'वेदादिके सार वचनोंका जैन सिद्धान्तोंसे ग्रहण'का आक्षेप किया है। अंतमें धनेश श्रावकको प्राप्त प्राचीन तीन प्रतिमाके उद्धरणसे सर्व प्रकारसे जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध की है।

निष्कर्ष--यहाँ वेदोंकी निंदा द्वेष बुद्धिसे नहीं लेकिन उनके हिंसकपनेके कारण की गई है। अतः उनमें प्ररूपित निवृत्ति मार्ग तो युक्तियक्त है। संसारसे निर्वेद और वैराग्यप्रेरक प्ररूपणा सर्वज्ञ वचन प्रमाणित होनेसे उन्हें तो श्री सिद्धसेन दिवाकरजी आदिनेभी प्रतिपाद्य माना है। अतः वाचक वर्गको निष्पक्ष एवं माध्यस्थ बुद्धिवान् ऐसे महात्मा, परिव्राजक श्री योगजीवानंद स्वामी परमहंस सदृश सत्य स्वीकारनेके लिए ग्रन्थकारने प्रेरणा दी है। (श्री आत्मानंदजीके नाम उनका इस तरहका स्वीकार-पत्र और मालाबंध प्रशस्ति-श्लोकभी यहाँ प्रस्तुत किया है)

त्रयस्त्रिंशति स्तम्भः--बौद्धमत एवं दिगम्बरोंसे प्राचीनता और स्वतंत्रता--

"जैन मत बौद्ध मतकी शाखा है"- इस धारणाको निरस्त करने एवं जैनमतकी स्वतंत्रता एवं प्राचीनता सिद्ध करनेके लिए हर्मन जेकोबी, मेक्स-मूलर आदि योरपीय विद्वानोंके अभिप्रायोंको उद्धृत किया गया है। तदनुसार उन विद्वानों द्वारा बौद्ध धर्मग्रन्थ 'धम्मनिकाय' आदि ग्रन्थ और जैनोंके उत्तराध्ययनादि आगम प्रमाणोंसे एवं अचेलकपना-निर्ग्रंथपना आदि आचार-व्यवहार प्रमाणोंके अनेक उद्धरण दिये गये हैं।

दिगम्बरोंसे प्राचीनता और विपरित प्ररूपणाओंकी असिद्धि---दिगम्बर और श्वेताम्बरोंकी उत्पत्तिकी विरोधाभासी प्ररूपणाओंका विश्लेषण करके उत्पत्तिके समय-स्वरूप-कारणोंकी यथार्थ प्ररूपणा करनेका प्रयत्न किया है, जिसके अंतर्गत 'मूलसंघ पट्टावलि', 'नीतिसार'में चार उपभेदोंकी तवारिख एवं उत्पत्ति विषयक विसंवादिता; दिगम्बरोंकी 'सर्वार्थ सिद्धि' भाष्य टीकामें श्वेताम्बर मतोत्पत्ति विषयकी, मथुरा टीलेसे प्राप्त श्रीमहावीरजीकी प्रतिमाके शिलालेखसे असिद्धि; देवर्द्धिगणिजी द्वारा शिथिलाचार पोषक आचारांगकी रचना, केवली आहार, स्त्रियोंकी मुक्ति, स्त्री तीर्थंकर, उपकरणोंका परिग्रह, सपरिग्रहीकी मुक्ति, रोगी ग्लानादिके लिए अभक्ष्य आहारकी निर्दोषता आदि अनेक विषयोंकी विपरित प्ररूपणाओंके प्रत्युत्तर; सर्व आगम विच्छेद तथा ज्ञानी धरसेन मुनि द्वारा भूतबलि-पुष्पदंतको ज्ञान प्रदान और उन दोनों द्वारा धवल, जयधवल, महाधवलकी रचना-उन्हीं पर आधारित 'गोम्मटसार'की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचना, परवर्ती अनेक आचार्योंकी अनेक शास्त्र रचनाओंकी विपरित-उत्सूत्र-प्ररूपणाओंका निर्देशन कराते हए; सम्यक्त्व-प्राप्ति विषयक विचार और तीर्थंकरोंके शासनमें चतुर्विध संघ प्रमाण होनेसे, दिगम्बरोंका श्रावक-श्राविका रूप दुविध संघसे जिनाज्ञा भंग और मिथ्यात्व प्ररूपणाका जिक्र किया गया है।

तदनन्तर सामान्य प्रश्नोत्तर द्वारा धर्म स्वरूपकी प्ररूपणान्तर्गत अरिहंत परमात्माकी विविध प्रकारसे पूजा, बीस पंथी-तेरापंथीकी 'पुष्प-पूजामें हिंसा'की मान्यताका खंडन, पूजाके पांच फल, जिनमंदिर एवं प्रतिमा निर्माणके फल, चार प्रकारसे पूजाविधि, उपकरण एवं उपधिकी चर्चा, 'बोधपाहुड वृत्ति' अनुसार 'जिनमुद्रा-वर्णन'की अयोग्यता और असिद्धि, गृहस्थके अतिथि संविभागके चार भेद, बकुश निर्ग्रंथके भेद; "तीर्थंकर केवलीका शरीर परम औदारिक पुद्गलोंका" होनेके कथनकी 'काय-बोध-पाहुड' आधारित असिद्धि, और 'स्त्री मुक्ति' की "त्रैलोक्य सार" ग्रन्थ द्वारा सिद्धि; "नग्न दिगम्बर मुनि-चिह्न" बिना मुक्तिके इन्कारको ब्रह्म देवकृत 'समयपाहुड'की वृत्ति आधारित असिद्धि की है। अंतमें सर ए. कनिंगहामके **"Archieological Report"** के तेरहवें वोल्युमसे 'मथुरा शिलालेखोंकी आधार भूत नकलोंके उद्धरणसे जैनधर्मकी प्राचीनता और सत्यता एवं दिगम्बर मतकी परवर्तीताको सिद्ध करते हुए इस स्तम्भको परिपूर्ण किया गया है।

चतुस्त्रिंशति स्तम्भः--अर्वाचीन शिक्षितोंकी शंकाओंका समाधान--(१)अवसर्पिणी काल प्रभावके कारण सांप्रत जीवोंके आयु-अवगाहना आदिके कारण श्री ऋषभदेव भगवानकी पांचसौ धनुषकी काया और ८४ लक्ष पूर्वका आयु अशक्य-सा प्रतीत होता है-ऐसी प्ररूपणाओंके लिए जो तार्किक प्रमाण पेश किये हैं वह इस प्रकार है--२४ किलोग्राम गेहुं समा सके ऐसी मनुष्यकी खोपड़ी और दो तोला वजनके दांत वाले राक्षसी कदके मनुष्यका हाड ई.स. १८५० में मारुआं नज़दीककी जमीनसे निकलना; इसके अतिरिक्त तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंके लेख, भूस्तर शास्त्रीय संशोधन, हिन्दू-ईसाइ आदिके धर्मग्रन्थादिके प्रमाणोंके साथ वर्तमानमें भी अन्यान्य देशोंके मनुष्योंकी आयु-अवगाहनादिकी प्रत्यक्ष न्यूनाधिकतादि अनेक बेमिसाल तर्कोंसे उपरोक्त प्ररूपणा सिद्ध की है। (२) जैन मतानुसार "पृथ्वी स्थिर और सूर्य-चंद्रादि भ्रमणशील"-इसेभी अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध किया है (अद्यतन विज्ञान भी इस तथ्यके सत्यासत्यके परीक्षणके लिए उद्यमशील है, लेकिन अब तक उनको उत्तर-दक्षिण ध्रुवोंका ही पता नहीं और न वे उनमें से किसीका उल्लंघन भी कर सके हैं। चंद्र पर पहुँचनेके और अन्य ग्रहोंके विषयमें भी जो तथ्य प्रकाशित हुए और हो रहे हैं, उन्हें भी जैन मुनियों द्वारा वर्तमानमें ललकारा गया है, लेकिन अद्यावधि उनका कोई प्रत्युत्तर नहीं। वर्तमानमें पाश्चात्य देशोमें भी उनकी कपोलकल्पितता और मिथ्याजाल-प्रपंचोंका पर्दाफाश हो चूका है।) हिन्दू शास्त्रोंके आधार पर भी सूर्यकी भ्रमणशीलता सिद्ध की गई है। (३) भरतखंड़का स्वरूप, आर्य-अनार्य देशोंके नाम, और उनका भौगोलिक स्वरूप-की सिद्धिके लिए ई.१८९२की नवम् ऑरिएन्टल कॉंग्रेसमें मॅक्समूलर, डॉ.बुल्हर आदिके प्रस्तुत हुए निबन्धादिके प्रमाण पेश किये हैं। अंतमें नव प्रकारके आर्योंके लक्षण-गुणादिके स्वरूप वर्णन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया गया है।

पंचस्त्रिंशति स्तंभः--शंकराचार्यका जीवनवृत्त--इस स्तम्भमें जैन-जैनेतरोंकी अनभिज्ञता दूर करने हेतु शंकराचार्य (शंकरस्वामी)की उत्पत्ति और जीवन वृत्तान्त उनके ही शिष्य अनंतानंदगिरि कृत एवं माधवाचार्य कृत 'शंकरविजय' नामक ग्रन्थोंके आधार पर निरूपित किया गया है, जिसके अंतर्गत बिना पिताके बालक शंकरका उपहास जनक जन्म-उनकी असर्वज्ञता, सर्व शक्तिमानताका अभाव, कामुक विलासिताके कारण ही उर्ध्वरेताः से अधोरेताः होना, जैनमत खंड़नकी कपोल कल्पितता एवं किसी जैनसे विवादकी हास्यास्पद प्ररूपणा आदिके प्रत्युत्तर देते हुए अभिनव गुप्त-भैरव-कापालिकका हत्यारा पद्मपादकी अज्ञानता और राग-द्वेष सिद्ध किये हैं। माध्वाचार्यजीके 'शंकरविजयमें' बौद्धोंके और आनंदगिरिजीके 'शंकरविजयमें' जैनोंके कत्लके विसंवादी कथन-कुमारिल और शंकराचार्य विषयक, डो. हंटर कृत 'हिंदुस्तानका संक्षिप्त इतिहासके संदर्भसे और मणिलाल नभुभाईके 'सिद्धान्त सार' एवं 'प्राचीन गुजरातका एक चित्र' आदिके संदर्भ देकर असिद्ध प्रमाणित किया है।

षट्त्रिंशति स्तम्भः--प्रमाण-नय-स्याद्वाद स्वरूप--"प्रश्न द्वारा विधि और निषेधरूप भेदसे अनेक धर्मात्मक वस्तुमें एकएक धर्मकी अपेक्षा सर्व प्रमाणोंसे अबाधित और निर्दोष अनेकान्त द्योतक 'स्यात्' अव्ययसे लांछित सात प्रकारकी वाक्य रचना (उपन्यास)को 'सप्तभंगी' कहते हैं।"- इस प्रकार सप्तभंगीकी व्याख्या पेश करके शंकराचार्यजीके सप्तंभगीके अयथार्थ खंड़नको युक्ति युक्त प्रमाणों द्वारा निरासित किया गया है। अनंत धर्मात्मक, अनंत पदार्थ होने पर भी प्रत्येक पदार्थके प्रत्येक धर्मके परिप्रश्नकालमें एक एक धर्ममें एक एक ही सप्तभंगी होती है। अतः अनंत धर्मकी विवक्षा विविध सप्तभंगियोंकी अनेक कल्पनाओंसे करना अभीष्ट है किंतु अनंतभंगीकी कल्पना अभीष्ट नहीं।

यहाँ 'स्यात्' सहित सप्तभंगीका स्वरूप; सकलादेश-विकलादेश (अर्थात् प्रमाण-नय) के स्वरूप; शंकराचार्यकी और व्यासजीकी-एकही परमब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप-मान्यता, अविद्या वासना, मायाकी अनिर्वाच्यता आदि अनेक मान्यताओंका 'प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार' सूत्रानुसार खंड़न करते हुए जैनमतमें आत्माका स्वरूप; कर्म-विज्ञान, स्याद्वादका सार, आत्माके तीन प्रकार, द्रव्यका स्वरूप लक्षण, षट्द्रव्योंके अस्तित्वका स्वरूप, द्रव्योंके स्वभाव (इन स्वभावोंको न माननेसे व्युत्पन्न अनेक प्रकारकी असमंजसताका वर्णन) उनका विविध नय प्रकारोमें समन्वय-नयका स्वरूप-लक्षण, नयकी अनेक परिभाषायें, नयाभासकी परिभाषायें, नयके प्रकार ('अनुयोग द्वार' वृत्यानुसार-जितने वचन उतने ही नय प्रकार-आधारित नय स्वीकार्य-नयाभास नहीं); सुनय एवं दुर्नयके विशेष बोध हेतु 'सप्तशतार'के 'नयचक्र' अध्ययन– 'द्वादशार नयचक्र' आदि न्याय विषयक ग्रन्थोंके संदर्भ-द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक (निश्चय-व्यवहार)नयके प्रमुख सात भेद, और उन्हींके आधारित २००, ४००, ५००, ६००, ७०० और उत्कृष्ट असंख्य भेदोंकी विवक्षा करते हुए स्याद्वाद न्यायाधीशके आधीन अनेक नयोंके विवाद उपशमनको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंगित करते हुए इस स्तम्भको पूर्ण किया गया है।

उपसंहारः--'तत्त्व निर्णय प्रासाद' ग्रन्थरूपी महलको विविध ३६ स्तम्भोंसे सुशोभित करते हुए ग्रन्थकारने उसकी सजावट रूप सत्य धर्मका निश्चय और निश्चित धर्मके स्वीकार; जैन धर्मकी प्राचीनता-अर्वाचीनता और शाश्वतता; 'श्रीमहादेव स्तोत्रा'धारित त्रिमूर्तिका अर्हन्में तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्रमय रूपमें स्थापन; "अयोगव्यवच्छेदा"धारित वीतराग ही सत्य उपदेष्टा और नयवाद-स्याद्वाद ही यथार्थ पदार्थ स्वरूप कथनके लिए शक्तिवान्; जैनाचार्योंकी माध्यस्थता पूर्वक रत्नत्रयादि गुणधारीको वंदना, 'लोकतत्त्वनिर्णया'नुसार संसार स्वरूप-लोकालोकाकाश स्वरूप; सांख्य-वेदाधारित ईश्वर कृत सृष्टि सृजन-रक्षण-प्रलयादि मान्यता और उससे लाभालाभ-ईश्वरको प्राप्त कलंक; वेदोंकी 'ईश्वरकृत या अपौरुषेय' होनेकी मान्यताका उन्हीं वेदश्रुति-श्लोक-मंत्र आधारित युक्तियुक्त तर्क द्वारा खंड़न; षड्दर्शनाधारित गायत्रीमंत्रके विविध अर्थ विवरण और बीज मंत्रोंकी प्ररूपणा; वेदार्थोमें किये गये गंभीर रूपसे विपरित अर्थ निरूपणोंका निर्देशन; 'वेदोंके खंडनके निषेध'को स्वयं की निर्बलता छिपानेके हेतु रूप सिद्धि; सोलह संस्कारोंका श्रीवर्धमान सुरीश्वरजीके 'आचार दिनकर' आधारित वर्णन-इनका इस ग्रंथमें ग्रथित करनेका हेतु-उसकी लौकिक व्यवहार रूप प्ररूपणा और आगम सम्मतता; वेद निरूपित हिंसकताकी निंदा और सार वचनोंकी अनुमोदना; जैनधर्मकी प्राचीतनाका निर्णय-बौद्ध मतसे प्राचीनता और स्वतंत्रता-दिगम्बरोंसे प्राचीनता और उनकी विपरित प्ररूपणाओंकी असिद्धि; जैनधर्मोंकी प्ररूपणाओमें अर्वाचीन शिक्षितो द्वारा शंका और उनका अनेक प्रमाणोंसे समाधान; प्रमाण-नय-स्याद्वाद-सप्तभंगी आदिकी व्याख्या-प्रकार-स्वरूपादिका विशद वर्णनादि अनेक विभिन्न प्ररूपणाओंको समाहित किया है।

अंतमें महान, नीड़र, वीर ग्रन्थाकारने अपनी लघुता-भवभीरुता प्रदर्शित करते हुए पूर्वाचार्योंकी प्रविधि समाश्रित्य ग्रन्थ-रचनामें स्वदोषके लिए क्षमायाचना और विद्वद्वर्योंसे उन्हें संशोधित करनेकी विनती करके 'तत्त्व निर्णय प्रासाद'-महान ग्रन्थको परिपूर्णता प्रदान की है।

---- जैन मत वृक्ष ----

ग्रन्थ परिचय-

"जैनमत वृक्ष" रचनाके बीज, सिद्ध कलाकार श्री आत्मानंदजी म.सा.के मेधावी मस्तकमें से अंकुरित होकर अनादिकालीन विश्वप्रवाह रूपको लेकर वृद्धिगत होते होते आपके वि.सं. १९४२के सुरतके चातुर्मासमें विशाल वृक्षरूप धारण कर गया; जिसे सं. १९४८में प.पू. श्रीमद्विजयवल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.ने लिपिबद्ध करके प्रकाशित करवाया लेकिन श्री आत्मानंदजी म.के अंदाजानुसार, कईं कारणोंसे, यह विशेष लोकोपयोगी न होनेसे आपकी ईच्छा और प्रेरणासे प.पू. श्रीमद्विजयवल्लभ सुरीश्वरजीने सं. १९४९में पुनः पुस्तकाकार रूपमें लिखकर सं. १९५६में श्री आत्मानंद जैन सभा-पंजाब, की ओरसे प्रकाशित करवाया; जिसमें हिंसक यज्ञोत्पत्ति, बौद्ध मतोत्पत्ति आदिकी ऐतिहासिक तवारिख युक्त करके और वृक्षाकारकी छपाईकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ गलतियोंको भी सुधार करके छपवायी गयी है।

ग्रन्थ की विशिष्टतायें--इस वृक्षकी निजी अद्‌भूतता यह है कि ऐतिहासिक तवारिख जैसे शुष्क और परिश्रम साध्य विषयको भी कमनीय कलाके मनोरम स्वरूपमें मनभावन रसिकताके साथ दर्शनीय, पठनीय और मननीय रूपमें प्रस्तुत किया है। इस वृक्षका माहात्म्य तो यह है, कि, उसमें एक ही नज़रमें इस अवसर्पिणी कालके अद्यावधि मानचित्रको हमारे सामने यथास्थित, फिरभी **"Short & Sweet"** रूपमें प्रस्तुत किया है। फनकारने अत्यंत परिश्रमपूर्वक, कसे दिमागकी कल्पनाको झंकृत करते हुए, ऐसे रंगोलीकी सजावट-सा नयनाकर्षक-चित्ताकर्षक-प्रभावोत्पादक इतिहास पेश किया है कि दर्शक प्रथम दर्शनमें ही प्रभावित होकर हर्षोल्लाससे झूम उठता है-आफरिन पोकारते हुए आचार्यश्रीको प्रशंसनीय वाक्‌पुष्पोसें साधुवाद देने लगता है। इस संसार स्वरूपकी, फूलदान रूपमें कल्पना करके, उसमें नैसर्गिक रूपसे ही अत्यधिक मज़बूत थड़के, तीस-पैंतीस शाखा-प्रशाखा और अनेक पत्र-पुष्पोंसे भूषित इस "जैनमतवृक्ष"में निहित महत्वपूर्ण अनेक लभ्यालभ्य तथ्योंको प्ररूपित करके चित्रकारने अपने महान उद्देश्यको सिद्ध करनेमें अभूतपूर्व कामयाबी हांसिल की है। जिसकालमें ऐतिहासिकताका न अधिक मूल्य था-न महत्त्व-ऐसे अंधकारमय युगमें भी इस कदर इतिहासको कलामें ढ़ालकर-कलात्मकता प्रदान करके-गुरुदेवने सर्वको अपनी अनूठी-औत्पातिकी मतिका परिचय करवाया है।

ग्रन्थका विषय वस्तु--प्रथम तीर्थपति श्री ऋषभदेव भ.से लेकर अंतिम तीर्थंकर पर्यंत चौबीस तीर्थंकर, उनके गणधर-गणादिका, चरम तीर्थंकर श्रीमहावीरजीकी, श्रीसुधर्मा स्वामीजीसे श्रीआत्मारामजी म. पर्यंत, सम्पूर्ण पट्ट परंपरान्तर्गत सर्व प्रमुख आचार्य (युगप्रधानादि), उनका शिष्य परिवार-शासनोन्नतिकारक कार्य, साहित्य सेवा-जीवनकाल आदिका संक्षिप्त ब्यौरा-इस वृक्षका थड रूप बना है; सांख्य-वेदान्त, वैशेषिक, मीमांसक, बौद्ध आदि दर्शनोंकी कब-कहाँसे-किससे-क्यों-किस प्रकार उत्पत्ति हुई; जैन आर्यवेद और सांप्रत कालीन अनार्य वेद-वेदांगादिकी उत्पत्ति, रचयिता, शास्त्र रचनाकाल-कर्तादिकी प्ररूपणा; आत्मिक यज्ञ और परवर्ती हिंसक यज्ञकी प्ररूपणा, प्रचलन, प्रसारण किससे-कहाँसे-कबसे-क्यों-किसविध हुआ, उनका वृत्तान्त; दिगम्बर मतोत्पत्ति और उनकी शास्त्र रचना; स्थानकवासी संप्रदायका उद्‌भव-बाईस टोले-तेरापंथी आदिका अनुवृत्त एवं भ. महावीरकी मूल पट्ट परंपराके सुरीश्वरोंका परिवार-ग्रन्थ रचनायें-शासन प्रभावक कार्य-आदि इस वृक्षकी प्रशाखा रूप नयन पथमें आते हैं; उन शिष्यों द्वारा प्रवर्तीत गण, शाखा, कुलादि इस वृक्षके पर्ण-पत्र-पुष्प रूप चित्रांकित किये गये हैं।

सोनेमें सुहागा--उपरोक्त वर्णित मूल वृक्षके दोनों पार्श्वमें दो लतायें चित्रित की हैं, जो मूल वृक्षकी सुंदरतामें वृद्धि करते हुए वृक्षकी क्षुल्लक अपूर्णताको पूर्ण करनेमें सहयोगी बनती हैं। दोनोमें से एक ओरकी लता, इस अवसर्पिणीकालके त्रेशठ शलाका पुरुषोंका जिक्र प्रदर्शित करती है, जबकि दूसरी ओरकी लता अंतिम अरिहंतके शासनकालमें हुए जैन-जैनेत्तर राजाओं द्वारा किये गए महत्त्वपूर्ण शासनोन्नतिके कार्य-धर्ममय अहिंसा आदिके प्रवर्तनरूप कार्य एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका राज्यकालादि तवारिखके रूपमें प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष--अंतमें इतना ही उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि, यह चित्रमय ऐतिहासिक-तवारिख युक्त-सुंदर कलाकृति *"जैनमतवृक्ष"* अपने ढंगकी अनूठी, अभूतपूर्व, अद्‌भूत ठोस विषयगत कल्पना कृति है; जिसे श्री आत्मानंदजी म.ने सर्वप्रथम प्रस्तुत करके ऐसे वंश वृक्षोंकी असाधारण ऐतिहासिक परंपरा प्रारम्भ की है।

चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग १-२

ग्रन्थ परिचय--इस हूंडा अवसर्पिणी कालमें भस्मग्रहादि अनिष्ट निमित्तोंके कारण, बहुलकर्मी-निबिड़, अशुभ मिथ्यात्व मोहनीय कर्मोदयवान् जीव स्वच्छंदतासे, असत्य प्रपंचोंको सत्य करनेके लिए अथवा ईर्ष्या या बड़प्पन प्रदर्शन हेतु, अपने आपको परलोकके भयसे निर्भय माननेवाले-मिथ्या प्ररूपणायें करके स्व और परका अकल्याण करते हैं। उनको सद्‌बुद्धि-प्रदान हेतु परमोपकारी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.ने मानो प्रण ले रखा हों, इस कदर अनेक मिथ्या कुतर्कवादियोंको शिक्षा प्रदाता अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है। तदन्तर्गत 'चतुर्थ स्तुति निर्णय'की रचना श्रीरत्नविजयजीम. एवं श्री धनविजयजी म.को हितशिक्षाके लिए हुई है।

विषय वस्तुका निरूपण--साधकको प्रतिदिन सात बार चैत्यवंदना करनेका विधान श्री नेमिचंद्र सूरिजी कृत 'प्रवचन सारोद्धार'में किया गया है। तदनुसार (१) रात्रि समय सोनेसे पूर्व (२) सुबह जागनेके पश्चात् (३-४) दोनों संध्यासमय प्रतिक्रमणमें (५) भोजनपूर्व (६) भोजन पश्चात् (७) श्री जिनमंदिरमें दर्शन करते समय याने भाव पूजा रूप। इसके अतिरिक्त विशिष्ट प्रसंग प्रतिष्ठाकल्प, दीक्षाप्रदान, व्रतारोपण, चैत्यपरिपाटी आदिमें भी चैत्यवंदना करनेका विधान किया गया है।

इस ग्रन्थकी प्ररूपणाका विषय है (१) नित्य दोनों संध्याके प्रतिक्रमणमें आद्यंतमें चैत्यवंदना करनी चाहिए या नहीं? (२) चैत्यवंदनामें (देव-देवीकी) चतुर्थ स्तुति बोलनी चाहिए कि नहीं? (३) प्रतिक्रमणमें श्रुतदेवता-क्षेत्रदेवता-भुवनदेवतादिकी; और प्रतिष्ठा, व्रतारोपण, दीक्षा-पदवी प्रदानादि समय प्रवचनदेवी, शांतिदेवी, शासन रक्षक देव-देवी आदिके कायोत्सर्ग और थुईसे स्तवना करनी चाहिए कि नहीं?-ये सभी शंकाये श्री रत्नविजयजी म. द्वारा विशेषतया बृहत्कल्प, व्यवहारसूत्र, आवश्यकसूत्र, पंचाशक वृत्ति आदिके कुछ संदर्भ देकर की गई है; जिनके प्रत्युत्तरमें ग्रन्थकारने स्थानांग, सूत्रकृतांग, अनुयोगद्वार-वृत्ति, निशीथचूर्णि, आवश्कसूत्र-चूर्णि-निर्युक्ति आदि अनेक आगम शास्त्र एवं श्री नेमिचंद्र सूरि कृत प्रवचन सारोद्धार और उत्तराध्ययन वृत्ति; श्री वादिदेवसूरि कृत और श्री भावदेव सूरि कृत "यतिदिनचर्या"; श्री मानविजय उपाध्यायजी कृत धर्मसंग्रह (चैत्यवंदनाके भेद); वंदारुवृत्ति (श्रावकके आवश्यककी टीका); श्राद्धविधि; आवश्यकसूत्रकी अर्थदीपिका; श्री तिलकाचार्य कृत एवं श्री जिनप्रभसूरिजी कृत 'विधिप्रपा' (प्रतिक्रमण विधि) श्री हरिभद्र सूरि कृत पंचवस्तु; खरतर बृहत्समाचारी; तपगच्छीय श्री सोमसुंदरसूरि, श्री जिनवल्लभसूरि, श्री देवसुंदर सूरि, श्री नरेश्वर सूरि, श्री तिलकाचार्य आदि पूर्वाचार्यों की रचित समाचारियाँ, श्री शांतिसूरिजी कृत श्री संघाचार चैत्यवंदना, देवेन्द्रसूरि कृत चैत्यवंदना लघुभाष्य; वादिदेव सूरि कृत 'ललित विस्तरा पंजिका'; श्री हेमचंद्राचार्यजी कृत योगशास्त्र;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री धर्मघोष सूरिजी कृत संघाचार वृत्ति, कुलमंडन सूरि कृत विचारामृत संग्रह, श्री जयसिंह सूरिजी एवं उपाध्याय श्री यशोविजयजी कृत प्रतिक्रमण हेतु गर्भित विधि, संघाचार, लघुभाष्य वृत्ति, आवश्यक कायोत्सर्ग निर्युक्ति, वंदनक चूर्णि जीवानुशासन प्रकरण, पाक्षिकसूत्र, आराधना पताका, श्री नमिमुनि कृत षड़ावश्यकविधि, श्री तरुणप्रभ सूरि कृत षडावश्यक बालावबोध, श्री अभयदेव सूरिजी कृत पंचाशक टीका आदि ग्रन्थ रचनायें और बप्पभट्टी-शोभनमुनि आदि अनेक विद्वद्वर्यों द्वारा रचित स्तुति चौबीसीओंके संदर्भ देकर, तीन थुई आदि विधानोंको असिद्ध प्रमाणित किया है।

इसके अतिरिक्त इन देवी-देवताओंकी स्तुतिके कारणोंकी चर्चा करते हुए आपने फरमाया है कि, "वैयावच्चगराणं, संतिगराणं, सम्मदिट्ठि समाहिगराणं, करेमि काउसग्गं"-अर्थात् जिनशासनके परिस्थापनादि कार्य, जिनमंदिर रक्षा, प्रवचन-शासन-उन्नति आदि रूप *वैयावृत्यके लिए*; जिनभवन पर या चतुर्विध संघ पर होनहार प्रत्यनीकोंके उपसर्गादि निवारण, विघ्नशमन, क्षुद्रोपद्रवके शमनादि रूप *शांतिकार्यके लिए*; श्री संघमें सम्यग् दृष्टि देवों द्वारा *द्रव्य और भाव समाधि एवं बोधि-सम्यक्त्व प्राप्ति तथा शुभ सिद्धिमें सहायताके लिए* प्रमादाधीन देवादिको जागृत करनेके लिए और जागृतको उन कार्योंमें स्थिरत्वके लिए उन देवोंकी उपबृंहणा पूर्वक साधर्मिक वात्सल्य रूप काउसग्ग-जो परंपरासे मोक्षमार्गमें स्थिरीकरण और अंततोगत्वा मोक्ष प्राप्तिके हेतु रूप-करणीय हैं; लेकिन, वे देवादि अविरति होनेके कारण उनके वंदन-पूजन या सत्कारादिके लिए नहीं करना चाहिए।

सामान्यतः परम्परागत चैत्यवंदनामें चारथुई और उत्कृष्ट चैत्यवंदनामें पांच शक्रस्त्व और आठ थुई कहनेका आदेश पूर्वाचार्यों द्वारा दिया गया है। आचरणाकी परंपरा भी वैसी ही चली आ रही है। सिद्धसेन दिवाकरजी कृत "प्रवचन सारोद्धार" वृत्यानुसार चतुर्थ थुई-गणधर वाणी अनुसार, गीतार्थोंके आचरणा आदेशके कारण सर्व मोक्षार्थी जीवों द्वारा आचरणीय है। लेकिन कोई कोई आचार्यके मतसे 'चतुर्थ थुई'को अर्वाचीन माना है। अब यहाँ अर्वाचीनका अर्थ "आचरणा द्वारा कराता हुआ"-अर्थात् श्रुतरत्नाकरके विरहमें (सांप्रतकालमें बिन्दु तुल्य ही श्रुतज्ञान रह जाने पर) सर्वश्रुतज्ञानको, सूत्राधारित नहीं जाना जाता है। अतः बहुश्रुत पूर्वाचार्योंके आचरणानुसार परंपरागत परवर्तियोंका आचरण-वही आचरणा अथवा जो आचरण त्रिकालाबाधित रूपसे विद्यमान हों, वह आचरण ही जीत आचार कहा जाता है। अतएव अज्ञातमूल पूर्वाचार्योंकी परंपरासे अहिंसक और शुभध्यान जनक रूपमें प्राप्त आचरणा सर्व मान्य होती है। श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी कृत 'ललित विस्तरा'में चतुर्थ थुईको मान्यता दी है, तो कुलमंडन सूरिजीकृत 'विचारामृत संग्रह'में 'अर्वाचीन' शब्दका 'परंपरागत आचरणा' करना ही उपयुक्त माना है। अतः अर्वाचीन, आचरणा, जीत आचार-आदि सभी समानार्थी माने गये हैं।

श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.ने 'पंचाशक'में तीन प्रकारसे चैत्यवंदनाकी प्ररूपणा की है। उन्हें ही जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेदोंसे "बृहत्कल्प महाभाष्य"में नव प्रकारसे निरूपित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया गया है। इनमेंसे छठा प्रकार-तीन थुईसे देववंदनका है, जो चैत्य परिपाटी या मृतक साधुके विसर्जन पश्चात् साधुको चैत्यगृहमें परिहार्यमान तीन थुईसे चैत्यवंदना करनेका विधान बृहत्कल्पकी सामान्य चूर्णि और विशेष चूर्णि, कल्प बृहत्भाष्य, आवश्यक वृत्ति आदिके अनुसार किया गया है, लेकिन प्रतिक्रमणके आद्यंतमें चैत्यवंदना करते समय तीन थुई का किसी भी शास्त्रमें निरूपण नहीं हुआ है।

तदनंतर देवदेवियोंकी प्रसन्नताके लिए अव्रती या विशिष्ट व्रतधारी, श्रावकादि योग्य आराध्य विविध तप-रोहिणी, अंबा, श्रुतदेवता, सर्वांगसुंदर, निरुजशिखा, परमभूषण, सौभाग्य कल्पवृक्षादि तप-अव्युत्पन्न बुद्धिवाले जीवोंके लिए अभ्यास रूप हित, पथ्य, सुखदायी होनेसे वांछासहित या वांछारहित करनेसे उपचारसे मोक्षमार्गकी प्रतिपत्ति हेतु करनेकी प्रेरणा 'वंदित्ता सूत्र' आधारित दी गई है।

पंचांगीको ही मान्य और प्रकरणादिको अमान्य करनेवाले श्री रत्नविजयजीको, 'स्थानांग वृत्ति'में प्ररूपित श्रुतज्ञान प्राप्तिके सात अंगोंमें समाविष्ट-'परंपरा और अनुभव'-की प्ररूपणा दर्शाते हुए एवं प्रतिष्ठा-कल्प, दीक्षा-प्रदान-व्रतारोपणविधि अथवा 'चातुर्मासिक-सांवत्सरिक प्रतिक्रमणादि करते समय देवोंके काउसग्ग और थुईसे स्तुति करना' मान्य, लेकिन नित्य प्रतिक्रमणमें ही उसके विरोधको स्पष्ट करते हुए---स्वयंकी मानी मान्यतामें बाधक प्ररूपणाओंको अमान्य करनेवाले *असमंजस प्रलापक*, अपनी पट्टावलीमें तपगच्छ प्रवर्तक महातपा श्री जगच्चंद्र सूरि, विजयदेव सूरि, विजयप्रभ सूरि आदिकी परंपरा लिखनेके बावजूद भी स्वयंको तपागच्छके नहीं लेकिन सर्वसे भिन्न-ऐसे नूतन ही 'सुधर्मगच्छ'के कहलानेवाले (गुरु रूपमें मान्य करके उन आचार्योंकी समाचारी न माननेवाले) *स्वच्छंद प्रलापक, चतुर्विध संघ, पूर्वांकित जैनाचार्यों और जैनशास्त्रों के विरोधी (उन्हें असत्यभाषी माननेसे), तुच्छ बुद्धि एवं अहंकारयुक्त, उत्सूत्र प्ररूपक श्री रत्न विजयजी एवं श्री धन विजयजीको परम हितस्वी ग्रन्थकार आचार्यप्रवर श्री आत्मानंदजी म.सा. परोपकारार्थ पृ. १२० पर लिखते हैं*- "थोडी सी जिंदगीवास्ते वृथा अभिमानपूर्ण होके, निःप्रयोजन तीन थुईका कदाग्रह पकड़के श्री संघमें छेद-भेद करके काहेको महामोहनीय कर्मका उत्कृष्ट बंध बांधना चाहिए ?" - ग्रन्थकी समाप्ति करते हुए भी आशीर्वाद रूप लिखते हैं कि - "इस वास्ते रत्नविजयजी अरु धन विजयजी जेकर जैन शैली पाकर अपना आत्मोद्धार करनेके लिए जिज्ञासा रखनेवाले होवेगे तो मेरेको हितेच्छु जानकर, और क्वचित् कटुक शब्दके लेख देखके, उनके पर हितबुद्धिवाले किंवा जेकर बहुत मानके अधीन रहा होवे तो मेरेको माफी बक्षिस करके मित्र भावसे इस पूर्वोक्त लेखको वांचकर शिष्ट पुरुषोंकी चाल चलकर धर्मरूप वृक्षको उन्मूलन करनेवाला ऐसा तीन थुइयोंका कदाग्रह छोड़के किसी संयमी गुरुके पास चारित्र-उपसंपत् लेकर-शुद्ध प्ररूपक होकर, इस भारत खंडकी भूमिको पावन करेंगें तो इन दोनोंका शीघ्र ही कल्याण हो जावेगा, हमारा आशीर्वाद है।"

इसीके साथ पृ. १२१ पर उनके श्रावकोंकोभी-जिसे आत्म कल्याणकी वांछना है उन्हें-हितशिक्षा देते हुए, परभवमें उत्तम गति-कुल और बोधिबीजकी सामग्री प्राप्त करने हेतु मृगपाश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदृश जैनाभासोंके विरुद्ध वचनकी-किसीके कहनेसे, देखनेसे या सराग दृष्टि आदि किसी भी कारणसे-श्रद्धा धारण की हुई हों उसे छोड़कर दृढ़ मनसे हज़ारों पूर्वाचार्यों द्वारा प्ररूपित और आचरणीय चार थुइयोंको अंगीकार करनेकी प्रेरणा देते हैं।

निष्कर्ष-इस तरह इस ग्रन्थके अध्ययनसे हम अनुभव कर सकते हैं कि आचार्य प्रवरश्रीने अपने अत्यन्त विशद साहित्यावगाहनके स्वाद रूप संदर्भके थोकके थोक उंड़ेल कर एक अत्यन्त क्षुल्लक भासमान होनेवाली 'प्रतिक्रमणमें देव-देवीकी चतुर्थ थुईसे वंदना-स्तवना-करणीय है या नहीं?'-फिरभी जिन वचनसे विरुद्ध उत्सूत्र प्ररूपणाकी परंपरागत यथार्थता और सत्यताको किस अंदाज़से विश्लेषित करके अनेकोंको उन्मार्गगामी होनेसे बचा लिया है। अंतमे (गणिवर्य श्री मणिविजयजी म.) परोपकारी गुरु म. श्री बुद्धिविजयजी आदिकी प्रशस्ति रूप श्लोक और जिनाज्ञा विरुद्ध, कुछ अशुद्ध प्ररूपणाके लिए क्षमापना याचना करते हुए इस ग्रन्थके प्रथम भागकी परिसमाप्ति की गई है।

च.स्तु.नि. भाग-२:--*ग्रन्थ परिचय*--'चतुर्थ स्तुति निर्णय' ग्रन्थके प्रथम भागके सूत्र-शास्त्र-ग्रन्थादिके अनेक यथार्थ उद्धरणोंके स्वरूपको पढ़कर और श्री आत्मारामजी म. द्वारा उपकारार्थ दी गई हितशिक्षा, विद्वेषमें परिणत होनेसे क्रोधित होकर-सं.१२५०में उत्पन्न और थोड़े ही समयमें विच्छिन्न मिथ्यामत-तीन थुई से चैत्यावंदनाका वि. १९२५में पुनरुद्धारक जिनाज्ञाभंजक, उत्कट कषायी, क्रोधी, मृषावादी, दंभी, ईर्ष्यालु, अन्यायी, साधुको कारणवश पत्र-लेखनकी जिनाज्ञा होनेपर भी उसे दोष माननेवाला कदाग्रही, जावराके नवाबसे वार्तालापमें-दीन (मुस्लिम) और जैन एक समान है-ऐसी प्ररूपणा करके जैनमत-अनंत तीर्थंकर-गणधरादिको मुस्लिम मत कर्ता सिद्ध करनेवाले स्वच्छंदमति अभिनिवेशिक मिथ्यादृष्टि, उत्सूत्र प्ररूपकादि अनेक अवगुणालंकृत-श्री धनपाल विजयजी द्वारा गप्प स्वरूप मृषालेखोंसे 'देखनेमें मोटी और जिनाज्ञानुसार खोटी; अनेक प्ररूपणाओंसे भरपूर, 'थोथी पोथी'में श्रीआत्मारामजी म.के साथ साथ खरतरगच्छीय, तपागच्छीय विजयदेवेन्द्रसूरि, सागरगच्छीय श्री रविसागरजी-श्री नेमसागरादि गच्छोंके अनेक पूर्वाचार्योंके दिये गये कलंकको असिद्ध प्रमाणित करने हेतु श्रीमगनलाल दलपतराम आदि अनेक श्रावक एवं साधुओंकी तथा जैनधर्म प्रचारक सभा-भावनगरके सभासदोंकी विनतीसे परोपकारार्थ व कलंक निवारण रूप इस द्वितीय भागकी रचना, प्रथम भागकी रचना पश्चात् चार वर्ष बाद-राधनपुरके वर्षावासमें श्री आत्मारामजी म.सा.ने की; जिसमें राधनपुरके ज्ञानभंडारसे प्राप्त 'धर्मसंग्रह' पुस्तकाधारित "चार थुई और नव प्रकारे चैत्यवंदनाकी" प्ररूपणाको 'नूतन प्रक्षेपित होने'के आक्षेपका प्रत्युत्तर देते हुए मिथ्याभाषी धनविजयजीको अनादरपूर्वक दंड देनेका आग्रह करके श्री संघसे न्याय मांगा है। तत्पश्चात् पृ ३४में ऐसे प्ररूपकोंके लिए हार्दिक अफसोस भी व्यक्त किया है।

विषय निरुपण--उपरोक्त पूर्वाचार्योंके निंदक श्री धनविजयने, श्री रत्नविजयजी द्वारा की गई उत्सूत्र प्ररूपणाका--(प्रतिक्रमणके आद्यंतमें जघन्य चैत्यवंदना करनी चाहिए; चतुर्थ स्तुतिसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव-देवी आदिकी स्तुति न करणीय है, न शास्त्रोक्त ही--- पुनरुच्चार करते हुए विशेषमें-(१) मयासागरजी द्वारा बिना योगोद्वहन-स्वयं दीक्षा ग्रहण (२) परिग्रहधारी और पीताम्बरधारीश्री मणिविजयजीकी बहुत पेढ़ियोंकी गुरु परंपरा संयम रहित थी, (३) बूटेरायजीने मणिविजयजीके पास न दीक्षा ली है-न उनमें साधुपना है (उनके स्वयं स्वीकारनेसे) (४) श्री आत्मारामजीने पुनः नवीन दीक्षा नहीं ली है और स्वयं (A) सूत्रागम, अर्थागम, पूर्वधरादिकी परंपरागत तीन थुई तथा पूजा प्रतिष्ठादि कारण चतुर्थ थुई की आचरणाको एकांत प्रतिक्रमणमें करना और श्री जिनमंदिरमें चैत्यवंदनादिमें से निषेध किया है; (B) पीत वस्त्रकी परम्परा प्रारम्भ की (C) श्रावकके सामायिक धारण वक्त इरियावही प्रतिक्रमण बाद करेमिभंतेका पाठोच्चार-आदिकी प्ररूपणा करके परम्परा प्रारम्भ की है--आदि अनेक आक्षेप किये है। इनका इस द्वितीय विभागमें अनेक शास्त्रीय, युक्तियुक्त-आगमिक एवं प्रत्यक्ष प्रमाणोंसे प्रत्युत्तर देकर पूर्वाचार्योंकी निर्दोषता, विद्वत्ता और गीतार्थताको प्रमाणित करनेकी भरसक कोशिश की है।

पृ. ३४में श्री आत्मारामजी पांच प्रकारके विरोधी है-जैनलिंग (वेश), शत्रुंजयादि तीर्थ, जैनशास्त्र, चतुर्विध संघ और पूर्वाचार्योंकी समाचारी। इनका प्रत्युत्तर (१) उत्तराध्ययनकी बृहत्वृत्ति अनुसार, (२) 'आर्य देश दर्पण'के संदर्भसे (३) श्री जिनभद्रगणिजी कृत श्री संग्रहणीमें 'कोडि' शब्दकी प्ररूपणाका यथार्थ विश्लेषण करके (४) पृ. ४३में उद्धृत श्री प्रेमाभाईके पत्रोल्लेखसे और (५) पृ.४३-४४में की गई चर्चा-'इरियावहीका प्रतिक्रमण 'करेमिभंते'के पूर्व या पश्चात्--के निर्णयके लिए पृ.४५ पर श्री विजयसेन सूरि कृत 'सेन प्रश्न', श्रीरूपविजयजी कृत प्रश्नोत्तर, महानिशीथ, दसवैकालिक बृहत्वृत्ति, आदि ग्रन्थाधारित सिद्ध किया कि, प्रथम इरियावही और बादमें 'करेमि भंते' कहनेकी पूर्वाचार्योंकी परंपरा है और 'आवश्यक चूर्णि'की प्ररूपणाका -यथार्थ विश्लेषण और अस्पष्टतादिके कारण 'प्रथम करेमि भंते'की प्ररूपणामें ही संदिग्धता है ऐसा प्रमाणित किया है।

अंतमें "आराधना पताका" सूत्रादिके संदर्भसे और रूपविजयीजी कृत प्रश्नोत्तर, प्रवचन सारोद्धार, अनुयोग द्वार, उत्तराध्ययन टीका, आवश्यक निर्युक्ति आदिसे श्रुतदेवी, क्षेत्रदेवता, भुवन देवतादिके काउसग्ग और थुइकी मान्यताकी सिद्धि की है; साथ ही रतनविजयजीकी सुधर्मगच्छकी प्ररूपणाकी कपोल-कल्पितता और ऐसी प्ररूपणाके कारणोंको भी स्पष्ट किया है।

निष्कर्ष-इस ग्रन्थके दोनों भागोंकी विभिन्न समयमें रचना हुई है प्रथम भाग ई.स. १८८७ और द्वितीय भाग ई.स.१८९१। इनमें जैन साधु-साध्वी योग्य प्रतिदिन अवश्य करणीय क्रियाकी विधियोंमेंसे एक 'चतुर्थस्तुति' और'ईर्यापथिकी प्रतिक्रमण एवं करेमिभंते पाठोच्चारकी पूर्वापरता' विषयक विभिन्न मतोंका आलेखन करते हुए दो विरोधी दलोंके परस्पर खंडन-मंडनको पेश करके ग्रन्थकारने यथार्थ और सत्य प्ररूपणा करनेकी कोशिश की है। विरोधी दलको हितशिक्षा देकर हठाग्रह और कदाग्रह छोडकर सत्यराह अपनानेकी प्रेरणा दी है-जिससे आत्मकल्याण प्राप्त हों। अंतमें गुर्वादिकी प्रशस्ति रूप श्लोकोंसे अंतिम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलाचरण करते हुए ग्रन्थका पर्यवसान किया गया है।

-: जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर :-

ग्रन्थ परिचय--इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने अपनी मौलिकताका परिचय देते हुए जैनधर्मके विभिन्न विषयक स्वरूपोंको प्रश्नोत्तर रूपमें प्रस्तुत किये हैं, जो आधुनिक शिक्षितो-जैन जैनेतर जिज्ञासुओंको संतुष्टि प्रदान करनेमें सक्षम है। इस पेशकशकी प्रमुख विशिष्टता है-"अभिप्सित तथ्योंको भ.महावीरके जीवनप्रसंगोंके साथ समरूप करके स्पष्ट रूपसे समझाना" यथा-(१) 'भ. महावीरका ब्राह्मण कुलमें अवतरण' इस प्रसंगसे जैन कर्मविज्ञानके अटल सिद्धान्त-*जीव कर्मका कर्ता और भोक्ता स्वयं है*---दर्शाया है; अर्थात् मरिचिके भवमें उपार्जित *'नीचगोत्र'* कर्म चरम भवमें भी भुगतना पडा। कर्मका फल सर्व जीवोके लिए समान होता है, निदान परमेश्वरको भी उसके विपाकोदयको सहना पडता है। यही कारण है कि भ.महावीरको देवानंदाकी कुक्षिमें ८२ दिन तक रहना पडा। (२) गर्भहरण, छाद्मस्थिक कालमें परिषह और उपसर्गोको धैर्यता से सहना, निर्वाण समय शक्रेन्द्रकी 'एक पल आयुष्य वृद्धि' की प्रार्थनाका प्रत्युत्तर--आदि प्रसंगोसे अन्य दर्शनकारोंकी *सर्व शक्तिमान ईश्वरकी'* मान्यता पर कुठाराघात होकर प्रतिपादित होता है--'कर्मबद्ध जीव सर्व शक्तिसंपन्न नहीं हो सकता और सर्व कर्ममुक्त जीवोंको स्वयंकी शक्ति-प्रदर्शनकी आवश्यकता नहीं होती। अगर ऐसा होता तो इतने परिषह-उपसर्ग शक्ति होने पर भी क्यों सहते? अथवा देवलोकसे सीधे ही उच्च कुलमें अवतरित होनेके प्रत्युत नीच कुलमें क्यों जाते? क्योंकि बद्धकर्म भुगतानके लिए 'विहायोगति नामकर्म' उन्हें खिंचकर वहाँ ले गया!- ऐसे अनेक प्रसंग इन प्रश्नोत्तरोंमें निहित हैं।

विषय निरूपण---कुल १६३ प्रश्नोंत्तरमें निम्नांकित विषयोंको समाविष्ट किया गया है।-यथा-जिनेश्वरका स्वरूप, योग्यता, गुण, कर्तव्य, जन्म, माता, पिता, कुल, गोत्र, विचरण क्षेत्रान्तर्गत जैन भूगोल-इतिहासादिकी मान्यतायें-भ. महावीरके जीवन प्रसंग---च्यवन, गर्भहरण, जन्म स्थान, समय, माता, पिता, परिवार, दीक्षा वर्णन, सार्ध बारह वर्षके छाद्मस्थिक आराधना कालके बाईस परिषह और त्रिविध उपसर्गोंका वर्णन, चरम सीमान्त सहनशीलताका परिचय, सर्वघातीकर्म क्षय होनेसे केवलज्ञान, केवलज्ञान महोत्सव, प्रथम देशना निष्फल, अनंतर देशनामें चतुर्विध संघकी स्थापना, चतुर्विध संघ परिवार, दीक्षा पर्यायके बयालीश चातुर्मास, बहत्तर वर्षायु पश्चात् निर्वाण, दिवाली पर्व प्रारम्भ, अंतिम उपदेशादि प्रसंगोंको लेकर अनेकविध विषयोंकी प्ररूपणा ग्रन्थकारने की है जैसे-

सर्व तीर्थंकरोंके कर्मोदय एवं कर्म-निर्जराका स्वरूप और भगवानके भोगी और त्यागीपनेका कारण-सार्ध बारह वर्षकी उग्रातिउग्र घोर तपश्चर्याका वर्णन-ज्ञानके भेदोपभेदका स्वरूप-बारह पर्षदाका वर्णन-इन्द्रभूति आदि महामिथ्याभिमानी ग्यारह महापंडित याज्ञिक ब्राह्मणोंकी शंकाओंका समाधान-गणधर पदप्रदान-त्रिपदीसे द्वादशांगीकी रचनान्तर्गत द्वादशांगी, चौदहपूर्व, पंचांगी रूप पैंतालीस आगमोंके परिचयात्मक यंत्र-चतुर्विध संघ, साधु और श्रावक योग्य धर्म एवं सम्यक्त्वका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप-धर्माचरणका फल-पूर्वकालमें जिनोपदेश रूप श्रुतज्ञान कंठाग्र रखनेके आग्रहका कारण-(ग्रन्थालेखनके सर्वथा निषेधका इन्कार)-सर्वप्रथम श्रुतज्ञान ग्रन्थस्थ करनेकी परंपराके प्रारम्भक-समय, स्थान, कारण, विधि, व्यक्ति आदिके विधान---भ.महावीरके ३९ राजवी भक्तोंके नाम-स्थान निर्देश---'निर्वाण समय भस्मग्रहके प्रभावसे', 'होनहार भवितव्यता'की सिद्धि और 'ईश्वरेच्छा बलियसि'की असिद्धि-निर्वाणकी परिभाषा और स्वरूप अंतर्गत जीवकी गति-स्थिति-अवस्था-मोक्षके प्रारम्भ-पर्यवसानके कालका स्वरूप, आत्माका अविनाशीत्व-अमरत्व आदि।

इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक, आगमिक एवं सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तरके अंतर्गत भगवान श्री ऋषभदेवसे भ.महावीर पर्यंतकी पट्ट परंपराकी ऐतिहासिक सिद्धि---भ.पार्श्वनाथकी पट्ट परंपराकी पट्टावली और वर्तमानमें उनके उपकेशीय गच्छकी अविच्छिन्न परंपराके प्रभाविक आचार्यों-साधु आदिके विचरणसे भ.महावीरके पूर्वकालमें भी जैनधर्मके अस्तित्वकी सिद्धि-प्राचीन शिलालेखों एवं अनेक बौद्ध-शास्त्रोंसे तथा नूतन संशोधनाधारित जैनधर्मकी बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्मादिसे प्राचीनता और स्वतंत्रता---दिगम्बर देवसेनाचार्यजीके 'दर्शनसार' ग्रन्थाधारित बुद्धकी उत्पत्ति, मांस लोलुपता, मांसाहार और मांससे ही मृत्यकी प्ररूपणा; बौद्धोंके ग्रन्थोंसे ही बुद्धका चरित्र वर्णन और उनकी असर्वज्ञताकी सिद्धि-जैनमतसे बौद्धोंके धर्म स्वरूप-शास्त्रादिकी अधिकताका निषेध-श्वेताम्बरों और दिगम्बरोंकी पूर्वापरताकी, आचार्य परंपरा आदि ऐतिहासिक ग्रन्थ रचनायें, पाश्चात्य विद्वानोंके संशोधन, मथुराके प्राचीन शिलालेख, प्राचीन स्तंभादिके लेख, दैनिक पत्र-पत्रिकाके लेखादिसे सिद्धि---भगवंतकी देशनानुसार द्रव्य और भावसे प्रभु प्रतिमा-पूजनका स्वरूप-लाभ-कारण-सर्व देवोमें धार्मिकताका स्वरूप-समकित देवकी स्तुति और शासनोन्नति आदि विशेष कारणोंमे श्रावक या साधु द्वारा आराधनाके निषेधका इन्कार-द्रव्य हिंसाका स्वरूप वर्णन, कूपके दृष्टान्तसे---आत्माका उपादान कारण ईश्वर एवं आत्मा और ईश्वरमें अद्वैतपनेका खंडन-कर्मफल प्रदाता और जगत्कर्ता ईश्वर प्ररूपणाका इन्कार और इन्कारके कारण,-पांच निमित्तरूप उपादान कारण ही सृष्टि-सर्जक और उनसे ही सृष्टि संचालन-इस विधानकी, बीजसेवृक्ष, और जीवका गर्भमें अवतरण आदि रूप कार्यकलापों द्वारा स्पष्टता-कर्म द्वारा ही विश्व रचनाकी सिद्धि-पुनर्जन्म, तीर्थंकरोंकी भक्तिका कारण और प्रभाव-शुभाशुभ कर्मोदयमें देवोंका निमित्त रूप बननेकी शक्यता-जीवकी अनंत शक्तिकी कर्म रहितताके कारण अद्भूत, चमत्कारिक कार्य निष्पन्नता, कर्मकी १५८ उत्तर-प्रकृतियोंका स्वरूप-और आठ मूल प्रकृतियोंके कर्म-बंधका स्वरूप, कर्मबंधके कारण-कर्म निर्जराका स्वरूप आदि सर्वज्ञ प्ररूपित संक्षिप्त कर्म स्वरूप---२८ लब्धिका स्वरूप-उपयोग-प्राप्तिका स्वरूप---तीर्थंकरोंकी लब्धियाँ-गणधर गौतमकी लब्धियोंका वर्णन---भ.महावीर और उनकी प्रतिमाकी मान्यताका कारण और स्वरूप एवं अन्य सरागी देवोंका स्वरूप---जैनोंके ग्रन्थोंकी सुरक्षा हेतु ज्ञान भंडारोंकी गुप्तता, लेकिन अध्ययन हेतु सर्वके लिए उदारता एवं स्वतंत्रता-जैनोंके नाक एवं जिह्वा-(इज्जत और खान पान)में धन व्यय पर आक्रोश-सात क्षेत्रोमेंसे आवश्यकतावाले क्षेत्रमें धन व्ययकी जिनाज्ञा-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधर्मिक वात्सल्यका स्वरूप-जैनमतके कम प्रचार-प्रसारके कारण-अन्य मतावलम्बियोंमें प्राप्त पंच परमेष्ठिके स्वरूपकी मान्यताकी विवक्षा---अनादि अनंत द्रव्योंका स्वरूप---पृथ्वी आदि सर्व एक जीवाश्रयी (पर्यायरूप) अनित्य और असंख्य जीवाश्रयी (प्रवाह रूपसे) नित्य-रूप, उपदेश, क्रियादिकी अपेक्षा और धर्मोपदेशककी योग्यायोग्यतानुसार गुरुका स्वरूप वर्णन-धर्मके प्रकार-वनकी उपमासे (कंथेरी, खेजडी, जंगली, नृपवन और देवनन)-चेटक, संप्रति, कुमारपाल आदि सदृश राजा आदिभी गृहस्थ योग्य जैन धर्मपालन करनेमें समर्थ-कुमारपालके बारहव्रत पालन और नियमोंका स्वरूप और अंतमें ग्रन्थकारके अभिप्रायसे तत्कालीन हिन्दुस्तानमें प्रचलित पंथ या मतोंके क्रमका वर्णन किया गया है।

निष्कर्ष--इस प्रकार इस 'गागरमें सागर' जैसे छोटेसे ग्रन्थमें जैन-जैनेतर धर्मोंका स्वरूप, एवं कर्मादि सिद्धान्तोंकी प्ररूपणा, सर्व मतोत्पत्ति आदि द्वारा ऐतिहासिक तथ्योंका-आदि अनेक प्रकारसे बाल जीवोंकी जिज्ञासा पूर्ति हेतु निरूपण करके ग्रन्थकारने सामान्य जन जीवनमें व्याप्त अनेक भ्रामक मान्यता और जिज्ञासाकी पूर्तिका सफल प्रयत्न किया है।

-: चिकागो प्रश्नोत्तर :-

ग्रन्थ परिचय--किसी भी रचनाका प्रादुर्भाव तीन प्रकारसे होता है-अंतःस्फूरणा, प्रेरणा एवं आवश्यकता। 'चिकागो प्रश्नोत्तर' ग्रन्थकी रचना आवश्यकताको लेकर की गई है यथा-'(३-४-१८९३ चिकागो, यु.एस.ए.से. आये पत्रानुसार) **"At any rate, will you not able to prepare a paper which will convey to the accidental mind, a clear account of the Jain Faith which you so honorably represent ? It will give us great pleasure and promote the ends of the parliament, if you are able to render this service."**

यह और इसके बादके पत्रोंके प्रत्युत्तरमें पूज्य गुरुदेवने, अपने प्रतिनिधि स्वरूप मि. वीरचंद गांधीको चिकागो भेजनेके लिए तैयार किया, एवं उनकी तथा चिकागोवालोंकी प्रार्थनासे प्रश्नोत्तर रूप यह ग्रन्थ श्री महाराज साहिबने तैयार किया, जो मैं अधुना अपने प्रेमी भाइयोंके लाभार्थ प्रगट करता हूँ। यही कारण है कि इसका नाम 'चिकागो प्रश्नोत्तर रखा गया'- 'उपोद्घात'-ले. श्री जसवंतराय जैनी।

विषय निरूपण-जैनधर्मका कर्मविज्ञान-आत्मा-मोक्ष, ईश्वरका स्वरूप, मनुष्य और ईश्वर एवं मनुष्य और धर्मके सम्बन्ध, धर्म पुरुषार्थ-धर्म हेतु-धर्माराधनाके प्रकार, सर्वोच्च पद प्राप्ति और उसके साधन, विभिन्न धर्मशास्त्रावलोकनका महत्त्व-जैनधर्मके उपकार, पुनर्जन्म सिद्धि-जगतकी विचित्रतायें मूर्तिपूजा (ईश्वरभक्ति)-उसकी आवश्यकता-स्वरूप, वर्तमानकालीन जैनोंमें न्यूनतायें और जैनधर्मकी सर्वांग सम्पूर्णता अंतर्गत पश्चात्ताप--(प्रायश्चित)से कर्मसे मुक्तिका स्वरूप-अवतारवादका विश्लेषण-धर्मका विविध विषयक शास्त्रोंसे संबंध-धर्मसे ही देशोन्नति, रूढि परंपरा पर असर आदिका विवरण देते हुए धर्मके लक्षणमें रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयीके स्वरूपालेखन, 'जगत्कर्ता ईश्वर' संबंधी जैनेतर दार्शनिकोंकी मान्यतायें दर्शाकर और उनका खंडन करते हुए सर्वशक्तिमान-सर्वव्यापी-निराकार-एक ही परमब्रह्म-पारमार्थिक सृष्टि सर्जक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ईश्वरकी मान्यतासे ईश्वरको प्राप्त अनेक कलंकोंका ब्यौरा देकर 'ईश्वर फल प्रदाता'का भी इन्कार करते हुए स्व-स्व कर्मानुसार (काल-स्वाभाव-नियति-पूर्वकर्म-प्रयत्न) पांच निमित्त पाकर जीवका स्वयं कर्म फल भुगतना-स्पष्ट किया है। ईश्वर देहसे सर्वव्यापी नहीं- ज्ञानसे सर्वव्यापी (सर्वज्ञ) है। सृष्टि सर्जनके प्रमुख कारण-पांच निमित्त कारण और उपादान कारणोंका समवाय सम्बन्धसे मिलन है। पृथ्वी आदि उपादान कारण नित्य होते हैं, अतः वे अनादि अनंत होनेके कारण उनका कर्ता कोई नहीं हो सकता।

यहाँ अन्यवादियोंसे समन्वयकी भावना प्रदर्शित करते हुए आप लिखते हैं-"यदि पदार्थोंकी शक्तियोंका नाम ही ईश्वर है-ऐसा माना जाय तब ऐसे ईश्वरको जगत्कर्ता मानना जैन मतसे विरुद्ध नहीं। .....वर्तमान पदार्थविद्यानुकूल अन्य मतवालोंके ईश्वरको जगत्सृष्टा मानना अप्रमाणिक है । कोई विद्वज्जन 'पदार्थविद्यानुकूल जगत्कर्ता ईश्वर' जिस युक्ति द्वारा सिद्ध करेंगें सो युक्ति देखकर सत्यासत्यका विचार करके हमभी सत्यका निर्णय करलेगें।" ---इस प्रकार ईश्वर विषयक दार्शनिकोंकी मान्यताकी भिन्नाभिन्नताको और वर्तमानकालीन ईश्वर विषयक प्ररूपणाओंका विवरण देते हुए मनुष्यका स्वभाव-लाक्षणिकता-न्यूनता आदिका विवेचन किया है। अंतमें कौनसे अठारह दूषणोंको दूर करके आत्मा-परमात्मा कैसे बनती है-इसे 'हीरा'के दृष्टान्तसे समझाया है। प्रवाहसे अनादि संसारका अंत नहीं। अनादिकालीन मोक्षगमन होने पर भी विश्व जीवोंसे शून्य न होनेका कारण, जीवोंकी अनंतता दर्शाकर आकाशकी अनंततासे तुल्यता प्रस्तुत करके जैनमतकी विशिष्टताकी पुष्टि की है। इसके साथ ही पुनर्जन्म विषयक विशिष्ट सिद्धान्तोंका भी अनेक उदाहरणों द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

सर्वज्ञ-केवलज्ञानीके ज्ञानमें प्रत्यक्ष और कार्यानुमानसे सत्य, मुख्य आठ और उत्तर प्रकृति १५८ (ज्ञानावारणीय-५, दर्शनावरणीय-९, वेदनीय-२, मोहनीय-२८, आयुष्य-४, नाम-१०३, गोत्र-२, अंतराय-५) कर्मानुसार ही चित्रविचित्र जीव जगतकी रचना होती है। ये कर्म कब और कैसे फल देते हैं इसका संक्षिप्त परिचय देते हुए; इन कर्म-धर्म-आत्मादिको न माननेवाले चार्वाकादि नास्तिक दर्शनोंका शास्त्राधारित अनेक युक्त युक्तियोंसे खंडन किया है। 'मूर्तिपूजा विरोधीओं द्वारा किया जाना पुस्तकादिका सन्मान, ताबूत, मक्का हजादिको भी 'स्थापना निक्षेपा' रूप मूर्तिपूजाका ही अंग सिद्ध किया है। मनुष्य और ईश्वरका, उपदेश्य और उपदेशक संबंध होनेसे, उन्हें परमोपकारी स्वरूप मानकर-उनके साक्षात्कारके लिए भी उनकी पूजाको आवश्यक-कर्तव्य दर्शाते हुए जलादि अष्ट प्रकार एवं अन्य अनेक प्रकारके द्रव्योपचारसे द्रव्य-भावपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रादिसे धर्म-प्रभावना वृद्धिका स्वरूप अभिव्यक्त किया है। मनुष्यमें धर्म-धर्मीका अविष्वक्भाव संबंध मिश्रीकी मिठास सदृश आरोपित करते हुए, ईश्वरके साथ भी उनका सन्मार्ग प्रदर्शक (रहनुमा)-दुर्गतिपात रक्षकके अतिरिक्त अन्य संबंध अनुरूप होनेका ईन्कार-सकारण-किया गया है।

अंतमें धर्महेतु-धर्मपुरुषार्थको सूचित करके जैनधर्मानुसार धर्माराधनाके दो भेद-श्रावकधर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और साधुधर्मका विवरण-मार्गानुसारीके पैंतीस गुण-श्रावकके बारहव्रत-साधुके पंच महाव्रत-समभाव स्थिरता आदि सत्ताईस गुण-अठारह हजार शीलांगादिके पालनसे, दो प्रकारसे (सांसारिक और पारमार्थिक) मनुष्य जन्म साफल्यका एवं परंपरासे उच्चपद (मोक्षपद) प्राप्तिका आलेखन किया गया है। जैनेतर धर्मोंके उपकार, श्री तीर्थंकर परमात्माओंकी श्रेष्ठता प्रस्थापित करके भ.महावीर स्वामीका अत्यन्त संक्षिप्त जीवन-चरित्रका परिचय करवाकर, ईश्वरके अवतारवादके स्वरूपकी हास्यास्पदताको प्रकट किया है।

अनंत गुणी अरिहंत परमात्माके कुछ गुण और सिद्धपदके गुणानुवाद-जैन शास्त्रोंमें धर्मका परस्पर प्रेमसंबंध एवं पदार्थशास्त्र, शिल्प-साहित्य-दर्शन-जीवनशास्त्र (अर्थशास्त्र), सामाजिक (नीति) शास्त्र, वैदकशास्त्र, संगीतशास्त्रादिसे संबंध और सह अस्तित्व बताते हुए धर्मसे देशोन्नति और रूढ़ि परम्पराका त्याग करनेका महत्त्व फरमाया है। रत्नत्रयी और तत्त्वत्रयी रूप धर्मके लक्षण निरूपित करके ग्रन्थकी समाप्ति की गयी है।

निष्कर्ष-ग्रन्थकारके पूर्वरचित ग्रन्थोंके कुछ विषयोंमें पुनरावृत्ति रूप लगनेवाले इस ग्रन्थ के सर्व विषयोंमें विशिष्ट लाक्षणिकताका नियोजन स्पष्ट दृष्टिगत होता है, क्योंकि इस ग्रन्थकी रचनाका प्रयोजन ही विलक्षण संयोगोंका परिपाक है। अतः इस ग्रन्थमें "बिन्दुमें सिन्धु"की तासीर निहित करके ग्रन्थकारने तत्त्वाकांक्षियोंके लिए तत्त्वपूंजको जिज्ञासुओंके आधार स्तंभ रूपमें प्रस्तुत किया है।

-: ईसाई मत समीक्षा :-

ग्रन्थ परिचय--इस ग्रन्थ रचनाका आवश्यक प्रयोजन था-किसी स्वमत त्यागी ईसाईके "जैन मत परीक्षा" पुस्तककी प्ररूपणाओंका प्रत्युत्तर और ईसाई धर्मके भ्रामक-हास्यास्पद तथ्योंका उद्‌घाटन। 'जैनमत परीक्षा' पुस्तकानुसार जैनोंके ऋद्धिवंत, उच्च पदवीधारी, बुद्धिवान होना-सभीसे असत्य-स्वधर्म त्याग और शुद्ध-सत्य-जैनधर्म अंगीकार करनेकी प्रेरणा करना-वेदोक्त धर्मकी निंदा, कृष्णका नरकगमनादि प्ररूपणाओंका प्रत्युत्तर और ईसाई धर्मकी असमंजस, कपोल-कल्पित गप्प-तौरेत, जबूर इंजिल आदि धर्मग्रन्थोंकी आयातो, तौरेत यात्रा-गिनती-लयव्यवस्था, समुएल-ऐयुबादिकी पुस्तकोमें प्ररूपित अज्ञानी-दीन-परवश-कामी आदि पचासों अवगुणधारी ईश्वरकी कल्पना-अनेक मनघडंत कथायें-ईश्वरका सृष्टि सृजन-ईश्वर, परमेश्वर पुत्र इसु, आचार्य मुसा आदिकी प्ररूपणामें प्रयुक्त कुयुक्तियाँ और ईश्वरादिकी चित्र-विचित्र लीलाओंका सविस्तीर्ण पृथक्करण करते हुए जैनोंके सैद्धान्तिक थिअरी, सृष्टि संचालन, भौगोलिक, खगोलिक विवरणोंको समाविष्ट किया गया है।

विषय निरूपण-ग्रन्थके प्रारम्भमें ही "जैन मत परीक्षा" के प्रत्युत्तरमें जैनधर्मकी विशिष्ट धर्माराधनासे कर्मक्षय और पुण्योदय होनेसे अनायास ही समकित प्राप्ति, विपुल धन-ऋद्धि-समृद्धिकी प्राप्ति होना; मोक्षमार्ग-शाश्वत, संपूर्ण सुख प्राप्तिके हेतुभूत उत्तम धर्मके अंगीकरणकी स्वाभाविक रूपमें प्रेरणा और उससे अनेक भव्यात्माओंके आत्मकल्याण की संभवितता; हिंसक यज्ञोंसे भरपूर वैदिक धर्मकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निंदा-जो कोई भी दयावानके लिए कर्तव्य बन जाता है; और अन्य आत्म कल्याणकारी वैदिक प्ररूपणाओंका स्वीकार किया है। कृष्ण-नरकगमनके विषयमें जैनशास्त्रानुसार सार्ध छियासी हजार वर्ष पूर्व हुए कृष्ण वासुदेव-श्री नेमिनाथ भगवंतके चचेरे भाइ-का नरकगमन प्ररूपित किया है-नहीं कि हिंदू मान्य पांच हजार वर्ष पूर्व हुए कृष्णका। अगर हिंदू भी उन्हीं कृष्णको मानते हैं तो "कृतकर्म अवश्य भोक्तव्यं" अर्थात् राज्य संचालनमें अनेक आरम्भ-समारम्भ कामक्रिडायें, युद्धादि द्वारा उपार्जित कर्म भुगतनेके लिए नरकगमन हों-उसमें आश्चर्य या खेद क्यों? जैनोंने कृष्णजीको अपने अनागत चौबीसीके *'अमम'* नामक तीर्थंकरके स्वरूप माने हैं, फिर भी उनके कर्मानुसार नरकगमन रूप सच्चाई, जैसी जिंदादिलीसे स्वीकार्य कीया है, वैसे ही उनको भी स्वीकारना चाहिए; क्योंकि, *"सव्वे जीवा कम्मवश, चौदह राज भमंत"*- यह अटल और अद्‌भूत जैन सिद्धान्त सनातन सत्यरूप है। यहाँ ग्रन्थकारने अपनी मध्यस्थताका परिचय देते हुए लिखा है, कि, "चाहो कोई पुरुष-स्त्री किसीभी जातिवाला क्यों न हों, जो ईच्छा निरोध पूर्वक शील पाले सो पुरुष श्रेष्ठगिना जाता है, ऐसे ऐसे लोक बहुत मतोंमें, और बहुत जातियोंमें अबभी मिल सकते हैं।" इसके साथ ही साथ 'नार्हतः परमो देव'-तीर्थंकर समो देव नहीं और "श्री नमस्कार महामंत्रके प्रथम पांच पदके विना अन्य कोई देव-गुरु उपास्य नहीं हैं।" इसे सिद्ध करके उनके गुणोंका जिक्र किया गया है।

तत्पश्चात् ईसा मसीहके जीवन चरित्रके प्रसंगोंका उल्लेख करके उनके देवत्वका भी इन्कार किया है-यथा-गुलरसे फलयाचना-(दीनपना), बेगुनाह गुलरको शाप देना-(कषायीपना), भूतोंका सूअरोंके देहोमें प्रवेश करवाकर सूअरोंको समुद्रमें डूबा देना-(निर्दयता), ईसुका कुमारी मरीयमसे जन्म, ईसुका भक्तोंके लिए फांसी पर लटकना-(ईश्वरत्वका ह्रास), अंत समय 'एली एली'कहकर चिल्लाना-(शोक, भय, अरति), ईसुकी घोषणा-"हरएक मनुष्यको कर्मानुसार फल दिया जायेगा"- ईसाइयोंकी 'ईश्वरकी प्रार्थनासे पापक्षम्य' होनेकी कल्पनाका निरसन आदिका वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त ईसाइ धर्मशास्त्रोमें सृष्टि सर्जनके साथ पुनर्जन्मका इन्कार एवं 'ईश्वरका सर्वको सुखी करनेके लिए जन्म देने'को माननेवालोंका भी प्रत्यक्ष व्यवहारमें दुःखी होनेका अनुभव और प्रलय वर्णन-धूर्त सर्प याने शेतान, आदम-हव्वा आदिके प्रपंच-उन दोनोंको मिथ्या मार्गदर्शन रूप ईश्वराज्ञा और उन दोनों द्वारा उसकी की गई अवहेलनाके फल स्वरूप ईश्वर द्वारा शाप देना-लूतकी बेटियोंका मद्यपान और पिताके साथ कुकर्मसे गर्भधारण, वैसे ही सराका परमेश्वरसे गर्भित होना-ईश्वर पुत्र और आदमकी पुत्रियोंका सम्बन्ध-आदमीको उत्पन्न करनेके लिए ईश्वरका पश्चात्ताप-प्रलय पूर्व एक ही नावमें सर्व प्रकारके प्राणी-पशु-पक्षी आदिके बीज रूप नर-मादा और उनके पोषणकी सामग्रीको भरनेका नूहको दिया गया ईश्वरका उपहासजनक आदेश-ईश्वरका कभी शाप देना और कभी उसके लिए पछताना, कभी सबको मार डालना-मरी फैलाना-गाँव उलट देना और कभी किसीको न मारनेका निश्चय करना-आदि अनेक असमंजस मानस कल्पनायें प्ररूपित की हैं। "प्रत्येक जीता-चलता जंतु तुम्हारे भोजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए है । उसका मांस उसके जीव (लहु) के साथ मत खाना-"ऐसा ईश्वर द्वारा मांसाहारका आदेश और स्वयं भी बछडे आदिका मांसाहार करना-(ईश्वर की क्रूरता और जिह्वा लोलुपता)-समस्त पृथ्वी पर एक ही बोलीको छिन्नभिन्न करना, बडे पयगम्बर अब्राहमकी पत्नीको स्वयंका जीव बचानेके लिए मृषा बोलनेकी प्रेरणा करना--(माया मृषावादीपना)-मिश्रवासीका गुप्त रूपसे खून करके जमीनमें गाडना--(खूनी होना), इसरायलियोंको बचानेके लिए बडे मेम्नेका वध करवाके खूनके छापे मरवाना, मिश्रवासियोंकी कत्ल और उसी इसरायलियोंको मरीका उपद्रव करके १७००० मनुष्योंको मार डालना-पापके प्रायश्चित्तके लिए गाय-बैल बछडा-बकरा आदिके बलिदान देकर मांस चढानेका विधान-आदि अनेक उटपटांग, निर्दयी, मृषावादी, हिंसक प्ररूपणा करनेवाले ईश्वर-ईश्वरपुत्र-पयगम्बर-मूसा आदिके चरित्र वर्णनोंसे ईसाइ धर्मकी अधर्मताका पर्दाफास किया है। और भव्य जीवोंके उपकारार्थ सुदेव-गुरु-धर्मके गुणोंका वर्णन-हिंसासे बचनेके लिए आवश्यक, जीवोंके स्वरूपकी जानकारी देते हुए जीवोंके भेदोंका निरूपण, जीवोंकी शरीर रचना, सुख-दुःखादि अनुभव आदिके हेतुभूत निमित्त-कर्मोंका स्वरूप-कर्मके प्रकार-बंध, निर्जरा आदिके हेतु-विपाक आदि संपूर्ण फिरभी संक्षिप्त कर्मविज्ञान-चौदह पूर्वादि शास्त्र-रचनाका स्वरूप, सूर्य-चंद्रादिकी प्ररूपणासे खगोल और पृथ्वी याने द्वीप-समुद्रादिके विवरणसे भूगोलके विषयोंका स्पष्टीकरण-आदि अनेक उपयोगी निरूपणोंके साथ इस छोटेसे ग्रन्थकी समाप्ति की गई है।

निष्कर्ष--दिखनेमें छोटे और माहात्म्यमें बडे इस समीक्षात्मक ग्रन्थमें ईसाइयोंकी तौरेत-इंजिल-जबूरादिकी आयातोंके उद्धरण देकर उनकी समीक्षा करते हुए सत्य और शुद्ध धर्मावलम्बनसे आत्म कल्याणकी अपील करके जैनधर्मावलम्बी इतिहास, भूगोल, खगोल, कर्म विज्ञानादिकी भी प्ररूपणा की है।

-: जैनधर्मका स्वरूप :-

ग्रन्थ परिचय--जैनधर्मका स्वरूप अर्थात् उनके सिद्धान्त शास्त्रोंका अवगाहन-जो सिद्धान्त आसमान जैसे विशाल और समुद्र जैसे गंभीर है, जो अगणित (क्रोडों) ग्रन्थोमें समाविष्ट किया गया है, उन अगाध श्रुतवारिधिका आचमन करनेके लिए समर्थ तत्कालीन अगत्स्यके अवतार तुल्य अधिगततत्त्व, शास्त्र पारगामी श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.ने सर्वसाधारण जैन और जैनेतर सभीके लिए समान उपयोगी एवं विशेषतःचिकागो 'धर्म समाजकी' प्रार्थना व प्रेरणासे आकाशको अणुमें समाविष्ट करने सदृश इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थकी रचना सं.१९५० अषाढ शु.१३को सम्पन्न की, जिसे सं.१९६२ में श्री जसवंतराय जैन-लाहोर द्वारा प्रकाशित किया गया।

विषय निरूपण--आधुनिक अल्पज्ञ प्रत्युत धर्म जिज्ञासु महानुभावोंकी संतुष्टिके लिए जैन धर्मके यत्र-तत्र निरूपित अनेक शास्त्रोंमें की गई भिन्नभिन्न प्ररूपणाओमें निहित महत्त्वपूर्ण धर्म सिद्धान्तो तत्त्व पदार्थोंको सर्वांग संपूर्ण ज्ञान एक ही ग्रन्थमें अति संक्षिप्त रूपमें आलेखित करनेका प्रयत्न किया गया है, जिसके अंतर्गत निम्नांकित विषयोंका जिक्र किया गया है-यथा-कालचक्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके दो भाग और बारह आरे-उनका स्वरूप-उनमें तीर्थंकरोंकी उत्पत्तिका समय-तीर्थंकर आत्मा द्वारा पूर्व जन्म कृत बीस कृत्योंके नाम-वर्णन; दो प्रकारका धर्म---श्रुतधर्म और चारित्र धर्म----श्रुतधर्मान्तर्गत नवतत्व, षट्द्रव्य, षट्काय, (इसके अन्तर्गत चार भूत या चार तत्त्वोंसे चैतन्योत्पत्तिकी मान्यताका खंडन, पांच निमित्तसे सृष्टि रचना, पृथ्वी आदिका प्रवाहसे नित्यत्व आदिकी स्वरूप चर्चा), चार-गतिका वर्णन, सिद्धशिलाका स्वरूप, आठ कर्मोंका स्वरूप, (देव-गुरु-धर्म, आत्मा-मोक्ष, जड़ चैतन्य, कर्म आदि विषयोमें) जैनोंको सामान्य रूपसे स्वीकार्य मंतव्य और अस्वीकार्य मान्यतओंका स्वरूप, आदिका वर्णन किया गया है। चारित्र धर्ममें साधु धर्मान्तर्गत संयमके सत्रहभेद, यतिधर्मके दस भेद, इत्यादि और गृहस्थ धर्मान्तर्गत अविरति सम्यग् दृष्टि गृहस्थका स्वरूप, उनको आचरणीय कृत्य, देशविरति श्रावकके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट-भेदोंका स्वरूप वर्णन, बारह व्रतोंका स्वरूप, गृहस्थके अहोरात्रके कृत्य, त्रिकाल पूजनविधि आदिको समाविष्ट किया गया है।

निष्कर्ष--"श्री आत्मानंदजी म.सा.के अगाध ज्ञानभंडारसे जैनधर्म तत्त्वोंके स्वरूपका इस कदर इसमें गुंफन हुआ है कि इसे 'तत्त्वपूंज' कहा जायतो कोइ अत्युक्ति नहीं"-इस कथनको चरितार्थ करनेवाला यह ग्रन्थ जैनधर्म तत्त्वोंसे संपूर्ण अनजान-बाल जिज्ञासुओंके लिए अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अध्ययनसे संपूर्ण जैनधर्मका सर्व साधारण परिचय हो सकता है।

- प्रश्नोत्तर संग्रह -

ग्रन्थ परिचय--श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. द्वारा भारत देशके तत्कालीन जैन-जैनेतर समाजपर किये गये उपकारोंके कारण उनकी कीर्तिपताका दिगंतव्यापी बन चूकी थी। अमरिका जैसे दूर देशोमेंभी आपकी सम्माननीय प्रतिभापूर्ण प्राज्ञताके प्रकाशकी प्रभा प्रसरी हुई थी, परिणामतः सर्व धर्म परिषद, चिकागो द्वारा भी आप आमंत्रित किये गये थे। वैसे ही योरपीय विद्वान प्रो.डॉ.रुडोल्फ हॉर्नलेका दृष्टि व्याप आप तक विस्तीर्ण बना और उन्होंने भी स्वयंके 'उपासक दशांग' आगम-सूत्रके अनुवाद और संशोधित विवेचनमें उपस्थित होनेवाली कुछ शंकाओंका समाधान प्रश्नोत्तर द्वारा आपसे प्राप्त करके कृतज्ञता अनुभूत की थी। उन प्रश्नोत्तरको समाजोपयोगी बनाने हेतु 'जैनप्रकाश' भावनगर, पत्रिकामें, पुस्तक ५-६के अंकोमें प्रकाशित किया गया था; जिसे पू.प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी म.साके शिष्य रत्न पू. श्री भक्तिविजयजी म. द्वारा संकलित करके श्री जैन आत्मवीर सभा, भावनगर-द्वारा वि.सं. १९७२में 'प्रश्नोत्तर संग्रह' नामक पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। यह ग्रन्थ आचार्य प्रवरश्रीके 'पत्र साहित्य'का उत्तम संकलन बन पड़ा है।

विषय निरूपण-इस संकलनमें डो.होर्नले द्वारा बारह पत्रोमें प्रश्न पूछे गये और विद्वद्वर्य आचार्य-देव द्वारा उन प्रत्येक प्रश्नोंके संतोषप्रद, पूर्वाचार्योंके शास्त्र-ग्रन्थाधारित, शुद्ध प्रत्युत्तर दिये गये। उन प्रश्नों द्वारा जिन जिन विषयोंको समावृत किया गया हैं वे प्रायः इस प्रकार है-श्रावककी ग्यारह पड़िमाओंकी गाथा अर्थ और वहन करनेकी प्रक्रियाका स्वरूप, ओहीनाण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौषध-'व्रजऋषभनाराच संघयण-आदिके अर्थ और स्वरूप, परिषह और उपसर्ग दोनोंके स्वरूप-प्रकार परिभाषा एवं दोनोंमें अंतर, भ.महावीरका प्रणीत भूमिमें विचरणकाल, उग्रकुल और भोगकुल; अणुव्रत-गुणव्रत एवं शिक्षाव्रत; कायोत्सर्गकी मुद्रा आदिका शास्त्रीय स्वरूप; श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों शाखाओंकी उत्पत्तिका समय स्वरूप और उन पर प्रो. जेकोबीके अभिप्रायकी समीक्षा, जैनोंकी पूर्वांकित दोनों शाखाओंके आगमान्तर्गत बारह अंग विषयक अभिप्राय-ग्रन्थकारके 'अज्ञान तिमिर भास्कर' ग्रन्थ विषयक डॉ.रुड़ोल्फकी कुछ शंकाओंके प्रत्युत्तरके अंतर्गत भद्रबाहु स्वामीजीके निर्वाणका निश्चित समय, तेईस उदयोंका स्वरूप, योरप और अमरिकामें जैनोंके छपे हुए सूत्रों की सूचि-संभूति विजयजी और भद्रबाहुजीकी शिष्य परंपराका विस्तृत वर्णन-संभूतिविजयजीके नंदनभद्रकी शिष्य परंपरासे दिगम्बर मतके प्रारंभके निरूपणकी दिगम्बर और श्वेताम्बर पट्टावलीके प्रमाणोंसे सिद्धि-आचाम्ल (आयंबिल) तपका स्वरूप और परिभाषा-वृद्धगणेश (सर्वगणियोमें बड़े), वीस विश्वोपक, पट्ट महोत्सव, सप्तक्षेत्र, शंत्रुजय उद्धार विषयक 'श्री आदिनाथस्य षष्ठोद्धारस्य' आदि शब्दोंके अर्थ और स्वरूप; 'जैनमत वृक्ष' ग्रन्थाधारित प्रश्नोत्तरान्तर्गत उस चित्रांकनमें मध्य थड़ रूप तपागच्छको रखनेका कारण-सुधर्मा स्वामीसे वर्तमान तपागच्छ पर्यंत पट्ट परंपराके मुख्य तथ्य एवं स्वरूप-निर्ग्रंथ गच्छके क्रमसे परिवर्तीत छ नाम और परिवर्तनके कारण-छठे नाम तपगच्छका स्वरूप-भ. पार्श्वनाथकी पट्ट-परंपरा और उनके वर्तमान गच्छ भेदोंका स्वरूप-विच्छेद हुए गच्छोंका विधान साधुकी दस सामाचारीके अर्थ और स्वरूप,-'मिच्छाकार'समाचारीका विशेष स्वरूप-पट्टावली संबंधित अन्य अनेक शंकायें-गच्छ, कुल, शाखा, गण आदिके अर्थ और स्वरूप,-'आचार दिनकर' नामक ग्रन्थसे चार आर्यवेदकी प्रमाणिकता-दिगम्बराचार्य कृत 'ज्ञान सूर्योदय' नाटकाधारित बौद्ध मतोत्पत्ति, दिगंबरोंकी बीस पंथी-तेरापंथी तोतापंथी शाखायें, चार प्रकारके संघ आदिका स्वरूप-वल्लभीनगर भंगके समय गांधर्व वादिवैताल शांतिसूरिजी द्वारा श्री संघ और शासन रक्षाका स्वरूप-चंद्रकुलसे थेरापद्रिय गच्छकी उत्पत्ति आदि अनेक विषयोंकी शंकायें-अस्पष्टतायें-असमंजसता आदिके संतोष जन्य-यथास्थित संदर्भ सहित सर्वांग संपूर्ण प्रत्युत्तरसे उन विदेशी विद्वानका दिल जीत लिया। जिससे प्रभावित होकर उन्होंने अत्यन्त आदर भावसे उपकार अदा करने हेतु प्रशंसा पुष्पयुक्त (श्लोक द्वारा) अपने ग्रन्थको समर्पित किया--श्री आचार्य प्रवरके नाम।

निष्कर्ष--श्री मगनलाल दलपतरामजीके माध्यमसे किये गये आचार्य देवके इन महत्वपूर्ण पत्र व्यवहारसे परवर्ती अनेक अभ्यासक जिज्ञासुओंकी शंका-समस्याओंका समाधान स्वतः ही प्राप्त हो जाता है। साथ ही ग्रन्थकारकी अनेक रचनाओंका अभिप्रेत स्वयं उनकी कलमसे ही स्पष्ट हो जाता है और कुछ नवीन तथ्योंका उद्घाटन भी यहाँ हुआ है। इस ग्रंथ संकलना के अभ्याससे सुरीश्वरजीके दिलमें बहती ज्ञान और ज्ञानीके प्रति सम्माननीय लागणीशीलताका एहसास होता है, जो उन्हें नम्र-सच्चे ज्ञानीके रूपमें हमारे सामने प्रत्यक्ष करती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

--- नवतत्त्व (संक्षिप्त) ---

बृहत् नवतत्त्वका ही संक्षिप्त रेखाचित्र इसमें दर्शित करवाया गया है । इन सारभूत रहस्योंको बिना किसी संदर्भ, अत्यन्त सरल भाषामें--बालजीवोंकी अभिज्ञता हेतु--प्रस्तुत किया है; जिसे पढ़कर जैन-जैनेतर सभीको इनकी जानकारी मिल सकती है ।

--- पद्य रचनायें ---

विशाल साहित्य-सृजनकर्ता विद्वद्वर्य आचार्य प्रवरश्रीने अपनी लेखिनीसे सुंदर भाववाही, कलात्मक, आत्म कल्याणकारी मनमोहक लुभावने पद्य साहित्यको भी अवतारा है, जिसमें विविध पूजा-काव्य, पद संग्रह, स्तवन और सज्झाय संग्रह, मुक्तक एवं उपदेशात्मक फुटकल रचनायें, 'उपदेश बावनी', 'ध्यानशतक' ग्रन्थाधारित भावानुवाद (संवर तत्त्व अंतर्गत) आदि प्रमुख रूपसे दृष्टिगत होता है । इन सभीका विशिष्ट परिचय 'पर्व षष्ठम्'में करवाया जायेगा ।

सारांश-- पूर्वांकित सर्व गद्य साहित्यके विश्लेषणात्मक विवरण द्वारा ग्रन्थकारकी जन समाजके प्रति हितार्थ एवं परोपकारार्थ दृष्टिका परिचय प्राप्ति होता है । कहींकहीं विषयोंके समान शीर्षक नज़र आते हैं, अतः पुनरावृत्तिके दोषकी झलक महसूस होती है; लेकिन, जब उनका अध्ययन किया जाता है तब हमारा भ्रम खुल जाता है । क्योंकि प्रत्येक बार उसी एक विषयको उन्होंने नयेनये संदर्भोंमें विविध आयामोंके साथ पेश किया है--जो उनकी तीव्रतम प्रातिभ मेधाका ज्वलंत उदाहरण रूप है । उनके गद्य ग्रन्थोंको हम जैन-धर्म-तत्त्व पूंज कह सकते हैं तो पद्य-ग्रन्थों एवं संग्रहोंको शांतरससे लसलसता भक्तिरस भरपूर निर्मल निर्झरोंका अक्षय कोश कहेंगें ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ ह्रीं ॐ नमः

पर्व पंचम्

उपसंहार

"कीर्ति सितांशु सुभगा भुवि पोस्फुरित;
यस्यानघं चरीकरिति मनो जनानम् ।
आनन्दापूर्वविजयान्तग सूरिभर्तु;
स्तस्याहमेष किल संस्तवनं करिष्ये ।।" [1].

अवनि-से अनादिकालीन, अम्बर-से अनंत, और अम्बुधि-से अगाध, इस असार संसारमें प्रतिसमय जन्म-मरणका अरहट्ट अविरत चल रहा है । कालचक्रकी चक्कीसे बचना नामुमकीन है, अतः नवागंतुककी बिदाई (जन्म पश्चात् मृत्यु)भी आगमन तुल्य ही निश्चित ही है; लेकिन बिदा होते होते अपनी जो लकीर महापुरुषों द्वारा अंकित होती है, उन चरण चिह्नोंको संसार आदर-सम्मानयुक्त निगाहोंसे निहारता रहता है । आदित्यका उदय हों या दीपककी रोशनी; बादलोंकी बरखा हों या गिरिकंदराके निर्झरोंका कलनाद; वृक्षोंका छाया प्रदान हों या फल प्रदान-निरन्तर परोपकारार्थलीन निःसर्गके ये साथी मानव जगत समक्ष निजानंदकी मस्तीकी फुहारोंको संप्रेषित करते रहते हैं । ठीक उसी प्रकार पूर्वांकित सीमाचिह्नोंकी प्रतिमूर्ति सदृश, वे **"अलंकार भुवः"**-युगोत्तम महापुरुष भी **"परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।"**-की उदात्त भावनाको संजोये हुए कालजयी या मृत्युंजयीकी खुमारीके साथ जीते तो है जिंदादिली से, मृत्युको भी महोत्सव बनाकर मरने पर भी अमरत्व प्राप्त कर जाते हैं और अमर जीवनकी सार्थक कहानीसे संसारको सदैव प्रेरणा करते रहते हैं । ऐसे मानव-महामानव-परममानवोंकी प्रसूता बहुरत्ना वसुंधरा समय समय पर ऐसे नरपुंगवोंकी भेंट द्वारा संसारको समृद्ध एवं समलंकृत करती रहती है ।

विश्व विश्रुत विरल विभूती :- विश्ववंद्य, सूरिपुरंदर, लब्ध प्रतिष्ठ कर्मयोगी, तपागच्छ गगनमणि श्री **आत्मानंदजीम.सा.का जिनशासनमें आगमन** अर्थात् अमासकी कज्जलमयी कालरात्रिके अनंतर सर्वतोमुखी प्रतिभाके आदित्यकी उज्जवल रश्मियोंसे **जिनशासनोन्नतिके यशस्वी प्रभातका प्रारम्भ और उनका जिनशासनसे गमन या उनके** तेजस्वी जीवन-कवनकी जिनशासनसे कटौती अर्थात **आधुनिक इतिहासमें महत्तम न्यूनताका अहसास; उनका साहित्य सृजन** अर्थात् कुमतवादी और उनकी कुमान्यताओंके विरुद्ध **अकाट्य, युक्तियुक्त तर्क प्रमाणोंका लहराता समुद्र-साथही** साथ बहुश्रुतताकी सर्वांगिण लोकमंगलके लिए **धार्मिक एवं सामाजिक गंगा यमुनाकी धारायें; तथा उनकी न्यौच्छावरी** अर्थात् जैनधर्मका **ध्रुवाधार स्तंभ** एवं जिनमंदिर-जिनप्रतिमा और उनके पूजनकी जीवंत प्ररूपणाका **ज्वलंत इतिहास; उनका जीवन** अर्थात् सत्यकी गवेषणा-संशोधन-प्ररूपणा, सत्यका प्रकाश और विकास; सत्यके विचार-आचार-प्रचारके संवाहक पूजारीका जीवन, सत्यके संगी-साथी-राही, सत्यके विजेता-प्रणेताका जीवन । *इस प्रकार सत्यनिष्ठ श्री आत्मानंदजीम.सा.की अंतरंग आत्मा सत्यसे लबालब भरी थी, तो बहिरंग आत्माकी चारों ओर सत्यके सूर प्रवाहित थे; सत्यकी ही स्वरलहरी एवं लय और ताल पर केवल सत्यका ही नर्तन था ।*

सहज जन्मजात गुणोंके समीकरण रूप सरलता, सहजता, उदारता, स्वाभिमान, साहसिकता, नीड़रता, निश्छलता, वीरता, कार्यक्षम श्रमशीलताने **उनके उच्च चारित्रिक गठनको;** धैर्य, गांभीर्य, चातुर्य, तीक्ष्णमेधा, तीव्रस्मरण शक्ति, विशद एवं गहन अध्ययन, निःस्पृहता, निरभिमान, विनय, वात्सल्य, तपशीलता, अलौकिक प्रभावयुक्त-भीष्म ब्रह्मचारी तुल्य नैष्ठिक ब्रह्मचार्यादि गुणोंने **उनके श्रामण्यको,** दृढ़ संकल्पबल, दीर्घदर्शिता, अनुशासन प्रियता, समर्थ क्रान्तिकारी पौरुषत्व, ओजस्वी वक्तृत्व, बेजोड़ तार्किकता, सर्व दर्शनोंकी विशद एवं गहन शास्त्राज्ञता, समयज्ञता, प्रगल्भ असाधारण ज्ञान प्रतिभा आदि गुणोंने **उनकी प्रखर समाज सुधारकता**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं मंझे हुए अनुभवी धर्म नेतृत्वको; मेघ-सी गंभीर-गर्जीत-सुरीली वाणी, देव सदृश अनुपम काया, सिद्धहस्त लेखन, उत्कृष्ट-कुशाग्र कवित्व, संगीतज्ञता, चित्रकलात्मकता, विद्यामंत्रधारक सिद्धियाँ, श्री जिनेश्वर देव एवं जिनशासनके प्रति संपूर्ण समर्पण भावादि गुणोंने **उनके समग्र जीवनको** अप्रतीम एवं अनूठे साजोंकी सज़ावट प्रदान करके सुशोभित किया है । श्री आत्मानंदजीम.सा.आचार्यत्वकी अष्ट संपदके स्वामी, षष्ठ-त्रिंशति गुणधामी; समाजमें व्याप्त अज्ञानयुक्त संकीर्णताके कारण प्रचलित कुरूढ़ियाँ, कुरिवाज, कुरीतियोंका बिछौना गोल करनेवाले और शिक्षा प्रचार द्वारा सामाजिक नवचेतनाको संचारितकर्ता एक जनरेटर तुल्य, अनेक भव्यजीवोंके प्रेरणा स्रोतके रूपमें अपनी अमर कहानी छोड़ गये हैं । *आपके कर-कमलोंसे वपन किया और समस्त जीवनामृतसे अभिसिंचित संविज्ञ शाखीय जैनधर्मका उपवन लहलहाते द्रुमदलोंसे सुशोभित रहेगा, जिसके तरोताज़ा-मिष्ट फल जैन समाजको दीर्घकाल पर्यंत सदैव प्राप्त होते रहेंगें ।*

जीवनाकाशका विहंगावलोकन :--- ऐसे परमोपकारी, शेर-ए-पंजाब, पंजाब देशोद्धारक श्री आत्मानंदजीम.के जीवनाकाशके तारक मंडल-से वैविध्यपूर्ण प्रसंगोंके विहंगावलोकनके समय हमारे नयनपथको प्रकाशित करता है अनेक गुण-रश्मियोंका आलोक, जिनमेंसे यत्किंचित्का आह्लाद अनुभूत करें । प्रतिदिन तीनसौ श्लोक हृदयस्थकर्त्री **तीव्रयाददास्त;** यथावसर-यथोचित प्रत्युत्तर द्वारा आगंतुक जिज्ञासुओंको परिपूर्ण संतुष्ट करनेवाली **प्रत्युत्पन्नमतियुक्त तीक्ष्ण मेधा;** शंकरके तृतीय नेत्र-सा व्यवहार करनेवाले पूज्यजी अमरसिंहजीकी रास्तेमें भेंट होने पर प्रेमपूर्वक विधिवत् वंदना करनेवाले और एक श्वासोच्छ्वासकी क्रियाके अतिरिक्त प्रत्येक कार्योंमें गुर्वाज्ञाको ही प्रमाण वा आधार–के प्रतिपादकके रूपमें प्रकाशित है **उनका विनय-गुरु-भक्ति आदि;** बचपनमें धाड़पाडुओंसे घरकी रक्षा करनेवाले 'दित्ता' द्वारा आजीवन केवल सत्यके सहारे ही समस्त स्थानकवासी समाजसे विरोध मोलकर और मूर्तिपूजा विरोधी-धर्मलूटेरोंसे एक-अकेले द्वारा जिनशासनकी रक्षा करनेमें **उनकी साहसिकता-वीरता-नीड़रताका विज्ञापन** दृग्गोचर होता है । आराधना-साधना, ज्ञान-ध्यान, समाजकल्याण या शासनकी आन और शान, गुरुभक्ति या शिष्योंके आत्मिक सुधार-शिक्षणादि जीवनके प्रत्येक मोड़-प्रत्येक कदम-प्रत्येक पलको अनुशासन बद्ध बनाने हेतु सविशेष सतर्कता बरतनेवाले **अनुशासन प्रिय** श्री आत्मानंदजीम.द्वारा भारतवर्षके समस्त जैनसंघों द्वारा यतियोंके वर्चस्व भंग और जिनशासनकी प्रभावनाके प्रयोजनसे प्रदान किये गये **'आचार्यपद'काभी** केवल श्री संघके आदार-सम्मान और स्वकर्तव्यके भाव रूपमें स्वीकार-**आचार्य प्रवरश्रीकी निस्पृहता, निरभिमान और कर्तव्यनिष्ठाका परिचायक है।** साहित्य सेवार्थ ज्ञानभंड़ारोंके जीर्णोद्धार, ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि करवानेकी और व्यवस्था करवानेकी प्रेरणा देनेवाले **दीर्घदर्शी, युगप्रधान आचार्य** प्रवरश्री द्वारा चिरकाल पर्यंत स्थायी प्रभाव छोड़ जानेवाले विशाल साहित्य सृजनमें-कथिरसे कंचन-जैसे परमार्थोंकी उद्घाटक **नवोन्मेषशालीनी बुद्धि प्रतिभाके** दर्शन होते हैं; तो 'तत्त्व निर्णय प्रासाद' या 'जैन तत्त्वादर्श' जैसी रचनाओमें हमें **उनकी बहुश्रुतता-सर्वदर्शन शास्त्रज्ञताकी** अभिज्ञता प्राप्त होती है। तटस्थ विचारक पं.श्री सुखलालजीके शब्दोमें **"महोपाध्यायजी श्री यशोविजयजीम.के पश्चात् प्रथम बहुश्रुतज्ञानी विद्वान श्री आत्मानंदजीम.सा.थे ।"** तत्कालीन साधु संस्थामें **सामाजिक सुधारकके** रूपमें अनेक सामाजिक समस्याओं पर ध्यान परिलक्षित करके समाजोन्नतिके अनेक कार्य सम्पन्न करवानेवाले **समर्थक्रान्तिकारी पौरुषत्वधारी** आचार्य प्रवरश्रीने श्रीजिनशासनकी उन्नति और जैनधर्म प्रचार-प्रसारके महदुद्देश्यसे श्री वीरचंदजी गांधीको चिकागो-अमरिका भेजकर विश्व धर्ममंच पर जैनधर्मकी बोलबाला करवानेवाले **समयज्ञ संतपुरुषका** नाम इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे अंकित है । अंबालाके श्री जिनमंदिर प्रतिष्ठावसरकी चिंताजन्य (घनेबादल घिरनेवाली) परिस्थितिमें **मुस्लिम युवानोंकी इबादत-"या खुदा महरे कर, यह काम बाबा आत्मारामका है-जिसने हिंदु-मुस्लिम सबको एक निगाहसे देखा है"- उनकी अनूठी लोकप्रियताकी निशानी है ।** अहमदाबादसे विहारके समय विलंबसे आनेवाले नगरशेठ या बड़ौदासे विहार करनेके निर्णय पश्चात् कलकत्ताके रईस बाबू बद्रीदासकी विनतीकी परवाह न करके अपने ही निर्धारमें निश्चल रहनेकी प्रवृत्ति उनकी **समयकी पाबंदी और स्वतंत्र-अड़ग निश्चय शक्तिको** प्रस्तुत करती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मलग्न कुंड़लीकी प्रामाणिकता :-- ये और ऐसे ही धैर्य-गांभीर्य-चातुर्य-नम्रता-दृढ़संकल्पबल-प्रगल्भ असाधारण ज्ञानादि अनेकानेक गुणालंकृत आचार्य भगवंतकी जन्म कुंड़ली पर, ज्योतिष्चक्रके परिवेशमें दृष्टिक्षेप करनेसे हमें अभिज्ञात होता है-उनके समस्त-दृश्यादृश्य-जीवन-दृश्योंका चित्रांकन; अथवा जैन सिद्धान्तानुसार पूर्वोपार्जित कर्मसंचयोंके विपाकोदयकालीन विविधरंगी, विस्मयकारी आलेखनके रूपमें उनकी जीवन शोभाका प्रदर्शन! सामान्यतः ग्रहशून्य केन्द्रवाली-अत्यन्त सर्व साधारण दृश्यमान उस जन्म लग्न कुंड़लीको उत्कृष्ट असाधारणत्व प्रदान करनेवाला लग्न है–कुंभ; राशि है–मेष; ग्रह है–योगकारक उच्चका शुक्र, बलवान सूर्य, उच्चका गुरु; सम्बन्ध हैं–शनि-चंद्रकी प्रतियुति, शुक्र-सूर्य एवं मंगल-गुरुकी युति, ग्रहोंका परस्पर या एकतर दृष्टिसंबंधोंका प्रभाव; कुंड़ली स्थित विशिष्ट योग-रचना हैं-शंखयोग, नीचभंग राजयोग, गज-केसरीयोग, परिवर्तन योग, पारिजात योग, केदार योग, उपचय योग, नव-पंचम योग आदि । इनके अतिरिक्त भाग्यभुवनमें केतुकी शनिके साथ युति संबंध पितृसुखसे वंचित करता है, तो भाग्येश योगकारक शुक्र उच्चका बनकर सूर्य-बुधकी युतिसंबंधसे युक्त धनभुवनमें बिराजित होनेसे भाग्यदेवी विजयमालारोपणके लिए सदैव तत्पर रही हैं । इस प्रकार आपके जीवनके कार्य-कलापोंका प्रकाश, ज्योतिष शास्त्रके परिवेशमें उनकी जन्म-लग्न-कुंड़लीके अध्ययनसे उस प्राप्त कुंड़लीकी सत्यताको प्रमाणित करता है ।

जैनाचार्योंका परिचय-पत्र :-- जिनपद तुल्य, साम्प्रतकालमें जैनधर्मका सर्वश्रेष्ठ-सम्माननीय-श्रद्धा, भक्ति, आदरका अनन्य स्थान-पंच परमेष्ठिमें मध्य स्थान स्थित; जिम्मेदारी युक्त जिनशासनके वफादार सेवक; पंचमहाव्रतधारी-त्रिकरण योगसे (इन्द्रिय दमन पूर्वक) सर्व सावद्य प्रवृत्तिके परिहारी; सकल विश्ववात्सल्य वारिधि-विश्वशांतिके अग्रदूत-करुणासिंधु-जीवमात्रके-जगज्जनोंके तारक-तरणि; सदाचारी, समभाव समुपासक, कलुषित कषायके त्यागी, विशिष्ट सद्गुणोंसे विभूषित, विविध देशाचार विज्ञ, विभिन्न धर्मके-भिन्नभिन्न भाषाकीय, वैविध्यपूर्ण वाङ्मयके अभिज्ञाता, स्व-पर सिद्धान्तयुक्त जिनवाणीके तात्त्विक बोधमयी प्रवचन पीयूषधाराके प्रवाहक-प्रवचन **प्रभावक श्री वज्रस्वामी सदृश;** संवेग-निर्वेदजनक प्रशस्त धार्मिक कहानियोंसे ओतप्रोत धर्मकथा द्वारा शासन प्रभावना करनेवाले-**धर्मकथा प्रभावक- श्री सर्वज्ञ सूरि, श्री नंदिषेण सूरी आदि** सरिखे; सर्वत्र-सर्वदा विजय प्रदायिनी, अद्वितीय वादशक्ति द्वारा सर्वत्र-सर्वसे विजय प्रापक-**वादि प्रभावक-श्री मल्लवादीदेव सूरी, वृद्धवादि सूरि आदिके** समान; सुनिश्चित-अद्भूत निमित्तज्ञान द्वारा, प्रसंगानुसार उस ज्ञान प्रकाशसे शासन प्रभावना **कर्ता-निमित्त प्रभावक श्री भद्रबाहु स्वामी तुल्य;** प्रशंसापात्र, आशंसारहित, अप्रमत्त-तपःशील-**तपप्रभावक-श्री काष्ठमुनि, धन्ना अणगारादि** जैसे; विविध और वैचित्र्यता सम्पन्न विद्याधारी-**विद्या प्रभावक श्री हेमचंद्राचार्य आदिके** समकक्ष; अनेक सामान्य तथा असामान्य लब्धि-शक्ति सम्पन्न, अनेक **सिद्धिधारी-सिद्धि प्रभावक-श्री पादलिप्तसूरिजीकी** तरह; उत्तमोत्तम साहित्य सर्जन प्रतिभा द्वारा काव्यादि अनेकविध वाङ्मय रचयिता **कवि प्रभावक-श्री सिद्धसेन दिवाकरजी, श्री हरिभद्र सुरीश्वरजीके** मानिंद अनेक प्रभावक जैनाचार्यों द्वारा जिनशासनके नभांचलने दीप्र-ज्योति-सा देदीप्यमान तेज़ प्राप्त किया है जिनमें प्रमुखरूपसे प्रायः साहित्यिक प्रभावकोंकी अग्रीमता एवं बहुलता रही हैं ।

युग प्रभावक श्री आत्मानंदजीम.सा.के जीवन-कवनसे भी इन **सर्वतोमुखी अष्ट प्रभावक गुण सम्पन्नता** झलकती है। उनके प्रभावशाली-आकर्षण प्रवचनों द्वारा तो अनेकानेक जैन-जैनेतर श्रोताओंके जीवन उन्नतिको प्राप्त हुए हैं । सरल एवं यथायोग्य धार्मिक सिद्धान्तानुरूप अनेक कथाओंको, रसमय शैलीमें अपनी मधुर वाणीसे प्रेषित करके आबाल-वृद्ध, साक्षर-निरक्षर सर्वके योग्य उपदेशधारा बहानेवाले धर्मकथा प्रभावक श्री आत्मानंदजीम.सा.को अद्यावधि लोग याद करते हैं । षट्दर्शनके-सर्व जैन-जैनेतर वादियोंको अकाट्य एवं बेजोड़ तर्कशक्ति द्वारा, प्रमाण-नयकी स्याद्वाद-अनेकान्तवाद शैलीके सहयोगसे निरुत्तर करके जैनधर्मकी विजय-वैजयन्ती लहरानेवाले उन वादी-प्रभावकके सकल वाङ्मयमें भी उसी प्रतिभाके दर्शन होते हैं । विशद विद्याधारी, उन तपोबली महात्माके प्रकर्ष पुण्य और मंत्रादि सिद्धियोंके सामर्थ्यसे अंबाला शहरके श्री जिनमंदिरकी प्रतिष्ठा या बिकानेरके नवयुवककी दीक्षादि अनेक असंभवितताओंको संभाव्य-सत्यमें पलटनेवाले शासन प्रभावनाके अनेक कार्य सम्पन्न हुए; जिनके द्वारा उन्होंने लोकप्रियताके शिखर पर स्थापित कलश सदृश सम्मान अर्जित किया था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसालंकार, प्रतीक-बिम्ब-छंद, राग-रागिणीके वैविध्यसाजकी सजावटसे युक्त दार्शनिक-सैद्धान्तिक एवं क्रियानुष्ठानादिके अनुरूप, साथही परमात्माकी परम भक्ति भरपूर, भावात्मक-मार्मिक और हृदय स्पर्शी, सुंदर और रसीले काव्य-पद्य साहित्य तथा प्रभावोत्पादक-नवोन्मेषशालीनी बुद्धि प्रतिभाके परिपाकको संप्रेषणीय रूपमें, प्रतिपादनात्मक अथवा खंड़न-मंड़न शैलीमें, तो कभी-कहीं प्रश्नोत्तर रूपमें षड्दर्शन और विशिष्ट रूपसे जैन दर्शनकी अनेकान्तिक धार्मिक-तार्किक-तात्त्विक, ऐतिहासिक या वैज्ञानिक प्ररूपणा करके जिनशासनकी उत्तमता, अनन्यता, अद्वितीयतादि सिद्ध करनेवाले सरल-मौलिक गद्य साहित्यकी रचेना करके कवि प्रभावककी मानिंद अपना स्थान अष्ट प्रभावकके रूपमें स्थिर करनेवाले आचार्य भगवंतके अनुपम साहित्य द्वारा सम्पन्न हिन्दी जैन साहित्यका यहाँ सिंहावलोकन करवायेंगें ।

श्री आत्मानंदजीम.सा.का हिन्दी जैन साहित्यमें महत्त्वपूर्ण योगदान :--- पूर्वाचार्यों द्वारा रचित और संगृहित वाङ्मयकी विपुलताका जो चित्रांकन पं.श्री लालचंद्र गांधी(प्राच्य विद्यामंदिर-बड़ौदा) द्वारा किया गया है-दृष्टव्य है: **"प्रभावक ज्योतिर्धर जैनाचार्यों द्वारा संगृहित पाटन, जैसलमेर, खंभात, बड़ौदादिके प्राचीन पुस्तक भंड़ारके निरीक्षणसे ज्ञात होता है, कि उनमें अनेक विध विषयोंके, विविध भाषाओंमें अप्रसिद्ध ग्रन्थ समूह इतने परिमाणमें हैं-जिनमें कितने ही ग्रन्थ अत्युपयोगी, अलभ्य या दुर्लभ, जीर्ण-शीर्ण अवस्थामें हैं-उनका यथा योग्य और श्लाघनीय प्रकाशन करने हेतु शतावधि विद्वान एक शतब्दी पर्यंत कार्यरत रहें और श्रीमान लक्ष्मीपतियों द्वारा क्रोड़ों-अरबों परिमाण द्रव्य व्यय हों, फिर भी संपूर्ण संग्रहका प्रकाशन होना शायद ही संभव बनें ।"**[२]- जैन साहित्यके इस विशाल अगाध महासागरमें प्राचीन भाषायें–मागधी, अर्धमागधी, प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि; राष्ट्रभाषा–हिन्दी(खड़ीबोली); प्रादेशिक भाषायें-ब्रज, अवधि, गुजराती, राजस्थानी, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, पंजाबी, उर्दू आदि; विदेशी भाषा--अंग्रेजी आदि भाषाओंमें प्रवाहित आध्यात्मिक क्षेत्रीय दार्शनिक-सैद्धान्तिक (तत्त्वत्रयी, आत्मिक विकासावस्थाके गुणस्थानक क्रमारोहणादि)-परमात्म भक्ति-परमात्माके विशिष्ट, अचिंत्य आत्मिक स्वरूपालेखनादि; जीवन व्यवहार क्षेत्रके नीति विषयक, राजनीति विषयक, इतिहास विषयकादि; संसार(विश्व) स्वरूप विषयक भूगोल-खगोल-गणीत, षट्द्रव्यान्तर्गत विविध विज्ञान, विशिष्ट कर्म-विज्ञानादि प्रायःसर्व विषयोंको समाहित कर्ता; साथही आधि-व्याधि-उपाधि रूप कर्म व्यवस्थाके निष्कर्ष रूप-सर्व कर्म क्षयावस्था अर्थात् मोक्षकी स्थिति-स्थान-लक्षण-स्वरूपादिको लक्ष्यकर्ता साहित्यिक प्रवाहोंका-षड्रस भोजन तुल्य शुद्ध-सुंदर-स्वादु, स्वस्थ और शिवंकर आस्वाद अथवा विविधरंगी, मनभावन, लुभावने आकर्षक साहित्यांकनोंका आह्लाद स्वयंकी ज्ञेय-हेय-उपादेयताको निर्घोषित करते हुए जगज्जनोंके लिए पथप्रदर्शन कर रहे हैं ।

साहित्यका धर्मसे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, अतःधार्मिक साहित्यके अध्ययन हेतु अध्येताका तद्विषयक ज्ञाता होना आवश्यक है । जैन हिन्दी साहित्य क्रीड़ांगणमें आचार्य भगवंतके वाणी विलासका अवलोकन करनेसे हमें अनुभव होता है कि साहित्य सृजनके समय आपकी निगाह समक्ष रचना-उद्देश्यके निम्नांकित चित्रांकन प्रेरणा स्रोत बने होंगें-जो उनकी रचनाओंसे भी स्पष्ट होते हैं-*संस्कृत-प्राकृतके अनभिज्ञ जैनधर्म जिज्ञासुओंके लिए स्वधर्मका सत्य स्वरूप प्रकट करके तात्त्विक बोध प्रदान करते हुए प्रचलित भ्रान्तियोंके निवारण; निश्चय और व्यवहार मार्गका संतुलन करते हुए उनका प्रचार; पाश्चात्य सांस्कृतिक प्रभावके प्रतिरोध और भारतीय संस्कृतिमें आस्था व अनुरागका उद्भव; जैनधर्म पर होनेवाले आक्षेपोंका परिहार करके जैन सिद्धान्तोंकी एवं मूर्तिपूजादि अनेक अनुष्ठानोंकी आगमिक प्रमाण-युक्ति द्वारा सिद्धि; सम्यक् दृष्टिसे सर्वधर्मोंका निष्पक्षतासे तुलनात्मक अध्ययन द्वारा-देश विदेशमें उत्तमोत्तम-उपादेय धर्मके संदेशको प्रसारना ।*

इन इष्ट हेतु सिद्धिके लिए आपने अपने साहित्यमें सर्वधर्म एवं दर्शनके सिद्धान्तोंका परीक्षण करके सर्वधर्मके शास्त्राधारोंको उल्लिखित करते हुए आत्माका अस्तित्व, पुनर्जन्म, आत्माका स्वकर्मानुसार स्वतः सुखदुःखके भोक्ता बनना याने कर्मका कर्ता(सर्जक) और भोक्ता(विसर्जक) बनना, कर्मके सृजन-विसर्जनकी प्रक्रियायें अर्थात् कर्मविज्ञान; आत्माकी मोक्ष पर्यंत विकासावस्थायें मोक्षकी स्थिति-स्वरूपादिकी प्ररूपणा करते हुए 'मोक्ष' विषयक निर्णय; देव-गुरु-धर्म (साधु धर्म-श्रावकधर्म)का स्वरूप, श्रावकके (गृहस्थके) सोलह संस्कार; सृष्टिकी स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धता अर्थात् जगतका अनादि-अनंत स्वरूप, एकेश्वरवाद-अद्वैतवाद, ईश्वरका अवतारवाद, ईश्वरकी सर्वशक्तिमानता-जगत्कर्तुत्वादि ईश्वर विषयक विवेचन; जैनोंका अनीश्वरवाद एवं जैनोंकी मूर्तिपूजाका विधि-विधान-स्वरूपादिका वर्णन; जैन एवं जैनेतर धर्मोंका स्वरूप-सिद्धान्त-देव-गुरुविषयक मान्यतायें; वेद रचनाओंकी पौरुषेयता-आर्यवेद-अनार्यवेद; विश्वके सर्व धर्मोंसे जैनधर्मकी तुलना; धर्माध्ययनका उद्देश्य और प्रविधि एवं निष्कर्षादि अनेकानेक विषयोंका विस्तृत-विश्लेषित विवेचन और विवरण किया है ।

मूल जैनागम साहित्यकी नींव प्राकृत भाषा है, तो उसपर निर्मित भव्य भुवन है संस्कृत साहित्य । जैसे नींवसे महालय सर्वांगिण स्वरूपमें श्रेष्ठ-विशद-आकर्षक-नयनाभिराम होता है, वैसे ही मूल जैनागमोंके प्राकृत साहित्याधारित, संस्कृत साहित्यका विशाल जैन वाङ्मय प्रत्येक विभिन्न विषयोंको विशिष्ट रूपमें व्याख्यायित करके मधुर पेशलताके साथ मनमोहक रूपमें लोकप्रिय बनकर जनताके हृदय सिहांसन पर आसीन हुआ है। उसे ही नयी सजावट देनेवाले प्रादेशिक भाषा साहित्यकी अहमियत भी कम प्रशंसनीय नहीं है । नूतन सज्जाके इस अभियानमें हिन्दी खड़ीबोलीके जैन साहित्यका विशिष्ट परिचय अत्र दृष्टव्य है ।

मध्यकालमें हिन्दी-गुजराती-मारवाड़ी-ब्रजादि भाषायें जब अपने अपने स्वरूपको संवारते हुए स्वस्थ हो रहीं थीं, तब उनमें प्राप्त सामीप्य, सादृश्य और साधर्म्य आश्चर्यकारी था, जिसका असर तत्कालीन महोपाध्याय श्री यशोविजयजीम.सा., श्री वीर विजयजीम., श्री चिदानंदजीम., श्री आनंदघनजीम. आदि जैन साहित्यकारोंमें भी दृश्यमान होता है । तदनन्तर श्री आत्मानंदजीम.के समय तक आते आते उसमें कुछ सम्मार्जित साहित्यिक रूप प्राप्त होता है, जो भारतेन्दुयुगाभिधानसे प्रसिद्ध हैं । यहाँ तक साहित्यकारोंका लक्ष्य केवल धार्मिक सिद्धान्तोंकी प्ररूपणा-अथवा व्याख्यायें करना, योगाभ्यासादिका विधान, न्याय-तर्कादि साहित्य-पर नव्यन्यायादिके परिवेशमें नूतन साहित्य गठन, परमात्माकी विविध प्रकारसे भक्ति आदिकी रचनाओंके प्रति था । सामाजिक-जन सामान्यके प्रश्नों, समस्याओं और उलझनोंका संकेत भी नहीं मिलता है । बेशक महोपाध्यायजी श्री यशोविजयजीम.ने अपने साहित्यमें तत्कालीन अव्यवस्था और अंधेरके लिए चिंता प्रदर्शित की है, लेकिन उनमें भी प्राधान्य तो धार्मिक रूपमें जैन समाजके उपेक्षा भावको ही मिला है । भारतेन्दु युगीन देनके प्रभावसे और स्वयंकी परोपकारार्थ, तीक्ष्ण मेधासे स्वतंत्र विचारधाराके फलस्वरूप श्री आत्मानंदजीम.सा.के साहित्यमें जन-जीवनके स्पर्शका अनुभव होता है । युगका परिवेश उन्हें उस ओर आकर्षित कर गया जिसने उनके साहित्यमें धर्मादि विषय निरूपणके साथ सामाजिकता, ऐतिहासिकता, भौगोलिक या वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यको उजागर करवाया । श्री सिद्धसेन दिवाकरजीम.सा.ने जैसे युगानुरूप संस्कृत भाषामें न्याय एवं तर्कके शास्त्रीय अध्ययनको अग्रीमता देते हुए बहुधा उसी भाषामें उन नूतन विषयक साहित्य रचना करके एक नया अभिगम स्थापित किया था, उसी तरह उनके अनुगामी श्री आत्मानंदजीम.सा.ने भी अपने युगानुरूप हिन्दी भाषामें धार्मिकादिके साथ ऐतिहासिक या सामाजिकादि विषयोंसे संलग्न जैन वाङ्मय रच कर, विशेष रूपसे हिन्दी गद्य साहित्यको समृद्ध करते हुए हिन्दीभाषी जिज्ञासुओंके लिए नया पथप्रदर्शन करके परमोपकार किया है। श्री सुशीलजीके अभिमतसे-**"सच्चे आत्मारामजीके दर्शन आप उनके ग्रन्थोंमें ही कर सकते हैं, जिनसे उनके अभ्यास, परिश्रम, प्रतिभाका देदीप्यमान आलोक प्रसारित होता है । उस आत्मिक तेजको अक्षर रूपमें प्रकाशमान करनेवाले उनके ये ग्रन्थ मौन रहते हुए भी सदैव अमर रहनेवाली उनकी मुखरित-जीवंत प्रतिमायें हैं ।"**[३]

उत्तर मध्यकालीन, उस अज्ञानांधकारके युगमें-प्रायःसंपूर्ण जैन जगतमें, महोपाध्याय श्री यशोविजयजीम.के परवर्तियोंमें, श्रुताभ्यास प्रायःठप-,सा हो गया था, तब केवल एक तेजस्वी तारक-श्री आत्मानंदजीम.-ही टिमटिमाते हुए नयनपथमें आते हैं; जिन्होंने अड़ोल आस्था और तीव्र जिनशासन अनुरागसे, बुद्धि और विचारशीलताके विशिष्ट उपयोगसे सर्वांगिण-संपूर्ण-ज्ञान प्राप्तिका अथक पुरुषार्थ किया । जब जैन साहित्य परंपरामें ऐतिहासिक और वैज्ञानिक परीक्षण प्रविधियोंका किसीको अंदाज़ भी न था, ऐसे समयमें आचार्य प्रवरश्रीने आश्चर्यकारी स्मरण शक्तिसे जैन-जैनेतर वाङ्मयके विशाल-गहन-गंभीर वाचन; पदार्थके हार्द पर्यंत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहुंचनेमें दक्ष, तीक्ष्ण, विश्लेषणात्मक, चिन्तन-मनन शक्ति युक्त पैनी दृष्टिसे अध्ययन; शिलालेख, ताम्रपत्रादिके सूक्ष्म निरीक्षण; मनोरम प्रत्युत्पन्न मतिसे प्रश्नकर्ताको संतोषजन्य प्रसन्नतापूर्वक प्रत्युत्तर प्रदान करनेवाली प्रतिभा; सत्यनिष्ठ क्षत्रियोचित क्रान्तिकारी व्यक्तित्वका प्रताप; देशकालोचित विद्यासमृद्धि अर्थात् भूगोल-भूस्तर शास्त्रीय-वैज्ञानिक आदि तथ्योंको प्रामाणित रूपमें उद्घाटित करनेवाले, नूतन संशोधन एवं नूतन दृष्टियोंके उद्धरण-उदाहरणादिके परिप्रेक्ष्यमें उभारकर अनागत युगमें जैनशासनके स्थिरत्व और वर्द्धमानत्व हेतु जिम्मेदारियोंकी परख करते हुए जैनधर्म और दर्शन-सिद्धान्त और साहित्यका महत्त्व, प्रचीनता(शाश्वतता), और एकवाक्यता स्थापित की है । खंड़न-मंड़नके उस युगमें सर्व दार्शनिक आक्रमणोंका मुकाबला करनेके लिए मृत और जीवंत, जैन और जैनेतर, आगमिक साहित्यिक प्रमाण-शास्त्र संदर्भोंके समूहोंके प्रचंड़ संग्रह और लाजवाब तार्किकताका प्रयोग उनके धार्मिकादि पूर्ववर्ती एवं समसामयिक ज्ञानाध्ययनके परिचयका द्योतक है, जो उनकी प्रशस्त साहित्यसेवा और समर्थ साहित्यिक प्रभ-विष्णुताको स्पष्ट करता है । लाला बाबूरामके शब्दोमें-**"उनकी रचनायें जितनी विशाल, विद्वत्तापूर्ण और दार्शनिक हैं, उतनी ही सीधी-सादी-सरल और मनोरंजक भी है ।"** [४].

गद्य साहित्य और उसका महत्व :--- श्री आत्मानंदजीम.सा.के विशद वाङ्मयके बृहदंशको आवृत्त किया है उनके गद्य साहित्यने; जिसमें प्रतिपादित विषय पूर्णतः धार्मिक और दार्शनिक होने पर भी दार्शनिकताकी क्लिष्टता-नीरसता-गहन गंभीरतादि कलंकोंसे मुक्त, सरल और स्वच्छ शैलीमें, सुबोध उदाहरण, आकर्षण एवं मनोरंजक वर्णन द्वारा लोकभोग्य और लोकप्रिय बन चूके हैं; ऐसे ही उसमें धार्मिक जड़ता एवं एकांगी कट्टरताको छोड़कर उत्तमोत्तम-बौद्धिक परीक्षणमें अव्वल श्रेणि प्राप्त, लचीला तथा प्रशिक्षुका आत्मिक या जैविक उद्धारमें उपयुक्त हो सके वैसा दिलकश और आकर्षक है । पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाके मुहावरें-लोकोक्तियाँ आदिके यथेष्ट उपयोगने उनकी रचनाओंको साहित्यिक प्रांजलता बक्ष दी हैं । **"उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें जैन मान्यताओंका युक्तिपूर्वक, वैज्ञानिक पद्धतिसे समर्थन किया है..... (ठीक उसी प्रकार) धार्मिक-पौराणिक-आगमिक-ऐतिहासिक-भौगोलिक-भूस्तरीय आदि विषयक प्ररूपणायेंभी की गई हैं ।"** [५]. उनका साहित्य एक जौहरीकी अदासे परीक्षक दृष्टिसे परीक्षित करने पर उनके नैतिक उपदेशक, समाज सुधारक, मानवतावादी एवं सहनशील, करुणार्द्र-उपकारी, सच्चे महात्मन्–स्वरूपका दर्शन अनायास ही होता है; जो अध्येताको बाह्यात्मासे अंतरात्माकी ओर, भौतिकतासे आध्यात्मिकताकी ओर, इहलौकिकतासे पारलौकिकताकी ओर, एवं एकान्तवादसे अनेकान्तवादकी ओर पुरुषार्थी बनानेमें प्रेरक बन गया है । उनकी रचनाओमें छाया हुआ अंतर्चेतनाका प्रकाश अज्ञान एवं असत्यादिके लौकिक अंधकारको विदारण करके अलौकिक-उज्ज्वल-विकासशील-उन्नत समाजकी संरचनामें महता योगदान प्रदान करता है ।

यथा-आगमज्ञानसे अनभिज्ञ ज्ञानेप्सुको 'नवतत्त्व'से सम्बद्ध मूलागम-संदर्भोंके सिंधु स्वरूप **'बृहत नवतत्त्व संग्रह'**की भेंट दी; तो जैन दर्शनकी तत्त्वत्रयीका स्पष्ट-सुरेख-सत्य स्वरूप एवं इतर दर्शनके तत्सम्बन्धी विपरित स्वरूपके तुलनात्मक निरीक्षण हेतु **"जैन तत्त्वादर्श"** प्रस्तुत किया । 'सत्यार्थ प्रकाश'की जैनधर्म और जैनधर्मी विषयक सरासर असत्य-प्रकाशाभास-अंधकारके निवारण कर्ता **"अज्ञान तिमिर भास्कर"**को प्रकट किया; तो भव्यजीवोंके सम्यक्त्वमें शल्यरूप श्री जेठमलजीकी रचना 'समकितसार'से मुमुक्षु आत्माओंका मार्गदर्शक-राहबर **'सम्यक्त्व शल्योद्धार'**को प्रेषित किया । जैनेतरोंकी अपेक्षा जैनाचार्योंके बुद्धि वैभवको प्रदर्शितकर्ता एवं जैन दर्शन व साहित्यकी परीपूर्णताका यथार्थ एवं तुलनात्मक निर्णय करवाने हेतु श्रेष्ठ आधार रूप छत्तीस दृढ़स्तम्भोंसे सुशोभित **'तत्त्व निर्णय प्रासाद'**का निर्माण किया । चिकागोमें आयोजित विश्वधर्म परिषद'में जैनधर्मके प्रमुख सिद्धान्तोंको विश्व समक्ष प्रस्फुटित करके उनका परिचय करवाने हेतु एवं जैनधर्मकी अन्यधर्मोके समकक्ष सक्षमताको प्रमाणित करनेके लिए **'चिकागो प्रश्नोत्तर'**का प्रणयन हुआ।**'चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१-२'** द्वारा त्रिस्तुतिक मत प्रणेता श्री राजेन्द्र सूरिजीको चतुर्थ स्तुतिकी सार्थकता, प्रमाणिकता और प्राचीनता या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परापूर्वताका निर्णय करवाया, तो ईसाइयोंकी धर्मपुस्तकोंके समीक्षात्मक अवलोकनको प्रस्तुत करके *मानवधर्मके सामने अहिंसा परमोधर्म'-जनसेवाके प्रत्युत जीवमात्रकी सेवाके अभिगमको* प्रदर्शित करके जैनधर्मकी श्रेष्ठता एवं उपयोगिताको सिद्ध किया है । सहज अज्ञानी, बालजीवों एवं नूतन शिक्षा प्राप्त धार्मिक गुमराहोंके रहनुमा समकक्ष रचनायें-**"जैनधर्म स्वरूप", "जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर"** आदिके साथसाथ अपूर्व-अनन्य एवं विस्मयकारी; अनूठी ऐतिहासिक कलाकृतिके आदर्शरूप **"जैन-मत-वृक्ष"(वृक्षाकार)के** आलेखनसे अनेक कलाविदों, साहित्यिकों, इतिहासकारों, दार्शनिकों एवं धार्मिक जिज्ञासुओं-सर्वको आश्चर्यके उदधिमें गोते लगवाये हैं । इस प्रकार उनकी प्रत्येक रचनाओंका अपना स्वतंत्र, अजीबो-गरीब-अनूठा महत्त्व स्वयं ही निखरता है ।

पद्य साहित्य और उसका प्रभाव :--- काव्य सरिताके छंदोबद्ध ताल-लययुक्त वेगवान प्रवाहमें मस्त, अलंकरण और भाव लालित्यसे सुशोभित नैसर्गिक रस माधुर्यसे छलकते हृदयकी उर्मियोंकी अनिर्वाच्य सुखानुभूति प्राप्त, सहज काव्यकृतिकी रचना जन्मजात काव्य प्रसादीसे लब्ध कविकी देन होती है; जिनके गायक और श्रोताका अवगाहन उनकी अंतरात्माको विकस्वर कर देता है-उनका रोमरोम पुलकित होकर डोलने लगता है । श्री आत्मानंदजीम.की मर्मस्पर्शी, गेय काव्य रचनाओमें हमें ऐसे ही नैसर्गिक, रससिद्ध एवं अंतरोर्मियोंकी तरोंगोंको बहानेवाले कविके, दुन्यवी भावोंको भूलाकर अध्यात्मके रस समुद्रमें निमज्जन करवानेमें समर्थ, कवनोंका मंत्रमुग्ध स्वरूप प्राप्त होता है । उन्हें एकबार सुन लेनेके पश्चात् बारबार सुननेको जी ललचाता है, या उनकी पुनरावृत्तिमें ही निजानंदकी उदात्त मस्तीके पूर बहते हैं; जैसे, राग-पीलूकी मनमोहक और आत्मिक केफ चढ़ानेवाली रचना जितनी बार पढें, एक नयी सुवास प्रदान करती है-मानों यथार्थ रूपसे हमारी कलूषितता समाप्त हो रही हों और हमें पावनताका स्पर्श प्राप्त हो रहा हों-

"जिनवर मंदिरमें महमहती, दश दिग् सुगंध पूरे रे,
आतम धूप पूजन भविजनके, करम दुर्गंधने चूरे रे...
भाविका, धूप पूजा अध चूरे....." ७.

सहजानंदके असाधारण शांतरस-पूंजसे व्याप्त पद्योंका अनुभव भावकके अंतरको स्वयं प्रकाशसे प्रकाशित करनेवाला उनका पद्य साहित्य, **प्रबन्ध काव्य स्वरूप-खंड़काव्य श्रेणीके पूजाकाव्योंके रूपमें और मुक्तक काव्यरूप-'उपदेशबावनी', 'ध्यान शतक'का पद्यानुवाद 'बारह भावना स्वरूप'** आदि रचनाओमें विविध मुक्तक-छंदबद्ध काव्य एवं भाव प्रगीत काव्यरूपोंके अंतर्गत स्तवन, सज्झाय, पदादिके संग्रहरूप **'आत्म विलास स्तवनावली' 'चौबीस जिन स्तवनावली'**आदि प्राप्त होते हैं । जिनमें उनके जनकल्याणकारी, मानव हितेच्छुक, उपदेशक व्यक्तित्वके दर्शन होते हैं तो पूजा काव्योमें एवं प्रगीत काव्यरूपोंमें उनका काव्यत्व संगीतके सान्निध्यसे अनूठे भक्त हृदयके रंगकी इन्द्रधनुषी आभाको प्रदर्शित करता है ।

शृंगाररसके काव्योंकी लौकिक मस्ती या खुमारी कुछ भिन्न स्तर और भिन्न स्वाद युक्त होती है, लेकिन, सांसारिक मोहजालको समाप्त करवानेकी सहजशक्ति, साम्प्रदायिकतादि अनेक गरल प्रभावोंसे मुक्त केवल सत्यानुसंधान दृष्टिसे आत्म रमणताकी अनुभूतिसे प्राप्त होती है । जिसका आनंदानुभव श्री आत्मानंदजीम.के, अपूर्व शांतिपूर्ण भावोंका आत्मसम्मुख मोडनेवाले, काव्योमें प्रचुरमात्रामें सम्मिलित है; क्योंकि, अंतरकी गहराईसे बहनेवाले आत्मिक रहस्यमय उनके काव्योंसे निष्पन्न स्वर लहरी केवल **"मनमर्कटकुं शिखो, निजघर आवेजी...."** अथवा **"एक प्रभुजीके चरण शरणां, भ्रान्ति भांजी कल्पुं....."**, **"आप चलत हो मोक्ष नगरे, मुझको राह बता जा रे....."**, **".....कर करुणा अर्हन् जगइंद"**, **"किरपा करो जो मुझ भणी, थाये पूरण ब्रह्म प्रकाशजी....."**[७] आदिका ही गुंजन करती रहती है । इसे आप अकेले गायें या समूहमें उसका हृदयस्पर्शी गुंजारव कर्णयुग्मोंको सदैव आत्मरमणतामें निमज्जन करवाता है । उनके काव्योमें प्रयुक्त सरल-सहज-सामान्य शब्दों द्वारा, स्वयंकी लघुलाघवी काव्यकलाके प्रभावसे असाधारण मधुरता और साहित्यिक श्रेष्ठता सम्पन्न आंतर्वेदना और साध्य निकटताकी प्रतीति होती है । कहीं पर भी रसक्षति या लघु पार्थिवताका प्रवेश तक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होने नहीं पाया है । शायद यह संभव है, कि उनकी तमन्ना ऐसे विविध राग-रागिणियोंमें ढले हुए कवनोंके प्रचारसे निम्नकोटिके या फूटकलिया संगीतकवनोंसे सहृदय भाविक भव्य जीवोंको आंतर्दृष्टिकी ओर मोड़नेकी हों । इसके साथ समाजकी जागृत श्रद्धाको स्थिरत्व प्रदानके कारण अन्य लक्ष्य बिंदु यह भी हो सकता है कि, उनके विचरण क्षेत्र पंजाब-राजस्थानादिमें उन दिनों प्रतिमा पूजनका विरोध अपनी चरमावस्थामें था, अतः समाजको उस विपरित दशासे उद्धारने हेतु **स्नात्रपूजा, अष्टप्रकारीपूजा, सत्रहभेदीपूजा** आदि पूजा साहित्य समन्वित है ।

उनके काव्योंके अभिव्यंजनात्मक दृष्टिसे परिशीलनसे प्रकट है कि उनकी रचनायें विविध देशी, शास्त्रीय राग-रागिणि और कुछ छंदोंके त्रिवेणी संगम स्वरूप है । मधुर लालित्ययुक्त, चित्रात्मक बिम्ब विधान या प्रतीक विधान, विभिन्न सजीव अलंकारादि द्वारा भगवद्भक्ति, मुक्ति और शक्ति सामर्थ्यका प्रवाह अभिभावकको प्रभावित किये बिना नहीं रहता । **'बीसस्थानकपूजा' या 'नवपदपूजा'**में तात्त्विक-दुरूह पदार्थों और प्ररूपणाओंको भी लोक हृदयमें स्थापित करनेके लिए पूजा साहित्यमें ढाला गया-लोकप्रिय बनाया गया । जिनके **'दर्शन पद मनमें बस्यो, तब सब रंगरोला....' या 'सूरिजन अर्चन सुरतरुकंद'** आदिका गुंजन निशदिन कानोंमें गुंजता रहता है। इस तरह जैन समाजकी ज्ञान-भक्ति और क्रियाके समन्वय संगम स्थान रूप उनका पद्य साहित्य गद्यके परिमाणमें अल्प होने पर भी उतना ही असरकारक प्रभावोत्पादक एवं प्रतिभावान्-भक्त हृदयके मस्ती भरे अनुभवोंके आलेखनका रसास्वाद वाकयी कल्याणमयी है ।

निष्कर्ष :— बीसवीं शतीके शासनप्रभावक, प्रवचनप्रभावक, युगप्रभावक, समर्पित शासन सेवक एवं सत्यनिष्ठ आध्यात्मिक वड़वीर-समाजनेता, धर्मनेता, युगप्रणेता, प्रकर्ष पुण्य प्रकाशसे उज्ज्वल यशधारी, विश्ववंद्य विरल विभूतिको समर्पित श्री आशिष जैनकी श्रद्धांजलिका अंश अत्र उद्धृत है-**"यदि स्वयं वीणावादिनी मां शारदा आपकी अनूठी शासनसेवाकी श्लाघा हेतु प्रशंसाओंके पर्वत रच दें या उपमाओंके सागर सुखा दें तो भी अपने भक्ति पूरित मनको तृप्त नहीं कर पायेगी । हंसते हंसते कष्टोंका आलिंगन करनेवाले अगाध आत्म शक्ति सम्पन्न आचार्यदेवके जीवन वैभवकी यह झलक सिंधुमें बिंदुसे भी न्यून है।"**[८]

इससे अधिक कोई अन्य व्यक्ति क्या कह सकता है ! मैंभी इन्हीं मनोवृत्तियुक्त अनुभूत भावनाओंको प्रस्तुत करते हुए इस शोध प्रबन्धको सम्पन्न करुंगी-यथा-

"स्याद्वाद भंगिभरभासुरमस्य बोधं,
भव्यांमिमान समरालसहस्त्र पत्रम् ।
शक्तो भवामि ननु वर्णयितुं कथं यत्,
को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्याम्" ॥[९]

"जय श्रीवीतराग, जय श्रीगुरुदेव"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - १

---: जैन धर्मके पारिभाषिक शब्द :---

१ **अठारह दोष**--- "अन्तरायदान लाभवीर्य भोगोपभोगाः । हासो रत्यारतिभीतिर्जुगुप्सा शोक एवच ।।
(कामोमिथ्यात्वमज्ञानं निद्रा) चाविरतिस्तथा । रागोद्वेषश्चनो दोषास्तेषामष्टा–दशाप्यमी ।।"
(अभिधान चिंतामणी का-१ श्लो.७२-७३) इन अठारह दोषोंके संपूर्ण क्षय होने पर ही सर्वज्ञता प्राप्त होती है ।

२ **अनशन**--- सर्वथा सर्व प्रकारके आहार–पानीका त्याग

३ **अशाता वेदनीयकर्म**--- जिस कर्मके उदयसे जीवको दुःखका अनुभव होता है ।

४ **अष्ट प्रवचन माता**--- पांच समिति (इर्या, भाषा, एषणा, आदान भंड-मत्त-निक्षेपणा, पारिष्ठापनिका) और तीन गुप्ति (मन-वचन-काया)– इन आठका पालन करना जैन साधुके लिए अनिवार्य है । जैसे माता बालककी पुष्टि करती है वैसे ही ये आठ साधुके आत्माकी पुष्टिमें सहायक होनेसे उन्हें माताके रूपमें स्वीकारा गया है ।

५ **अष्ट प्रातिहार्य + चार मूलातिशय = अरिहंतके बारह गुण**--- "प्रतिहारा इन्द्र वचनानुसारिणो दैवास्तैः कृतानि प्रातिहार्याणि"- इन्द्रके आदेशका अनुसरण करनेवाले देव 'प्रतिहार'– उनका भक्तिरूप कृत्य-विशेष, प्रातिहार्य कहा जाता है; अथवा अरिहंतके निरंतर सहचारी होनेसे प्रातिहार्य– "किंकिल्लि, कुसुमवृट्ठि, देवध्भुणि, चामरासणाइं च । भावलय भेरिं छतं जयति जिणपाड़ि हेराइं ।।"(अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, भद्रासन, भामंड़ल, देव-दुंदुभिनाद, तीन छत्र,– आठ, मूलातिशय–अपायापगम, ज्ञानातिशय, वचनातिशय, पूजातिशय चार–ये बाहर गुण

६ **आर्यक्षेत्र**--- जिस क्षेत्रमें धर्माराधना और आत्माके सर्व कर्मक्षयकी साधनाके साधन प्राप्य हो सकते हैं । जीव मोक्ष प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करके मोक्षकी उपलब्धि कर सकता है ।

७ **एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय**--- सर्व जीवोंको इन पांच भेदोंमें विभक्त किये हैं– एकेन्द्रिय पांच प्रकारके (पृथ्वी-अप्-तेउ-वायु- वनस्पति)– केवल स्पर्शेन्द्रियवाले होते हैं । द्वीन्द्रियको चमड़ी और जिव्हा–दो इन्द्रिय; तेइन्द्रियको-उनसे नाक (इन्द्रिय) अधिक; चौरिन्द्रियको आंख (इन्द्रिय) अधिकः (इन तीनोंको विकलेन्द्रिय भी कहते हैं ।) पांचों इन्द्रिय वाले चारों गतिके जीव–

८ **कल्पवृक्ष**--- श्री रत्नशेखर सूरि कृत 'लघुक्षेत्र समास' प्रकरणाधारित (श्लोक-९६-९७) दस होते हैं । जो युगलिक मनुष्योंकी सर्व इच्छा-पूर्ति करते हैं । ये देवाधिष्ठित होते हैं ।(१) मत्तंग (मद्यंग)–मीठा पेय दाता; (२) भृत्तांग–पात्र-बर्तनादि दाता (३) तंतु-पट-वायु–तीन प्रकारके वाजिंत्र युक्त बत्तीस प्रकारके नाटक दिखलानेवाले (४) दीप-शिखा और (५) ज्योतिरंग–दोनों प्रकाश दाता; (६) चित्रांग–पंचवर्णी सर्व प्रकारके पुष्पदाता (७) चित्ररस–विभिन्न षड्रस युक्त इष्टान्न-मिष्टान्न दाता (८) मण्यंग–इच्छित अलंकार दाता (९) गेहाकार–गांधर्व नगर जैसे सुंदर गृह दाता (१०) अनग्न–अभिप्सित आसन शय्यादि दाता–इनका अस्तित्व अवसर्पिणीके प्रथम तीन और उत्सर्पिणीके अंतिम तीन आरेमें होता है ।

९ **कार्योत्सर्ग**--- कर्मनिर्जरा–आत्मा या परमात्मा स्वरूप चिंतनादिके लिए व्यक्तिकी स्थिर मुद्रा ।

१० **कालचक्र**--- अनादि-अनंत संसारको समझने-समझानेका माध्यम; अनागतको वर्तमान और वर्तमानको अतीत बनानेके स्वभाववाला जो काल–जिसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म (जिसको सर्वज्ञ भगवंत भी केवल ज्ञान दृष्टिमें अविभाज्य रूपमें देखते हैं) एकम 'समय' है । असंख्य समय = १ आवलिका; १६७७७२१६ आवलिका = १ अंतर्मुहूर्त; ३० अंतर्मुहूर्त = १ दिन, ३६५ दिन = १ वर्ष, ८४ लाख वर्ष = १ पूर्वांग, ८४ लाख पूर्वांग = १ पूर्व, असंख्य वर्ष= १ पल्योपम, १० कोडाकोडी पल्योपम = १ सागरोपम, १० कोडाकोडी सागरोपम = १ उत्सर्पिणी अथवा १ अवसर्पिणी काल-वे दोनों मिलकर १ कालचक्र (इस कालचक्रके १२ आरोंका स्वरूप चित्रमें देखें । पल्योपम और सागरोपमका विशेष स्वरूप बृहत् संग्रहणी, चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करंडकादि जैन शास्त्रोंसे ज्ञातव्य है।)

११ **कालधर्म**--- जीवकी मृत्यु–एक जन्मसे दूसरे जन्मकी प्राप्ति (विशेष रूपमें साधु-साध्वीके मृत्युके लिए इसका प्रयोग किया जाता है ।)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२ **केवलदर्शन---१३. केवलज्ञान---** दर्शनावरणीय और ज्ञानावरणीय कर्मोंके संपूर्ण क्षय होने पर, उपलक्षणसे चार घातीकर्मक्षय होने पर लोकालोकके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाला, त्रिकालवर्ती–त्रिकालाबाधित, सर्व द्रव्योंको-सर्व पर्यायोंको एक समयमें सर्वांग-संपूर्ण रूप से ज्ञात करानेवाला, अक्रमिक, देश-कालकी परिच्छिन्नता रहित, मन-वचन-काय योगसे अगम्य-अगोचर, पदार्थको आत्मज्ञानसे स्वयं प्रतिबिम्बित करनेवाला, परम ज्योति स्वरूप, सादि-अनंत स्थितिवाला, नित्य, प्रामाणिक ज्ञानको ही केवलज्ञान कहते हैं । उसी रूपमें होनेवाले दर्शनको केवल दर्शन कहते हैं।

१४ **क्षपकश्रेणि---** सर्व घाती कर्मक्षय हेतु, आत्माकी विशिष्ट भाव दशा-ध्यान दशा-अप्रमत्त भाव की केवल ज्ञान प्राप्ति पर्यंत श्रेणि

१५ **गणधर---** एक शिष्य समुदाय जिस गुरुके पास ज्ञान-शिक्षा-संस्कारादि प्राप्त करता है उस समुदायको धारण करनेवाला व्यक्ति-गुरु-गणधर कहलाता है । अथवा तीर्थंकरके प्रमुख (त्रिपदीसे द्वादशांगीके रचयिता) शिष्य गणधर कहलाते हैं।

१६ **चार अघाती---१७. चार घाती कर्म**--जो आत्माके मूल गुणोंका घात नहीं करते हैं, लेकिन केवल-ज्ञान प्राप्तिके पश्चात् भी परिनिर्वाण-मोक्ष तक आत्माका साथ निभाते हैं।वे चार हैं–वेदनीय कर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, आयुष्यकर्म। जो आत्माके चार मूल गुण-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाधता–के आवरक या घात करनेवाले चार घातीकर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय) हैं । जो केवलज्ञान-केवलदर्शनकी उपलब्धि नहीं होने देते । (विशेष स्वरूप कर्मग्रन्थ, कम्मपयड़ी, पंचसंग्रह आदिसे जान सकते हैं ।)

१८ **चार अनुयोग**---सकल जैन श्रुतज्ञान (आगमज्ञान) चार अनुयोगमें समाहित किया गया है । पूर्वकालमें एक ही सूत्रमें स्थित चारों अनुयोगोंको उन्नीसवें युगप्रधान-साडेनव पूर्वधर श्री आर्यरक्षित सूरिजीम. द्वारा भावि विद्वद्वर्ग एवं अपने शिष्य श्री विंध्यमुनिकी अध्ययन सरलताके कारण भिन्न भिन्न चार अनुयोगोंमें विभाजित किया गया । यहाँ अनुयोग अर्थात् व्याख्यान अथवा शास्त्र-सिद्धान्त बोधके लिए अनुकूल ज्ञान व्यापार । द्रव्यानुयोगः– जिसमें विश्वके-चौदह राजलोकके-द्रव्य (पदार्थों) और पर्यायोंका संपूर्ण स्वरूप निहित है; चरणकरणानुयोग :– जिसमें साधु-साध्वी, उपलक्षणसे श्रावक-श्राविका (गृहस्थ)के आत्म स्वरूप प्राप्तिके लिए आचरण योग्य क्रियायें, रत्नत्रयीरूप-दर्शन,ज्ञान-चारित्रके स्वरूपादिका निरूपण है; गणितानुयोग :– जिसमें ज्योतिष्क, भूस्तर शास्त्र, खगोल, विज्ञान, अंकादि गाणितिक विषयोंका आलेखन हैं; धर्मकथानुयोग :– जिसमें विविध सैद्धान्तिक विषयोंको-समस्याओंको-धर्माचरणोंको कथानकों द्वारा सरल स्वरूपसे समझाया जाता है ।

१९. **चौंतीस अतिशय---** श्री अरिहंतके जीवको सर्वोत्कृष्ट पुण्यके कारण ऐसे विशिष्ट गुणोंकी संप्राप्ति होती है, जो सुख अन्य कोई भी जीवोंको उपलब्ध नहीं होता है । जिनमें चार अतिशय जन्मसे ही प्राप्त होते हैं; चार घातीकर्म क्षयसे ग्यारह अतिशय–प्राकृतिक अनुकूलतायें-प्रसन्नतायें आदिके रूपमें और उन्नीस अतिशय–देवकृत होते हैं (विशेष स्वरूप त्रिषष्ठी शलाका पुरुषादि ग्रन्थोंसे ज्ञातव्य है ।)

२०. **चौदह महास्वप्न---** बहतर प्रकारके स्वप्नमेंसे प्रमुख चौदह स्वप्नोंको महास्वप्न कहा जाता है । स्वप्नशास्त्रानुसार चक्रवर्ती अथवा तीर्थंकरोंका माताकी कुक्षिमें अवतरण होता है, तब अर्धरात्रिमें तीर्थंकरोंकी माता स्पष्टरूपसे और चक्रवर्तीकी माता धूंधले स्वप्न निरख कर जागृत होती है । वे चौदह स्वप्न हैं– गजवर, वृषभ, केसरीसिंह, लक्ष्मीदेवी, पुष्पमालायुगल, चंद्र, सूर्य, ध्वजा, पूर्णकलश, पद्मसरोवर, रत्नाकर, देवविमान, रत्नराशि, निर्धूम अग्नि (विशेष स्वरूपके लिए देखिये 'कल्पसूत्र'आदि जैन ग्रन्थ)

२१. **छद्मस्थ---** प्रत्येक जीवकी केवलज्ञान प्राप्तिकी पूर्वावस्था-जब जीवमें अपूर्णता-अज्ञानता होती है ।

२२. **जंबूद्वीप---** चौदह राजलोकमें तिर्च्छा लोककी मध्यका प्रथम द्वीप (विशेष परिचय चित्रमें–)

२३. **जाति स्मरण ज्ञान---** व्यक्तिको होनेवाला ऐसा ज्ञान, जिसके माध्यमसे पूर्व जन्मोंकी प्रायःनव भव पर्यंतकी स्मृति हों-ज्ञान हों

२४. **जीवयोनि---** 'योनि'की शास्त्रीय परिभाषा है–कर्माधीन आत्मा तैजस-कार्मण शरीर नामक नामकर्मके कारण उन कर्मफल भोगनेके लिए आत्मा द्वारा औदारिक वैक्रियादि शरीर नामक नामकर्म योग्य पुद्गल स्कन्धोंके समुदायका जहाँ मिश्रण होता है (जिसे जीवका जन्म कहते हैं) उस मिश्रण-स्थानको योनि कहा जाता है । योनि ८४ लक्ष हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. **ढ़ाईद्वीप**--- चौदह राजलोकमें तिर्च्छालोकके मध्यके जंबूद्वीपकी चारों ओर एक समुद्र-एक द्वीप-इस प्रकार असंख्य द्वीप-समुद्र हैं । उनमें प्रथमके ढ़ाई द्वीप चित्र परिचयसे ज्ञातव्य हैं । इसे ही मनुष्यलोक भी कहते हैं ।

२६. **तीर्थंकर नामकर्म**--- कर्मके आठभेदमें षष्ठम-नामकर्मके उपभेद–दस प्रत्येक प्रकृतिमें समाहित है ।

२७. **त्रिकरण-त्रियोग---(त्रिविध-त्रिविध)**--- त्रियोग (मन-वचन-काया)से 'करण-करावण-अनुमोदन'रूप त्रिकरण (करना, करवाना, अनुमोदनारूप) त्रिविध त्रिविध स्वरूपसे कोई भी कार्य करना ।

२८. **त्रिपदी**--- 'उप्पनेइवा', 'विगमेइवा', 'धुवेइवा'– तीर्थंकर भ. केवलज्ञान पश्चात् प्रथम देशना (प्रवचन) देते है, जिससे प्रतिबोधित गणधर योग्य प्रथम शिष्य द्वादशांगीकी रचना इस तीन पदाधारित करते हैं ।

२९. **दस अच्छेरा (आश्चर्यकारी प्रसंग)**--- सामान्यतया परिपाटीसे भिन्न विशिष्ट संयोगमें विशिष्ट कार्य-घटनायें असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल बाद घटित होती है । इस अवसर्पिणि कालमें ऐसे दस प्रसंगोंको जैन इतिहासज्ञोंने आलेखन किया है– (१) तीर्थंकर (भ.महावीरजी)का नीच कुलमें अवतरण (गर्भ संक्रमण) (२) प्रथम देशना निष्फल (३) केवलज्ञान पश्चात् गोशालाका उपसर्ग (४) सूर्य-चंद्रका मूल रूपमें, मूल विमान सहित भगवंतको वंदनार्थ आना। (५) चमरेन्द्रका उत्पात (ये पाँच आश्चर्यकारी प्रसंग भ.महावीरके समयमें घटित हुए।) (६) तीर्थंकर(श्री मल्लीनाथभ.) का स्त्रीवेद सहित जन्म (७) श्री नेमिनाथ भ.के समयमें भरतक्षेत्रका वासुदेव कृष्ण और धातकीखंड़के वासुदेवके शंखनादोंका मिलन-अपरकंकामें (८) श्री शीतलनाथ भ.के समयमें युगलीकका व्यसनी बनकर नरकगमन और उनसे प्रवर्तित हरिवंश (९) भ.सुविधिनाथके पश्चात् असंयतियोंकी पूजाका प्रारम्भ (१०) पांचसौ धनुषकी अवगाहना (ऊँचाई) वाले एक समयमें (एकसाथ) १०८ का अष्टापद पर्वत पर अनशन करके मोक्ष गमन (श्री ऋषभदेव+ उनके ९९ पुत्र+ भरतके आठ पुत्र = १०८)

३०. **द्वादशांगी**--- 'अंग' अर्थात् अर्थ रूपसे तीर्थंकर भ.द्वारा प्ररूपित विस्तृत देशनाको श्री गणधर भ.द्वारा सूत्ररूपमें गुंफित करना अथवा तीर्थंकर द्वारा प्रदत्त 'त्रिपदी'का विस्तार-बारह सूत्र अर्थात् द्वादश अंगोंका समूह वह द्वादशांगी-यथा- आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति) ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशा, अंतकृत दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवादसूत्र–

३१. **धर्मध्यान**--- शुभध्यान कहलाता है ।

३२. **धर्मास्तिकायादि चार**--- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय–ये चार अजीव द्रव्यकी संज्ञायें(नाम) हैं । जिनके विभिन्न गुण (स्वभाव) होते हैं यथा– धर्मास्तिकाय चलनेमें सहायक अधर्मास्तिकाय स्थिर रहनेमें सहायक, आकाशास्तिकाय अवकाश (स्थान) देता है और पुद्गलास्तिकायके सड़न-पड़न-विध्वंसन्-पारिणामिक स्वरूपके कारण संसारकी विचित्रतायें भासित होती हैं । (इनका विशेष स्वरूप 'नवतत्त्वादि' जैन ग्रन्थोंसे ज्ञातव्य है)

३३. **नव लोकांतिक देव**--- ये देव वैमानिक प्रकारके होते हैं, जिनके नव विमान पंचम् (ब्रह्म देवलोक)के पार्श्वमें स्थित हैं । ये सभी देव एकावतारी (देव गतिमें से च्यवकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष प्राप्त करनेवाले) होते हैं । श्री तीर्थंकर भ.के दीक्षा अवसरके एक वर्ष पूर्व ये देव स्वयंके आचार अनुसार कृष्णराजिके मध्य श्रीतीर्थंकर भ.को तीर्थ प्रवर्तनके लिए (अर्थात् दीक्षा लेकर कैवल्य प्राप्त करके तीर्थ स्थापना हेतु) विनती करते हैं ।

३४. **निकाचित**--- अर्थात् स्थिर । कर्म निकाचित करना अर्थात् कर्मकी आत्माके साथ ऐसी स्थिर स्थिति, जिसे भुगतनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं । जिसकी किसी भी संयोगके सहयोगसे आत्मासे मुक्ति नहीं ।

३५. **निर्जरा**--- निर्जरा अर्थात् झर जाना–आत्मासे कर्मका विघटन होना

३६. **पंचतीर्थी प्रतिमा**--- ऐसी प्रतिमा विशिष्ट पूजा-अनुष्ठानोंमें उपयोगी होती है । इसमें मध्यमें मूलनायक स्वरूप एक भगवंतकी प्रतिमा और उनकी दोनों पार्श्वोंमें उपर पद्मासन युक्त और नीचे खड़ी (काउसग्ग मुद्रा) प्रतिमायें होती हैं । अतः पांच भगवंतकी एक ही पीठिका पर प्रतिमायें होनेसे पंचतीर्थी कहलाती हैं ।

३७. **पंच परमेष्ठि**--- परम इष्ट फल प्रदाता, वही परमेष्ठी–ये पांच हैं– अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ।

३८. **पंच महाव्रत**--- जैन साधु (सर्व विरतिधर)को ये व्रत पालन करनेका विधान श्री अरिहंत भ.द्वारा होता है । अन्य तीर्थंकरोंके द्वारा चार व्रत और भ.महावीर द्वारा पांच व्रतका आदेश हुआ है– सर्वथा प्राणातिपात विरमण, सर्वथा मृषावाद विरमण, सर्वथा अदत्तादान विरमण, सर्वथा मैथुन विरमण, सर्वथा परिग्रह विरमण ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. **परिषह-उपसर्ग**--- प्रतिदिन जीवन व्यवहारमें प्रेाकृतिक या अन्य जीवों द्वारा आनेवाले अवरोध या प्रतिकूलतायें, कर्म निर्जरामें सहायक रूप मानकर या उस उद्देश्यसे स्वेच्छासे सहन करें वह परिषह और विशिष्ट आराधना अथवा अवसरों पर अन्य जीवों द्वारा होनेवाले अवरोध-प्रतिकूलतायें उपसर्ग कहलाती हैं । परिषह बाईस हैं और उपसर्ग तीन प्रकारके होते हैं–देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत–

४०. **पल्योपम**--- विशिष्ट काल परिमाण–असंख्यात वर्ष व्यतीत होने पर एक पल्योपम होता है ।

४१. **पापानुबंधी**--- जिस कर्मके उदयकालमें जीव पापकर्मके बंध-अनुबंध करें वह पापानुबंधी पाप(या पुण्य) कहा जाता है ।

४२. **पुण्यानुबंधी**--- जिस कर्मके उदयकालमें जीव पुण्यकर्मका बंध-अनुबंध करें उसे पुण्यानुबंधी पुण्य या (पाप) कहते हैं ।

४३. **पूर्व वर्ष**--- ३६५ दिन = १ वर्ष; ७०५६००० कोड़वर्ष = १ पूर्व वर्ष (८४ लाख वर्ष x ८४ लाख वर्ष = १ पूर्वांग, ८४ लक्ष पूर्वांग = १ पूर्व)

४४. **प्रातिहार्य**--- (देखिए अष्ट प्रातिहार्य)

४५. **बारह पर्षदा**--- श्री अरिहंत भगवंत जिस सभाके समक्ष (जो उनके निकट प्रथम प्राकारमें बैठते हैं) देशना देते हैं, वह पर्षदा कहलाती है; और उस देशनाको श्रवणकर्ता-श्रोता-बारह प्रकारके होते हैं– वैमानिक, ज्योतिष्क, भुवनपति, व्यंतर–ये चार प्रकारके देव; उन्हींकी चार प्रकारकी देवियाँ और साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका–चार प्रकारके मनुष्य । (तिर्यंच भी देशना श्रवण हेतु आते हैं, लेकिन उनका स्थान पर्षदामें नहीं, द्वितीय प्राकारमें होता है । पर्षदा प्रथम प्राकारमें ही बैठती है ।)

४६. **बीस स्थानक**--- इस तपके तपस्वी उत्कृष्ट भावाराधना द्वारा तीर्थंकर नामकर्म निकाचित कर सकते हैं; जिनके नाम और गुण हैं– अरिहंत-१२, सिद्ध-८/३१, प्रवचन-२७, आचार्य-३६, स्थविर-१०, उपाध्याय-२५, साधुपद-२७, ज्ञानपद-५१, दर्शन-६७, विनय-५२, चारित्र-७०, ब्रह्मचर्य-१८, क्रिया-२५, तप-१२, गौतम-११, जिनपद-२०, संयम-१७, अभिनवज्ञान-श्रुत-२०, तीर्थपद-३८ (भ.महावीरजीने ४०० मासक्षमण द्वारा इसकी आराधना की थी) .

४७. **भव्य-अभव्य जीव**--- जो निगोदकी अव्यवहार राशिसे निकलकर व्यवहार राशिमें आते हैं, यथावसर धर्म पुरुषार्थ करके, संपूर्ण कर्म निर्जरा होने पर मोक्ष प्राप्त करते हैं उसे भव्यजीव कहते हैं । जिन्हें अवसर मिलने पर भी मोक्ष पुरुषार्थका मन ही नहीं होता है; उसे अभव्य जीव कहते हैं ।

४८. **मति-श्रुत-अवधि**-- ज्ञानके पांच भेदमेंसे ये प्रथम तीन भेद हैं– मति और श्रुत परोक्ष (किसी साधन द्वारा और इन्द्रिय एवं मनके सहयोगसे प्राप्त होनेवाला) ज्ञान है और अवधि प्रत्यक्ष ज्ञान है-जो आत्माको स्वयं होता है ।

४९. **मेतार्य मुनि**--- गौचरी (भिक्षा)के लिए गए मेतार्य मुनिने क्रौंच पक्षीकी रक्षाके लिए स्वर्णकारकी पृच्छा पर मौन धारण किया और आमरणांत उपसर्ग समभावसे सहते हुए केवलज्ञान उपलब्ध करके मोक्ष प्राप्ति की ।

५०. **मोक्ष**--- सर्व कर्मोंका आत्मासे विघटन अर्थात् जीवकी सर्व कर्मोंसे मुक्ति; जिसके बाद आत्मा सिद्धशिला पर अनंतकालके लिए, शाश्वत भावसे स्थिर होती है । तत्पश्चात् संसारमें आत्माका पुनरागमन नहीं होता है ।

५१. **मौन एकादशी**--- मृगशिर शुक्ल एकादशीका दिन । जैन पर्वोमें उत्तम आराधनाका यह पर्व है । इस दिन मनुष्य क्षेत्रके (भरत-ऐरावतकेदस क्षेत्रके) ९० जिनेश्वरोंके १५० कल्याणकोंकी मौन पूर्वक-पौषध-व्रत सहित आराधना की जाती है ।

५२. **युगलिक प्रथा**--- जिसमें मनुष्य या तिर्यंच-सभी नर-मादाके युगल रूपमें एक साथ जन्म लेते हैं और एक साथ ही मरते हैं । उनकी जीवन व्यवहारकी प्रत्येक आवश्यकता देवाधिष्ठित कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं । उनकी आयु और अवगाहना अत्यंत दीर्घ होते हैं । वे भद्रिक परिणामी होते हैं अतः मर कर देवलोकमें ही जाते हैं ।

५३. **योगोद्वहन**--- जैन धर्मके शास्त्रोंके अध्ययनकी योग्यता प्राप्त करने हेतु साधु या साध्वी द्वारा तद्तद् शास्त्र या सूत्रानुसार आचरणीय विशिष्ट तप सहित अनुष्ठान-विधि जो गीतार्थ या पदवीधर साधुकी निश्रामें होता है ।

५४. **रत्नप्रभा**--- जैन भूगोलानुसार अधोलोकमें सात नरक हैं जिनमें प्रथम नरक रत्नप्रभा है । उसकी जमीन रत्न जैसे चमकीले पत्थरोंकी बनी हुई होनेसे उसे रत्नप्रभा पृथ्वी कहते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५५. **वाणीके पैंतीस गुण**---तीर्थंकर भगवंत केवलज्ञान पश्चात् देशणा फरमाते हैं उस वाणीमें पैंतीसगुण होते हैं- यथा- सुसंस्कृत, उदात्त, अग्राम्यत्वम्, गंभीर, प्रतिनाद विधायिता, दाक्षिण्यता युक्त, उपनीत रागत्वम्, महार्थता, पूर्वापर विरोध रहित, शिष्ट, निराशंसय, निराकृत इन्योत्तरत्वम्, हृदयंगम्, परस्पर पद-वाक्यादिकी सापेक्षता युक्त, देशकालोचित, तत्त्वनिष्ठ, असम्बद्ध या अतिविस्तार रहित, आत्मोत्कर्ष या परनिंदा वर्जित, आभिजात्य, अति स्निग्ध-मधुर, प्रशस्य, मर्मवेधी, उदार, धर्मार्थ प्रतिबद्ध, कारक-काल-लिंगादिके विपर्यय रहित, विभ्रमादि वियुक्त, जिज्ञासाजनक, अद्‌भूत, अति विलम्ब रहित, विभिन्न विषयोंका निरूपण करनेवाली, वचनान्तरकी अपेक्षासे विशेषता युक्त, सत्त्व प्रधान, वर्ण-पद-वाक्य संयुक्त, अव्यवच्छिन्न प्रवाह युक्त (विविक्षार्थकी सिद्धि करवानेवाली), खेद या थकावट रहित

५६. **विकलेन्द्रिय**--- दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय–अर्थात् संपूर्ण पंचेन्द्रिय रहित जीव ।

५७. **वैमानिक आदि चार**--- स्वर्गमें जो विमानमें रहें वे देव वैमानिक, तिर्च्छालोकके मेरु पर्वतके चारों ओर प्रदक्षिणा करनेवाले सुर्य-चंद्रादि ज्योतिष्क, भुवनपति और व्यंतर–ये चार प्रकारके देव होते हैं ।

५८. **शक्रस्तव**--- तीर्थंकर भगवंतोंके कल्याणक अवसरमें सौधर्मेन्द्र द्वारा की जाती उनकी स्तुति-पाठ ।

५९. **शुक्लध्यान**--- ध्यान चतुष्कका ये अंतिम ध्यान है जिसके चार चरण हैं । केवल ज्ञानीको प्रथम दो चरणवाला शुक्ल ध्यान होता है और मोक्षप्राप्तिके चरम अंतर्मुहूर्तमें इस ध्यानके तृतीय और चतुर्थपादमें आत्माका रमण होता है ।

६०. **समवसरण**--- श्री तीर्थंकर भगवंतके केवल ज्ञान पश्चात् चारों प्रकारके देवों द्वारा भगवंतके लिए देशनाभूमि तैयार की जाती है जिसमें प्रथम रजतका, द्वितीय स्वर्णका, तृतीय स्वर्ण रत्नोंका-तीन प्राकार देवकृत होते हैं; उस पर देव रत्नमय सिंहासन और पादपीठकी रचना करते हैं । जिसके चारों ओर ऊपर चढनेके लिए बीस-बीस हज़ार सीढ़ीयाँ होती है। जो प्रायः एक योजनके विस्तारवाला वृत्त या चौकुन होता है ।

६१. **सम्यक्त्व**--- मोक्ष महलका प्रथम सोपान–केवलज्ञान प्राप्ति हेतु सम्यक्त्व प्राप्तिको नीवं माना गया है । सम्यक्त्वका प्रकटीकरण अर्थात् देव-गुरु-धर्म-तत्त्वत्रय पर अखंड़ आस्था ।

६२. **सर्वज्ञता**--- विश्वके सर्व द्रव्य पर्यायोंको समकाले संपूर्ण रूपसे जानना (केवली भगवंतका गुण है)

६३. **सर्वार्थ सिद्ध**---सर्वोत्कृष्ट भौतिक सुख-समृद्धि भोगनेका उत्तमोत्तम स्थान–अनुत्तर विमान–जहाँ देवोंकी आयु ३३ सागरोपम-प्रत्येक ३३ पक्षके पश्चात सांस लें, तैंतीस हज़ार साल पश्चात् आहारकी इच्छा हों । जहाँ केवल ज्ञान-ध्यानादि शुभप्रवृत्ति ही हों । ये सभी देव एकावतारी होते हैं ।

६४. **सागरोपम**--- दस कोडाकोडी पल्योपम = १ सागरोपम (पल्योपमका स्वरूप पूर्वांकित है)

६५. **सिद्धिगति**--- इसे पंचमगति भी कहते हैं । जीव आठों कर्मोंसे संपूर्ण मुक्त हो जानेके बाद ऋजुगतिसे (सीधी गतिसे) कमानसे छूटे तीर सदृश एक समयमें सिद्धशिला प्रति गमन करता है उस गतिको सिद्धिगति कहते हैं । मोक्ष प्राप्त करानेवाली गति सिद्धिगति है ।

६६. **सूक्ष्म-बादर**--- सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले, चौदह राजलोक व्यापी, केवलज्ञान रूपी चक्षुको ही गोचर या दृश्यमान, लेकिन अनंत राशि (संख्या)में इकट्ठे होने पर भी चर्मचक्षुके लिए अदृश्य-अगोचर जीव–जिनका छेदन-भेदन-ज्वलन न हो सके वे सूक्ष्म जीव कहलाते हैं । बादर नामकर्मके उदयवाले चौदह राजलोक व्यापी, चर्मचक्षुको भी गोचर-दृश्यमान, प्रत्येक या साधारण रूपमें छेदन-भेदन-ज्वलनके गुण–स्वभाववाले एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवोंको बादर कहते हैं ।

६७. **स्कंध**--- असंख्य परमाणुसे बने किसी एक पदार्थका संपूर्ण स्वरूप स्कंध कहलाता है । उदा. एक पुस्तक-एक स्कंध स्वरूप है ।

६८. **देश**--- स्कंधका कोई एक खंड-टूकडा-विभाग–जो स्कंध से संयुक्त है उसे देश कहा जाता है । उदा. पुस्तकका एक पन्ना, जो पुस्तकसे संलग्न है । वही पन्ना अलग हो जाने पर स्वतंत्र स्कंध रूपमें व्यवहृत होता है ।

६९. **प्रदेश**--- स्कंध या देशसे युक्त पदार्थका सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वज्ञके ज्ञानलवसे अविभाज्य अंश प्रदेश कहलाता है । उदा. पुस्तक या पन्नाका एक रज-प्रमाण सूक्ष्मांश

७०. **परमाणु**--- पदार्थसे (स्कंध या देश से) संयुक्त, प्रदेश कहलानेवाला निर्विभाज्य सूक्ष्मांश जब पदार्थसे विमुक्त होता है, तब वही सूक्ष्मांश परमाणु संज्ञासे पहचाना जाता है ।

७१. **स्यात्**--- स्याद्वादका प्राण 'स्यात्' शब्द है, जिसका अर्थ है कथंचित्, आंशिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International

For Private & Personal Use Only

परिशिष्ट-२

-: आधार ग्रन्थ (आचार्य प्रवरश्रीके ग्रन्थ)की सूची :-

क्रम	पुस्तकका नाम	संपादक / अनुवादक	रचनास्थान	रचना वर्ष	प्रकाशन वर्ष	प्रकाशक	संस्करण
१.	अज्ञान तिमिर भास्कर	श्री आत्मानंद जैन सभा-भावनगर	अम्बाला-खंभात	१९३९-१९४२	१९६२	श्री आत्मानंद जैन सभा भावनगर	द्वितीय
२.	ईसाई मत समीक्षा	-	पंजाब	-	१९५६	जैन ज्ञान प्रसारक मंडल, बम्बई	प्रथम
३.	चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-१	भीमसिंह माणेकजी	राधनपुर	१९४४	१९४४	भीमसिंह माणेकजी	प्रथम
४.	चतुर्थ स्तुति निर्णय भाग-२	-	पट्टी	१९४८	१९५२	महेसाणा श्री संघ	प्रथम
५.	चिकागो प्रश्नोत्तर	जसवंतराय जैन	अमृतसर	१९४९	१९६२	जसवंतराव जैन, लाहौर	प्रथम
६.	जैन तत्त्वादर्श	भीमसिंह माणेकजी	गुजरांवाला-होशियारपुर	१९३७-१९३८	-	भीमसिंहजी माणेकजी	द्वितीय
	जैन तत्त्वादर्श (गुजराती)	अनु. वकील मूलचंदजी ना.	-	-	१९५६	श्री आत्मानंद ज्ञान प्रचारक मंडल	प्रथम
	जैन तत्त्वादर्श भाग-१ (पूर्वार्ध)	संपा.श्री आत्मानंद जैन सभा, बम्बई	-	-	२०११	श्री आत्मानंद जैन सभा-भावनगर	पंचम्
	जैन तत्त्वादर्श (खड़ीबोली)	संपा.श्री पुण्यपाल सूरिजी म.	-	-	२०४९	श्री पार्श्वाभ्युदय प्रकाशन	सप्तम्
७.	जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर रत्नावली	गिरधरलाल हीराभाई शेठ	पालनपुर	१९४५	१९६३	श्री आत्मानंद जैन सभा, भावनगर	द्वितीय
८.	जैन धर्मका स्वरूप		-	-	-	-	-
९.	जैन मत वृक्ष (पुस्तकाकार)	संपा. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.	जंडियालागुरु	१९४९	१९५६	श्री आत्मानंद जैन सभा, पंजाब	द्वितीय
	जैन मत वृक्ष (वृक्षाकार)	चित्रण-श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.	सुरत	१९४२	१९४८	श्री आत्मानंद जैन सभा, पंजाब	प्रथम
१०.	तत्त्व निर्णय प्रासाद	संशो. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.	जीरा-गुजरांवाला	१९५१-१९५३	१९५८	अमरचंद पी. परमार	प्रथम
११.	नतत्त्व (संक्षिप्त)						
१२.	प्रश्नोत्तर संग्रह	संक. मुनिश्री भक्तिविजयजी म.सा.	महेसाणा	१९४५	१९७२	श्री आत्म वीर सभा. भावनगर	प्रथम
१३.	बृहत् नवतत्त्व संग्रह	हीरालाल रसिकलाल कापड़िया	बिनौली बड़ौत	१९२४-१९२५	१९८८	हीरालाल र. कापड़िया	प्रथम
१४.	सम्यक्त्व शल्योद्धार	-	अहमदाबाद	१९४१	१९६०	श्री आत्मानंद जैन सभा, लाहौर	तृतीय
१५.	आत्म बावनी (उपदेश बावनी)	श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.	बिनौली	१९२७	१९८८	हीरालाल-२ कापड़िया	द्वितीय
१६.	आत्मानंद चौबीसी (जिन चौबीसी)	-	अंबाला	१९३०	२००८	श्री आत्मानंद जैन सभा, भावनगर	द्वितीय
१७.	आत्म विलास स्तवनावली	(विविध स्तवन-पद-सज्झाय संग्रह)	-	-	१९९३	श्री सुमेमलजी सुराणा	द्वितीय
१८.	आत्म विलास स्तवनावली	(विविध स्तवन-पद-सज्झाय संग्रह)	-	-	१९४५	खीमचंद हीराचंद दलाल	प्रथम
१९.	ध्यान स्वरूप	('बृहत् नवतत्त्व संग्रह' अंतर्गत श्रीजिनभद्र गणि क्षमाश्रमण विरचित 'ध्यान शतक' ग्रन्थाधारित रचना - पृ. १७५ से १८२					
२०.	बारह भावना स्वरुप	('बृहत् नवतत्त्व संग्रह' अंतर्गत रचना - पृ. १६१ से १६४					
२१.	विधि विधान सह पूजा संग्रह	अष्ट प्रकारी पूजा–सं.१९४३–पालीताना; नवपद पूजा–सं.१९४८–पट्टी; बीस स्थानकपूजा सं.१९४०–बीकानेर; सत्रहभेदी पूजा–सं.१९३९–अंबाला; स्नात्रपूजा–सं.१९५० जंड़ियाला	१९५६		श्री हंसविजयजी जैन लाइब्रेरी	प्रथम
२२.	श्री आत्म वल्लभ पूजा संग्रह	गुरु-इन पांच पूजाओंका संग्रह)					

www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-३
सहायक (संदर्भ) ग्रन्थ एवं लेख सूचि

संस्कृत ग्रन्थ :-

१. अभिधान चिंतामणी–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.–संपा. विजय कस्तूर सूरिजी म.
२. अमर कोश–प्रका. धर्मचंद केवलचंद खंडोल
३. आत्मानंद द्वा सप्तति–स्वामी योगजीवानंद सरस्वती–टीका.पं.बैजनाथ शर्मा
४. आत्माराम पंचरंगम् काव्यम्–श्री नित्यानंद शास्त्री
५. काव्य प्रकाश–मम्मट–डॉ.सत्यव्रतसिंह
६. काव्यादर्श–आचार्य दंडी–अनु.व्रजरत्नदास
७. काव्यालंकार–आचर्य भामह–भाष्यकार–देवेन्द्रनाथ शर्मा
८. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र–श्री उमास्वातिजी म.सा.
९. त्रिषष्ठी शलाका पुरुष–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.
१०. द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका–श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा.
११. ध्वन्यालोक लोचन–श्री आनन्दवर्धनाचार्यजी.
१२. नृतत्त्व निगम (लोकतत्त्व निर्णय) श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.
१३. पंचवस्तु–श्री हरिभद्र सुरि म.सा.–विवे. श्री सागरानंद सूरि म.सा.
१४. पंचसूत्र–श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–विवे. श्रीमद्विजय भुवनभानु सूरि
१५. परिशिष्ट पर्व–पूर्वाचार्य (अज्ञात)
१६. प्रभावक चरित्र–श्री प्रभाचंद्र सूरिजी म.सा.
१७. बृहत् शान्ति स्तोत्र–शिवादेवी (श्री नेमिनाथ भ.की माता)
१८. श्री भक्तामर स्तोत्र–श्रीमानतुंगसूरिजीम.
१९. महादेव वीतराग स्तोत्र–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.
२०. योग विंशिका–उपा.श्री यशोविजयजी म.सा. अनु. धीरजलाल महेता
२१. लघुजातक–(ज्योतिष कल्पतरु)
२२. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम्–पं.हीरालाल वि.हंसराज
२३. श्री विजयानंद सुरीश्वर स्वतनम्–श्री चतुर विजयजी म.सा.
२४. वेदान्त कल्पद्रुम–महात्मा शीवव्रतलालजी वर्मन्
२५. शब्द चिंतामणी–संपा. सवाइलाल वि. छोटालाल वोरा
२६. शब्दादर्श (महानकोष)–भाग-१ शास्त्री गिरिजाशंकर मयाशंकर महेता.
२७. शब्दादर्श (महानकोष)–भाग-२ शास्त्री गिरिजाशंकर मयाशंकर महेता.
२८. शास्त्र वार्तासमुच्चय–उपा. श्री यशोविजयजी म.सा.
२९. षड्दर्शन समुच्चय–भाग-१ आ. हरिभद्र सुरीश्वरजी म.–भारतीय ज्ञानपीठ
३०. षोड़शक प्रकरण (व्याख्यान संग्रह)–प्रस्तावना–हीरालाल कापड़िया
३१. सकलार्हत् स्तोत्र–श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा.
३२. सन्मति तर्क–श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म. (तत्त्वबोध विधायिनी–श्री अभयदेव सूरिजी प्रणीत)
३३. सर्वार्थ चिंतामणी–(ज्योतिष कल्पतरु)
३४. सिद्धान्त सार (ज्योतिष कल्पतरु)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३५. स्थविरावली–(कल्पसूत्र) श्रुतकेवली श्री भद्रबाहु स्वामीजी.
३६. हरिभद्र सूरि अष्टकानि–श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.–अनु. पं. हीरालाल वी. हंसराज
३७. हरिभद्र सूरि चरियम्–पं. हरगोविंददास शेठ.
३८. मानसागरी ग्रन्थ (ज्योतिष कल्पतरु)

प्राकृत ग्रन्थ :-

१. कुवलयमाला–श्री उद्योतन सूरिजी म.सा.
२. दो प्रतिक्रमण सूत्र–गणधर (पूर्वाचार्य) रचित
३. धनंजय नाममाला–संपा.मुनि श्री हित विजयजी म.सा.
४. नवतत्त्व प्रकरण (आगमिक संग्रह) पूर्वाचार्य विरचित
५. पाइय–लच्छी–नाममाला–महाकवि धनपाल
६. प्राकृत–हिन्दी कोष–संपा. के. आर. चन्द्र
७. लघु क्षेत्र समास–श्री रत्नशेखर सूरि म.सा.–अनु. श्रीमद्विजय धर्म सूरि म.
८. 'वंदित्तु सूत्र'–प्रतिक्रमण सूत्र–गणधर विरचित
९. 'श्रुत स्तव'–दो प्रतिक्रमण सूत्र–गणधर (पूर्वाचार्य) विरचित
१०. संबोध सित्तरी प्रकरण–श्री जयशेखर सूरिजी म.सा.
११. श्री सुपार्श्व नाथ चरित–श्री लक्ष्मणजी गणि.

गुजराती ग्रन्थ एवं लेख :-

१. श्री आत्मारामजीनुं जीवन : सत्यना प्रयोगो–नागकुमार मकाती
२. आत्मारामजी म.नो अमरकाव्यदेह–मोतीचंदजी गी. कापड़िया
३. आनंदघन एक अध्ययन–डॉ. कुमारपाल देसाई
४. आनंदघनजी कृत चौबीसी (सार्थ)–वि. शांतिलाल केशवलाल
५. आनंदघनजी चौबीसी–विवे. मोतीचंद गी. कापड़िया
६. आनंदघनजीनां पदो–विवे. मोतीचंद गी. कापड़िया
७. आनंदघन पद संग्रह–विवे. आ. श्री बुद्धिसागर सूरिजी म.सा.
८. चतुर्विंशति जिन स्तवनावली–उपा.यशोविजयजी म.सा.
९. चिदानंद बहोत्तरी–(सज्जन सन्मित्र)–संपा.दोशी पोपटलाल के.
१०. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०४६ संपा.
११. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०४८ संपा.
१२. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०५० संपा.
१३. जन्मभूमि पंचांग–सं. २०५१ संपा.
१४. जिन गुण भंजरी–संपा.
१५. जिन स्तवन चौबीसी–उपा. यशोविजयजी म.सा.–विवे. दुर्लभदास कालीदास शाह
१६. जैन तत्त्वज्ञान चित्रसंपूट–प्रका. सुसंस्कार निधि प्रकाशन
१७. जैन दर्शननुं पदार्थ विज्ञान–खुबचंदजी केशवलाल पारेख
१८. जैनधर्मनी रूपरेखा–श्रीमद्विजय राजयश सूरि म.सा.
१९. जैनधर्मनो संक्षिप्त इतिहास–मोहनलाल दलीचंद देसाई
२०. जैनाचार्य श्री आत्मानंदजी जन्म शताबदी स्मारक ग्रन्थ–संपा. मोहनलाल दलीचंद देसाई
२१. ज्योतिष कल्पतरु–जोषी सोमेश्वर द्वारकादासजी
२२. तत्त्वज्ञान प्रदीपिका–पं. श्री चंद्रशेखर विजयजी म.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. तत्त्वज्ञान पीठिका–श्रीमद्विजय भुवनभानु सुरीश्वरजी म.
२४. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र–अभिनव टीका–ले.मुनि दीप सागरजी म.
२५. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र–विवे. पं. सुखलालजी संघवी.
२६. तपागच्छ पट्टावली–ले. श्री धर्मसागर जी म.सा.–संपा. श्री कल्याण विजयजी म.
२७. त्रिकालिक आत्मविज्ञान–पनालाल गांधी
२८. त्रिषष्ठी शलाका पुरुष–अनु. जैनधर्म प्रचारक सभा.
२९. दोढसो अने सवासो गाथानां स्तवन–उपा. श्री यशोविजयजी म.
३०. द्रव्य-गुण-पर्यायनो रास–उपा. श्री यशोविजयजी म. विवे. श्री धर्मधुरंधर वि. म.सा.
३१. नय मार्गदर्शन (सात नय स्वरूप)–प्रका. श्री आत्मानंद जैन सभा भावनगर
३२. नवयुग निर्माता–श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरीजी म.सा.
३३. न्यायाम्भोनिधि श्री विजयानंद सूरि–श्री सुशील
३४. परमतेज–भा-१-२–(ललित विस्तरा–ले. श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–ग्रन्थ का विवेचन)
विवे. श्रीमद्विजय भुवनभानु सुरीश्वरजी म.सा.
३५. पर्युषण पर्व सज्झाय–मुनि माणेक विजय जी म.सा.
३६. प्रश्नोत्तर शतविंशिका–श्रीमद्विजय जंबूसूरि म.
३७. भरतेश्वर बाहुबलि भाग-१-२ संपा. मुनि चिदानंद विजयजी म.
३८. मंत्रवादी श्री विजयानंद सूरि–यति श्री बालचंद्राचार्यजी म.सा.
३९. महावीर जैन विद्यालय रजत जयंति महोत्सव स्मारक ग्रन्थ–संपा. मोतीचंद गी. कापड़िया
४०. महावीर स्वामी पंचकल्याणक स्तवन–आ. हीर सुरीश्वरजी म.सा.
४१. महावीर स्वामी पंचकल्याणक स्तवन–कवि श्री रामविजयजी म.
४२. यशोदोहन–प्रस्तावना–श्री यशोदेव सूरि म.सा.
४३. युगवीर आचार्य भा.३ संपा. फूलचंद हरिचंद जोशी.
४४. योगदृष्टि समुच्चय भाग-१–ले.श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–विवे. श्री भुवन भानु सूरि म.सा.
४५. योगदृष्टि समुच्चय भाग-२–ले.श्री हरिभद्र सुरीश्वरजी म.सा.–विवे. श्री भुवन भानु सूरि म.सा.
४६. योगनिष्ठ आ. श्रीमद् बुद्धिसागरजी म.–ले जयभिक्खु
४७. रत्न संचय–संग्राहक, संपादक–मुनि श्री रत्नत्रय विजयजी म.
४८. श्री विजयानंद सूरि और महर्षि दयानंदजी–पृथ्वीराजजी जैन
४९. श्री विजयानंद सूरि स्वर्गारोहण शताब्दी ग्रन्थ–संपा. श्री रमणलाल ची. शाह
५०. वीश विहरमान जिन संक्षिप्त परिचय–श्री हेमचंद्र सूरि म.
५१. शासन प्रभावक श्रमण भगवंतो–संपा. नंदलालजी देवलुकजी
५२. सज्जन सन्मित्र–(स्तवन-सज्झायादि संग्रह)–संपा. दोशी पोपटलाल के.
५३. सज्जन सन्मित्र–(स्तवन-सज्झायादि सर्व संग्रह)–संपा. झवेरी पोपटलाल मास्तर
५४. सत्तावीश भवनां ढालियाँ–मुनि श्री शुभवीर विजयजी म.सा.
५५. समयज्ञ संत–श्री मोहनलाल दीपचंद चोकसी
५६. सम्मेत शीखरजी तीर्थ ढालियाँ–संपादक–श्री पद्मसूरिजी म.सा.
५७. साड़ात्रणसो गाथानुं स्तवन–उपा. श्री यशोविजयजी म.सा.
५८. सिमंधर स्वामी विनती–उपा. श्री यशोविजयजी म.सा.
५९. सुधारस जिन स्तवनावली–(स्तवनादि संग्रह)–संपा.–
६०. सूरि पुरंदर–श्रीमद्विजय भुवनभानु सूरि म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. सौ वर्षनो सिद्धि योग–श्री देवचंद दामजी कुंडलाकरजी
६२. हस्त लिखित डायरी–श्री गौतमकुमार शाह

हिन्दी ग्रन्थ एवं लेख :-

१. अर्हन् मतोद्धारक श्री आत्मारामजी–लक्ष्मण रघुनाथ भीड़े
२. अहिंसा और विश्वशांति–दरबारीलाल जैन 'कोठिया'
३. आत्मबोध–श्रीमद्विजयानंद सूरि वचनामृत–संपा.मुनि श्री नविनचंद्र विजयजीम.
४. आगम युगका जैनदर्शन–पं. दलसुखभाई मालवणिया
५. आत्मारामजी और हिन्दी भाषा–श्री जसवंतराय जैन
६. आनंदघनजी ग्रन्थावली–संपा. महताबचंद खारैड
७. आनंदघनजीका रहस्यवाद–सा. श्री सुदर्शनाश्रीजी म.सा.
८. ऋषि दयानंदजीके पत्र और विज्ञापन संग्रह
९. कवितावली–श्री तुलसीदासजी
१०. कलिकाल कल्पतरु–जवाहरचंद्र पटनी
११. काव्यांग कौमुदी–(कला-२) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
१२. काव्याग कौमुदी (कला-३) श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
१३. काव्यमनीषा-डॉ. भगीरथ मिश्र
१४. काव्यशास्त्र–डॉ. भगीरथ मिश्र
१५. काव्यशास्त्र सहायिका–श्री अभिताभ
१६. गीतावली–श्री तुलसीदासजी
१७. चिदानंद कृत संग्रह (चिदानंद ग्रन्थावली)–संपा. केसरीचंदजी धूपिया
१८. चिदानंद पदावली (सज्जन सन्मित्र)
१९. चिंतामणी-भाग-१–आचार्य श्रीरामचंद्र शुक्ल
२०. चिंतामणी-भाग-२–आचार्य श्रीरामचंद्र शुक्ल
२१. जैनधर्म और अनेकान्तवाद–पं. दरबारीलालजी 'कोठिया'
२२. जैनधर्मके प्रभावक आचार्य–संपा. श्री संघ मित्राश्रीजी म.सा.
२३. जैनधर्मका महत्त्व और उसकी उन्नतिके साधन–ले. मधुरदासजी जैन.
२४. जैन समाजमें शिक्षा और दीक्षाका स्थान–अचलदासजी लक्ष्मीचंदजी
२५. जैनाचार्य श्री आत्मानंदजी जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ–संपा. मोहनलाल दलीचद देसाई
२६. तुलसी : आधुनिक वातायनसे–डॉ. रमेश कुंतल मेघ
२७. तुलसी ग्रन्थावली–
२८. त्रिस्तुस्तिक मत मीमांसा–मुनि श्री कल्याण विजयजी म.
२९. दया छत्तीसी–श्री चिदानंदजी म.सा.
३०. दयानंद कुतर्क तिमिर तरणी–श्री विजय लब्धि सूरिजी म.सा.
३१. धर्मवीर श्री बूटेरायजी महाराज–श्री न्याय विजयजी म.सा.
३२. पंजाबके महान ज्योतिर्धर जैनाचार्य श्री विजयानंद सूरि–पृथ्वीराजजी जैन
३३. परमात्म छत्तीसी–श्री चिदानंदजी म.सा.
३४. पुद्गलगीता–श्री चिदानंदजी म.सा.
३५. भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग-१-प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा–काशी
३६. भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग-२-प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा–काशी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग-३-प्रका. नागरी प्रचारिणी सभा–काशी
३८. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषाकी विकास परम्परा–श्री रामविलास शर्मा
३९. भाषा और समाज–रामविलास शर्मा
४०. मुंहपत्ती विषे चर्चा और श्री बूटेरायजीका जीवन चरित्र–प्रका. कालीदास सांकलचंद
४१. रस मीमांसा–आचार्य रामचंद्र शुक्ल
४२. रामचरितत मानस–श्री तुलसीदासजी
४३. लब्धि प्रश्न–संपा. श्री वारिषेण सुरीश्वरजी म.
४४. श्रीमद्विजयानंद सूरि : जीवन और कार्य–मुनि. श्री नविनचंद् विजयजी म.
४५. श्रीमद्विजयानंद सूरि की स्तुति–प्रका. श्री आत्मानंद जैन सभा–अंबाला
४६. श्री विजयानंद सूरि स्वर्गारोहण शताब्दी ग्रन्थ–सं. मुनि श्री नविनचंद्र वि.म.
४७. सत्यार्थ प्रकाश–महर्षि दयानंद सरस्वती
४८. सत्यार्थ भास्कर–स्वामी विद्यानंद सरस्वती
४९. सद्धर्म संरक्षक–(मुनि श्री बूटेरायजी म.का जीवन चरित्र) पं. हीरालालजी दुग्गड़
५०. सवैया इकतीसा–श्री चिदानंदजी म.सा.
५१. 'सहस्त्रकूट नामावली'–प्रका.–श्री चंपकश्रीजी म., श्री चंद्राननाश्रीजी म.
५२. साहित्यालोचन–श्यामसुंदरदासजी.
५३. स्याद्वाद पर कुछ आक्षेप और उनका परिहार–श्री मोहनलालजी मेहता
५४. स्वरोदय ज्ञान–श्री चिदानंदजी म.सा.
५५. स्वामी नारायण संप्रदाय और मुक्तानंदजी का साहित्य–डॉ. अरुणा शुक्ल
५६. हनुमान बाहुक–तुलसीदासजी
५७. आत्मचरित्र (उर्दू)–लाला बाबूरामजी जैन
५८. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंश भाषाका योगदान–डॉ.नामवरसिंहजी
५९. हिन्दी पर्यायवाची कोश–डॉ.भोलानाथ तिवारी
६०. हिन्दी साहित्यका इतिहास–डॉ. नगेन्द्र
६१. हिन्दी साहित्यका इतिहास–आ. रामचन्द्रजी शुक्ल
६२. हिन्दी साहित्यका उद्‌भव और विकास–

English Books:-

1. An Appreciation-Chandra Gupta Jain
2. Jainism-a Universal Religion-B. M. Javeria
3. My acquaintance with Swami Atmaram---Jwala Sahai Mishra.
4. Shree Atmaramji and his many sided activities by Amarnath Audich
5. Shree Atmaramji and his mission-by Chaitandas
6. Suman Sanchaya---Gyandas Jain
7. The Indian empire---Mr. Huntar-Huntar
8. The man and his message---Baburam Jain
9. The world's Parliament of Religious---Chicago-U.S.A.

आगम वाङ्मय :-

१. श्री आचारांग सूत्र (प्रथम अंग)–गणधर श्री सुधर्मा स्वामीजी
२. श्री आचारांग सूत्र (संक्षिप्त)–संपा.आ.श्रीमद्विजय जनकचंद्र सुरीश्वरजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. श्री आवश्यक निर्युक्ति–श्रीमद् मलयगिरिजी सूरिजी म.
४. श्री उपासक दशांग सूत्र–सप्तम अंग–संपा.डॉ. ए. एफ. रूडॉल्फ हॉर्नल
५. श्री कल्पसूत्र–श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहु स्वामीजी
६. श्री कल्पसूत्र–(बालावबोध) पं. श्री क्षमाविजयजी गणि
७. श्री कल्पसूत्र–श्रीमद्विनय विजयजी म.कृत 'सुबोधिका टीका'
८. श्री कल्पसूत्र–सुबोधिका टीकाका अनुवाद अनु. शाह भीमसिंह माणेकजी
९. श्री कल्पसूत्र–सुबोधिका वृत्ति–संपा. शोभाचंद्रजी भारिल्ल
१०. श्री दस वैकालिक सूत्र–रचयिता–श्री शय्यंभव सूरिजी म.
११. श्री नंदी सूत्र-
१२. श्री प्रज्ञापना सूत्र–आर्य श्यामाचार्य–टीका–टीकाकारःश्रीमद् मलयगिरि सूरिजी म.
१३. श्री भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)–पंचम अंग–गणधर भ. श्री सुधर्मास्वामीजी
१४. श्री भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)–टीका-टीकाकार–श्रीमद् अभयदेव सूरिजी म.
१५. श्री भगवती सूत्र सार संग्रह-भाग-१ ले.श्री विद्या विजयजी म.सा.–विवे.पूर्णानंद सूरिजी म. (कुमारश्रमण)
१६. श्री भगवती सूत्र सार संग्रह-भाग-२ ले.श्री विद्या विजयजी म.सा.–विवे.पूर्णानंद सूरिजी म. (कुमारश्रमण)
१७. श्री समवायांग सूत्र–(चतुर्थअंग)–गणधर भ. श्री सुधर्मा स्वामीजी

पत्रिकायें :-

१. अनुसंधान (वार्षिक) संपा. श्रीमद्विजय शीलचंद्र सूरिजी म., हरिवल्लभ भायाणी
२. पंजाबमें हिन्दीकी प्रगति–काशी नागरी प्रचारिणी सभा–सं.१९४४
३. 'बुद्धिस्टर रिव्यू'–एफ. ओ. शाहरादेर
४. श्री महावीर शासन–(श्री आत्मानंदजी विशेषांक) वर्ष–४४–अंक-५-६
५. श्री महावीर शासन–(श्री आत्मानंदजी विशेषांक) वर्ष–४४–अंक-८-९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-४ पादटिप्पण

पर्व-प्रथम : जैनधर्म एवं भ.महावीरकी परम्परामें श्री आत्मानंदजीम.का स्थान

मंगलाचरण श्लोक - 'श्री भगवती सूत्र' - श्री अभयदेव सूरि म. कृत टीका

१. लब्धि प्रश्न - संपादक श्री वारिषेण सूरिं म.सा.पृ ११.
२. 'शब्द चिंतामणी' - संपादक श्री सवाइलाल वि. छोटालाल वोरा पृ.१३२९
३. अभिधान चिंतामणी - ले. श्री हेमचन्द्राचार्यजी म. श्लोक २४, २५.
४. जैनधर्मनी रूपरेखा - ले. श्री राजयश सूरिजी म. पृ. ४२
५. त्रिकालिक आत्म विज्ञान - ले. पनालाल गांधी पृ. २१२-२१३
६. 'महादेव वीतराग स्तोत्र' - ले. श्री हेमचंद्राचार्यजीम. श्लोक-३९
७. 'महादेव वीतराग स्तोत्र' - ले. श्री हेमचंद्राचार्यजीम. श्लोक-४०से ४३
८. 'तत्व निर्णय प्रासाद' - श्रीमद्विजयानंद सूरिम. पृ. ७६
९. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र - श्री उमास्वातिजी म. अध्याय-५ सूत्र-२९
१०. जैनधर्मनी रूपरेखा - श्री राजयश सूरिम. पृ.३४ टिप्पण-१ (आनंदशंकर ध्रुव)
११. त्रिकालिक आत्मविज्ञान - श्री पनालाल गांधी पृ.२४२,२४३,२४४
१२. जैनधर्मनी रूपरेखा - श्री राजयश सूरिम. पृ.३४ टिप्पण-२ (पं.राममिश्रजी)
१३. जैनधर्म और अनेकान्तवाद - पं. दरबारीलालजी पृ. १७०
१४. स्याद्वाद पर कुछ आक्षेप और उनका परिहार - श्री मोहनलालजी मेहता
१५. द्रव्य-गुण-पर्यायनो रास - उपा. श्रयशोविजयजी म.सा. विवेचन-श्रीधर्मधुरंधर वि.म. पृ.४७-४८ और 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र'-अभिनव टीका - ले.मुनि दीपरत्नसागर-अध्याय-५ पृ. १३१.
१६. द्वात्रिंशिका - श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा. ४-१४
१७. 'नवतत्त्व' - (आगमिक संग्रह) - पूर्वाचार्य-गाथा-५७
१८. संबोध सित्तरी - श्री जयशेखर सूरि म.सा. गाथा-२
१९. श्री आत्मानंदजीजन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ-हिन्दी विभाग-पृ. १७१
२०. सन्मति तर्क - श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा. श्लोक-९४
२१. सन्मति तर्क - श्री सिद्धसेन दिवाकरजी म.सा.
२२. जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास - ले. श्री मोहनलाल देसाई
२३. बृहत् शान्ति स्तोत्र - श्री शिवादेवी
२४. **The religion of very ancient Predynasic Egypt, supposed to be lakhs of years old also appears to be quite akin to Jainism** जैनधर्मनी रूपरेखा पृ. ८९
२५. **Yes, His religious (The Jains') is the only true one, upon earth, primitive faith of all mankind** जैनधर्मनी रूपरेखा पृ. ६२
२६. **It were a better would indeed if the world were Jain** जैनधर्मनी रूपरेखा पृ.६३
२७. **It is impossible to know the begining of Jainism.** जैनधर्मनी रूपरेखा पृ. ४५
२८. जैन धर्मनी रुपरेखा - श्री राजयश सूरिजी म. पृ ४५
२९. 'श्री आचारांग सूत्र' - गणधर रचित-(प्रथम अंग)
३०. 'श्री तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' - श्री उमास्वातिजी म.सा.अध्याय-७ सूत्र-८.
३१. बुद्धिस्टर रिव्यू. - ले. एफ. ओ. शाहरादेर
३२. "जैनोनी फरज़ छे के तेमणे समस्त विश्वमां अहिंसा धर्म फेलाववो जोईये"-सरदार पटेल जैनधर्मनी रूपरेखा - श्री राजयश सूरि म. पृ.७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. जैन धर्मनी रूपरेखा - श्री राजयश सूरि म. पृ.७२
३४. 'वंदित्तु' सूत्र - 'दो प्रतिक्रमण सूत्र' - (गणधर रचित) गाथा-४९.
३५. वेदान्त कल्पद्रुम - महात्मा शीवव्रतलालजी वर्मन
३६. अभिधान चिंतामणी - श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा. श्लोक-१४५१
३७. अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ. १६३
३८. नवतत्त्व - (आगमिक संग्रह) पूर्वाचार्य गाथा-९-१०
३९. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर रत्नावली - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.—प्रश्न-११९
४०. चिकागो प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.७२
४१. श्री भगवती सूत्र (पंचम अंग) गणधर रचित-१/६/५४
४२. श्री समवायांग सूत्र (चतुर्थ अंग) गणधर रचित-सूत्र-१०२१
४३. श्री आत्मानंदजी जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ-English Sec. P. 172 to 187.
४४. स्वानुभव - प्रस्तुत शोध प्रबन्धकर्त्री
४५. 'श्रुत स्तव' - 'दो प्रतिक्रमण सूत्र' गाथा-१.
४६. श्री सिमंधर स्वामी स्तुति - श्री वीरविजयजी म.सा.गाथा-२
४७. कालचक्र - चित्र परिचय - तत्त्वज्ञान पीठिका - संपा. श्रीभुवनभानु सूरि म.
४८. जैन तत्त्वादर्श - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.—परि.११
४९. 'श्री भगवती सूत्र' - गणधर रचित - (पंचम अंग) २/१/९०
५०. चिकागो प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.९२
५१. सहस्त्रकूट नामावली - पूर्वाचार्य (अज्ञात) पृ. ३७.
५२. लब्धि प्रश्न - सं. श्री वारिषेण सूरि म.सा. प्रश्न-३७-३८
५३. 'सकलार्हत् स्तोत्र' - आ.श्री हेमचंद्राचार्य सूरि म.सा. श्लोक २९.
५४. "मारे त्रण पदवीनी छाप, दादा जिन चक्री बाप,
अमे वासुदेव थूर थइशुं, कुल उत्तम मारुं कहीशुं !
नाचे कुलमद शुं भराळो, नीच गोत्र तिहां बंधाणो" ।
भ. महावीर - सत्ताईस भवढालियाँ - श्री शुभवीर विजयजी म.सा. ढाल-२ गाथा-७-८
५५. पर्युषण पर्व सज्झाय - द्वितीय व्याख्यान - मुनिराज श्री माणेक विजयजी म.
५६. 'कल्पसूत्र' श्री भद्रबाहु स्वामी - वाचना द्वितीय -
५७. 'श्री महावीर स्वामी पंचकल्याणक स्तवन' - आ. हीर सुरीश्वरजी म.—ढाल-४
५८. 'श्री महावीर स्वामी पंचकल्याणक स्तवन' - कवि राम विजयजी म.—ढाल-३
५९. श्री त्रिषष्ठी शलाका पुरुष चरित्र - श्री हेमचंद्राचार्यजी म.सा. पृ. ६५-६६
६०. 'श्री कल्पसूत्र' - सुबोधिका टीकाका अनुवाद - अनु. शाह भीमशी माणेकजी-पृ. २२
६१. त्रिषष्ठी शलाका पुरुष चरित्र - अनुवाद - प्रका. श्री जैनधर्म प्रचारक सभा-पर्व-१०, सर्ग-३-४
६२. कल्पसूत्र - बालावबोध-पं. श्री खीमा विजयजी गणि-व्याख्यान-पंचम् गाथा-१२०
६३. 'लब्धि प्रश्न' - संपा. श्री वारिषेण सुरीश्वरजी म. प्रश्नोत्तर-१०६
६४. 'श्री कल्पसूत्र' - सुखबोधिका टीका(-अनुवाद-)-अनु.शाह भीमसिंह माणेकजी-पृ. ८९
६५. जैनधर्मके विभिन्न आगमिक, शास्त्रीय, कथानुयोग, चरित्रचित्रणों आदि पर आधारित संक्षिप्त स्वरूप
६६. 'श्री तपगच्छ पट्टावली' - ले. श्री धर्मसागरजी म.सा.,-संपा.-पं.कल्याण वि.म.; 'जैन मत वृक्ष' - ले. श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.; 'जैन धर्मके प्रभावक आचार्य' - संपा. सा. श्री संघमित्राश्रीजी; 'परिशिष्ट पर्व'; 'शासन प्रभावक श्रमण भगवंतो'-संपा. नंदलाल देवलुक, 'श्री कल्पसूत्र'-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अष्टम् व्याख्यान) 'स्थविरावलि' - प्रमुख ग्रन्थाधारित संक्षिप्त संकलन-

पर्व द्वितीय - श्री आत्मानंदजी महाराजजीका जीवन तथ्य -

१. 'आत्माराम पंचरंगम् काव्यम्' - श्री नित्यानंद शास्त्री - १/१
२. 'नवयुग निर्माता श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म. पृ. १२६
३. जैनाचार्य श्री आत्मानंद-जन्म शताब्दि स्मारक ग्रन्थ - हिन्दी विभाग–पृ.२
४. "The world's Parliament of Religious-Chicago-U.S.A. Page-21.
५. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्री योगजीवानंदजीका पत्र, श्री आत्मानंदजीम. के नाम पृ.५२६
६. 'उपासक दशांग सूत्र' संपा. डॉ. ए. एफ. रूडॉल्फ होर्नल - समर्पण पत्रिका
७. 'आत्मचरित्र (उर्दू) ले. लाला बाबूरामजी जैन-पृ. २६-३४
८. 'न्यायांभोनिधि श्री विजयानंद सूरि - ले श्री सुशील - पृ.१
९. पंजाबके महान ज्योतिर्धर जैनाचार्य श्री विजयानंद सूरि - ले. श्री पृथ्वीराजजी जैन-पृ.२४
१०. 'महान ज्योतिर्धर' अनु. रंजन परमार - पृ.८
११. जैनाचार्य श्री विजयानंद सूरि - ले. श्री पृथ्वीराज जैन पृ.२३
१२. जैनाचार्य श्री विजयानंद सूरि - ले. श्री पृथ्वीराज जैन पृ.२३
१३. नवयुग निर्माता - ले. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ.८
१४. नवयुग निर्माता - ले. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ.८
१५. श्री आत्मानंद चौबीसी - प्रका. श्री आत्मानंद जैन सभा - पृ. २
१६. 'उपदेश बावनी' - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म. श्लोक १०
१७. 'अज्ञान तिमिर भास्कर' - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-द्वितीय खंड पृ.-१६५
१८. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - पृथ्वीराज जैन - पृ.२६.
१९. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम् - पं हीरालाल वि. हंसराज - तृतीय सर्ग-श्लोक-२४
२०. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम् - पं हीरालाल वि. हंसराज - तृतीय सर्ग-श्लोक-२६
२१. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम् - पं हीरालाल वि. हंसराज - तृतीय सर्ग-श्लोक-२९ से ५२
२२. न्यायाम्भोनिधि श्री विजयानंद सूरि - ले. सुशील - पृ. ५
२३. 'नवयुग निर्माता' - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ. १०-११
२४. 'महान ज्योतिर्धर - अनु. रंजन परमार पृ. १४
२५. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम् - पं. हीरालाल वि. हंसराज पृ.५२ (पाद टिप्पणी)
२६. न्यायाम्भोनिधि श्री विजयानंद सूरि - ले. सुशील - पृ.९
२७. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि–पृथ्वीराजजी जैन - पृ.४०
२८. 'नवयुग निर्माता' - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. पृ.११७
२९. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - पृथ्वीराज जैन - पृ.४२
३०,३१,३२ 'नवयुग निर्माता'-श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.–अध्याय ७से१२; पृ.१४०; पृ.१७२
३३. श्री आत्मारामजी और हिन्दी भाषा - ले. श्री जसवंतराय जैन पृ.४
३४,३५,३६ 'नवयुग निर्माता' - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.-पृ.१६९;१९१;१७५
३७. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - श्री पृथ्वीराजजी जैन - पृ.५५
३८. 'सुधारस जिन स्तवनावलि' - श्री सिद्धाचलजी तीर्थ स्तवन - कर्ता श्री पद्मविजयजी म.
३९. 'जिन गुण मंजरी' - श्री शत्रुंजय महातीर्थ स्तवन - कर्ता श्री क्षमा विजयजी म. पृ.२१७
४०,४१ 'नवयुग निर्माता' - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ.१८५, १९५
४२. 'मुंहपत्ती विषे चर्चा' - ले. श्री बूटेरायजी म.सा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३,४४ 'धर्मवीर श्री बूटेरायजी महाराज - ले. श्री न्याय विजयजी म.सा.पृ.६७
४५. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ. १९६
४६. महान ज्योतिर्धर - अनु. रंजन परमार - पृ.५८
४७,४८ नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ. २०८, पृ. २१२
४९. न्या. जै. श्री विजयानंद सूरि - पृथ्वीराजजी जैन - पृ. ६०
५०,५१ नवयुग निर्माता -श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. पृ.२२१-२२२; पृ.२३५
५२. श्रीमद्विजयानंद सूरि : जीवन और कार्य - मुनि श्री नविनचंद्र वि. म. - पृ-५९
५३,५४,५५ नवयुग निर्माता - श्री वि.व.सू.म.सा.-पृ.२३८से२४८–पृ.२५३से२६५–पृ.२७६से२८१
५६. श्रीमद्विजयानंद सूरिःजीवन और कार्य-मुनि श्री नविनचंद्र वि.म. पृ.४२-४३ और
न्या. जै.श्री विजयानंद सूरिजी - पृथ्वीराजजी जैन पृ.६९-७०
५७. श्री विजयानंदाभ्युदयम् महाकाव्यम् - पं. हीरालाल वि. हंसराज - सर्ग-११ श्लोक-३
५८. योगनिष्ठ आ. श्रीमद् बुद्धिसागरजीम. - ले. श्री जयभिक्खु–
५९. जै. श्री आत्मानंदजी-ज.श.स्मा.ग्रन्थ - गुजराती विभाग-पृ.१४३
६० से ६५ नवयुग निर्माता–श्री वि. व. सुरीश्वरजी म. - पृ. ३७४;३८३;३९६-३९७;३७७;३९२;४०५
६६. श्रीमद्विजयानंद सूरिःजीवन और कार्य - श्री नविनचंद्र वि.म.-पृ.७२
६७से७५ नवयुग निर्माता - श्री. वि.व.सु.म.सा. -पृ. ३४२;३५५;३६१;३६३;३६९;३७१;३८२;३९२;३९१
७६. "एवं खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी न हु सुग्गइए" - संबोध सित्तरी गाथा-८१
७७. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र - श्री उमास्वातिजी म.सा. - अध्याय-१-सूत्र-१.
७८. शब्द चिंतामणि - संपा. सवाइलाल छोटालाल वोरा पृ.१२७०
७९. महान ज्योतिर्धर - श्री रंजन परमार - पृ. ७६
८०,८१ जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - गुजराती विभाग - पृ.९;१०
८२. जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर-श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.-प्रश्न-१५१
८३. आत्मचरित्र (उर्दू) ला. बाबूराम जैन-पृ.१४
८४. तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पृ-३८६
८५. ईसाई मत समीक्षा - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पृ.२३
८५.A अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पृ.२०६-२०७
८६. चिकागो प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.–पृ.८६
८७. चिकागो प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजीम.–पृ.९६
८८. 'तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.पृ. २०७
८९. जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ-गुजराती विभाग–पृ.-१३३
९०. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि-पृथ्वीराजजी जैन - पृ. ४६
९१. श्री आत्मारामजीनुं जीवन - सत्यना प्रयोगो - ले. नागकुमार मकाती पृ.१०३
९२. गुरुस्तुति - श्रीयुत शेठ कनैयालालजी जैन - श्लोक ९
९३. न्या. श्री विजयानंद सूरि - श्री सुशील - पृ. ४५
९४. जै. श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ-श्रीमद् आत्मारामजी तरफथी पत्रो-पत्र १ (गुज.) पृ.१२२
९५. महान ज्योतिर्धर - अनु. रंजन परमार - पृ. १३८-१३९
९६. जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - आ.श्री आत्मारामजीनुं व्यक्तित्व दर्शन-पोपटलाल शाह(गुज.)पृ.१५
९७. जै.श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - श्री विजयानंदावतार - 'जैन कवि' - श्लोक-९-१०-११
९८. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.-पृ. १४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९९. दसवैकालिक सूत्र–शय्यंभव सूरि-अध्ययन-९/२/२
१००.जैनधर्म विषयक प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सु.म.सा. अंतिम वाक्य
१०१.अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सु.म.सा.-पृ.१७७
१०२.तत्त्व निर्णय प्रासाद - श्रीमद्विजयानंद सु.म.सा.-पृ.१७७-१७८
१०३.विनय प्रधान महापुरुष - श्री कुंवरजी आणंदजी-पृ.२४
१०४.न्या.जै.श्रीविजयानंद सूरि-श्रीपृथ्वीराजजी जैन - पृ.९३
१०५.श्री आत्मारामजीम. और श्रीमोहनलालजी म.-श्री रिद्धिमुनिजी-पृ.४००
१०६.सूरिजीना केटलाक जीवन प्रसंगो - मुनि श्री चारित्र विजयजी-पृ.३८
१०७.न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि–पृथ्वीराजजी जैन-पृ.६९
१०८.न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि–पृथ्वीराजजी जैन-पृ.
१०९.जै.श्री आत्मानंदजी ज.शा.स्मा.ग्रन्थ–मुनिराज श्री चरणविजयजी म.पृ.१३९
११०.श्री आत्मारामजी म.अने तेओश्रीना आदर्श गुणो - मुनिराज श्री चरणविजयजीम.-पृ.१४२
१११.न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि–श्री पृथ्वीराजजी जैन पृ.९८
११२.महान ज्योतिर्धर - अनु. श्री रंजन परमार पृ.१३७
११३.मंत्रवादी श्रीमद्विजयानंद सूरि-यति श्री बालचंद्राचार्यजी .पृ.२०
११५.सुसंस्मरणो - सूरचंद्र बदामी पृ.६४
११६.श्री आत्मारामजी म. अने तेओश्रीना आदर्श गुणो - मुनिराज श्री चरणविजयजीम. पृ.१३९
११७.न्या.श्री विजयानंद सूरि–श्री पृथ्वीराजजी जैन - पृ.१५९
११८.न्या.श्री विजयानंद सूरि–श्री सुशील - पृ.७०
११९-१२० श्री आत्मारामजी म. अने तेओश्रीना आदर्श गुणो - मुनि श्री चरण विजयजीम. पृ.१३६;१४१
१२१.My acquaintance with Swami Atmaram - Jwala Sahai Mishra-P.71-72
१२२. न्या. श्री विजयानंद सूरि-श्रीसुशील पृ.४४-४५
१२३.न्या.जै. श्री. विजयानंद सूरि-श्री पृथ्वीराजजी जैन-पृ.८७
१२४.अज्ञान तिमिर भास्कर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा.पृ१७१
१२६.आ.श्रीआत्मारामजी म.नुं व्यक्तितत्व दर्शन - श्री पोपटलाल शाह-पृ.१४
१२७.'नवयुग निर्माता' - आ. श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म. पृ.४१२

पर्व तृतीय-श्री आत्मानंदजी म.के व्यक्तित्वका मूल्यांकन-ज्योतिषचक्रके परिवेशमें

१. जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तर - श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.सा. - प्र.११९
२. ज्योतिष कल्पतरु - जोषी सोमेश्वर द्वारकादास - पृ.४६
३. हस्तलिखित डायरी - श्री गौतमकुमार शाह
४,५,६ ज्योतिष कल्पतरु - जोषी सोमेश्वर द्वा. पृ.३; पृ.२५० से २६० पृ.१७
७. हस्तलिखित डायरी - श्री गौतम कुमार शाह
८. सिद्धान्तसार (प्राचीनाचार्य) सूर्यचन्द्रश्च भौमश्च बुध ईज्यश्च भार्गवः
शनी राहुश्च केतुश्च प्रोक्ता एते नवग्रहाः ।"
९. ज्योतिष कल्पतरु - जोषी सोमेश्वर द्वा. पृ.२२
१०. लघु जातक - पूर्वाचार्य (अज्ञात) गाथा-५
११. सर्वार्थ चिंतामणी (अज्ञात) "अथोर्ध्व दिननाथ भौमौ दृष्टिः कटाक्षेण कवी दुसून्वोः।
स्व दिनादिष्वशुभशुभा बहुलोत्तर पक्षर्योबलिनः।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. जन्मभूमि पंचांग -२०५१ - पृ.१३५
१३. (मानसागरी ग्रन्थाधारित)-ज्योतिष कल्पतरु-जोषी सोमेश्वर द्वा. पृ.२६०-२७०
१४. जन्मभूमि पंचांग–स.२०५१–पृ.१५४
१५. ज्योतिष कल्पतरु - जोषी सोमेश्वर द्वा. (जातक पारिजात ग्रन्थाधारित) पृ. ४२६ से ४२९
१६. जै.श्रीआत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - श्रीमद्विजय वल्लभ सू.म.सा.हिन्दी विभाग-पृ.२११
१७. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.-अध्याय ५-६-७
१८. न्या.जै.श्री विजयानंद सूरि - श्री पृथ्वीराजजी जैन, प्रकरण-३-१६-१७
१९. महान ज्योतिर्धर - रंजन परमार
२०. श्री विजयानंद सूरि–श्री सुशील
२१. सूरिजीना केटलाक जीवन प्रसंगो - मुनि श्री चारित्र विजयजी म.सा.
२२. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.
२३. मुनिश्री आत्मानंदजी म.तथा चिकागो सर्व धर्म परिषद - सुंदरलाल जैन-पृ.३८
२४. जन्मभूमि पंचांग-वि.सं.२०४८-'राहुना अगम रहस्यो' आर. डी. जोशी. पृ.१२३
२५. श्री आत्मारामजी म.अने तेओना आदर्श गुणो - मुनि चरण विजयजी म.-पृ.१४३
२६. श्री आत्मानंदजी ज.श.स्मा.ग्रन्थ - Dr. Hornle's Letters (अंग्रेजी विभाग) पृ.१३० से १४०
२७. मंत्रवादी श्री विजयानंद सूरिजी - यति श्री बालचंद्राचार्यजी म.पृ.२०
२८. जन्मभूमि पंचांग - सं.२०५०–श्रीनवीनचंद्र शुक्ल - पृ.२३३
२९. आ.श्री विजयानंद सूरि-एक आदर्श साधु–श्रीनरोत्तमदास भगवानदास-पृ.५३
३०. नवयुग निर्माता - श्री विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा. - अध्याय-११२
३१. जन्मभूमि पंचांग - वि.सं.२०४८ ले. श्री अश्विन रावल-पृ.२३८
३२. श्री आत्म चरित्र (उर्दू) ला.बाबूरामजी जैन पृ.१७५
३३. जन्मभूमि पंचांग - वि.सं.२०४६ ले. यति श्री शिवगिरिजी-पृ.२०९
३४. जन्मभूमि पंचांग - वि.सं.२०५० - पृ. २२९
३५. नवयुग निर्माता - श्रीमद्विजय वल्लभ सुरीश्वरजी म.सा.पृ.
३६. जन्मभूमि पंचांग - 'सन्यास के योग' - श्री चंद्रकान्त पाठक

पर्व चतुर्थ - श्री आत्मानंदजी म.की अक्षरदेहका परिचय - मंगलाचरण

आचार्य प्रवरश्रीके ग्रन्थोंका परिचय

पर्व पंचम् - उपसंहार

१. श्री विजयानंद सुरीश्वरजी स्तवनम् - मुनि श्री चतुरविजयजी म.सा. - श्लोक-२
२. प्रभावक ज्योतिर्धर जैनाचार्यो- पं.लालचंद्र गांधी-पृ.९८
३. न्या. श्री विजयानंद सूरि–श्रीसुशील - पृ.३२
४. आत्मचरित्र (उर्दू) लाला बाबूरामजी जैन - पृ.२७६
६. अष्ट प्रकारी पूजा श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.-पूजा-४.
७. आत्मविलास स्तवनावलि श्रीमद्विजयानंद सुरीश्वरजी म.
८. समर्पित शासन सेवक–श्री आशिष कुमार जैन - पृ.३५१
९. श्री भक्तामर स्तोत्र (पादपूर्ति) पं हीरालालजी श्लोक-४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

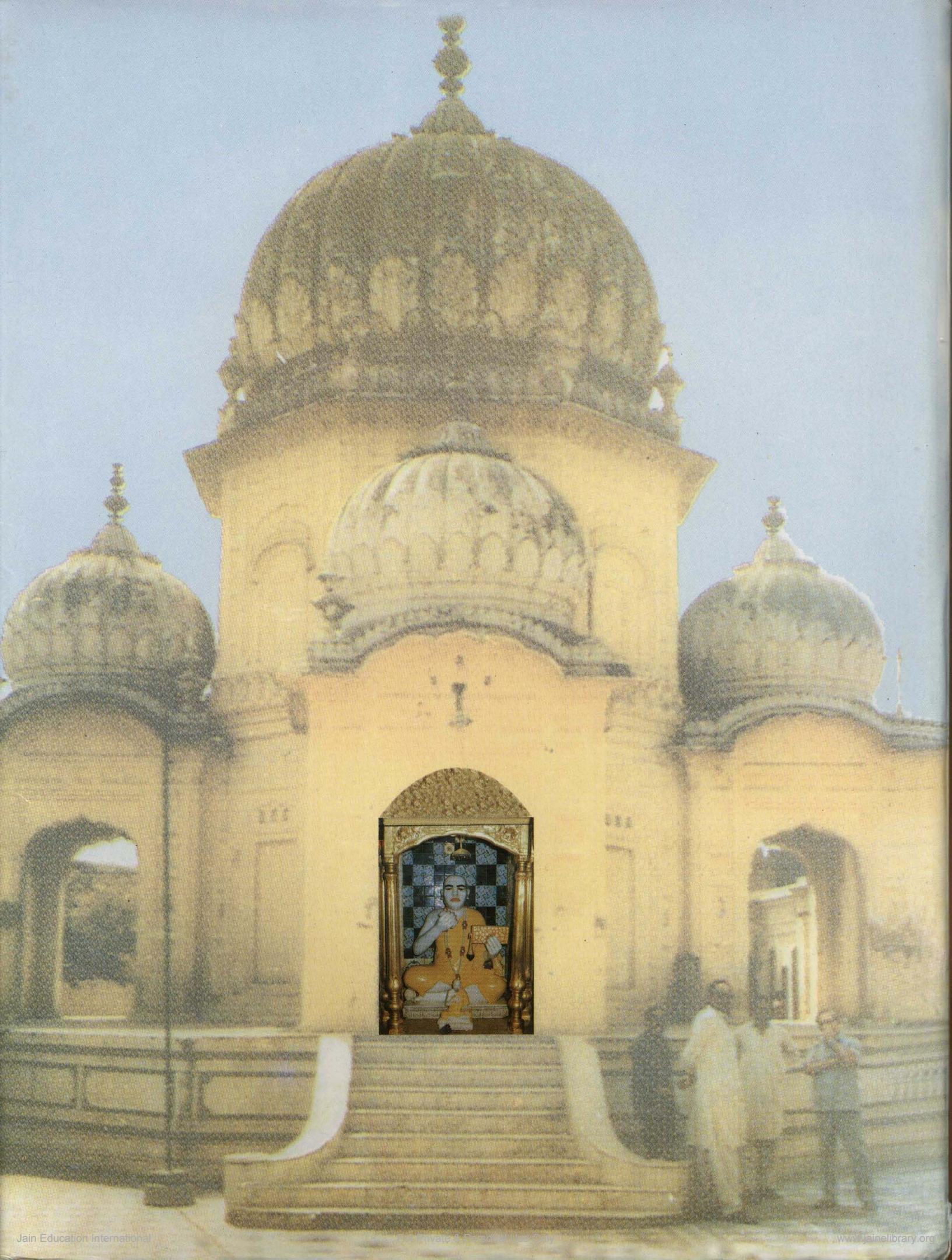

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org